UGC Care Listed

त्रैमासिक साहित्यिक पत्रिका

वर्ष-12, अंक-41, अपैल - जून 2022

ISSN-2321-1504 Nagfani

RNI No. UTTHIN/2010/34408



आज़ादी का अमृत महोत्सव

नागफनी

अस्मिता, चेतना और स्वाभिमान जगाने वाला साहित्य

भाग-2

मूल्य ₹ 150/-

आगामी अंक की सूचना

जुलाई से सितंबर 2022 के लिए 30 जून तक ही लेख स्वीकार किये जायेंगे। 30 जून के बाद मेल पर प्राप्त शोधालेखों पर आगामी अंक में प्रकाशित करने पर विचार किया जाएगा। व्यक्तिगत पंचवार्षिक सदस्यता लेने पर पांच साल तक पत्रिका मिलेगी। शोधालेख प्रकाशन की स्वीकृति/अस्वीकृति का जो भी निर्णय होगा वह आपको मेल से ही सूचित किया जाएगा इसको लेकर संपर्क करने की आवश्यकता नहीं हैं।

"नागफनी" अस्मिता, चेतना, और स्वाभिमान जगाने वाली त्रैमासिक साहित्यिक पत्रिका है। इस पत्रिका को यूजीसी केयर लिस्ट मे शामिल किया गया है। पत्रिका का ISSN&2321&1504 nagfani और RNI No-UTTHIN/2010/34408 नम्बर है। साथ ही यह Peer Reviewed Referred journal है। आलेख –nagfani81@gmail-comपर भेजने का कष्ट करें। व्यक्तिगत पंचवार्षिक सदस्यता लेने पर पांच साल तक पत्रिका मिलेगी।

आलेख भेजने संबंधी निर्देश–

- शोधालेख यूनिकोड kokila फॉन्ट 14 साइज में तथा एरियल युनिकोड में टाइप करके word और PDFदोनों में भेजना है।
- कलर पासपोर्ट फोटो।
- मौलिकता और प्लेगरिज्म संबंधी प्रमाण–पत्र।
- अन्य किसी टाइप फॉन्ट को स्वीकृत नहीं किया जाएगा।
- आलेख मेल पर भेजने के बाद आलेख स्वीकृति/अस्वीकृति की सूचना मेल पर ही दी जाएगी ।

धन्यवाद!

नागफनी

A Peer Reviewed Refrred Journal
(अस्मिता चेतना और स्वाभिमान जगाने वाला साहित्य)
UGC Care Listed त्रैमासिक साहित्यिक पत्रिका
ISSN-2321-1504NagfaniRNI No.UTTHIN/2010/34408

संपादक
सपना सोनकर

सह संपादक
रूपनारायण सोनकर

कार्यकारी संपादक
डॉ.एन.पी.प्रजापति
प्रोफेसर बलिराम धापसे

वर्ष-12 अंक41,अप्रैल -जून 2022

सलाहकार मण्डल (Peer Review Comittee)

प्रोफेसर विष्णु सरवदे, हैदराबाद (तेलंगाना)
प्रोफेसर आर. जयचंद्रन तिरुअनंतपुरम (केरल)
प्रोफेसर दिनेश कुशवाह,रीवा (मध्य प्रदेश)
डॉ.एन. एस. परमार, बड़ौदा (गुजरात)
प्रो. दिलीप कुमार मेहरा, बी.बी.नगर (गुजरात)
डॉ.उमाकांत हजारिका, शिवसागर(असम)
डॉ. आर. कनागसेल्वम, इरोड (तमिलनाडु)
प्रोफेसर संजय एल. मादार,धारवाड़ (कर्नाटक)
प्रोफेसर गोबिन्द बुरसे, औरंगाबाद (महाराष्ट्र)
डॉ.दादा साहेब सालुनके, महाराष्ट्र (औरंगाबाद)
प्रोफेसर अलका गड़करी, औरंगाबाद (महाराष्ट्र)
डॉ. साहिरा बानो बी. बोरगल, हैदराबाद (तेलंगाना)
डॉ. बलविंदर कौर, हैदराबाद (तेलंगाना)
डॉ.ओम प्रकाश सैनी, कैथल (हरियाणा)

प्रकाशन/मुद्रण

प्रकाशक रूपनारायण सोनकर की अनुमति से डॉ.एन. पी.प्रजापति एवं प्रोफेसर बलिराम धापसे द्वारा नमन प्रकाशन–423/Aअंसारी रोड दरियागंज, नई दिल्ली 11002 में प्रकाशन एवं मुद्रण कार्य

मुख पृष्ठ—डॉ. आजम शेख, मैत्री ग्राफिक्स, सावंगी (ह), औरंगाबाद (महाराष्ट्र)

संपादकीय/व्यवस्थापकीय कार्यालय

दून व्यू कॉटेज स्प्रिंग रोड, मंसूरी -248179, उत्तराखण्ड, दूरभाष : 0135-6457809 मो.0941077718

शाखा कार्यालय

पी.डब्ल्यू. डी. आर. -62 ए ब्लॉक कॉलोनी बैढ़न, जिला-सिंगरौली म. प्र. पिन-486886 मो. 09752998467

सहयोग राशि -150/-रुपये, वार्षिक सदस्यता शुल्क (संस्था के लिए)-1000/-रुपये, पंच वार्षिक सदस्यता शुल्क (व्यक्ति के लिए)-2000/-रुपये, पंच वार्षिक संस्था और पुस्तकालयों के लिए –3000/-रुपये, विदेशों में$50 आजीवन व्यक्ति-6000/-रुपये,संस्था-10,000/-रुपये।

सदस्यता शुल्क एवं सहयोग राशि-इंडिया पोस्ट पेमेंट बैंक–A/C –8367100138282 IFSC Code-IPOS0000001
Branch-sidhi, NIRPAT PRASAD PRAJAPATI

नोट:-पत्रिका की किसी भी सामग्री का उपयोग करने से पहले संपादक की अनुमति आवश्यक है। संपादक-संचालक पूर्णतया अवैतनिक एवं अध्यवसायी हैं।**'नागफनी'**में प्रकाशित शोध-पत्र एवं लेख, लेखकों के विचार उनके स्वयं के हैं। जिनमेंसंपादक की सहमति अनिवार्य नहीं हैं ।**'नागफनी'** से संबंधित सभी विवादास्पद मामले केवल देहरादून न्यायालय के अधीन होंगे। अंक में प्रकाशित सामग्री के पुनर्प्रकाशन के लिए लिखित अनुमति अनिवार्य है। सारे भुगतान मनीऑर्डर, बैंक/चेक/बैंक ट्रांसफर/ई-पेमेंट आदि से किए जा सकते हैं। देहरादून से बाहर के चेक में बैंक कमीशन 50/-अतिरिक्त जोड़ें दें।

लेख भेजने के लिए –Mail-ID- nagfani81@gamil.com
पत्रिका के बारे मे विस्तार से जानने के लिए देखें Website:–http:naagfani.com

नागफनी

वर्ष-12 अंक 41,अप्रैल-जून-2022 भाग-2

अनुक्रम पृष्ठ क्रमांक

संपादकीय 04

साहित्यिक विमर्श

1. लोक-साहित्य एवं इसके विविध रूप-**डॉ.निधि शर्मा** 5-7
2. वर्तमान संदर्भ में कबीर के काव्य में सामाजिक दर्शन:एक अध्ययन -**डॉ.मो.मजीद मियाँ** 7-8
3. आधुनिक हिन्दी कविता का स्वतन्त्रता आन्दोलन में योगदान-**डॉ.पवन कुमार शर्मा & डॉ.सुनील** 9-10
4. डूब: मनुष्यता और विकास के उन्माद की लड़ाई-**अपर्णा ए.** 10-12
5. सामाजिक दुर्दशा का यथार्थ दस्तावेज : गिलिगडु-**डॉ.संतोष बबन पगार** 12-14
6. राजनीति संस्था और शरद जोशी एवं उनके समकालीन व्यंग्यकार-**राजेश कुमार शर्मा & डॉ. राज नारायण शुक्ल** 15-17
7. हिंदी सिनेमा में कमलेश्वर का अवदान-**डॉ.श्रीमती विनोद कालरा** 18-20
8. प्रेम की वेदी : एक अनुशीलन-**मिन्नु जोसेफ** 21-22
9. ग्राम्य जीवन के विभिन्न पक्ष-**पवन कुमारी** 23-25
10. बदलते हुए राजनीतिक परिदृश्य : 'एक हत्या की हत्या' नाटक के संदर्भ में-**चिप्पी एम.आर.** 26-28
11. हिन्दी पत्रकारिता के बदलते स्वरूप-**कनक राज पाठक** 28-30
12. महीप सिंह की कहानियों में मानवीय सम्बंध-**डॉ.प्रवीन कुमार** 30-31
13. मणिपुरी बाल साहित्य: उद्भव और विकास- **एस. साधना चनु** 32-34

स्त्री विमर्श

1. हिंदी साहित्य के परिप्रेक्ष्य में नारीवादी विचार-**डॉ.पंडित बन्ने** 35-36
2. सेज पर संस्कृत उपन्यास में चित्रित-स्त्री-**डॉ.आशीष** 36-38
3. दासताएँ औरत (वीना वर्मा की नज़र से)-**डॉ.चमकौर सिंह** 38-40
4. जुलूस उपन्यास के स्त्री पात्र-**डॉ.माया सगरे लक्का** 41-43
5. विस्थापन का दर्द : कश्मीरी लेखिकाओं की संघर्ष गाथा-**ममता माली & डॉ. जयश्री सिंह** 44-46
6. 'कठगुलाब':एब्यूज्ड स्त्री चिंतन से आगे की कथा- **डॉ.वीरेन्द्र प्रताप** 46-49

दलित विमर्श

1. गुरु रैदास का पाठ–संपादन-**डॉ.राजेंद्र प्रसाद सिंह** 50-51
2. श्यौराज सिंह बेचैन की कहानियों में संवेदना के विविध रूप :'हाथ तो उग ही आते हैं ' कहानी संग्रह के विशेष संदर्भ में-**शमीम पी** 52-53
3. दलित जीवन की भयानक त्रासदी : 'सद्गति'-**डॉ.पान सिंह** 54-56
4. जयप्रकाश कर्दम के उपन्यास 'छप्पर' में सामाजिक चेतना-**अजय कुमार चौधरी** 57-59
5. ओमप्रकाश वाल्मीकि की कहानियों में 'दलित आत्म-संघर्ष'-**मु.जाहिद रजा सिद्दीक** 59-62

आदिवासी विमर्श

1. रोज केरकेट्टा के 'अबसिब मुरडअ' में आदिवासी प्रतिरोध-**कु. रेशम सोनकर** 63-65

विविध विमर्श

1. भारतीय बौद्ध दर्शन का कालजयी विश्वकाव्य : धम्मपद-**प्रो.डॉ.शशिकांत 'सावन'** 66-69
2. अटल बिहारी वाजपेयी का जीवन दर्शन-**कैलाश कुमार & डॉ शंकर मुनि राय** 70-72
3. कांग्रेस पार्टी और भारतीय राजीनीति:एक सूक्ष्म विश्लेषण-**पूरन मल मीना** 72-74
4. जनसंख्या भूगोल-भविष्य का भूगोल-**वरुण यादव & डॉ.सालिक सिंह** 75-76
5. भारत में कृषि आय पर कर: संभावनाऐ और चुनौतियों का मूल्यांकन-**मुकेश कुमार मीना & विनोद सेन** 77-79

English Discourse

Canonical Literary Discourse

1. A Brief Analysis of Diversity in Indian Culture and Traditions in Jayanta Mahapatra's Poetry Collection, 'A Rain of Rites'-**Manabodh Luhura &Dr. Ranjana Das Sarkhel** 80-82
2. Past Haunts Present: A Study of Mahesh Dattani's Where Did I Leave my Purdah?-**Dr. Santosh Kumar Sonker & Dr. B. Krishnaiah** 83-85
3. The Male Identity Crisis in Sarnath Banerjee's Graphic Novel Corridor: A Deconstructive Study-**Sonia Sumbria & Dr.Meenakshi Rana** 86-89
4. Refelections of Cuisine and Costumes in Naveen Patnaik 'A Second Paradise'- **Rajkumar Baghel &Dr.Ranjana Das Sarkhel** 90-93

5. Socio-Cultural Differences in Sudha Murty's Novel The Mother I Never Knew-**Ms. Reecha Sao & Dr.Ranjana Das Sarkhel** **94-98**

Feminist Discourse

1. Role of NGO for women in Iraq: Past and Present-**Rajani Bala** **99-102**

2. Transgressions, Translocations and Spatiotemporal convergences in Bharati Mukherjee's The Holder of The World- **Dr. Satya Prakash Prasad** **103-107**

3. Property Rights of Muslim Women in India-**Sapna Chopra & Dr.Parag Agarwal** **108-111**

Dalit Discourse

1. Dalit Feminist Standpoint in ShyamalaGogu'sFather may be an Elephant and Mother only a Small Basket, But…-**Vikaskumar Revabhai Solanki & Dr. Santosh Kumar Sonker** **112-114**

Tribal Discourse

1. Fifth Schedule and Tribal Self Governance: A Critical analysis of New PESA Rules, 2022 of Madhya Pradesh-**Mohan** **115-118**

2. Dermatoglyphics of the Kom Tribe of Manipur- **L. Romeo Singh & Ksh.Sunita Devi** **118-122**

Other Discourses

1. Emergence of Green Industries as tool for sustainable development-**Dr. Renu Sinha** **123**

2. Twenty First Century Educational Sphere - **Prof. Dr. Bimal Mandal** **124-125**

3. Interpretation of the word 'Sutra'In Gita Mehta's A 'River Sutra'-**Bhagatram Seth&Dr.Ranjana Das Sarkhel** **126-130**

4. Kautaliys's:Saptanga Theory of State and Importance of Rajamandala Theory In India'sForeign Policy in the 21th Century -**S. K. Abdul Amanullah** **131-134**

5. Effects of Nature on Human in Pandemic Situations -**Tuli Bhattacharya** **135-136**

6. Effects of Covid-19 on Gender Security in Global Context-**Dr.Renu Sain** **137-139**

7. Digital Humanities in English Language Teaching in Indian Multicultural Classrooms-**Dinesh Shama &Dr. Kumar Gaurav** **139-141**

8. Exploring the Elements of Bhabha's Cultural Hybridity in the Works of Marlon James-**Suman Devi, &Dr. Kumar Gaurav** **142-145**

9. Micro Foundations of Indian Household Finance – Studying The Long Term Trends.-**Sonia Goel & Suvojit Lahiri Chakravarty** **146-152**

10. Percepion of Employees Towards Performance Appraisal System and Their Performance in Mysuru Based Pharmaceutical Companies-**Divya K &Dr. K. Nagendra Babu** **158-155**

11. Amish Tripathi's 'Scion of Ikshvaku': A Study in Hinduism-**Sumit Saurabh&Dr.Manju Roy** **156-161**

12. Cotribution to Rousseau on Naturalistic Phillosophical Thoughts in Education and as the Father of Child -Centric Education- **Sarmistha Chowdhury Biswas** **161-163**

13. A Study on Impact of Superior Subordinate Relationship on Employee Commitment of Canara Bank Employees in UDUPI District -**Dr.Vijayakumar A B & Shruthi C** **163-167**

14. Increasing Trend of Cyber Crime in Modern Era: A Global Analysis-**Dr. Harishankar Rai & Amita** **168-172**

15. Practic of Religin Provided Under THE Constitution and Forceful Conversions in India- **Suman & Dr.M. Imran** **173-176**

16. Impact of Information Technology on Job Satisfaction-**Rohini Mahur & Dr.William** **177-180**

17. Impact of New Economic Policy on Food Processing Industry: A Critical Assessment-**Ms.Anchal Yadav & Dr.Dushyant Kumar** **181-184**

18. Vyasa's Draupadī and Her Relevance in Present Day Context-**Karabi Sarmah** **185-188**

****

संपादकीय ……..

एक दौर प्रधानमंत्री राजीव गांधी के शासन काल मे कंप्यूटर और टेक्नोलॉजी का युग आया। व्यवसायिक शिक्षा का रुझान युवाओं में देखने को मिला।देश में प्रतिष्ठित इंजीनियरिंग कॉलेज हैं। वहां के छात्र विश्व के इंजीनियर्स से टक्कर लेने लगे। इसके बाद तकनीकी शिक्षा का प्राइवेटाइजेशन हुआ।कस्बों,शहरों और गांवों में व्यवसायिक संथाये अधिक संख्या में खुली।तकनीकी शिक्षा का स्तर गिरने लगा। इंजीनियर बेरोजगार होने लगे। फिर भी कुछ युवा यह कहने लगे कि वे सरकारी या गैर सरकारी नौकरी नहीं करेंगे जहां दस से पांच बजे तक कार्य करना पड़ता है। लुभावनी बैंक स्कीम्स आई और स्वरोजगार के लिए लोन मिलने लगे। इनमें कुछ युवाओं को छोड़कर सारे के सारे असफल रहे क्योंकि वे अपना व्यवसाय चला नही पाए।लोन चुकता नही कर पाए।अधिकतर युवा बैंक लोन के कर्ज तले दब गए। बैंक लोन अदा करने का दबाव बढ़ने लगा।किसानों की तरह वे भी आत्म हत्याएं करने लगे।

प्राइवेटाइजेशन की वजह से सभी वर्गों के युवाओं को नौकरियां नही मिल रही हैं। युवा दर दर भटक रहे हैं। उनकी शादियां नही हो पा रही हैं। इस दौरान पढ़े लिखे युवा मजदूर बनते जा रहे हैं। यदि देश के किसी भाग में फोर्थ क्लास की नौकरियां निकलती हैं तो नौकरियां पाने के लिए उच्च शिक्षित पढ़े लिखे लोगों की अर्जियां सबसे ज्यादा होती हैं। गरीबी के कारण इन युवाओं को पौष्टिक आहार नही मिल रहा है। धीरे धीरे हमारी सेना की क्षमता कहीं घट न जाए? यदि युवाओं को दूध घी और पौष्टिक आहार नही मिलेगा तब विश्व की सेनाओं से टक्कर लेने की हमारी ताकत कम न हो जाए? इस बात की चिंता हमारे शासकों को करनी चाहिए।

देश से बेरोजगारी, मंहगाई,अशिक्षा हटे। अधिकतर युवाओं को नौकरियां मिले।ग्रामीण और शहरी भारत में खुशहाली आए।देश में सांप्रदायिक सौहार्द,भाईचारा, प्यार मोहब्बत बना रहे। एक दूसरे के प्रति द्वेष भाव समाप्त हो। सभी समुदायों के लोग मिल जुल कर रहें। हमारा देश एक सबसे ज्यादा शक्तिशाली देश बने। सारे कार्य डॉक्टर अंबेडकर द्वारा लिखित संविधान के अनुरूप हो तभी देश तरक्की कर सकता है। औरतों,दलितों और अल्पसंख्यकों का उत्पीड़नबकम इस भारत देश में न हो।सभी देशवासियों का यही ध्येय होना चाहिए-

ऐसा देश बनाओ
जहां एक दूसरे के पास
जाने में डर न लगे।
लोगों की भीड़
धर्म ,मजहब, जाति के नाम
एक दूसरे का कत्ल न करे
ऑनर किलिंग न हो
औरतों का किसी तरह का
उत्पीड़न न हो
डॉक्टर अंबेडकर का
भारत बनाओ।

****

रूपनारायण सोनकर
मोब -8279789405

लोक- साहित्य एवं इसके विविध रूप

डॉ.निधि शर्मा
हिंदी विभागराजकीय महाविद्यालय
नगरोटा बगवां हिमाचल प्रदेश-176047

सारांश:-लोक से हमारा तात्पर्य विश्वास तथा परंपराओं में जीवित रहने वाले विस्तृत एवं व्यापक समाज से है। लोक साहित्य के विद्वानों के अनुसार यह एक ऐसा समाज है जो आज भी उपभोक्तावादी सभ्यता से कोसों दूर है।संस्कारों तथा आचार -विचारों का अनुशीलन करने वाला यह लोक समाज रीति-रिवाज़ों व अनुष्ठानों में जीवित रहता है। सहजता, सरलता तथा स्वाभाविकता इसका प्रधान गुण है। लोक समाज में आडंबरविहीन जीवन जीने का महत्त्व है। लोक- साहित्य के महत्त्व को जानते हुए अनेक दृष्टिकोणों से इसे विश्लेषित एवं विवेचित करने की कोशिश लगातार जारी है।।लोक साहित्य अर्थात् मौखिक परंपरा का साहित्य। जो पीढ़ी- दर- पीढ़ी प्रवाहित व प्रचलित रहता है। मानव जीवन के साथ ही उसके सुख- दुख की अनुभूतियां शब्दों द्वारा अभिव्यक्त होती रही हैं। अतः मानव जीवन के साथ- साथ ही लोक साहित्य की भी सृष्टि होती रही है।इसकी परंपरा उतनी ही पुरानी है जितनी मानव जाति की परंपरा। यह एक व्यक्ति की रचना न होकर समूह की रचना होती है। इसके रचयिता अज्ञात होते हैं।लोक साहित्य शब्द दो शब्दों के योग से बना है। लोक तथा साहित्य। 'लोक' का अर्थ होता है -देखना। 'साहित्य' का अर्थ होता है -जो हित सहित हो। इस प्रकार लोक- साहित्य का अर्थ हुआ- जनसाधारण का ऐसा साहित्य जिसमें लोगों के सहज एवं आदिम परंपरा के आचार -विचार आदि के द्वारा जन सामान्य का हित होता है।लोक -साहित्य की व्यापकता मानव जन्म से लेकर मृत्यु तक की सम्मिलित संपत्ति है। वास्तव में लोक-साहित्य एक ऐसी मौखिक अभिव्यक्ति है जो भले ही किसी एक व्यक्ति ने गढ़ी हो, परंतु सामान्य लोक समूह इसे अपनी ही संपत्ति मानता है, इसमें लोकमानस प्रतिबिंबित होता है।लोक साहित्य का प्रत्येक शब्द, प्रत्येक स्वर, प्रत्येक लय लोक का अपना है।

संकेत शब्द- लोकमानस,लोकसमाज, लोकसाहित्य, आदिम परंपरा, आचार -विचार, सामूहिक अभिव्यक्ति, धरोहर।

लोक शब्द एक ऐसी भावभूमि का नाम है जिसमें एक विशाल संसार का समावेश है, जिसकी सत्ता पुस्तकीय ज्ञान, बाहरी आडंबर तथा व्यक्तिवादी जीवन से निर्मित नहीं है। इसमें बौद्धिक तनावों, मानसिक कुंठाओं, जीवन पद्धति की जटिलताओं तथा भौतिकवादी तार्किक संस्कारों का लेश मात्र भी अस्तित्व नहीं है बल्कि यह भूमि पवित्र भावों से निर्मित, परंपरागत संस्कारों से पूर्ण, लोकमंगल की कामना से प्रेरित,अकृत्रिमता का बाना ओढ़े हुए है।"यदि सरल शब्दों में कहें तो अभिजात्य प्रभावों से रहित आदिम अवस्था और परंपरा के प्रवाह में रहने वाला जनसमूह लोक है, जिसमें अपना विश्वास, पृथक परंपराएं, निजी वेशभूषा, संस्कृति तथा जीवन-पद्धति है।"[1] लोक में सनातन काल से चले आ रहे अनुभवों का सत्य छुपा है।लोक- साहित्य मानव हृदय के यथार्थ चित्रण का दर्पण होता है। यह लोकाधारित ज्ञान से गतिमान रहता है।नए-नए अनुभवों को एकत्रित करके लोक साहित्य सम्पन्न होता है। यह अगर अतीत का अवशेष है तो वर्तमान का जीवित अभिलेख भी है। तभी तो कहा जाता है कि लोक साहित्य एक व्यक्ति की रचना नहीं होती है। इसके रचयिता अज्ञात व अनाम होते हैं।इसका क्षेत्र व्यापार अत्यंत व्यापक है।यह जनमानस में पलता व प्रसार पाता है।लोक साहित्य के अंतर्गत लोकगाथा, लोकगीत, लोककथा, लोकनाट्य, लोकोक्तियां सम्मिलित हैं। प्रत्येक का अपना विशेष महत्त्व है।

लोकगाथा -लोकगाथा शब्द लोक और गाथा से मिलकर बना है। लोक का अर्थ है- परंपरा में जीने वाले व्यक्ति या व्यक्ति समूह जबकि गाथा का अर्थ है- विस्तृत गीत जिसमें कोई कहानी या कथा होती है अर्थात लोकगाथा का साधारण अर्थ है ऐसा कथागीत जिन्हें मनोरंजन या विशेष अवसरों पर गाया जाता है।लोकगाथा में कथा और गीत दोनों को प्रधानता दी जाती है। जनसाधारण में परम्परा से चले आ रहे 'प्रबंधात्मक गीत' लोकगाथा कहलाते हैं। प्राचीनकाल में जब लेखन की सुविधा नहीं थी तो श्रुतियों के द्वारा अपने नायकों,सम्राटों, देवताओं की प्रशस्तियां गाने की परंपरा प्रारंभ हुई। भर्तृहरि,गुग्गा जाहरपीर आदि इसी प्रकार की लोकगाथाएं हैं। लोकगाथाओं की विषयगत विविधता लोक जीवन से संबंधित अनेक पक्षों की झलक प्रदान करती है। "यदि लोकगाथाओं की संरचना का विवेचन किया जाए तो स्पष्ट होता है कि लोकगाथाएं एक सुसंगत पाठ के रूप में उपस्थित होती हैं। ये प्रस्तावना से प्रारंभ होती हैं और निष्कर्ष पर समाप्त होती हैं।"[2]भारत की लोकगाथाओं में पूजा-पाठ संबंधी रीति-रिवाज़ व परम्पराओं को निम्न पंक्तियों में देखा जा सकता है -

"देखो राजा म्हूं कुंवारी व्हेती
ओ पीपल पूजती ओ
राजा म्हूं कुंवारी व्हेती ओ
पीपल पूजती ओ जी।"[3]

लोकगाथाओं में देवी-देवताओं, साधारणजन की वेशभूषा, आभूषण एवं खान-पान का वर्णन भी किया जाता है -

"बाल-बाल में मोती पैरै ये पगल्यां झांझर बांधे ओ
पगल्यां झांझर बांधे ओ जी ए ज्वाला जी"।[4]

हिमाचल प्रदेश की प्रमुख लोकगाथाएं - 'रानी सुनैना की लोकगाथा','मोहणा','मदना की हार' , 'गढ़ मलौण की लोकगाथा' , 'कुंजु-चंचलो' , 'सुन्नी-भूंकू' आदि हैं। "सुन्नी -भूंकू भरमौर क्षेत्र की वह हृदयस्पर्शी गाथा है जो दो संस्कृतियों के मिलन के साथ एक मायावी और करुण संसार की रचना करती है।..... भरमौर के गद्दी अपनी भेड़-बकरियां लेकर दुर्गम बर्फ़ भरे जोतों को लांघ लाहुल में प्रवेश करते हैं।लाहुल, जहां भोट लोग बसते हैं।भोट, जिन्हें 'भोटले' कहा जाता है, भिन्न वेशभूषा,भाषा और भिन्न संस्कृति के लोग हैं।किंतु गद्दियों के संपर्क में आने के कारण भिन्न भाषा -भाषी होते हुए भी एक-दूसरे को करीब से समझते हैं। ऊंचे पर्वतों के एक ओर भोट तो दूसरी ओर गद्दी।फुलमों-रांझू की तरह सुन्नी-भूंकू गाथा है एक कल्पना लोक के आदर्श प्रेम की,जो जब यथार्थ की धरती पर उतरी तो ज़माने की भूल ने उसका अंत कर दिया।"[5]

सुन्नी -भूंकू लोकगाथा की निम्न पंक्तियां देखिए -
"छोटडा़ गदेटा मेरी भैण जी,काली भौंर दाहडी़ है।

.....
ओ बाहर जइयो निकियो छुकयो, कुत्ते कस जो लगे हो।

.....
कठी तेरे घर ओ मित्तरा कठी जो चलूरा हो।
भट्टी टिकरी घर वो मांहिए,लोहला जो चलूरा हो।

.....
कुण जिणी रित सुन्निए,कुण जिणा म्हीना है।

.....
सैरकणी रित भूंकूआ,काति दा म्हीना है।

.....
होर ता महणू राजी बाजी भूंकू गद्दी मुआ हो।

.....
होर ता महणू राजी बाजी सन्नी भोटली मुई हो।"[6]

लोकगाथाओं का कथानक प्रभावशाली और विस्तृत होता है। यह

समाज के किसी वर्ग और व्यक्ति विशेष से संबंध नहीं रखता अपितु संपूर्ण समाज की धरोहर है। इनका उद्भव जनसाधारण की मौखिक परंपरा से होता है। लोकगाथाओं में गीतात्मकता अनिवार्य तत्त्व माना जाता है। भारत में लोकगाथाओं की बड़ी ही व्यापक और दीर्घ परंपरा पाई जाती है परंतु इसकी कोई निश्चित संख्या नहीं है। विभिन्न भारतीय भाषाओं में इन्हें भिन्न-भिन्न नामों से पुकारा जाता है । गुजरात में इसे कथागीत और राजस्थान में इसे गीतकथा कहते हैं। "लोकगाथाओं का संपूर्ण ढांचा एक जीवंत वृत्तांत -परकता पर आधारित होता है। लोकगाथाओं की वृत्तांत - परकता ही इसे अन्य लोकगीतों से पृथक करती है। लोकगाथाओं का वृत्तांत मात्र भूत न होकर वर्तमान से संवाद कर रहा होता है तथा भविष्य की झांकी उपस्थित कर रहा होता है।"7 भारतीय लोकगाथाओं के अनेक रूप हैं । लोकगाथाओं में प्रेम, वीरता, त्याग,बलिदान,रोमांच आदि की प्रधानता पाई जाती है।

लोकगीत -लोकभाषा का आश्रय लेकर स्वर और लय के संगीतात्मक आवरण में जब मानव मन की आदिम वृत्तियां सहज ही प्रस्फुटित एवं अभिव्यक्त होती हैं तो लोकगीतों का जन्म होता है।लोक साहित्य के अंतर्गत लोकगीतों का प्रमुख स्थान है, जनजीवन में इनकी व्यापकता के कारण ही इनकी प्रधानता स्वाभाविक है। जन्म से लेकर मृत्यु तक सोलह संस्कारों के अवसर पर गाए जाने वाले गीत लोक साहित्य की अमूल्य निधि हैं। डॉ० कृष्ण देव उपाध्याय ने भारतीय लोक साहित्य को छ: श्रेणियों में विभाजित किया है -संस्कार गीत,ऋतु गीत, व्रत गीत,श्रम गीत,देवता संबंधी गीत,जाति संबंधी गीत। सामान्य रूप से लोक में प्रचलित, लोक द्वारा रचित एवं लोक के लिए लिखे गए गीत लोकगीत कहलाते हैं। इनके रचनाकार अपने व्यक्तित्व को लोक के लिए समर्पित कर देते हैं। लोकगीतों में सहजता, रसमयता, मधुरता,लय,ताल आदि गुण रहते हैं। निम्न उदाहरण देखिए-

"छिम्बी हो छिम्बी पाणी जो गई हो
तेरड़े सौंह छिम्बी पाणी जो गई हो।
दंद कदेई ऐस्सा छिम्बी दे जियां खिड़े खटनाल
दंद हेरी मत भुलै राजा जी हांऊं ता जाति री छिम्बी ।।
हाखी कदेई ऐस्सा छिम्बी दी जियां सुरजे री लोई।।"[8]
"चिट्टे दंद खोड़े रा दंदासा हो मेरिये नैणो।
नैणो नैणो हांकां कुनी लाईयां हो मेरेया मेटा ।।
नैणो बैठी धारगले री बाई हो मेरेया मेटा
बुरे हुंदे गाड़ जंगलाती हो मेरिये मेटा।।
खुस्सी लेंदे हाथा री दराटी हो मेरेया मेटा।।
चिट्टे दंद खोड़े रा दंदासा हो मेरिये नैणो।
कुनी पाया दंदड़ रा हासा हो मेरेया मेटा।।"[9]
"ऊची ऊची रेढ़ी ऊची ऊंची रेढ़ी हो बंसरी बजांदा बो बैरिया।
बजदी सुणी मुरली हो रोई रोई भिजो बो बैरिया।।
हत्था तेरे छतरी हो जाति दा तू खतरी बो बैरिया।"[10]

इन लोकगीतों में सामूहिक अभिव्यक्ति व्यक्त हुई है। आदिकाल में जब सामाजिक चेतना का विकास हो रहा था तो ऐसे गीतों का जन्म हुआ जिनका संबंध जीवन से था। जगत की विभिन्न चेष्टाओं एवं स्थितियों का प्रभावपूर्ण चित्र लोकगीतों में रहता है।

लोककथा-भारत में लोक कथाओं का इतिहास बहुत ही प्राचीन रहा है। हमारे प्राचीन ग्रंथों रामायण, वेद, पुराण, उपनिषद, महाभारत में भी लोककथाएं दी गई हैं। लोककथा से तात्पर्य किसी क्षेत्र विशेष में जनश्रुतियों के माध्यम से आ रही कथाएं हैं। इनका अस्तित्व पुरानी पीढ़ी से नई पीढ़ी तक किंवदंती जनश्रुतियों के माध्यम से पहुंचता है। लोकसाहित्य में लोककथाएं महत्त्वपूर्ण स्थान रखती हैं। व्यापकता व प्रचुरता की दृष्टि से इसका महत्त्व अधिक है। भिन्न-भिन्न विद्वानों ने लोककथाओं का अनेक रूप से वर्गीकरण किया है । मुख्य रूप से लोक कथाओं को छ: वर्गों में बांटा जा सकता है -उपदेश कथा,व्रत कथा,प्रेम कथा, मनोरंजन कथा, सामाजिक कथा, पौराणिक कथा।

कथा से तात्पर्य किसी चरित्र, घटना, समस्या या उसके किसी रोचक पहलू व मनोरंजक वर्णन से है। लोककथाएं समाज के प्रत्येक वर्ग के लिए समान रूप से आकर्षण का केंद्र रही हैंये कथाएं मानव जाति के विश्वास, परंपराओं, प्रथाओं का प्रतिनिधित्व करती हैं। वास्तव में लोककथा साहित्य काफी विशाल है। भारतीय लोक साहित्य में यदि विभिन्न बोलियों की लोककथाओं को संकलित करने की चेष्टा करें तो अनेक संकलन तैयार हो सकते हैं । लोक कथाओं की जन्मभूमि भारतवर्ष है, इन कथाओं का प्रभाव पूरे संसार पर पड़ा है। लोककथाओं के वर्णन में प्रायः स्वाभाविकता रहती है, जिस तरह से घटना होती है उसे उसी तरह प्रस्तुत किया जाता है। बुरे कार्यों के दुष्परिणाम दिखाए जाते हैं। स्वाभाविकता के कारण लोककथाओं में विश्वसनीयता बनी रहती है। लोककथाएं मानव मन की एक ऐसी उपज है जो मनोरंजन के लिए लिखी व बोली जाती हैं। इनमें सहज प्रेम का चित्रण होता है। अश्लील प्रेम का वर्णन लोककथाओं में नहीं होता। इनमें सर्वमंगल की भावना एवं जिज्ञासा बनी रहती है। भारतीय ज्ञान परंपरा में लोक शिक्षण और लोकाभिव्यक्ति की दृष्टि से इनका विशेष महत्त्व है।

लोकनाटक-लोकनाटक समूह या समाज की अनुभूतियों, भावनाओं और विशेषताओं को अभिव्यक्ति प्रदान करता है। इसे हमेशा खुले रंगमंच पर खेला जाता है। इसमें प्रयोग किए जाने वाले संवाद पद्यात्मक होते हैं। लोकनाटकों में नृत्य, गीत,लय की प्रधानता रहती है। ये परम्परा से मौखिक रूप में चला आ रहा है। लोक नाटकों में लोक जीवन की झांकी प्रस्तुत की जाती है।

"लोक नाट्यों का ज्ञात उभार दसवीं से तेरहवीं शताब्दी के बीच दिखाई देता है यह समय एक प्रकार से संस्कृत नाटकों के पराभव का भी है कुछ विद्वान लोकनाट्यों के विकास को संस्कृत नाटकों के पराभव से भी जोड़ते हैं किंतु यह मत औचित्यपूर्ण नहीं है । संस्कृत नाटक प्राय: राज्याश्रय में रचे और खेले जाते थे। दसवीं शताब्दी के आसपास की राजनैतिक उथल-पुथल के चलते ये राज्याश्रय कमज़ोर हुए तथा इसका प्रभाव इनके संरक्षण में पलने वाले नाटकों एवं साहित्य के अन्य रूपों पर भी पड़ा । वस्तुतः इस समय संस्कृत भाषा भी क्षीण पड़ रही थी तथा समाज पर उसकी पकड़ कमजोर हो रही थी ।जबकि लोकभाषा दृढ़ता के साथ विकसित हो रही थी और जनसामान्य के आचार - व्यवहार का माध्यम थी। तत्कालीन साहित्यिक रचनाओं में भी लोकभाषाओं की प्रतिष्ठा हो रही थी। लोकनाट्य, लोक जीवन में शतत प्रवाहित थे ।कथा गायन, अभिनय आदि की परंपराएं लोक में निरंतर जीवित थी। इस प्रकार नाट्यशास्त्र से लेकर संस्कृत नाटकों तक लोकनाट्यों का अंतर्क्रियात्मक नैरन्तर्य जारी था।"[11]लोकनाटकों में लोक के रीति-रिवाज़, परम्पराओं, भावनाओं का वर्णन किया जाता है।धर्म के साथ भारतीय लोकमानस का गहरा संपर्क रहा है। धर्म के अनुष्ठानिक एवं कर्मकांडीय रूपों से जन सामान्य का गहरा लगाव उसके अभिव्यक्ति रूपों को अनिवार्य रूप से प्रभावित करता है। लोक नाटकों के प्रमुख रूप रामलीला, रासलीला, स्वांग, नौटंकी, भगत, माच,भवाई,गवरी, बिदेशिया,नाचा आदि हैं। कथानक की दृष्टि से लोक- नाटकों में लोक जीवन में प्रचलित घटनाएं ली जाती हैं जिनमें सामाजिक और धार्मिक मान्यताओं को महत्ता दी जाती है। महाभारत, रामायण, भागवत एवं अन्य अनेक पुराण तथा जन प्रचलित किंवदंतियां और लोकावदान हमारी लोकनाटक परंपरा के अच्छे स्रोत रहे हैं। "इतना तो निश्चित है स्वांग,भगत, माच,ख्याल,वैष्णवनाट्य, लीलानाटक हिन्दी रंगमंच की लोकधाराएं हैं,जो नाट्यशास्त्र की परम्परा से बहुत कुछ ग्रहण करते हुए भी उससे टक्कर लेती हैं।"12 लोकनाटकों में संगीत का प्रधान स्थान है। आदि से अंत तक नगाड़ा, ढोलक, सारंगी, बांसुरी, हारमोनियम, मंजीरे आदि पार्श्व संगीत प्रदान करते रहते हैं। लोकनाटकों की भाषा मुख्य रूप से काव्यात्मक होती है, जिसमें स्थान- स्थान पर बोलीगत भेद के कारण विविधता पाई जाती है। स्थानीय रंग के अनुसार कथावस्तु में यथावसर हेरफेर कर लिया जाता है। लोकनाटक रचे या खेले जाते हैं, वे दर्शकों के मन में पहले से ही समाए रहते हैं।

दर्शक- प्रदर्शनकर्त्ता में कोई विशेष अंतर नहीं रहता है। लोकनाटकों में सरलता, सहजता ,उन्मुक्तता, अनौपचारिकता, रोचकता, लोकानुरंजन आदि की प्रधानता रहती है। लोकनाटक परंपरा अत्यंत विशाल, समृद्ध और बहुरंगी रही है। किसी- न- किसी रूप में यह परंपरा आज भी विद्यमान है और अनिवार्य रूप से आधुनिक नाटक और रंगमंच के रचनातंत्र और उसकी परिकल्पना को प्रभावित करती रही है।

लोकोक्ति -लोक में प्रचलित उक्ति या कथन को लोकोक्ति कहा जाता है। ये दो शब्दों के मेल से बना है-लोक और उक्तिायह सामाजिक अनुभवों का निचोड़ होता है।इसका प्रयोग किसी विचार को प्रभावी ढंग से व्यक्त करने के लिए होता है। लोकोक्ति समाज में पीढ़ी दर पीढ़ी आगे बढ़ती है। पुराणकथा, लोककथा आदि से भी लोकोक्तियां उत्पन्न होती हैं। इनका सीधा संबंध लोकमानस और लोकजीवन से होता है। लोकोक्तियां किसी भू-भाग के निवासियों के आचार -विचार(व्यवहार) तथा विश्वासों पर भी प्रकाश डालती हैं। कुछ उदाहरण

प्रस्तुत हैं -

"अंडे सेवे कोई, बच्चे लेवे कोई।"(13)
"छप्पर पर फूस नहीं, दरवाज़े पर नाचा।"(14)
"परबस का जीना बुरा"(15)
"सीख वाको दीजिए जाको सीख सुहाय"(16)
"सोना जाने कसे,मानस जाने बसे" (17)

लोकसाहित्य में लोकोक्तियों का अपना महत्त्वपूर्ण स्थान है। इनके प्रयोग से भाषा में एक बल आता है जो श्रोता पर सीधा प्रभाव डालता है।

अंत में कहा जा सकता है कि लोकसाहित्य समस्त जातियों, रीति-रिवाज़ों, रूढ़ियों, गीतों, कथाओं, मुहावरों, कहावतों का साहित्य है, जो मौखिक रूप से एक मनुष्य से दूसरे को प्राप्त हो जाता है। प्रत्येक मनुष्य का यह नैतिक कर्त्तव्य है कि वह इसका संरक्षण करे। पर वास्तविकता तो यह है कि आधुनिक पीढ़ी लोकसाहित्य से परिचित नहीं हो पा रही है।वे इसे उपेक्षित समझती है। विदेशों में रह रहे भारतीय अपनी माटी,अपनी संस्कृति से जुड़ाव चाहते हैं जबकि हम यहां रहकर भी अपने लोकसाहित्य के प्रति हीनभावना एवं नकारात्मक सोच रखते हैं। लोक और वेद के बीच की खाई ने लोकसाहित्य को दरकिनार कर दिया। लोक साहित्य भारतीय संस्कृति की धरोहर है। इसके अंतर्गत जहां व्यक्ति के सुख-दुख, आशा- निराशा, हर्ष-विषाद विद्यमान होते हैं वहीं इसके अंतर्गत सामाजिक, सांस्कृतिक संदर्भ भी आते हैं, जो राष्ट्र को अपनी पहचान देते हैं।चाहे विषय का स्तर हो या शिल्प का, दोनों ही स्तरों पर लोकसाहित्य परिनिष्ठित साहित्य का पात्र बना और इसका मार्ग प्रशस्त किया है। अतः हमें इसके संरक्षण एवं प्रचार-प्रसार का हर संभव प्रयास करना चाहिए।

****

संदर्भ सूची -

1. ज्ञानवार्ता पत्रिका(पांचवाअंक) में डॉ० अमर सिंह का लेख(ब्रज का लोकजीवन और साहित्य) पृ०10, दिसंबर 2014
2. फ्रैंक सिजविक : ओल्ड वैलेड्स, कैम्ब्रिज यूनियन प्रेस,पृ०9,1909
3. महेन्द्र भाणावत: ताखा अंबाव रो भारत, भारतीय लोककला मंडल उदयपुर,पृ०7,1971
4. महेन्द्र भाणावत:काला गोरा रो भारत, भारतीय लोक कला मंडल उदयपुर, पृ०6,1968
5. सुदर्शन वशिष्ठ: हिमालय गाथा-3 जनजाति संस्कृति,पृ0309,सं०2014
6. वही,पृ0309,310
7. बद्रीनारायण- लोक संस्कृति और इतिहास, पृ० 78, सं०2014
8. सुदर्शन वशिष्ठ-हिमालय गाथा-3(जनजातीय संस्कृति)पृ०313सं०2014
9. वही,पृ0315-316
10. वही,पृ0316-317
11. डॉ० नरेंद्र मोहन(सं०) समकालीन हिंदी नाटक और रंगमंच, में डॉ वशिष्ठ नारायण त्रिपाठी का लेख (नाट्यऔर लोकनाट्य: अंतर्क्रिया और विकास), पृ० 159-160, सं० 2009
12. जावेद अख्तर खां, हिंदी रंगमंच की लोकधारा, पृष्ठ 29, सं० 2013
13. शालिनी एस गुप्ता, लोकोक्ति कोश,पृ०11, प्रथम सं० 2018
14. वही,पृ0074
15. वही,पृ0144
16. वही,पृ0234
17. वही,पृ0235

वर्तमान संदर्भ में कबीर के काव्य में सामाजिक दर्शन:एक अध्ययन

डॉ. मो. मजीद मियाँ
प्राध्यापक (हिंदी विभाग)
श्री अग्रसेन महाविद्यालय, दालखोला, उत्तर दिनाजपुर

सारांश-भारतीय संत साहित्य हमारी परम्परा की अनुपम और अद्भुत निधि है। इस साहित्य में तत्कालीन भारतीय समाज के अंर्तद्वन्द्वो का संपूर्ण इतिहास निहित है। मध्यकालीन कवियों में समाज को सबसे ज्यादा वैचारिक रूप से उद्वेलित, आन्दोलित और प्रभावित करने में कवि सम्राट कबीरदास जी का योगदान नि:सन्देह रूप से अविस्मरणीय है। उन्होनें अपने वैज्ञानिक एवं तर्कसंगत विचारों से न केवल भारतीय जनमानस को प्रभावित किया बल्कि मन की गहराइयों में जाकर उनके विचारों को परिवर्तित करने में एक अभिनवमनोमूलक दृष्टि भी प्रदान की है। कबीर का प्रादर्भाव ऐसे समय में हुआ जब समाज अनेक कुरीतियों, कुप्रथाओं एवं विषमताओं से ग्रस्त था। हिन्दू तथा मुस्लिम हमेशा समाज में एक दुसरे से झगड़ते रहते थे जिससे समाज में जातिवाद, छुआछूत, अन्धविश्वास, रूढ़िवादिताव पाखण्डवाद का बोल बाला था। समाज में फैली इस कुरीति और अव्यवस्था के कारण दोनों धर्मो के ठेकेदार अपने-अपने स्वार्थ सिद्धि कर रहे थे।

बीज-शब्द : व्यक्तित्व, समाज, बुराइयां, सुधार, संघर्ष, प्रासंगिकता।

प्रस्तावना -कबीर कालीन समाज में धार्मिक परिस्थिति विचित्र थी उस समय हिन्दू, मुस्लिम, बौद्ध, जैन, शाक्त, शैव और सिक्ख आदि प्रमुख धर्म मत-पंथ प्रचलित थे किन्तु लोगों के बीच अनेक ऐसे छोट-छोटे सम्प्रदायों का भी प्रचार हो चला था जिसके कारण बाहयाडम्बर एवं पाखंड का बोल बाला हो रहा था। ''कबीर मुसलमान होकर भी असल में मुसलमान नहीं थे, योगी होकर भी योगी नहीं थे। वे कुछ भगवान की ओर से ही सब से न्यारे बनाकर भेजे गये थे।'' कबीर ने बाहयाडम्बर धर्म का धिक्कार किया है। हर युग का साहित्य अपने युग का आईना होता है। उसमें युगीन चेतनाएँ, विसंगतियाँ एवं विद्रूपताएँ अपने यथार्थ रूप में सन्निहित होती हैं। धार्मिक कट्टरता एवं संकीर्णता के कारण समाज का सन्तुलन बिगड़ रहा था। इस विकट परिस्थिति में एक ऐसे समाज सुधारक की जरुरत थी, जो समाज में फैले इन कुरीतियोंकाबिना किसी डरके विरोध करते हुए दोनों धर्मों के मानने वालों को बिना किसी भेदभाव के आपसी भाईचारा का उपदेश देकर सामाजिक एकता की स्थापना करे। कबीर इसी आवश्यकता की प्रतिपूर्ति करते हुए दिखायी पड़ते हैI हिन्दी साहित्य के निर्गुण काव्यधारा के ज्ञानाश्रयी शाखा के प्रतिनिधि कवि कबीरदास जी के जन्म के सन्दर्भ में एक दोहा प्रचलित है –

चौदह सौ पचपन साल गये चन्द्रवार एक ठाठ गये,
जेठ सुदी बरसात को पूरनमासी प्रगट भये।1

अर्थात् 1398 ई० को कबीरदास जी का जन्म काशी में हुआ, जिनका पालन पोषण नीरू–नीमा नामक जुलाहे दम्पति ने किया। कबीर के विषय में कहा जाता है कि वे पढ़े-लिखे नहीं थे 'मसि कागद छुयो नहि कलम गहयों नहि हाथ।' किन्तु उनमें विलक्षण काव्यप्रतिभा व सामाजिक चेतना विद्यमान थी। अनुभव जन्य सत्य को स्वीकार करने के कारण शास्त्र के पाखण्डी पण्डितों की चुनौती देते हेतु वे कहते हैं 'तू कहता कागद की लेखी, मैं कहता आंखिन देखी'। बस्तुतःबीजक ही **यह तौ खुन वह बंदिगी कैसें खुसी खुदाय।[4]**

कबीर की मूल रचना है। जिसके तीन भाग है- साखी, शबद, रमैनीमें

फैले बाह्याडम्बर, जातिप्रथा, छुआछूत एवं ऊँच-नीच की भावना का विरोध करते हुए कहा कि जन्म के आधार पर कोई भेद-भाव नहो होना चाहिए —

जात न पूछो साधु की, पूछ लीजिए ज्ञान,
मोल करो तलवार का पड़ा रहने दो म्यान।2

अपने अकाट्य तर्कों के माध्यम से कबीरदास जी समाज की सबसे बड़ी बुराई वर्णव्यवस्था एवं जाति-व्यवस्था पर प्रहार करते हुए कहते है कि यदि ब्राह्मण और शुद्र की रगोंमे बहने वालों खून और जन्म लेने के तरीके में कोई भेद नहीं है तो फिर उनमें जातिगत भेद क्यों? उनका मानना था कि व्यक्ति की जाति के विषय में चर्चा करना बिल्कुल असंगत है, किसी की पहचान, सिर्फ उसके ज्ञान से की जानी चाहिए। वस्तुत: भारतीय समाज में व्याप्त विषमता, अनादर और घृणा के माहौल में कबीर की उक्त वाणी समतापरक परिवर्तन का मार्ग प्रशस्त करती है। तर्क और सत्य की बुनियाद पर खड़े होने के कारण धर्म और समाज के ठेकेदारों, मठाधीशों और राजसत्ता का भय कबीर को तनिक भी स्पर्श नहीं कर पाया। कबीर जोर देकर स्थापित करते हैं कि मनुष्य - मनुष्य में कोई भेद नहीं बल्कि एक है- 'एकै जनी जना संसारा'। इसी प्रकार कबीर ने समाज में व्याप्त मूर्तिपूजा का डटकर विरोध किया –

दुनिया ऐसी बावरीपाथर पूजन जाय,
घर की चकिया कोई न पूजैजेहि का पीसा खाय।3

कबीरदास जी समाज में प्रचलित अन्धविश्वासरूपी मूर्तिपूजा पर प्रहार करते हुए कहते हैं कि यदि पत्थर का टुकड़ा पूजने से भगवान मिलते है तो मैं पहाड़ पूजूं। पर ऐसा नहीं होता है क्योंकि यदि इन पत्थर की मूर्तियों में ईश्वर होते तो वह स्वयं को मूर्तिभंजकों से बचा लेता और इनके पूजने से तुरन्त फल भी मिलता। अतः इन पत्थर की मूर्तियों को पूजने की बजाय मनुष्य को कर्म की पूजा करनी चाहिए। कबीर ने धर्म के नाम पर व्याप्त हिंसा का विरोध किया। हिन्दुओं में शाक्तों और मुसलमानों में कुर्बानी देने वालों को उन्होंने निर्भीकता से फटकारा और कहा कि दिन में रोजा रखने वाले रात को गाय काटते हैं। इस कार्य से भला खुदा कैसे प्रसन्न हो सकता है?

दिन में रोजा रहत है रातिहनत हैं गाय,

जीव हिंसा के विरोधी कबीर कहते हैं कि लोगों को यह देखकर सबक लेना चाहिए कि बकरी तो केवल घास पात खाती है और इस पाप के कारण उसकी खाल खींची जाती है, किन्तु कुछ व्यक्ति बकरी खाते हैं, उनकी क्या दशा होगी? पाखंडी ही ईश्वर को पाने के लिए पूजा-व्रत, तीर्थ, मक्का-मदीना, मंदिर तीर्थादि में भटकते फिरते हैं। फिर भी उन्हें ईश्वर नहीं मिलते। हिन्दू चौबीस एकादशी के व्रत और मुसलमान रमजान का एक महीना रोजा रखते हैं। उनसे कबीर पूछते हैं साल के दूसरे दिन ईश्वर कहा जाते हैं? हिन्दू पूर्वाभिमुख करते हैं और मुसलमान पश्चिमाभिमुख होकर नमाज पड़ते हैं। कैसे राम का देश पूर्व और रहीम का पश्चिम हो सकता है? राम और रहीम तो एक ही हैं। राम-रहीम की एकता का प्रतिपादन कर सारे देश को एकता के सूत्र में बांधने का प्रयत्न किया। उन्होंने हिन्दू-मुसलमानों के वैमनस्य और भेदभाव की चौड़ी खाई को पाटने का कुशल प्रयास किया। मध्यकालीन समाज में मुगलों के आधिपत्य और अत्याचारों के परिणामस्वरूप हिन्दू-मुसलमान विद्वेष ने आग पकड़ी होगी। परन्तु यह समस्या तो आज लगभग पाँच सौ साल बाद भी ज्यों की त्यों है। देश साम्प्रदायिक दंगों के घाव आए दिन झेल रहा है। दोनों धर्मों के नाम पर आपस में घात-प्रतिघात हेतु तत्पर रहते हैं। धर्म का वह स्वरूप लुप्त सा हो गया है जो हिन्दू और मुसलमान संप्रदाय में प्रेम, सौहार्द, भाईचारा एवं मानवता को बढ़ावा दें। ऐसे में कबीर पुनः प्रेरणा बनकर उभरते हैं –

"दुइ जगदीश कहाँ ते आए, कहु कौन भरमाया।
अल्ला राम करिम केशव हरि, हजरत नाम धराया।"5

कबीर के ये विचार आज और प्रासंगिक हो गए हैं। आज के भागदौड़ के जीवन में व्यक्ति मशीन की तरह संवेदनहीन बनता जा रहा है। सब कुछ अकेले भोग करने की लालसा ने एकल परिवारों को बढ़ावा दिया है। माँ-बाप, सास-ससुर बोझ बनने लगें। अतः बिडम्बना है कि जिस गति से मनुष्य प्रगति के सोपानों को छू रहा है। वृद्धाश्रमों की संख्या भी तेजी से बढ़ रही हैं। जीवित रहते वक्त कोई नहीं पूछता सगे-संबंधियों को। घर में विद्यमान साक्षात पितरों को भर पेट अन्न और प्रेम के दो बोल नसीब नहीं होते। मृत्योपरांत उनके नाम पर पिंड भर-भर दक्षिणा किये जाते हैं। जिनका कोई अंश पूर्वजों तक नहीं पहुंचता। कौवे-कुत्ते खा जाते हैं। कबीर को मृत्यु से डर न था। वे इस रहस्य को समझ चुके थे कि मृत्यु अनिवार्य है। इस ज्ञान ने उन्हें निर्भय बना दिया था। कबीरदास जी समाज में व्याप्त बुराइयों के कटु आलोचक हैं, किन्तु उनकी आलोचना सुधारभावना से प्रेरित है। वे साफ कहते है कि हिन्दू और मुसलमान दोनों अपने को बड़ा सिग करने की कोशिश करते है किन्तु उनका कुछ कार्य अत्यन्त निन्दनीय है। यथा –

मुलमान के पीर औलिया मुरगा मुरगी खाई,
खाला केरी बेटी व्याहैं घर ही में करै सगाई।6

इस प्रकार कबीरदास निरपेक्ष भाव से हिन्दू और मुसलमान दोनों धर्मों में व्याप्त बुराइयों पर कटु प्रहार करके उन्हें सत्य के मार्ग पर चलने की प्रेरणा देते हैं। वे अपनी कविताओं के माध्यम से विषमता एवं विद्वेष के विविध आयामों को समाप्त करके प्रेम आधारितसमतामूलक समाज की स्थापना करना चाहते हैं। परोपकार, सेवा, क्षमा, अहिंसा, करूणा, दान, धैर्य,सत्संग, निरहंकार एवं सत्य रूपी मानवीय मूल्यों की स्थापना के साथ ही तर्कपूर्ण, वैज्ञानिक सोच, शब्द आचरण एवंसात्विकता पर बल देते हैं। कबीर हिन्दू और मुसलमान के बीच भाई चारे की भावना उत्पन्न करने के साथ ही सामाजिक समन्वय पर बल देते है।लोकमानस में कबीर का विस्तार बहुत गहरा है। संसार को माया जानकर भी वे संसार छोड़ने के पक्षधर नहीं है, बल्कि वे संसार में रहकर व्यक्ति के मन में सुधार के पक्षधर हैं, जो समाज को वर्ण, जाति, वर्ग एवं अन्य श्रेष्ठताओं के बन्धनों को समाप्त कर एक ऐसे समता मूलक समाज का निर्माण करने में योगदान दे जो समता, स्वतन्त्रता एवं भातृत्व की भावना पर आधारित हो। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि सद्गुरू कबीर तमाम अन्धविश्वासों, गलतरूढ़ियों और गतानुगतिका के विध्वंसक थे। वे समाज विरोधी और कल्याण विरोधी विषाक्त तत्वों को विध्वंस करके एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था का निर्माण करना चाहते थे, जिसमें व्यक्ति एंव लोक का कल्याण निहित हो।

निष्कर्ष -इस प्रकार कबीर का यह सामाजिक दर्शन प्रासंगिक होते हुए आज भी समाज को एक नई दिशा देने का काम कर रहा है। अंतत: कह सकते हैं कि कबीरकालीन विकृतियों, असंगतियों, रूढ़ियों एवं अंधविश्वासों से आज भी हमारा समाज मुक्त नहीं हो पाया है। जात-पात, छुआछूत, सांप्रदायिकता, अशिक्षा, गरीबी जैसी विषमताएँ जड़ जमाये बैठी हैं। आर्थिक स्वार्थ, दंभ, नैतिक पतन ने व्यक्ति को संवेदनहीन और स्वार्थी बना दिया है। शोषण, उत्पीड़न, झूठ, फरेब आज और भयानक रूप में देखा जा सकता है। अतः कबीर के समता, स्वतंत्रता और भ्रातृत्व गढ़ने के विचार आज भी उतने ही प्रासंगिक हैं। जिन मानवीय मूल्यों की स्थापना हेतु वे जीवनभरसंघर्षरत रहें, उस संघर्ष की लौ को फिर से जीवित रखने की आवश्यकता आ पड़ी है। प्रेम, मानवता, सद्भाव, सौहार्द और नैतिकता की बहाली के लिए कबीर के विचारों का पुनः अनुसरण समय की मांग है।

****

सन्दर्भ :-

1. डॉ मोती चाँद - काशी का इतिहास - हिंदी ग्रन्थ रत्नाकर प्राइवेट लिमिटेड, बम्बई - द्वितीय संस्करण 1985.
2. डॉ. जयन्तीमाकडिया - हिन्दी कविता में दलित चेतना: एक अनुशीलन - आकाश पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, गाजियाबाद
3. श्यामसुंदर दास - कबीर ग्रन्थावली - 19वां संस्करण, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
4. गंगाशरण शास्त्री – बीजक - वाणी प्रकाशन
5. डॉ. एन. सिंह - मेरा दलित चिन्तन - कंचन प्रकाशन, नई दिल्ली
6. कृष्ण चन्द्र श्रीवास्तव - प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति - यूनाइटेड बुकडिपो इलाहाबाद

आधुनिक हिन्दी कविता का स्वतन्त्रता आन्दोलन में योगदान

डॉ.सुनील
एसोशिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष
हिन्दी-विभाग गुरु नानक देव विश्वविद्यालय,
अमृतसर-143005 (पंजाब)

डॉ.पवन कुमार शर्मा
असिस्टेंट प्रोफेसर (हिन्दी)
हिन्दू कन्या महाविद्यालय, धारीवाल, पंजाब

साहित्य समाज का दर्पण होता है। जब जब राष्ट्र की अस्मिता पर बादल मणडराएं है तब तब साहित्यकारों ने अपनी कलम से नागरिकों को उनके कर्तव्य और सोई हुई ताकत को जाग्रत किया है। जैसा कि आप जानते है कि भारत विदेशी ताकतों के अधीन लम्बे समय तक रहा। आरम्भ में ये लोग व्यापार हेतु भारत आये बाद में अपने उपनिवेश स्थापित कर भारत को अपने अधीन कर लिया। 1857 से सीधा ईंग्लैण्ड से भारत का शासन चलने लगा। इस लम्बे समय में भारत की जनता के द्धारा अपनी अस्मिता अपनी संस्कृति सभ्यता एवं परम्परा को बचाने के लिए एक ही मार्ग था भारत को विदेशी ताकतों अंग्रेजी शासन से आजाद करवाकर अपनी स्वशासन व्यवस्था लागू करना।

भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन द्धारा राजनीतिक चेतना को अधुनातन अर्थ प्राप्त हुआ। उसके मूल में इण्डियन नैशनल कांग्रेस की सक्रिय भूमिका रही। यदपि इसी समय ब्रझ समाज, आर्य समाज थियोसोफिकल सोसाइटी आदि ने भी इस स्वाधीनता आन्दोलन को सक्रियता प्रदान करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। साथ ही साहित्यकारों ने जिन्दगी के अनदेखे पक्षों को अभिव्यक्त करते हुए अपनी सामाजिक प्रासंगिकता एवं प्रतिबद्धता को नए स्वरों में संचारित किया। आधुनिक हिन्दी साहित्य में राजनीतिक चेतना को अभिव्यक्ति देने वालों में भारतेन्दू हरिश्चद्र, मैथिली शरण गुप्त, बाल मुकुन्द गुप्त, श्रीधर पाठक, रामनरेश त्रिपाठी माखन लाल चतुर्वेदी आदि ने राष्ट्रीयता को जातीयता के संकुचित दायरे से ऊपर उठाकर सही दिशा दर्शायी। भारतीय धर्म और मूल्य पर आधारित उनकी विचार प्रद्धति की हमारी राष्ट्रीयता में सर्वस्वीकृत हुई। द्विवेदी युगीन साहित्यकारों ने गाँधीवादी राष्ट्रीयता को उचित अभिव्यक्ति दी। सियाराम शरण गुप्त सोहन लाल द्विवेदी, माखनलाल चतुर्वेदी आदि का नाम अग्रण्य है।

इन कवियों ने स्वतन्त्रता से पूर्व की राष्ट्रीय चेतना की प्रेरणा भूमि, स्वतन्त्रता, राष्ट्रीय चेतना, स्वर्णिम अतीत का वर्णन, मातृभाषा हिन्दी के प्रति प्रेम, वर्तमान दुर्दशा का वर्णन, तत्कालीन घटनाओं का चित्रण, नूतन जीवन मूल्यों की प्रतिष्ठा, नवउतर दायित्वों के सवहन की प्रेरणा, जागरण गीत, वीर पूजा, सांस्कृतिक चेतना का स्फुरण, समकालीन तथ्यों के समन्वय द्धारा सांस्कृतिक चेतना का स्फुरण, मानवता वादी दृष्टिकोण, नैतिक दृढता की प्रतिष्ठा, समभाव की प्रतिष्ठा आदि का मर्मस्पशी चित्रण किया है।

अंग्रेजों ने अपनी कूटनीति के द्धारा भारत के जन जीवन को असहाय और कमजोर कर दिया था। उनके द्धारा दी गयी नवीन शिक्षा ने सामाजिक जीवन को अधिक दूषित कर दिया था। उनकी यह शिक्षा नीति भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति के पूर्णतः विपरीत थी। औघोगिकरण और आर्थिक विपतियों के कारण श्रमिक वर्ग की व्यवस्था भी शोचनीय हो रही थी। हिन्दी कविता में राष्ट्रीयता एवं मानवतावादी प्रवृत्रियों का बीजारोपण भारतेन्दू युग में भारतेन्दू हरिश्चन्द्र की कविताओं में आरम्भ हुआ। हा. हा. भारत दुर्दशा देखी न जाई। अंग्रेज राज सुख साज सजे सब भारी पै धन विदेश चली जात इ है बात अतिख्वारी।

निज भाषा उन्नि अहे सब उन्नति को मूल
बिन निज भाषा ज्ञान के मिरत न हिय को शूल।[1]

श्रीधर पाठक मातृभूमि के स्वर्णिम अतीत की बन्दना करते हुए आजादी की कामना करते हुए लिखते है-

जय जयति सदा स्वाधीन हिन्द
जय जयति जयति प्राचीन हिन्द.[2]

प्रताप नारायण मिश्रा ने तृप्यताम कविता में बड़ी चिन्ताकर्षक शैली द्धारा देश की महंगाई अकाल और हीनावस्था का चित्र प्रस्तुत किया है

महंगी और टिक्स के मारे हमहि वसधा पीड़ित तन छाम
लाग पात लो मिलेन जिय भर ले तो वृथा दूध को नाम
तुमाहे कहा प्यावै, जब हमारे करत रहत गोवंश तमाम
के बल समुखि अथक उपमा लाहि मांग देवता तृप्यताम.[3]

द्धिवेदी जी के युग के कवियों ने विदेशी सभ्यता और संस्कृति से प्रभावित भारतीयों के हीनता बोध को दूर करने का प्रयास किया। भारतीयों में सांस्कृतिक चेतना को जाग्रत करने के लिए कवियों ने निजी भाषा के अतिरिक्त संस्कृति के मूल स्रोत वेद तथा वेद-विघा के उपदेश को उचित-उपाय समझते हुए गुप्त जी लिखते है –

उस वेद के उपदेश का सर्वत्र ही प्रस्ताव हो
सौदाई और मतैवय हो, अविरूद्ध मन का भाव हो
सब ईष्ट फल पावें परस्पर प्रेम रखकर सर्वथा
निज यश-भाग समानता से देवे लेते है यथा। [4]

माखन लाल चतुर्वेदी अंग्रेजी शासन की काली करतूतों पर व्यंग्य करते हुए लिखते हैं –

काली तू रजनी की काली
शासन की करनी भी काली। [5]

पुष्प की अभिलाषा कविता में चतुर्वेदी जी ने पुष्प के माध्यम से राष्ट्रीय भावना को स्पष्ट किया है।

चाह नहीं मैं खुरबाला के गहनों में गूंथा जाऊ
भाव नहीं प्रेमी माला में विध प्यारी को ललचाऊ
चाह नहीं सम्राटों के शव पर वारि डाला जाऊ
चाह नहीं देवो के सिर पर चढुभाग्य पर इठलाऊ
मुझे तोड़ लेना वनमाली उस पथ पर तुम देना फेंके
मातृभूमि पर शीश चढ़ाने जिस पथ जावें वीर अनेक.[6]

मातृभूमि की आजादी के लिए गांधी जी द्धारा चलाए गये सत्याग्रह आन्दोलन व अहिंसक क्रांति के लिए आशा प्रकट करते हुए चतुर्वेदी जी लिखते है -

हूँ राष्ट्रीय सभा का सैनिक छोटा सा अनुगामी हूँ
उसकी ध्वनि पर मर मिटने खुद अपना
बाकी एक उपाय बचा था जिसकी की गांधी ने याद
शीघ्र अहिंसक असहयोग से मातृभूमि होवे आजाद।[7]

आजादी के लिए संघर्ष करते हुए सत्यग्रहियों के बंदी जीवन को स्पष्ट करते हुए नवीन जी लिखते है –

तेरी चक्की के ये गेहूं पिसते है पिस जाने दो।
चक्की पिसवाने वालों को मिट्टी में मिल जाने दो।[8]

अन्यत्र नवीन जी लिखते है।–
कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ
जिससे उथल पुथल मच जाये
एक हिलौर इधर से आए
एक हिलौर उधर से आए
प्राणों के लाले पड़ जाए
त्राहि त्राहि रव मन में छाए
बरसे आग, जलद जल जाए
भस्मसात मधुर हो जाए।[9]

रामधारी सिंह दिनकर ओज और वीर रस के राष्ट्रीय कवि है। भारत को अंग्रेजों की अधीनता से छुटकारा पाने के लिए हुंकार में लिखते है –

नहीं जीते जी सकता देख / विश्व में झुक तुम्हारा भाल
वेदना-मधु का भी कर पान / आज उगलूंगा गरल कराल।[10]
एक अन्य स्थान पर दिनकर लिखते है –
कह दे शंकर आज करे, वे प्रलय नित्य फिर एक बार
सारे भारत में गूंज हो हर-हर बम का महोच्चार
ले अंगड़ाई उठ हिले धरा कर निज विराट स्वर में निनाद
तू शैल राट: हुंकार भरे फट जाय कुहा, भागे प्रमाद।[11]

सुमदा कुमारी चौहान राष्ट्रवादी कवयित्री है वे झांसी की रानी लक्ष्मी बाई की वीरता का गुणगान करते हुए लिखती है –

जाओ रानी याद रखेंगे हम कृतज्ञ भारतवासी
यह मेरा बलिदान जगा देगा स्वतन्त्रता अविनाशी
होने चुप इतिहास, लगे सच्चाई को चोह फांसी
हो मदमाती विजय, मिटा दे गोलो से चाहे झांसी।[12]

राणा प्रताप कविता के माध्यम से सोहन लाल द्विवेदी लिखते है –

जागो प्रताप, मेवाड़ देश के / लक्ष्य भेद है जगा रहे
जागो प्रताप मतवालों के / मतवाले सेना बजा रहे
जागो प्रताप हल्दी घाटी में / वैरी भैरी बजा रहे।[13]

पराधीनता के प्रतिशोध को व्यक्त करते हुए सोहन लाल द्रिवेदी जी लिखते है –

जब सारी दुनिया सोती थी / तुमने ही तो इसे जगाया
दिव्य ज्ञान कै दीप जलाकर / तुमने ही तो उसे भगाया।
तुमने वेद उपनिषद रखकर / जग-जीवन का मर्म बताया
ज्ञान शक्ति है ज्ञान मुक्ति है / तुमने ही तो गाना सुनाया।[14]

विदेशी भाषा का बहिष्कार करते हुए द्रिवेदी जी लिखते है –

आग लगा दो ऐसे काले / कृत्रिम कुटिल विधान में
राज विदेशी भाषा का / अब रहे न हिन्दूस्तान में।[15]

आम जनमानस अंग्रेजों की गुलामी से छुटकारा पाना चाहता था। एक और अनेक राजनैतिक, सामाजिक संस्थाएं, आर्य समाज, ब्रझ समाज, कांग्रेस पार्टी आदि आजादी के लिए संघर्ष कर रहे थे वही दूसरी ओर इस युग के कवि भी अपनी कविता के माध्यम से आम जन में आजादी के लिए बलवती भावना को उनके प्राचीन इतिहास से अवबोध करवाते हुए उनमें आजादी की भावना की प्रेरणा फूंक रहे थे। केवल मनोरंजन न कवि का कर्म होना चाहिए उसमें उचित उपदेश का भी मर्म होना चाहिए

हम कौन थे क्या हो गये क्या होंगे
आओ मिलकर विचारे ये समस्याएँ सभी (मैथिली शरण गुप्त)

अतः आधुनिक काल के हिन्दी के परोधा कवियों ने अपनी कविता के माध्यम से सोई हुई भारतीय जनता को जगाया तथा उनमें चेतना और स्वतन्त्रता की नवीन आधारशिला प्रदान की। इस पुकार में हिन्दी कवियों की भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम में महत्वपूर्ण भूमिका रही।

****

सन्दर्भ

1. काव्य कुसुम – सम्पादित सुधा जितेन्द्र पृ027 से उद्रत
2. हिन्द वन्दना – श्रीधर पाठक – पृ02
3. तृप्यताम – प्रताप नारथण मिश्रा – पृ016
4. भारत-भारती-मैथिली शरण गुप्त – पृ-182
5. हिमकिरीटनी – माखनलाल चतुर्वेदी पृ018
6. त्रिधारा – माखन लाल चतुर्वेदी – पृ015
7. हिमकीरिटनी – माखनलाल चतुर्वेदी – पृ025
8. कुँकुम – बाल कृष्ण शर्मा नवीन – पृ02
9. कुँकम - बाल कृष्ण शर्मा नवीन – पृ02
10. हुँकार - दिनकर पृ2
11. हुँकार – दिनकर पृ04
12. मुकुल – सुमझो कुमारी चौहान पृ75
13. प्रभाती – सोहनलाल द्रिवेदी – पृ04
14. भैरवी – सोहनलाल द्रिवेदी पृ 110
15. मुक्तिगंधा – सोहनलाल द्रिवेदी – पृ018

डूब: मनुष्यता और विकास के उन्माद की लड़ाई

अपर्णा ए.
शोधार्थी हिंदी विभाग
कोच्चिन विज्ञान व प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय,कोच्चि- 682022

मनुष्यता उन गुणों का नाम है जो मनुष्य को सार्थक बनाता है। अर्थात् वह मनुष्य की पहचान है जो उसको जानवर से अलग करता है। वर्तमान समय की नियति यह है कि मनुष्य सुख-सुविधाएँ पाने की लिप्सा से प्रेरित होकर अपनी इस पहचान से दूर होता जा रहा है। विकास के नाम पर जो निर्ममता हमारे चारों ओर परिव्याप्त है वह इसीका अंजाम है। विकास मूलतः एक सकारात्मक शब्द है लेकिन आजकल इसका संबंध नकारात्मकता से है। विकास के नाम पर आज प्रकृति व पर्यावरण चहूँ दिशाओं से दोहन-शोषण का शिकार है। अतः धरती की उर्वरता, शीतलता, सुंदरता, नमी सब अब संकट की स्थिति से गुज़र रही हैं। इसलिए यह कहा जा सकता है कि आजकल विकास का मतलब विनाश से है, विलुप्ति से है, विस्थापन से है। आज के कवि और उनकी कविता विकास रूपी इसी आतंक को काव्यबद्ध करते हैं। समकालीन साहित्यिक परिदृश्य में एकांत श्रीवास्तव एक ऐसे कवि हैं जो विकास को कविता विमर्श का विषय बनाते हैं। फलतः उनकी कविता गहरी ग्रामीण चेतना एवं पर्यावरणीय सजगता के लिए मशहूर है। उनके 'मिट्टी से कहूँगा धन्यवाद', 'बीज से फूल तक', 'धरती अधखिला फूल है' आदि काव्य संग्रह के शीर्षक में ही प्रकृति व पर्यावरण के प्रति आकर्षण-समर्पण का भाव झलकता है। इसके साथ ही विकास के तहत गाँव की प्रकृति तथा संस्कृति की सजीवता की निर्जीवता में बदलने के प्रति चिंता भी उनकी वाणी में अनुगूँजित है। उनकी 'डूब' शीर्षक कविता इसका उत्तम दृष्टांत है। कवि ने इस कविता के केंद्र में बाँध परियोजना के अधीन डूबा हुआ गाँव और विकास के इस अभिशाप को झेलनेवाले निस्सहाय मनुष्य को रखा है। इस शोधालेख में प्रस्तुत कविता के ज़रिए विकास के विनाशकारी पक्ष को उजागर करने का प्रयास किया गया है।यहाँ विकास का सीधा अभिप्राय पूँजीवादी औद्योगिक विकास से है जो मुनाफे पर केंद्रित है। इसकी दृष्टि में प्रकृति एक ऐसा संसाधन है जिससे पूँजी के उत्पादन और बढ़ोत्तरी कर सकती है। अतः पूँजीवाद हमेशा प्रकृति की लूटपाट करके अपने लाभ को बनाए रखने का प्रयास करता है। इसके सिवाय वह बाज़ारवाद और उपभोगवाद का जनक भी है जो प्राकृतिक संपत्ति के क्रय-विक्रय एवं उपभोग पर ज़ोर देता है। इस प्रकार पूँजीवाद मनुष्य सहित समस्त प्रकृति का उत्पीड़न-उपभोग करके अपने अस्तित्व को कायम रखता है। इसलिए ही वह धरती के समूचे जैविक-अजैविक तत्वों के लिए घातक व हानिकारक सिद्ध होता है। कविता में पूँजीवादी विकास परियोजना के तहत एक संपूर्ण गाँव के डूबने का चित्र है, जिसके ज़रिए वह पूँजीवादी विकास की विकरालता तथा निष्ठूरता को शब्द दे रही है।

ज्ञातव्य है कि वर्तमान की विकास योजनाएँ यानि पूँजीवादी विकास योजनाएँ एकपक्षीय हैं जो देश की आबादी के न्यूनतम हिस्से (संपन्न वर्ग) के ऐश और आराम को ध्यान में रखकर बनाई गई हैं। अतः देश के बहुतायत आम आदमी को इन सबसे कोई फायदा नहीं है और साथ ही वे इनसे घायल भी हैं। यानि विकास रूपी दावानल में उनका घर, खेत आदि सब कुछ जलकर राख हो जाती है। जैसे कहा गया है कि इस कविता में भी पूँजीवादी विकास के अधीन एक गाँव के डूबने का अर्थात् घर, रास्ते, चौपाल, खेत, खलिहान, कोठार, डोंगरी और जंगल सहित एक समग्र संसार के डूबने का छायाचित्र है। केवल इतना ही नहीं कविता अपनी पारदर्शिता में दर्शाती है कि विकास की इस विकृत रणनीति में गाँव के साथ-साथ वहाँ के निवासी, उनकी ज़िंदगी, संस्कृति, प्रकृति, परंपरा, इतिहास इत्यादि सब कुछ डूब जाते हैं। अतएव कविता की पंक्तियों में विषाद, अवसाद एवं निराशा का सुर परिव्याप्त है, जैसे: "कभी

न उबरने के प्रारब्ध से बँधा/ डूब में गाँव यह/ डूब गई सभ्यताओं के इतिहास लिखे जाएँगे/ और डूब गए गाँव की केवल दंतकथा/ रह जाएगी शेष।" दंतकथा का कोई ठोस, दृढ़, स्थिर अस्तित्व नहीं है। इसलिए वह समय की बहाव के साथ मिटती चली जाएगी। अर्थात् गाँव की नियती भी इसी प्रकार माटी में मिल जाने की है। यह एक जीवित सच्चाई है कि भारत के कई गाँव मर-मिटने के इस श्राप को झेल चुके हैं और आज भी झेल रहे हैं। अतः यह कहा जा सकता है कि कविता में चिह्नित गाँव आम भारतीय गाँव का प्रतीक है जो पूँजीवादी विकास के मार से आहत है। कविता की अहमियत यह है कि वह टिहरी, मणिबेली और हरसूद जैसे सबूतों के ज़रिए इस दिशा पर व्यापक धरातल पर सोच-विचार करने की महफिल सजाती है। इस प्रकार यह अवगत होता है कि विकास की यह विध्वंसकारी बाढ़ हमारी सहजता, सहजीविता, स्वाभाविकता, आत्मीयता, आत्मनिर्भरता, रागात्मकता, विविधता को निगलकर उनके स्थान पर कृत्रिमता, परजीविता, अस्वाभाविकता, अपरता, पराश्रितता, विरागात्मकता, एकरूपता को हम पर थोपी जा रही है, जिससे आज हमारा देश अपना वास्तविक अस्तित्व, अस्मिता, इतिहास और पहचान तक खो रहा है। इससे यह भी जाहिर होता है कि पूँजीवादी विकास कभी अकेले में नहीं आता बल्कि वह अपने साथ बहुत कुछ ले आते हैं जिनसे हमारा बहुत कुछ छूट भी जाते हैं। इसलिए ही कविता में विकास के सिलसिले में शहरीकृत-बाज़ारीकृत-मशीनीकृत सभ्यता के आगमन का ज़िक्र और इस नवागृत सभ्यता के कृत्रिम राग से गाँव की सहज-स्वाभाविक सभ्यता एवं रागात्मकता के नष्ट हो जाने का चित्र भी प्रतिबिंबित है। काव्यात्मक शब्दावली नष्टों की सूची भी प्रस्तुत करती है; जैसे "छूटा हुआ घर, गाँव, परसार/ डूब रहा है बिके हुए बैल की आँख में/ मशीनों की घरघराहट में बाँसुरी की तान/ बाज़ार के शोर में आदमी की आवाज़/ बुझी हुई आँखों में सपनों की जोत/ ट्रेन की धड़धड़ाहट में पंडुक की आवाज़/ विकास के अर्राते जल में/ एक पूरी सभ्यता चुपचाप डूब रही है।" इन पंक्तियों से गुज़रने से यह भी साफ़ होता है कि यह वर्तमान भारत का मुख पृष्ठ है जो पाश्चात्य पूँजीवादी विकास नीति से बुरी तरह से उत्पीड़ित है।

कविता पूँजीवादी विकास के पीठ पीछे हो रहे विस्थापन की अमानवीयता को भी प्रस्फुटित करती है। "विस्थापन का आशय है अपने मूल से कटना और मौलिक स्थान से हटना।" अर्थात् आजकल विकास के नाम पर हो रहे तरह-तरह के निर्माण कार्यों से बहुत कुछ अपनी पहचान, अस्मिता व अस्तित्व से कटते जा रहे हैं। इनमें प्रकृति, स्थानीय संस्कृति, पर्यावरण, इतिहास आदि सब कुछ शामिल हैं। अतः मनुष्य सहित समस्त प्रकृति के लिए विस्थापन एक दर्दीला यथार्थ है। कविता में इस तरह विकास व विस्थापन के सिलसिले में अपना सब कुछ खो जाने के बाद नाव में पाँव सिकोड़कर बैठने में मजबूर गाँववालों का करुण दृश्य अभिव्यक्त हुआ है। इसके ज़रिए कविता अपनी मिट्टी से, आजीविका से, सहजीवियों से, परिवेश से यहाँ तक कि अपनी परंपराओं से भी कटते जाने को अभिशप्त मनुष्यों की संकटग्रस्त स्थिति को चित्रांकित कर रही है। इसके साथ ही वह अनिच्छा से विस्थापित होने की गहरी मार्मिक पीड़ा को भी वाणी दे रही है। जैसे- "लोग जो इच्छा से छोड़ देते हैं गाँव/ रोजी-रोटी, बनी-मजूरी के लिए/ एक दिन लौट सकते हैं पुनः/ पा सकते हैं फिर खोया हुआ गाँव/ और हम हैं कि लौट नहीं सकेंगे कहीं/ पा नहीं सकेंगे इसे कभी/ हम स्वप्न में इसे देखेंगे/ स्मृति में बसा रहेगा आबाद यह प्रांत।" इस प्रकार कविता रुँधे गले से यह कहती है कि केवल कल्पना में बने रहने में मजबूर गाँव की यह नियती कितना कठोर एवं त्रासद है। कविता की आगामी पंक्तियों के वाचन से यह भी द्रष्टव्य है कि डूब का या विस्थापन का यह निर्णय गाँववालों का नहीं बल्कि पूँजीवादी, विकासवादी सत्ता या व्यवस्था का है जो ज़ोर-ज़बरदस्ती से उन पर थोपा जा रहा है। इसलिए ही इसमें पुलिस की नृशंसता भी दर्शित है जो आज के विकास तंत्र का एक अभिन्न अँग है। अतएव कविता पूँजीवादी विकास के घूँघट के पीछे छिपी व्यवस्थागत हिंसात्मकता को भी अनावृत कर रही है जो मनुष्य के मानवोचित अधिकारों को धिक्कार रही है। यहाँ ध्यातव्य है कि आजकल की विकास योजनाएँ मनुष्य के मूलभूत अधिकारों के प्रति कितना बेफिक्र है। संवैधानिक शब्दावली में कहा जाए तो मौलिक अधिकारों के हनन व उल्लंघन की यह क्रिया-प्रक्रिया गैर-संवैधानिक है। अतः मानवाधिकार के परिप्रेक्ष्य में भी वर्तमान विकास परियोजनाओं की व्याख्या हो सकती हैं। इस संदर्भ में यह भी विचारणीय है कि विश्व के सबसे बड़े जनतांत्रिक राष्ट्र में नागरिकों के मूलभूत अधिकारों की कीमत क्या है? इस प्रकार यह कविता परोक्षतः देश की लोकतांत्रिक व्यवस्था एवं लोकतांत्रिक मूल्यों पर भी प्रहार करने वाली विकास नीति की कूटनीति को भी आलोकित करती है और इसके ज़रिए व्यवस्थागत मूल्यहीनता व मनुष्यता के अकाल को द्योतित कर रही है। परिणामतः कविता के सूक्ष्म-समग्र वाचन से यह दृष्टिगत होता है कि यहाँ पर गाँव का डूबना एक प्रकार से मनुष्यता के डूबने का यानि मूल्यों के डूबने का पर्याय है।

कविता की पैनी निगाह मनुष्य के बुनियादी अधिकारों को छीनकर हो रही फालतू विकास प्रणालियों पर भी टिकती है। अतएव कविता यह भी ध्वनित करती है कि आजकल की विकास पद्धतियाँ कितनी गैर-ज़रूरी हैं जो मानव के बुनियादी ज़रूरतों के परे हैं। यानि आजकल विकास के नाम पर सरकार की ओर से ज़रूरती बातों का निषेध कर फिसूल की चीज़ों पर ज़ोर दे रही है जो नितांत जघन्य है। दूसरे शब्दों में कहा जाए तो आज विकास के बदौलत भोग की जगह उपेभोगवादी मानसिकता को बढ़ावा दे रहा है। इसके साथ ही यह कविता आज के विकास तंत्र के पीछे कार्यरत विनाशकारी आर्थिक षड्यंत्र का पर्दाफाश भी करती है। अतः विश्व बैंक से पैसे उधार लेकर हो रही विकास प्रक्रिया की ओर इशारा करते हुए कविता कहती है कि इस ऋण भार से देश की आगामी कई पीढ़ियाँ मुक्त नहीं हो सकतीं। इस तरह कविता अपने पाठक के अंतर्मन में यह सवाल भी छोड़ती है कि क्या वर्तमान की यह विकास नीति संपूर्ण विनाश की है? जिसकी जड़ें हमें घोर अंधकारमय भविष्य की ओर ले जाती हैं। बारीकी से सोचने-विचारने पर यह स्पष्ट होता है कि विकास का यह ऋणात्मक आर्थिक खेल देश की आत्मनिर्भरता के आगे भी सवालिया चिह्न खड़ा करता है। कविता तरह-तरह के विकास प्रबंधनों के पीठ पीछे हो रहे पुनर्वास रूपी ढोंग को भी अप्रच्छन्न करती है जो विकासगत नष्टों के समाधान का दावा पेश करता है। कविता की पंक्तियाँ हैं; "असंभव है पुनर्वास/ पुरखों के पाँवों से बने हुए रास्ते का/ सूख जाने पर भी वृक्ष को छोड़ते नहीं पक्षी/ कैसे दोगे तुम उन्हें दूसरे वृक्षों पर पुनर्वास/ झड़ गए फूल की सुगंध में/ मंडराती हुई तितली को कैसे दोगे पुनर्वास/ कदम्ब के तने के छेद में/ रहने वाली दतैया/ ढूँढ़ती है उसी कदम्ब का तना।" इस प्रकार कविता पूँजीवादी विकासवादी आधुनिक मनुष्य से बार-बार यह सवाल पूछती है कि "तुम किस-किस चीज़ को पुनर्वास दोगे।" इससे कविता का आशय यह है कि मनुष्य के द्वारा प्रकृति के नैसर्गिक सौंदर्य व स्वाभाविक लय की पुनःस्थापना कभी भी संभव नहीं है। इस संदर्भ में कविता का पर्यावरणीय पाठ भी हो सकता है। गाँव का डूबना केवल मानवीय संस्कृति पर नहीं बल्कि प्रकृति की नैसर्गिकता के ऊपर बनावटीपन या कृत्रिमता के वार का सूचक है। वर्तमान समय इसका साक्षी है कि अब प्रकृति की सृजनात्मकता पर विकास रूपी ध्वंसता का वार है। अतः आजकल प्रकृति अपनी सहजता, स्वाभाविकता एवं वास्तविकता से दूर होती जा रही है। प्रकृति का अपना एक जैविक लय, ताल या संतुलन है। उसमें भंग होने से समस्त जीव राशि (जैविक व अजैविक) पर आपत्ति का बादल बरसेगा। इस तरह कविता के बारीकी अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि कवि की दूरगामी दृष्टि धरती के

आगामी भविष्य तक प्रसृत है। केवल इतना ही नहीं उपर्युक्त काव्य पंक्तियों से यह भी देदीप्यमान है कि कविता की दृष्टि सिर्फ मानव केंद्रित नहीं बल्कि गहन पर्यावरणीय संवेदना के वाहक भी है। इसलिए ही कविता मानवाधिकार की वकालत करने के साथ ही मानवेतर तत्वों की जैविकता, नैसर्गिकता और अधिकार की माँग बुलंद करती है। इसके द्वारा वह अपने पाठक को जाने-अनजाने यह सबक देती है कि यह पृथ्वी केवल मनुष्य की नहीं है। इस प्रकार कविता यह द्योतित करती है कि वर्तमान की पूँजीवादी विकास दृष्टि मनुष्य केंद्रित है जो मानवेतर जैविक-अजैविक तत्वों के अस्तित्व, जैविकता एवं जैविक अधिकार को अनदेखा करती है। इसलिए यह बताया जा सकता है कि आज धरती के सर्व चराचर कुविकास की इस आँधी से पीड़ित हैं। आजकल की पूँजीवादी विकास नीतियों से यह भी व्यंजित होती है कि मनुष्य धरती की एकमात्र प्रजाति बनकर संपूर्ण प्राकृतिक संसाधनों का उपभोग करना चाहता है किंतु विभिन्न तत्वों की साकल्यता अर्थात् पारस्पर्यता में ही धरती में जीवन का संगीत बरसेगा, नहीं तो यहाँ पर मृत्यु का मातम बजेगा। इस प्रकार कविता के विस्तृत वाचन से यह सुस्पष्ट होता है कि वर्तमान की पूँजी केंद्रित विकास प्रक्रिया प्रकृति की जैविकता, नैसर्गिकता, स्वाभाविकता, सहजता, पारस्पर्यता, सृजनात्मकता को नकारकर पृथ्वी के स्वस्थ-सुंदर भविष्य को ललकार रही है। संक्षेपतः कहा जाए तो एकांत जी की प्रस्तुत कविता आज के विकृत विकास तंत्र और इससे विक्षत प्रकृति व मानवीयता के आर्तनाद को स्वर दे रही है। कविता के सूक्ष्म तथा गहन अध्ययन से यह भी विदित होता है कि मानवीयता और पूँजीवादी विकास के बीच की यह लड़ाई वास्तव में जीवन और मृत्यु के बीच की लड़ाई ही है।

****

संदर्भ:

1. एकांत श्रीवास्तव, धरती अधखिला फूल है, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2013, पृ. 199
2. एकांत श्रीवास्तव, धरती अधखिला फूल है, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2013, पृ. 122
3. अचला पाण्डेय, विस्थापन का साहित्यिक विमर्श, लोकभारती प्रकाशन, प्रयागराज, 2019, पृ. 11
4. नाव खेते हुए उस पार जाते हुए सहसा/ एक जगह ठिठककर रुकते हैं लोग
   कि देखो ठीक इस जल के नीचे है गौरा-चौरा/ यहाँ माता देवाला/
   यहाँ खेड़का डाहर, यहाँ धारण चौरा/ यहाँ नीम जिसमें रहती थी सतबहिनी
   ये ढीमर पारा, ये सतनामी पारा/ यहाँ घर भागवत महाराज का
   ये दुकान कांति बाई की/ ये बँधान इंधरमन का, ये घर बोटरी राउत का
   और यह सुखरू धीवर की/ जो लहुट गया था साधु।
   (एकांत श्रीवास्तव, धरती अधखिला फूल है, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2013, पृ. 123)
5. एकांत श्रीवास्तव, धरती अधखिला फूल है, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2013, पृ. 119-120
6. छूटती कहाँ थी धरती/ पर पुलिस ने चलाई थी गोली
   छूटता कहाँ था जनपद/ पर पुलिस ने बरसाई थीं लाठियाँ।
   (एकांत श्रीवास्तव, धरती अधखिला फूल है, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2013, पृ.124)
7. अभी तक तो नहीं थे बड़े बाँध/ फिर भी जी रहा था यह देश
   पी रहा था पानी/ सींच रहा था अपने पौधों को
   जो बन ही जाते थे एक दिन पेड़।"
   (एकांत श्रीवास्तव, धरती अधखिला फूल है, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2013, पृ.126)
8. जल क्यों नहीं जाते इस आग में/ रुपये विश्व बैंक के
   जिन्हें लेकर आए ऋण में तुम/ जिसके ब्याज से उऋण नहीं हो पाएँगी
   कई-कई पीढ़ियाँ/ कैसी यह निति विकास की/ पाताल की ओर ले जाती हुई।"
   (एकांत श्रीवास्तव, धरती अधखिला फूल है, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2013, पृ.126)
9. एकांत श्रीवास्तव, धरती अधखिला फूल है, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2013, पृ.125
10. एकांत श्रीवास्तव, धरती अधखिला फूल है, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2013, पृ.125

सामाजिक दुर्दशा का यथार्थ दस्तावेज : गिलिगडु

डॉ.सुनील
एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष
हिन्दी-विभाग गुरु नानक देव
विश्वविद्यालय, अमृतसर-
143005 (पंजाब)

डॉ.संतोष बबन पगार
हिंदी विभाग,गोखले एज्युकेशन सोसायटी
संचालित एच.पी.टी.आर्ट्स एंड
आर.वाय.के.सायंस कॉलेज,नाशिक

सारांश:-'मातृदेवो भव' भारतीय पारिवारिक व्यवस्था का मूलाधार है|भारतीय संस्कृति में वृद्धों का आदरएवं सम्मान करना परिवार का आदिकर्तव्य माना जाता है ; परंतु वैश्वीकरण की अंधी दौड़, टूटते पारिवारिक मूल्य, भूमंडलीकरण, पाश्चात्य संस्कृति का अंधानुकरण, भौतिकवादी दृष्टिकोण,अपनत्व का अभाव और अतिआधुनिकताके प्रभावस्वरूप भारतीय समाज में मानवीय मूल्य गौण होते जा रहे हैं।2009 में प्रकाशित चित्रा मुद्गल द्वारा लिखित 'गिलिगडु' उपन्यास हिंदी साहित्य जगत में एक महत्वपूर्ण रचना है, जिसमें वृद्धावस्था की भयानकता के साथ वृद्धों की पारिवारिक तथा सामाजिक समस्याओं की मार्मिकता के साथ अभिव्यक्ति की है। उपन्यासकार ने उपन्यास में ऐसे दो वृद्धों के जीवन को केन्द्र में रखा है, जिन्हें अपने ही परिवार के सदस्यों ने किसी फ़ालतू, बेकार वस्तू की तरह अपने जीवन से अलग कर दिया।चित्रा मुद्गल ने बाबू जसवंत सिंह और कर्नल स्वामी के माध्यम से देश के उन तमाम वृद्धों की समस्या को उठाया है, जो जीवनभर अपने परिवार के लिए अपना सर्वस्व त्याग देते हैं| 'गिलिगडु' उपन्यास भारतीय समाज के शिष्ट समझे जाने वाले तथाकथित मध्यवर्गीय समाज की पोल-खोल करता है और वृद्धों की दयनीय दशा के कारणों की खोजबीन की है।यह उपन्यास प्राचीन भारतीय सांस्कृतिक जीवन-मूल्यों के महत्त्व को भी अधोरेखित करता है|

प्रस्तावना:-भारत की संस्कृति सामाजिक रही है। भारतीय संस्कृति का मूलाधार 'मातृदेवो भाव–पितृ देवो भव' जैसे मूल्य रहे हैं| इसमें पारिवारिक सम्बन्धों का विशेष महत्व रहा है|इसी कारण धर्म एवं अध्यात्मपरक भारतीय संस्कृति मानव जीवन कोसंस्कारित भी करती है। परिवार संस्कृति में अनेक संस्कारों का सहज निर्वाह लक्षित होता है। भारतीय संस्कृति में सत्य, त्याग, प्रेम, सदाचार, मानवता आदि अनेक मानवीय विधायक मूल्यों का प्रत्येक भारतीय अपने व्यक्तिगत तथा सामाजिक जीवन में पूरी आत्मीयता से निर्वहन करता आया है। परंतु वर्तमान में आधुनिक भौतिक उपयोगितावादी समाज में सभी पारिवारिक- सामाजिक-सांस्कृतिक मूल्य गौण होते जा रहे हैं। अतः ऐसे में पारिवारिक एवं सामजिक संबंधों के लिए कोई स्थान शेष नहीं है। आज भी यह मूल्य मानवीय संबंधों के लिए लाभदायक हैं, लेकिन आधुनिक सभ्य कहे जाने वाले भौतिकवादी मानव द्वारा इन परंपरागत मूल्यों को नकारा जा रहा है।चित्रा मुद्गल द्वारा लिखित 'गिलिगडु'(2009)उपन्यास हिंदी साहित्य जगत में एक महत्वपूर्ण रचना है, जिसमें वृद्धावस्था की भयानकता के साथ वृद्धों की अन्य समस्याओं की मार्मिक अभिव्यक्ति की है। उपन्यासकार ने उपन्यास में ऐसे दो वृद्धों के जीवन को केन्द्र में रखा है, जिन्हें अपने परिवार के सदस्यों ने किसी फ़ालतू, बेकार वस्तु की तरह अपने जीवन से अलग कर दिया।वे शारीरिक अक्षमता के चलते अपनी अपमानित स्थिति का विरोध भी नहीं कर पाते और ऐसा अपमानित एवं अभिशप्त जीवन जीने को विवश हैं| भारतीय संस्कृति में बुजुर्गों का आदर, सम्मान कर उन्हें सुखी रखना परिवार का कर्तव्य है,परंतुअतिआधुनिकता के प्रभावस्वरूप आज अनेकभारतीय परिवारों में इन संस्कारों का सर्वथा अभाव लक्षित होता है। वैश्वीकरण की अंधीदौड़, टूटते पारिवारिक मूल्य, भूमंडलीकरण, पाश्चात्यसंस्कृति का अंधानुकरण, भौतिकवादी दृष्टिकोण और अपनत्व के अभाव से मानवीय संबंधों में दरार दृष्टिगोचर होती है|

परिवार में भी व्यावहारिकता के आगमन के कारण सदस्यों में आपसी मनमुटाव दिखाई देता है। वर्तमान वृद्ध विमर्श विचार करने पर ज्ञात होता है की वृद्धों की दुर्दशा का बड़ा कारण उनके अपने परिजन ही होते हैं। अपनों से मिलनेवाली उपेक्षा एवं दुख उन्हें भीतर से गहरे तक तोड़ता है| शारीरीक दुर्बलता के साथ उपेक्षा, एकाकीपन बुजुर्गों को हाशिये पर धकेल देता है। आधुनिक अर्थकेंद्री जीवनशैली ने मानव को स्वार्थी बनाया है| पैसा ही सर्वस्व माननेवाली नई पीढ़ी को किसी पारिवारिक भावनिक रिश्ते की जरूरत अनुभव नहीं होती। भूमंडलीकरण के फलस्वरूप मानवीय मूल्य खंडित हो रहे हैं। आज की युवा पीढ़ी की आधुनिक जीवनशैली में अगर माता-पिता के कारण भी कोई बाधा उत्पन्न होती है तो उन्हें भी वे बड़ी बेदर्दी के साथ घर से बाहर निकाल रहे हैं। 'गिलिगडु' ऐसे दो वृद्धों की करूण कहानी है, जिन्हें अपनों ने ही अपने जीवन से बाहर निकाल दिया है|वास्तव में यह दो वृद्धों की दुर्दशाही नहीं है, बल्कि व्यापक स्तर पर यह वैश्विक दुर्दशा की ओर संकेत है। संचार माध्यम क्रांति के इस विशेष दौर में पश्चिमी सभ्यता को अपनाने वाली आज की भारतीय युवा पीढ़ी परिवार के वृद्धजनों को बोझ मानकर अपनेउत्तरदायित्व से मुकर जाती है|

1.युवा पीढ़ी की असंवेदनशीलता:-किसी समाज की युवा पीढ़ी अपने समाज के सर्वांगीण विकास के लिए उत्तरदायी होती है; किंतु वर्तमान में लक्षित होता की अर्थकेंद्री व्यवस्था के प्रभाव स्वरूप वे अपने पारिवारिक एवं सामाजिक दायित्व से दूर भागना चाहते हैं| युवा पीढ़ी अपने बुजुर्गों को सम्मान न देकर उन्हें अकेला जीने के लिए छोड़ देती है। 'गिलिगडु' उपन्यास में भारतीय युवा पीढ़ी का प्रतिनिधित्व जशवंत सिंह का बेटा नरेंद्र करता है। इस पीढ़ी को वृद्धों की संपत्ति तो चाहिए होती है;किंतु बुजुर्गों की सेवा के लिए उनके पास समय नहीं है। जसवंत सिंह को कानपुर से बेटे और बहू के द्वारा दिल्ली बुला दिया जाता है। लेकिन वहाँ पर वे कदम-कदम पर स्वयं को अपमानित महसूस करते हैं। बात-बात पर उन्हें टोका जाता है। रहने के लिए भी बालकनी को रूम में तब्दील किया जाता है, जो कही न कहीं वृद्धों को हाशिये की ओर धकेलने का प्रतीक है।अपने बेटे और बहू की अपने प्रति उपेक्षा को देखकर ही जसवंत सिंह विवश होकर नरेंद्र से पूछते हैं, "तुम कभी बूढ़े नहीं होगे नरेंद्र?"[1] बेटा नरेंद्र और बेटी शालिनी उन्हें वृद्धाश्रम 'आनंद निकेतन' में भेजने की योजना भी बनाते हैं। अपने बेटे के घर में ही अपनी दुर्दशा को देखकर वे सोचते भी हैं कि "इस घर में एक नहीं दो कुत्ते हैं एक टॉमी, दूसरा अवकाश प्राप्त सिविल इंजीनियर जसवंत सिंह! टॉमी की स्थिति निसंदेह उनकी बनिसबत मजबूत है।"[2]युवा पीढ़ी को चाहिए कि वे अपने घर के बुजुर्गों के बारे में मानवीय दृष्टिकोण के साथ चिंतन करें|

उपन्यास के दूसरे बुजुर्ग कर्नल स्वामी की स्थिति तो अधिक भयावह है, जिसे चित्रा मुद्गलजी ने बड़ी कुशलता के साथ उपन्यास के अंत में प्रकट किया है।कर्नल स्वामी एक ऐसा व्यक्तित्व है, जिसे तीन बेटे होने के बावजूदअपने ही परिवार द्वारा अकेले रहने के लिए विवश कर दिया है। लेकिन कर्नल स्वामी अकेलेपन में भीप्रसन्न रहने की कोशिश करते हैं। जसवंत सिंह से मिलने के बाद उनके समक्ष स्वयं को बहुत सुखी और आनंदित प्रस्तुत करते हैं। उनके बेटे-बहू अलग रहते हैं| कर्नल स्वामी कई दिनों तक प्रातःकालीन भ्रमण पर न आने के बाद उनकी पूछताछ करने हेतु जसवंत सिंह उनके घर पहुँचते हैं, तब जसवंत सिंह का जिस कड़वी सच्चाई का सामना होता है, जिससे उनके पैरो तले की जमीन खिसक जाती है। कर्नल स्वामी की पड़ोसी मिसेज श्रीवास्तव जशवंत सिंह को कर्नल की दुर्दशा से अवगत कराती है और कहती है- "ऐसी कसाई औलादों से आदमी निपूता भला। हमें इस बात का कोई गम नहीं कि हमारी कोई अपनी औलाद नहीं....|"[3]वस्तुतः लेखिका ने इस उपन्यास में पारिवारिक मूल्यों के टूटने से उपजी भयावहता का बेबाक चित्रण किया है,जहाँ न आपसी प्रेम है और न ही लगाव है।

2.पारिवारिक विघटन:-परिवार भारतीय समाजव्यवस्था की मूलभूत इकाई होती है| व्यक्ति-विकास की बुनियाद ही परिवार है| अतः किसी विकासशील समाज व्यवस्था में परिवार व्यवस्था का मजबूत होना महत्वपूर्ण होता है| 'गिलिगडु' उपन्यास में बाबू जसवंत सिंह और कर्नल स्वामी के परिवार के सदस्यों में आपसी मनमुटाव एवं बिखराव दिखाई देता है, जहाँ स्वार्थ के समक्ष आपसी सौहार्द, स्नेहभाव तथा सद्भाव खो गए हैं|आधुनिकता ने पारिवारिक साहचर्य भावना पर ही हमला बोल दिया है| बाबू जसवंत सिंह अपने बेटे और बेटी से उपेक्षित पिता है| वे अतीत की सुखद स्मृतियों को स्मरण करते हैं-"जन्मदिन जो और दिनों से अलग नरेंद्र से एक टेलीफोन की दरकार रखता था और चरणस्पर्श बाबूजी सुनकर गदगद हो आशीषों की बौछार से उसे भिगो देता था| तड़के टेलीफोन की पहली घंटी बजती थी उसकी, सबको पछाड़ते हुए|सुनते ही शालू तुनककर कहती इतनी सुबह उसने बधाई के लिए फ़ोन इसीलिए किया कि वह जन्मदिन की बधाई देने में भैया को पछाड़ना चाह रही थी|"[4] परंतु वृद्धावस्था में दोनों बच्चे पिता को वृद्धाश्रम भेजने पर सहमत है| इस दुर्व्यवहार से व्यथित होकर ही बाबू जसवंत सिंह अपनी जायदाद अपने बच्चों के नहीं, बल्कि कानपुर के घर में सेवा करने वाली सुनगुनिया और उसकी बेटियों के नाम पर करने का बड़ा निर्णय करते हैं|

3. अतिआधुनिकता का दुष्प्रभाव :-संचार क्रांति के आगमन से मनुष्य जीवन सुकर और भौतिक दृष्टी से समृद्ध तो बना, लेकिन उसके अनेक दुष्परिणाम भी सामने आए हैं| अतियांत्रिकता ने मानव को भी यंत्रवत बना दिया है| यही कारण है की जो समय कभी विचार विमर्श, साहचर्य, स्नेह्वत आदान-प्रदान के लिए होता था, अब वह समय एकाकीपन में बिताना नियति-सी बन गई है| बचपन किसी व्यक्ति के लिए सुनहरी यादों का दर्पण होता है, लेकिन जब बचपन की मौजमस्ती की जगह मोबाइल या कंप्यूटर हाथ आ जाए तो इन आधुनिक मशीनों ने बच्चों का बचपन तो छीन ही लिया है|साथ ही अकेले रहने की आदत ने उनकी सामूहिक सोच को सिकोड़ दिया है| आज के बच्चे एवं युवा वर्ग मैदानी खेल की अपेक्षा अनेक प्रकार के विडिओ गेम, मोबाइल में ही व्यस्त रहता है| कामकाजी माता-पिता भी बच्चों से जान छुड़ाने के लिए उन्हें कई यांत्रिक खिलौने ला देते हैं| इससे नई पीढ़ी आत्मकेंद्री बनती जा रही है| बाबू जसवंत सिंह के पोते मलय और निलय भी इसी तरह यंत्रवत जीवन जी रहे हैं और वे अपने समक्ष यंत्रों के प्रभाव में आने वाली अपनी नई पीढ़ी को बर्बाद होते देख रहे हैं| चित्रा मुद्गल बाबू जसवंत सिंह के पोतों की खिलौनों के प्रति आसक्ति को लेकर लिखती है -" गली के बच्चों के साथ खेलने में उनकी कोई दिलचस्पी न होती| न अपने खेलों में उन उत्सुक बच्चों को साक्षीदार बनाते| न हाथ लगाने देते| उन्हें खेल-खिलौने में भी षड्यंत्र की बू आती| बुद्धि विकास की आड़ में खूबसूरती से बच्चों को संवेदनाहीन किया जा रहा है, इतना कि बच्चे कभी परिवार में न लौट सकें, न कभी अपना परिवार गढ़ सकें|"[5] बाबू जसवंत सिंह पोतों की नीरसता दूर करने हेतु परिवार एवं मित्रों के बीच मलय का जन्मदिन मनाना चाहते हैं| लेकिन मलय पापा से कहकर मैकडोनाल्ड की मेज बुक कराकर दादा की योजना पर पानी फेर देता है| बाबू जसवंत सिंह का बेटा नरेंद्र और बहू सुनयना को भी बच्चों की क्षीण होती जा रही क्षमता की कोई चिंता नहीं है| अतः घर में बुजुर्गों के स्नेह के अभाव में नई पीढ़ी यांत्रिकता के भयानक पाश में फंसती लक्षित होती है|

4. दांपत्य जीवन में बिखराव:-सफल दांपत्य जीवन ही किसी सुखी परिवार की आधारशीला है| भारतीय समाज में विवाह को पवित्र बंधन माना जाता है| पति-पत्नी में पारस्परिक प्रेम के साथ विश्वास और समर्पण का विशेष महत्त्व होता है| बाबू जसवंत सिंह का दांपत्य जीवन सुखद रहा | उनकी पत्नी साथ कतिपय कटु अनुभवों के साथ बेहद आत्मीय भाव

रहा है| परंतु वर्तमान में आपसी द्वेष, इर्ष्या, निजी महत्वाकांक्षा से दांपत्य संबंधों में तेजी से बिखराव देखा जा रहा है| कर्नल स्वामी की बहू अनुश्री निजी महत्वाकांक्षा के सामने पति श्रीनारायण और परिवार को कोई महत्त्व नहीं देती और उसका परिवार बिखर जाता है| " डेढ़ साल की मासूम जुड़वाँ बेटियों को छोड़ उसने अपने नृत्य गुरु के साथ डंके की चोट पर रहना शुरू कर दिया था| बच्चियों को जतन से उनकी दादी ने पाला-पोसा| ...उसी बीच कर्नल स्वामी की अनिच्छा के बावजूद श्रीनारायण ने दूसरा ब्याह कर लिया और बच्चियों को हैदराबाद में ही हॉस्टल में डाल दिया|"[6] वास्तव में पति-पत्नी के बीच मनमुटाव से उसकी कुमुदिनी और कात्यायनी जैसी बेटियों का भविष्य अंधकारमय हो जाता है| अतः पति-पत्नी के विवाद आम बात हैं, लेकिन उसे टालकर उस रिश्ते को बनाए रखने का हरसंभव प्रयास दोनों ओर से होना आवश्यक है|कहना न होगा कि दांपत्य जीवन की बुनियाद आपसी इर्ष्या न होकर स्नेहभाव और परस्पर विश्वास होता है|

5.मानवतावादी दृष्टि:-मानव स्वयं अनेक मानवीय संबंध बनाता है| उनकी नीव परस्पर प्रेम तथा साहचर्य होती है| वर्तमान पूंजीवादी समय में हर संबंध में व्यावहारिक दृष्टि लक्षित होती है| खून के रिश्ते भी स्वार्थ की दलदल में भटके दिखाई देते है| ऐसे में खून के रिश्ते की अपेक्षा मानवीय रिश्ते महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं| कर्नल स्वामी और जसवंत सिंह का रिश्ता ऐसा ही मानवीय है, जिसके मूल में निरपेक्ष स्नेह है| वे एक ऐसे रिश्ते से बंधे हैं, जिससे एक-दूसरे के हमदर्द बन जाते हैं| जसवंत सिंह तो कर्नल स्वामी के साथ रहकर अपने सभी दुख-दर्द भूल जाते हैं| स्वामी सदैव जसवंत सिंह को खुश रहने के लिए प्रोत्साहन देते हैं| कर्नल स्वामी अपने बेटे और बहुओं से मिले अमानवीय व्यवहार से आहत हैं| किन्तु वे इस दशा में भी वे गरीब नए लोगों के बीच नवीन किन्तु मानवीय रिश्ता बनाकर अपनी नई निस्वार्थ दुनिया खड़ी करते हैं| गरीब बच्चों को पढ़ते हैं| कर्नल स्वामी अपने घर में अकेले ही रह रहे थे किन्तु अब उनकी मृत्यु हो चुकी थी। वे बाबू जसवंत सिंह को जिस बहू बेटों और पोतियों की बात बताते थे, वह सब काल्पनिक था। जसवंत सिंह उपहार के रूप में जो कुछ ले गए थे वह पड़ोसी को देकर लौट आते हैं। चित्रा मुद्गल इस दुरावस्थ कहानी को बड़ी संजीदगी के साथ पेश करती है। रचना इस विश्वास को और भी गहरा करती है कि साहित्यिक मूल्यों में सामाजिक सार्थकता का महत्व निरंतर बना रहेगा।

6.सामाजिक मूल्य क्षरण:-'गिलिगडु' उपन्यास में चित्रा मुद्गल ने सामाजिक मूल्यों के क्षरण की प्रक्रिया को बड़ी कुशलता के साथ चित्रित कियाहै। तेरह दिनों की मित्रता में जसवंत सिंह और कर्नल स्वामी की जो स्थिति प्रकट होती है, वह वस्तुतः मूल्यों के क्षरण का ही परिणाम है। संयुक्त परिवार भारतीय संस्कृति की विशेष पहचान रहा है, जहाँ सम्बन्धों को महत्व दिया जाता था। किन्तु आज न तो संबंध की जरूरत रही, न ही मूल्यों की। इस उपन्यास में चित्रा जी ने यह भी दिखाने की कोशिश की है कि जड़ों से कटने पर व्यक्ति का जड़ों के प्रति कितना लगाव होता है। जसवंत सिंह कानपुर से सबकुछ छोड़कर बेटे नरेंद्र के पास दिल्ली आते है; किन्तु अपनापन कहीं न कहीं कानपुर में ही छूट जाता है। बेटे और बहू के साथ वे अपनेपन को महसूस नहीं कर पाते। कदम-कदम पर वे स्वयं को अपमानित-सा महसूस करते है। बेटा नरेंद्र और बेटी शालिनी दोनों ही जसवंत सिंह की जमीन, जोयदाद, बैंक बैलेन्स को लेकर लालायित है।जसवंत सिंह की बेटी उनसे कहती है,"लॉकर में अभी है तो बहुत कुछ बाबूजी! अम्मा के अपने कई सेट ,पाच तोले के आजीवाली नाथ, चांदी का ढेरों सामान। अम्मा हमेशा कहती रही- अपनी पचलड़ और कुन्दन का सेट वे अन्वीता को देंगी और विक्रम की बहू के लिए....'।"[7] अपनी बेटी से यह बाते सुनकर गहरा आघात पहुँचता है और उनके हाथों से फोन का रिसीवर छूट जाता है।बाबू जसवंत सिंह अपने एकांत को दूर करने कानपुर से दिल्ली आए थे; ताकि वे अपने बेटे, बहू और पोतों के साथ खुश रह सके। लेकिन उनका एकांत दूर नहीं होता। जसवंत सिंह की बहू ने भी अपने बच्चों को आत्मकेंद्रित बना दिया है, यथा - "बुद्धि विकास की आड़ में बड़ी खूबसूरती से बच्चों को संवेदनाच्युत किया जा रहा, इतना कि बच्चे कभी परिवार में न लौट सके, न कभी अपना कोई परिवार गढ़ सकें।"[8]जसवंत सिंह जब कर्नल स्वामी कि स्थिति से रूबरू होते हैं, तब परिवार के प्रति उनका रहा सहा मोह भी भंग हो जाता है। यही कारण है कि उनका प्रेम बेटा, बहू और बेटी की अपेक्षा कानपुर के घर में रहने वाली नौकरानी सुनगुनियाँ और उसके बच्चों के प्रति अधिक उमड़ता है। इतना ही नहीं अपने शव को मुखाग्नि देने की ज़िम्मेदारी भी उसे ही सौंपते हैं।

निष्कर्षत:- आज मनुष्यता धीरे-धीरे कम होती जा रही है। उपभोक्तावाद, भूमंडलीकरण के चलते मनुष्य सिर्फ अपनी तरक्की, सुख-सुविधा से भरा जीवन व्यतीत करना चाहता है; लेकिन इस भौतिक प्रतिस्पर्धा में वह अपनों को ही भूल जाता है। देश में वृद्धाश्रमों की बढ़ती संख्या कुकुरमुत्ते की भाँति चिंतनीय हैं|युवा पीढ़ी के लिए अपने ही माता-पिता की देखभाल लिए बोझ न होना चाहिए| चित्रा मुद्गल ने इसे अपने उपन्यास'गिलिगड़' में बखूबी दर्शाया है और युवा पीढ़ी को वर्तमान स्थिति से साक्षात्कार कराया है।अतिआधुनिकता एवं व्यावहारिक दृष्टि के प्रभावस्वरूप आज अनेक भारतीय परिवारों में पारिवारिक विघटन लक्षित होता है। आधुनिक अर्थकेंद्री जीवनशैली के कारण वर्तमान मानव को स्वार्थी बनाया है| वर्तमान में आधुनिक भौतिक उपयोगितावादी समाज में मानवीय मूल्य गौण होते जा रहे हैं। अतः इस पर 'मातृदेवो भव' और 'पितृदेवो भव' का संस्कार ही संपूर्ण उपाय है|

****

संदर्भ सूची:-

1) गिलिगडु - चित्रा मुद्गल,सामयिक प्रकाशन, 2007,पृष्ठ संख्या - 80
2)वहीं, पृष्ठ संख्या - 96
3) वहीं, पृष्ठ संख्या - 138
4) वहीं, पृष्ठ संख्या - 46
5) वहीं, पृष्ठ संख्या - 34
6) वहीं, पृष्ठ संख्या – 37
7) वहीं, पृष्ठ संख्या – 56
8) वहीं, पृष्ठ संख्या – 39

राजनीति संस्था और शरद जोशी एवं उनके समकालीन व्यंग्यकार

डॉ. राज नारायण शुक्ल
शोध-निर्देशक, प्राध्यापक, हिंदी विभाग
एस.डी. कॉलेज, गाजियाबाद

राजेश कुमार शर्मा
शोधार्थी, सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग
लाजपत राय महाविद्यालय, साहिबाबाद, गाजियाबाद

सारांश-वर्तमान भारतीय समाज मूल्यों के पतन से जूझ रहा है। यह स्थिति आजादी के बाद से ही बनी हुयी है। पुराने मूल्य तो टूटे हैं, किन्तु स्वतंत्रता-पश्चात की नयी सोच के अनुरूप नये मूल्य निर्मित नहीं हो पाए। पुराने और नए मूल्यों की इस असंगति के कारण समाज की सभी संस्थाओं में विभिन्न विकृतियों ने घर कर लिया है। इन विसंगतियों एवं विकृतियों पर व्यापक व्याघात कर उनको समूल नष्ट करने की शक्ति रखने वाले, साहित्य के शस्त्रागार के ब्रह्मास्त्र व्यंग्य द्वारा शरद जोशी एवं उनके समकालीन व्यंग्यकारों ने स्वातंत्र्योत्तर भारतीय समाज की विभिन्न संस्थाओं में व्याप्त विसंगतियों एवं विकृतियों पर प्रहार कर समाज में सुधार करने का प्रयास किया है। प्रस्तुत शोध-पत्र में राजनीति संस्था में व्याप्त अराजकता, इसकी प्रजातांत्रिक पद्धति के पतन और इस अराजकता व पतन के कारक राजनैतिक अभिजनों के छद्म-रूप पर इन व्यंग्यकारों ने जो व्यंग्य-बाण चलाये हैं, उनकी संक्षिप्त बानगी प्रस्तुत की गयी है।

बीज-शब्द- भारतीय समाज, राजनीति संस्था, प्रजातांत्रिक पद्धति, राजनैतिक अभिजन, विसंगतियां, विकृतियां, व्यंग्य, प्रहार, सुधार।

व्यक्ति और समाज का संबंध सार्वभौमिक एवं सर्वकालिक है। व्यक्ति समाज का प्रमुख अंग है, और समाज व्यक्ति का प्रमुख पोषक। दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। एक के बिना दूसरे का अस्तित्व नहीं है। समाज की संरचना की परिकल्पना व्यक्ति से ही शुरू होती है, और उसी पर ही समाप्त। समाज की समस्त गतिविधियों का केंद्र-बिंदु वही है। व्यक्ति उन मूंगों के सामान है, जो समाज रुपी माला में एक समान उद्देश्य व समान रुचि, मूल्य, संस्कार एवं संस्कृति रूपी धागे से अनुस्यूत रहते हैं। ये समान तत्त्व व्यक्तियों में सामूहिकता का संचार करते हैं। समाज कुछ छोटे, तथा कुछ बड़े समूहों का ही नाम है। समूह वैयक्तिक एवं स्वाभाविक हितों से विशेष हितों की प्रक्रिया में समितियों का निर्माण करते हैं। समिति-सदस्यों के व्यवहारों को नियंत्रित करने एवं समिति के निर्धारित कुछ विशेष उद्देश्यों को प्राप्त करने के निमित्त जो नियम-कानून, कार्य-प्रणालियां और तौर-तरीके उपयोग मे लाए जाते हैं, उन्हें ही समाज की संस्थाएं कहा जाता हैं। बोगार्डस के अनुसार-"एक सामाजिक संस्था समाज का वह ढांचा होता है, जो मुख्य रूप से सुव्यवस्थित विधियों के द्वारा व्यक्तियों की जरूरतों की पूर्ति के लिए संगठित किया जाता हैं।"[1] परिवार, विवाह और नातेदारी, राजनीति, अर्थव्यवस्था, धर्म, शिक्षा एवं संस्कृति सामाजिक संस्थाएं हैं।

समाज की राजनीति संस्था शासन-प्रशासन, राजनैतिक दलों, दलों से संबंधित राजनैतिक अभिजनों, चुनाव-चक्र आदि से संबंधित नियमों, विधि-विधानों एवं कार्य-प्रणालियों की व्यवस्था है। राजनीति संस्था की व्यवस्था के संबंध में राम आहूजा का मत है- "राजनैतिक व्यवस्था' राजनैतिक संस्थाओं (जैसे, सरकार), संघों (राजनैतिक दल), और संगठनों का एकत्रीकरण (collectivity) है जो पूर्व निर्धारित उद्देश्यों और प्रतिमानों के आधार पर अपनी भूमिका का निर्वाह करते हैं।"[2] राजनीति संस्था समाज की वह संस्था है, जो समाज की अन्य सभी संस्थाओं को कहीं-ना-कहीं और किसी-न-किसी रूप में प्रभावित करती है। क्या परिवार, क्या अर्थव्यवस्था, क्या शिक्षा, क्या धर्म व क्या संस्कृति, सभी संस्थाएं इससे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकतीं हैं। यदि किसी राष्ट्र की राजनीति संस्था मजबूत होगी, तो उस राष्ट्र की अन्य सामाजिक संस्थाएं स्वत: ही मजबूती पकड़ेंगी। यदि यह कमजोर और अस्थिर होगी, तो समाज की अन्य संस्थाएं भी कमजोर और अस्थिर हो जाती हैं। इस संस्था में उथल-पुथल समाज की अन्य विभिन्न संस्थाओं में अराजकता उत्पन्न कर देती है। किसी भी संस्था की मजबूती उस संस्था से संबंधित सदस्यों पर निर्भर होती है। यदि राजनीति संस्था से संबंधित सदस्यों में पवित्रता, समाज व देश के प्रति समर्पण की भावना, सत्यनिष्ठा, संयम, दृढ़ निश्चय होगा, तो निश्चित रूप से यह संस्था और इसके साथ-ही साथ समाज की अन्य सभी संस्थाएं दृढ़ व मजबूत होगीं। स्वतंत्रता-पश्चात एक-दो दशकों तक इस संस्था में संतुलन था। इसने भारतीय समाज में एक नई चेतना पैदा की थी। शासन-प्रशासन में राष्ट्र-निर्माण की एक सकारात्मक स्वप्न-दृष्टि निर्मित की थी। उसमें ऊर्जा भर दी थी, उसको एक उर्ध्वगामी दिशा की ओर अग्रसर किया था। इस संस्था के नीति नियंता नेता-वर्ग के नेतृत्व ने भारतीय समाज की अन्य सभी संस्थाओं में भी सकारात्मक परिवर्तन किया था, और भारतीय जनमानस को नयी सोच-समझ व नई दिशा-दृष्टि दी थी। राजनैतिक दलों में आंतरिक अनुशासन और उनके अभिजन वर्ग, जिन्हें नेता नाम प्राप्त है, में भी आत्मिक अनुशासन था। नेता-वर्ग में नैतिकता थी, पवित्रता थी, और उनके अपने कुछ राजनैतिक मूल्य थे। उनमें संविधान के प्रति सम्मान था। उनकी कथनी और करनी में अंतर नहीं था। उनके अपने वादों और दावों के प्रति इरादे दृढ़ और अटल थे। उनमें समाज-सेवा, देश-सेवा व देश-प्रेम की भावना थी। उनमें त्याग एवं समर्पण की भावना थी। वे राजनीति संस्था से अधिकार और पद-प्राप्ति की कामना से नहीं, बल्कि समाज व देश की सेवा की भावना से जुड़े थे। इस संस्था से जुड़ने का उनका उद्देश्य जानोन्नयन, आत्मोन्नयन व आत्मतुष्टि था, न कि कोई लोभ-लालच। राजनीतिक दलों के भी कुछ निर्धारित लक्ष्य थे, और उन्हें पूरे करने की स्पष्ट दृष्टि एवं दृढ़ व ईमानदार इरादे थे। चुनाव प्रक्रिया में भी पारदर्शिता एवं शुचिता थी। परंतु, स्वतंत्रता के एक-दो दशक पश्चात ही राजनीति संस्था की दशा और दिशा परिवर्तित होने लगी। स्वार्थ, भाई-भतीजावाद, भ्रष्टाचार, झठ और फरेब ने इस संस्था में सेंध लगा दी, और इसके नेतृत्वकर्ता तथा इनकी नई पीढ़ी नामाकूल हो चली।

राजनीति संस्था शक्ति और सत्ता से संबंद्ध है। शक्ति और सत्ता का संतुलन ही इस संस्था को सर्वतोमुखी और सर्वजन सुखाय व सर्वजन हिताय की शक्ति प्रदान करता है। परंतु, स्वतंत्रता के एक-दो दशक पश्चात ही इस संस्था ने अपना संतुलन खो दिया। अधिकार और शक्तिसंपन्न नेता-वर्ग ने इस संस्था की सर्वतोमुखता को अपने संकुचित स्वार्थ की सीमा में ही सीमित कर लिया। जिस संस्था द्वारा समाज की अन्य सभी संस्थाओं में सकारात्मक परिवर्तन किया जा सकता था, और समाज व देश को मजबूत किया जा सकता था, उसी संस्था को उसके प्रचालन-कर्ताओं ने स्वहित साधना में संलग्न कर लिया। इसकी सर्वजन सुखाय व सर्वजन हिताय की शक्ति को स्व व स्वजन सुखाय व हिताय में ही लगा दिया गया। राम आहूजा के अनुसार- "1967, 1971, 1972, 1980, 1984, 1989, 1991, 1996 1998 और अक्टूबर 1999 के चुनावों में ऐसे अभिजन का उदय हुआ जिनमें से बहुत से लोगों के लिए राजनीति रोजी-रोटी का साधन था। वे सत्ता के गलियारों (corridors of power) में नातेदारी, जाति और भाषा के बन्धनों का प्रयोग करके अपना रास्ता सरल करने में विश्वास करते थे... वे योजना के व्यावहारिक पक्ष से अनभिज्ञ थे और झठे वायदे करके तथा आकर्षक नारे (Slogans) गढ़ कर जनता का सहयोग लेना चाहते थे। वे लोकतांत्रिक होने का दम्भ भरते थे, यहाँ तक कि उनके नारे भी

लोकतांत्रिक होते थे। किन्तु उनकी करनी और कथनी में अन्तर था। लोकतंत्र जीवनशैली के रूप में उनका स्वभाव उन के लिए विदेशी था।"[3] आजादी-पश्चात के एक-दो दशकों में ही इस संस्था का स्वरूप बदल गया। इस संस्था से संबंधित सदस्य-गण सत्ता और शक्ति के नशे में इतने चूर होते चले गए कि वे समाज व देश के प्रति अपने उत्तरदायित्व एवं कर्तव्य तक भूल गए। वे पद और अधिकार के भूखे हो उठे। अधिकार और पद प्राप्ति के लिए वे मर्यादा का मार्ग ही भूल गए। सेवा की भावना को भूल, वे मेवा खाने की कामना में ही मशगूल हो गए। भारत की राजनीति में अराजकता, अपवित्रता, अवसरवादिता, असत्यवादिता, अनिश्चय, अपराधीकरण, असंयम, अदूरदर्शिता, आचरणहीनता, अनैतिकता, स्वार्थपरता, दोगलापन, छल-प्रपंच, सिद्धांतविहीनता, पाखंड आदि द्रोपदी के चीर की तरह बढ़ते ही चले गए। आदर्श राज्य का जनता द्वारा देखा गया स्वर्णिम स्वप्न दिवास्वप्न साबित हुआ। राजनीति के देव दानव साबित होने लगे। राजनीतिज्ञों के इस देवत्व से दानवत्व की यात्रा का लेखा-जोखा शरद जोशी एवं उनके समकालीन व्यंग्यकारों ने अपनी-अपनी व्यंग्य-बही में बहुत ही संभाल कर रखा है। शरद जोशी एवं उनके समकालीन व्यंग्यकारों हरिशंकर परसाई, श्रीलाल शुक्ल, श्री रवींद्रनाथ त्यागी, नरेंद्र कोहली, बरसाने लाल चतुर्वेदी, लतीफ घोंघी, शंकर पुणतांबेकर, डॉ. बालेंदु शेखर तिवारी, श्री ईश्वर शर्मा, सुदर्शन मजीठिया, के.पी. सक्सेना, रोशन लाल सुरेवाला, सूर्यबाला आदि ने राजनैतिक अभिजनों के झूठे अभिनय और राजनीति संस्था की विडंबनात्मक स्थिति का पर्दाफाश करते हुए इन नेता-गणों और इस संस्था की विरुपावस्था एवं विकृतावस्था पर व्यापक व्यंग्याघात किये हैं।

स्वतंत्रता-पश्चात के दशकों में राजनीति में गंदगी बढ़ती चली गई। यह कलुषित हो गई। जिस प्रकार कोई रेलगाड़ी अपने प्रस्थान-स्थल से अपने गंतव्य की ओर चलती है, तो साफ-सुथरी होती है। परंतु, जैसे-जैसे वह आगे बढ़ती जाती है, लोग उसमें गंदगी फैलाते जाते हैं, और उसमें कूड़ा-करकट इकट्ठा होता जाता है। कुछ थोड़ी-सी ही यात्रा के बाद इसके डिब्बों में कूड़ा-करकट और गंदगी के कारण बदबू आने लगती है, और इस में बैठना दूभर हो जाता है। ऐसी ही भारतीय राजनीति की यात्रा है। दिन-प्रतिदिन राजनीति पददलित होती गयी, राजनीति संस्था का अवमूल्यन होता चला गया। इस स्थिति का व्यंग्य-चित्र श्रीलाल शुक्ल इस प्रकार खींचते हैं- "हमारी राजनीति और हमारी रेलगाड़ी ये दोनों चीजें एक हैं। दोनों ही पहियों पर लुढ़कते हुए बड़े-बड़े गाँवों की तरह हैं, जो आधुनिक होकर भी प्रागैतिहासिक हैं, रेलगाड़ी बेइन्तहा गन्दी है। मूँगफली के छिलके, थूक, कोयला, कालिख, बीड़ी की अधजली कड़ियाँ, लुढ़का हुआ पानी और बच्चों का पेशाब चारों ओर यही सब छितरा है। अखबारों और फैले हुए गट्टबन्दों के ताबड़तोड़ बयानों की तरह।"[4]राजनीति संस्था में इतनी गँदगी फैलती चली गई कि इसने इसकी प्रजातांत्रिक व्यवस्था को ही ध्वस्त करके रख दिया। स्वतंत्रता-पश्चात, भारत एक प्रजातांत्रिक गणराज्य घोषित हो चुका था। इस प्रजातांत्रिक गणराज्य-रूपी महोदधि के उर को मथने वाली राजनीति संस्था-रूपी तरणि की पतवार स्वदेशी हाथों में आ गई थी। भारतवासियों को आशा थी कि हमारे ये राजनीति के कुशल नाविक इस नाव को ठीक-ठाक ठीक ठाँव लेकर चलेंगे, किंतु इन तारणहारों ने इस नाव को भ्रष्टाचार, अन्याय, अत्याचार, वोट-नोट की लूट-खसोट, भाई-भतीजावाद, झूठ-फरेब, चरित्रहीनता, सिद्धांतहीनता, पाला-बदल, दल-बदल आदि के दलदल में धँसा दिया। हमारे इन कुशल राजनैतिक अभिजनों की चाल अंग्रेजों से भी अभिनव थी। इन्होंने हमारे घोषित प्रजातंत्र को ही ढाल बनाकर माल काटना शुरू कर दिया, खुद मालामाल होते गए, और जनता बेहाल। ऐसा प्रतीत होता था कि अंग्रेजों द्वारा पावर का ट्रांसफर ना हो, कि नेताओं के लिए पैसे का ट्रांसफर हो गया हो। वास्तव में, यह सत्ता का हस्तांतरण नहीं, बल्कि सत्ता का रूपांतरण था। वही पुराने राजे-महाराजे व सामंत-नवाब, पुराने लिबास उतारकर नए लिबास खद्दर में जनतंत्र का जनाजा निकालने आ गए थे। ये काली चमड़ी वाले भारतीय अंग्रेज, वास्तव में, गोरी चमड़ी के अंग्रेजों का ही रूपांतरण तो थे। इस तथ्य की ओर इशारा करते हुए हरिशंकर परसाई कहते हैं- "कहा- 'इण्डिया इज ए ब्यूटिफुल कण्ट्री ।' और छुरी-काँटे से इण्डिया को खाने लगे। जब आधा खा चुके, तब देशी खानेवालों ने कहा- अगर इण्डिया इतना खूबसूरत है, तो बाकी हमें खा लेने दो। तुमने 'इण्डिया' खा लिया। बाकी बचा 'भारत' हमें खाने दो। अंग्रेज ने कहा- 'अच्छा, हमें दस्त लगने लगे हैं। हम तो जाते हैं। तुम खाते रहना।' यह बात 1947 में हुई थी। हम लोगों ने कहा- अहिंसक क्रान्ति हो गयी। बाहरवालों ने कहा- 'यह ट्रान्सफर ऑफ पॉवर है'-- सत्ता का हस्तान्तरण । मगर सच पूछो तो यह 'ट्रान्सफर ऑफ डिश' हुआ- थाली उनके सामने से इनके सामने आ गयी। वे देश को पश्चिम सभ्यता के सलाद के साथ खाते थे । ये जनतन्त्र के अचार के साथ खाते हैं।"[5] राजनीति संस्था के कर्णधारों ने जनतन्त्र के वास्तविक अर्थ को ही बदल कर रख दिया। 'प्रजा का, प्रजा के लिए शासन' वाला तंत्र, 'अभिजनों का अपने और अपने जनो के लिए' तंत्र बन कर रह गया। इस प्रजातंत्र में प्रजा गौण हो गई, और तंत्र प्रमुख और शक्तिशाली हो उठा। इस तथ्य का रवींद्रनाथ त्यागी ने अपनी रचना 'अपना देश: चिंतन के कुछ क्षण' में इस प्रकार वर्णन किया है-"जहाँ तक सरकार का प्रश्न है, वहाँ स्थिति यह है कि होने को तो प्रजातन्त्र है पर वास्तविकता है कि तन्त्र जो है वह प्रजा से अब भी अधिक शक्तिशाली है। प्रजा की हम इज्ज़त करते हैं और इसी कारण प्रजा शब्द का प्रयोग तन्त्र से पहले किया गया है। पर सच्चाई में स्थिति वही है जो सीताराम शब्द में सीता की और राधाकृष्ण में राधा की।"[6] राजनीति संस्था-तंत्र के महारथियों ने भारतीय लोकतंत्र के तंत्र का ताना-बाना इस प्रकार का बुन लिया कि इसमें आमजन भेड़ और बकरियों की भीड़ के अतिरिक्त और कुछ भी ना रह सका। नेता-गण आमजनों की इस भीड़ में भेड़ की खाल में भेड़िए की तरह घुस गए। लोकतंत्र भेड़ियातंत्र बन के रह गया। राजनीति के इन भेड़ियों के पीछे-पीछे आमजन चलने लगा, अब ये भेड़िये इनको जब चाहें, जहां चाहें, जिस खड्ड में गिरा दें। राजनीतिज्ञों द्वारा निर्मित किए गए भीड़तंत्र और भेड़तंत्र के वातावरण पर डा॰. बालेंदु शेखर तिवारी कहते हैं- "लोकतंत्र के नाम पर भीड़तंत्र और भेड़तंत्र का वातावरण भारत में प्रस्तुत हुआ है।"[7]लोकतंत्र के मंदिरों लोकसभा, राज्यसभा और विधानसभाओं के लिए चुने गए जनप्रतिनिधि, उन प्रतिनिधियों के बहुमत से बनी सरकार की कैबिनेट, और उस कैबिनेट का अध्यक्ष प्रधानमंत्री अथवा मुख्यमंत्री, प्रजातांत्रिक शासन-व्यवस्था रूपी बैलगाड़ी के वे बैल और गाड़ीवान हैं, जो इस बैलगाड़ी को अपनी ही धुन में हाँकते हैं। बैल अपनी धुन में चले जाते हैं, और गाड़ीवान गर्दन के पीछे दोनों हाथों की टेक लगाए, झपकी मारते हुए अपनी धुन में चला जाता, चला ही जाता है। बैलगाड़ी भी राम भरोसे चलती जाती है, चलती ही जाती है। भारतीय प्रजातंत्र की इस स्थिति पर 'बैलगाड़ी से' नामक रचना में श्रीलाल शुक्ल ने इस प्रकार व्यंग्य किया है-"जैसे कालिदास को इस बैलगाड़ी से उत्कृष्ट साहित्य की प्रेरणा मिली थी, वैसे ही आजकल यह प्रजातन्त्र की प्रेरक शक्ति है। ये बैल कैबिनेट के समान हैं। गाड़ीवान प्रेसीडेंट का काम करता है जो बैलों को चलाता है और नहीं भी चलाता है। यह गाड़ी, यह गाड़ीवान, ये बैल-ये सब हमारे हैं। हम जनता हैं।"[8]प्रजातंत्र रूपी बैलगाड़ी किसी गधागाड़ी से कम नहीं है, जिसको गधे खींचते हैं। क्योंकि प्रजातंत्र के नाम पर मूर्ख राजनीतिज्ञ जनता को मूर्ख बनाते हैं, और जो मूर्ख बन गया, वह मूर्ख ही है। इस प्रकार, 'जनता के लिए, जनता का शासन' 'मूर्खों के लिए, मूर्खों का शासन' बन के रह गया। इस प्रकार के शासन-तंत्र को विकसित करते हैं, हमारे प्रजातंत्र रूपी गधागाड़ी को चलाने वाले नेता-गण। इस तथ्य

पर कटाक्ष करते हुए रवींद्रनाथ त्यागी लिखते हैं- "प्रजातन्त्र का अर्थ उस सरकार से होता है जो कि गधों की होती है और जो गधों के लिए मात्र गधों द्वारा ही चलाई जाती है। जो गधे सरकार चलाते हैं, आजकल उन्हें नेता कहते हैं।"[9]नेता के गधापन(मूर्खता) पर प्रश्नचिन्ह नहीं लगाया सकता। उनका गधापन, छाया की तरह उसके साथ-साथ हर जगह चलता है, और उनके भाषणों इत्यादि में साफ-साफ झलकता है, इसीलिए तो, श्रीलाल शुक्ल जी ने नेता और गधे के संबंध को इस प्रकार जोड़ा है- "जब और जहाँ सफेदपोश हैं, तब और तहाँ धोबी हैं, और जहाँ धोबी हैं, वहाँ गधा है।"[10] नेता चतुर गधा होता है। वह ज्ञानवान भले ही ना हो, लेकिन ज्ञानवानों को भी चूना लगाने की चतुरता उसमें कूट-कूट कर भरी होती है। किताबी ज्ञान में वह भले ही कमजोर हो, लेकिन तिकड़मी ज्ञान में बहुत मजबूत होता है। बाहर से तो श्वेत वस्त्रधारी, लेकिन अंदर से उतना ही काला। उस बकुल की तरह जो ऊपर से तो बहुत सीधा-सादा और साफ-सुथरा, किंतु अंदर से उतना ही कुटिल और मलिन- "यदि बगुले को गौर से देखो, स्थानीय नेता-सा लगता है। शिकार पर नजर रखे, विनय की प्रतिमूर्ति। ऊपर से धीर-गम्भीर, अन्दर से महाचालू और चालाक।"[11] नेता शब्द मेन में आते ही एक विचित्र चित्र मस्तिष्क पर उभरता है कि कोई तोंदल खद्दर कुर्ता-पजामा और टोपी धारी विचित्र व्यक्ति विचित्रावस्था में माईक के सामने खड़ा झूठ के विचित्र शब्द गढ़ रहा हो। विषय कोई भी हो यह विचित्र प्राणी ज्ञान की प्रतिमूर्ति बन शेखी बघारना प्रारंभ कर देते हैं। जनता इस ज्ञान की गंगा में गोता लगाती रहती है, लेकिन उसके हाथ कुछ नहीं लगता। हरिशंकर परसाई नेताओं की इस भाषणबाजी और वादों, जो शेखचिल्ली के इरादों से कम नहीं है, पर व्यंग्य करते हुए लिखते हैं- "जितने उपदेश और भाषण इस देश का नेता देता है, उतने किसी देश के नेता नहीं और हर विषय पर। सवेरे कृषि विज्ञान पर और शाम को अरविंद दर्शन पर। 25 सालों से रोटी की जगह भाषण मिल रहा है। लोगों का हाजमा खराब हो गया है। दिमाग कै करने लगा है।"[12] इस भाषण बाजी में कभी-ना पूरे होने वाले वादों-दावों के दर्शन हमें होते हैं। ये वादे और दावे ही तो चुनाव की चमक हैं, जो जनता को मृग मरीचिका के समान भ्रमित करते हैं। नेताओं द्वारा किए गए वादे और दिए गए आश्वासन कभी पूरे नहीं होते हैं- "मेरे विचार से तो यह आश्वासन शब्द ही भारी अर्थपूर्ण है । जो आश्वासन दे रहा है, वह जानता है कि इन्हें पूरा करने की कोई जरूरत नहीं है।... तुमने लिया तो उसने दिया। उसने दिया तो तुमने लिया। बड़ा साफ-सुथरा सौदा है। यही भारतीय परम्परा भक्तिकाल से चली आ रही है । यही भारतीय संस्कृति है, जिस पर हमें गर्व है।"[13] नेताओं ने भारतीय प्रजातंत्र को वादों और नारों का अजायबघर बना कर रख दिया है। प्रजातंत्र-उत्सव की बेला में वातावरण में विभिन्न विलक्षण नारे गूँजते सुनाई पड़ते हैं। नारों की इस प्रतिस्पर्धा में कभी-कभी विभिन्न विपक्षी दलों के कार्यकर्ताओं के बीच 'तू डाल-डाल मैं पात पात' की स्थिति में सर-फुटव्वल की नौबत तक आ जाती है। इस स्थिति पर शरद जोशी अपनी रचना 'चुनाव गीतिका: सरलार्थ' में कटाक्ष करते हुए लिखते हैं- "नारों ने आकाश छू रखा था, भोंगे गुंजायमान थे, पदत्राण शिरस्त्राण हो रहे थे अर्थात् जूते चल रहे थे। देखो, चुनाव की यही शोभा है।"[14] चुनाव की शोभायात्रा में नेताजी की नैया पार लगाने हेतु शहर और गांव के सभी शोहदे शागिर्द के समान उनके सहगामी व अनुगामी बन जाते हैं, तथा सभी सेठ व साहूकार दस्तगीर का दायित्व उठा लेते हैं- "नगर के गुंडे उस समय कार्यकर्ता बन गए थे, स्मगलरों का त्याग अति सराहनीय था। चोर-बाजार के व्यापारी प्रजातन्त्र के दायित्वों के प्रति जागरूक हो गए थे।"[15] नेता बड़े निर्लज्ज होते हैं, बाहर से कुछ और, अन्दर से कुछ और। जनता के सामने वे एक दूसरे को गालियाँ देते हैं, कोसते रहते हैं, और एक दूसरे पर कीचड़ उछालते हैं। परन्तु, आन्तरिक-रूप से, वे एक-दूसरे से मिले रहते हैं। वोट के लिए वे एक-दूसरे के प्रति शत्रुता का भाव दर्शाते रहते हैं, लेकिन, अंदरखाने एक साथ बैठ चुहलबाजियाँ करते रहते हैं। ऊपरी शत्रुता प्रकट करते हुए वे जनता को उल्लू बनाते हुए, अपना उल्लू सीधा करते रहते हैं।

सत्ता-पक्ष के हों, अथवा विपक्षी सभी नेता एक ही थाली के चट्टे-बट्टे होते हैं - "इस पार्टी के हों या उस पार्टी के, सत्ता में बैठे हों या विरोध में- सब एक ही सिगड़ी से बदन सेंकते रहते हैं पाँच साल। सूचना यह मिलती है कि लड़ाई चल रही है, सचाई यह है कि सामूहिक नृत्य हो रहा है।"'[16] सामान्य जन-मन तो इन नेताओं से इसी कारण नफरत करने लगा है, परंतु, ये नेता-जन किसी से नफरत नहीं करते हैं। ये तो सब से प्रेम ही करते हैं, सामान्य जन से वोट के लिए, और कुर्सी से नोट के लिए। यह तो विरोधी दलों से भी नफरत नहीं करते हैं। सत्ता-सुंदरी से दिल-लगी में विरोधियों से भी हाथ मिला लेते हैं, और दल बदल लेते हैं। दल बदलना, तो इनके लिए अंडरवियर बदलने जैसा है- "मेरे लिए राजनीतिक दल अण्डरवीयर है; ज्यादा दिन एक ही को नहीं पहनता, क्योंकि बदबू आने लगती है।"[17] भारतीय राजनीति के सफेदपोश अभिजनों की छद्म छल-नीति, अवसरवादिता, कपट, बेईमानी, निकम्मापन, चरित्रहीनता, भ्रष्टाचारिता और दुष्कर्मों से दुखी शरद जोशी उनको कटघरे में खड़ा करके, प्रहार करते हुए प्रश्न करते हैं- "एक राजनेता उन ईमानदार, मेहनती, संघर्षशील, शक्तियों से अपने को क्यों नहीं जोड़ता? पवित्रता से उसे क्यों एलर्जी है? वह क्यों भ्रष्ट, निठल्ले, कामचोरों, मुफ्तखोरों में रमा रहता है? वह क्यों सारे दुष्कर्मों के केंद्र में है?... नेता क्यों समस्त हीन प्रवृत्तियों का सूत्रधार हो जाता है। प्रजातन्त्र की सबसे बड़ी ट्रेजडी यह है कि सामान्य जन मन-ही-मन इन नेताओं से नफरत करने लगा।"[18] बस! इस देश की विडम्बना यही है कि सामान्य जन इस नफरत और चर्चा-परिचर्चा तक ही स्वयं को सीमित रखता है, वह राजनीति के गंदले पानी में उतरकर इसको गंगा-जल बनाने करने का प्रयास नहीं करता!

****

संदर्भ:

1.*भारतीय सामाजिक संस्थाएं (संशोधित संस्करण), मोतीलाल गुप्ता, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, ए-26/2, विद्यालय मार्ग, तिलक नगर, जयपुर- 302004, द्वितीय संस्करण, 1978, पृष्ठ 4 ("A Social Institution is a structure of society that is organised to meet the needs of people chiefly through well established procedures."- E. S. Bogardus, Sociology, P. 478)*

2.*भारतीय समाज, राम आहूजा, रावत पब्लिकेशंस, सत्यम अपार्ट्स, सेक्टर-3, जवाहर नगर, जयपुर- 302004, पुनर् प्रकाशन- 2021, पृष्ठ 178*

3.*वही, पृष्ठ 190*

4.*यहाँ से वहाँ, श्रीलाल शुक्ल, राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली-110002, प्रथम संस्करण, 1970, 'राजनीति और रेलगाड़ी पर', पृष्ठ 127*

5.*परसाई रचनावली, भाग-3, संपादक- कमला प्रसाद व अन्य, राजकमल प्रकाशन, प्रथम संस्करण, जनवरी 1985, 'वह जो आदमी है न !', पृष्ठ 137*

6.*रवीन्द्रनाथ त्यागी रचनावली, खण्ड: एक, सम्पादक- कमल किशोर गोयनका, वाणी प्रकाशन, 4695, 21-ए, दरियागंज, नई दिल्ली 110002, प्रथम संस्करण, 2016, 'शोक-सभा'(1974)- 'अपना देश: चिन्तन के कुछ क्षण', पृष्ठ 567*

7.*हिंदी का स्वातंत्रोत्तर हास्य और व्यंग्य, डा॰ बालेंदुशेखर तिवारी, अन्नपूर्णा प्रकाशन, निराला नगर, कानपुर-208014, संस्करण-प्रथम, 1978, पृष्ठ 125*

8.*जहालत के पचास साल, श्रीलाल शुक्ल, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., नई दिल्ली, पहला संस्करण:2004, 'बैलगाड़ी से', पृष्ठ 188*

9.*रवीन्द्रनाथ त्यागी रचनावली, खण्ड: चार, सम्पादक- कमल किशोर गोयनका, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2016, 'चम्पाकली'(1992), 'यक्ष-प्रश्न', पृष्ठ 318*

10.*उमरावनगर में कुछ दिन, श्रीलाल शुक्ल, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., नई दिल्ली, सं- प्रथम, 1986, 'मम्मी जी का गधा', पृष्ठ 67*

11.*यथासम्भव, शरद जोशी, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण- प्रथम, 1985, 'भैसन्हि माँह रहत नित बकुला', पृष्ठ 16*

12.*मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएं, हरिशंकर परसाई, ज्ञान भारती प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण- चतुर्थ, 1988, पृष्ठ 102*

13.*व्यंग्य की जुगलबन्दी, लतीफ घोंघी और ईश्वर शर्मा, सत्साहित्य प्रकाशन, 205बी, चावड़ी बाजार, दिल्ली- 6, संस्करण: प्रथम, 1987, 'आश्वासन', पृष्ठ 137*

14.*जीप पर सवार इल्लियाँ, शरद जोशी, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., नई दिल्ली, दसवाँ संस्करण 2022, 'चुनाव गीतिका: सरलार्थ', पृष्ठ 151*

15.*वही, पृष्ठ 151*

16.*यथासम्भव, शरद जोशी, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण- प्रथम 1985, 'जैसे श्वान काँच-मन्दिर में', पृष्ठ 21*

17.*परसाई रचनावली, भाग 1: संपादक- कमला प्रसाद व अन्य, राजकमल प्रकाशन, जनवरी 1985, 'हम बिहार में चुनाव लड़ रहे हैं', पृष्ठ 253*

18.*यथासम्भव, शरद जोशी, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण- प्रथम 1985, 'भैसन्हि माँह रहत नित बकुला', पृष्ठ 17*

हिंदी सिनेमा में कमलेश्वर का अवदान

डॉ. सुनील
एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष
हिन्दी-विभाग गुरु नानक देव विश्वविद्यालय,
अमृतसर- पंजाब

डॉ. (श्रीमती)विनोद कालरा
एसोसिएट प्रो.एवं अध्यक्ष
स्नातकोत्तर हिंदी विभाग
कन्या महाविद्यालय,(स्वायत्तशासी),जालंधर

हिंदी साहित्य में कमलेश्वर का महत्वपूर्ण स्थान है। हिंदी सिनेमा में इसके आरंभिक काल से हिंदी के अनेक लेखक जुड़े।प्रेमचंद से लेकर अमृतलाल नागर, सुमित्रानंदन पंत, वृंदावन लाल वर्मा,उपेंद्र नाथ अश्क, जैसे अनेक लेखक सिनेमा से जुड़े और शीघ्र ही वहां से निराश होकर लौटे। पहली बार कमलेश्वर ने हिंदी सिनेमा में एक लेखक के रूप में अपनी सशक्त उपस्थिति दर्ज की। उन्होंने फिल्म के माध्यम में गहरे उतर कर अपनी उपस्थिति दर्ज कराई और बी आर चोपड़ा, विजय आनंद, सावन कुमार, शक्ति सामंत, प्रकाश मेहरा, दुलाल गुहा, देवानंद, मनोज कुमार जैसे बड़े लोगों के लिए फिल्में लिखीं। कमलेश्वर सफल होते हुए भी हिंदी सिनेमा में अपने लेखन से बहुत संतुष्ट नहीं आते। वे वहां अपना सामंजस्य बिठाने में असफल हुए और वापस साहित्य की दुनिया में लौट आए।अपने जीवन के अंतिम दो दशकों में वे साहित्य और पत्रकारिता की दुनिया में ही अधिक सक्रिय रहे। पर वे इसके साथ ही यदा-कदा सिनेमा और टेलीविजन से किसी ना किसी रूप में जुड़े रहे। 'कमलेश्वर की हिंदी सिनेमा में बहुत सक्रियता रही और उन्होंने इस दौरान हिंदी सिनेमा में लेखक की उपस्थिति को महत्वपूर्ण बनाया । वे पहले एक गंभीर लेखक हैं बाद में फिल्म लेखक।'[1]

कमलेश्वर एक ऐसे लेखक हैं जिनकी रचनाओं को प्रखर बुद्धिजीवियों ने भी सराहा और उनकी पहुंच सामान्य व्यक्तियों तक भी रही। 'उन्होंने 1952 से 2007 तक अपने रचनाकाल में लगभग 150 कहानियों, 11 उपन्यासों के साथ अनेक आलोचना और विमर्श की पुस्तकों का सृजन किया ।'2 कमलेश्वर का सृजन हमेशा आम आदमी की जिंदगी से जुड़ा रहा। उन्होंने उसी के व्यक्तित्व और संकट को अपनी रचनाओं में अभिव्यक्त किया । अपने व्यक्तित्व को समाज में मिला देना रचनाकार के लिए अत्यंत आवश्यक है । कमलेश्वर इसे पूरी संजीदगी के साथ स्वीकार करते हैं ,"वास्तव में हर कथाकार अपने समय और समाज को जीने और उसी को अभिव्यक्ति देने का सार्थक प्रयास करता है और अपने व्यक्तित्व को गरिमामय बना सकता है । " कमलेश्वर कहते हैं ,"कहानी मुझे औरों से जोड़ती है । वह अब केवल एक बात ही नहीं कहती ,जीवन के एक खंड और उस खंड को समग्रता में प्रस्तुत करने की चेष्टा भी करती है।"[3]

कमलेश्वर का लेखन संपूर्ण रूप से आम आदमी को समर्पित है।आम आदमी की जिंदगी और उसकी कशमकश से हटकर साहित्य सृजन करना उनकी दृष्टि में निरर्थक है, बेईमानी है। घोर आत्मपरक कुंठा, घुटन और पलायनवादी प्रवृत्ति के घने जाल से हिंदी को यथार्थ वातावरण में लाकर एक नए अर्थ देने का श्रेय बहुत अंशों में कमलेश्वर को है।

कमलेश्वर आज के समय के तनावग्रस्त और अर्थ अभावग्रस्त व्यक्ति की सच्ची तस्वीर पेश करते हैं। कस्बाई और महानगरीय जीवन के अन्यतम विविध चित्र उन्होंने अपने साहित्य में प्रस्तुत किए हैं।उनकी कहानी 'राजा निरबंसिया' हिंदी कहानी में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखती है ।इस कहानी में दो कहानियां साथ-साथ चलती हैं। वे इस कहानी के माध्यम से वर्तमान और लोक परंपरा का समांतर चित्रण इस प्रकार करते हैं कि वह अभिभूत कर देने वाली कहानी बन जाती है। डॉ नामवर सिंह लिखते हैं ," राजा निरबंसिया में एक लोक कथा की पृष्ठभूमि में आधुनिक निम्न मध्यम वर्ग की कहानी कही गई है।"4 दो अलग-अलग युगों के दो निरबंसिया की जीवन कथा दो रेखाओं की तरह है जो एक दूसरे को छूती हैं और काटती हुई चली जाती हैं। पर यह सिर्फ शिल्प ही नहीं है अपितु इस में कहानी के कहानीपन में कोई बाधा पड़ती है बल्कि यह लोककथा मुख्य कथा को और भी मार्मिकता प्रदान करती है। सिर्फ विधान का यह नया प्रयोग कहानी में अनेक अर्थों और व्याख्याओं की संभावनाएं भर देता है और इस प्रकार एक विशेष घटना के भीतर सत्य की व्यापकता उद्घाटित होती है। 'राजा निरबंसिया' कहानी में कमलेश्वर की कथा दृष्टि हालाँकि मध्य वर्ग पर आधारित है,पर उनकी कहानियों और उनके उपन्यासों की कथावस्तु में दृष्टिगत और रचनात्मक विविधता है। वस्तुतः उनकी रचनात्मक चिंता मानवीय संवेदनशीलता की है।

हिंदी के प्रसिद्ध आलोचक खगेंद्र ठाकुर कहते हैं ," कमलेश्वर के कहानीकार की विशेषता यह है कि मध्यवर्ग से जीवन स्थिति और पात्रों को उठाते हुए भी मध्यवर्गीय कुंठा के शिकार उनके पात्र या चरित्र नहीं हैं। उनके पात्रों की मनोदशा के पीछे सामाजिक मनोदशा भी दिखलाई पड़ती है।एक प्रकार से व्यक्ति और समाज को या वैयक्तिकता और सामाजिकता का सामंजस्य करने की कोशिश दिखाई पड़ती है।"5 कथानक का दोहरापन कमलेश्वर का प्रिय शिल्प है। 'राजा निरबंसिया' के अतिरिक्त कई अन्य कहानियों में भी यह शिल्प प्रयुक्त हुआ है। कमलेश्वर ने हिंदी साहित्य में अपने 55 वर्ष से अधिक लंबे रचना काल में ऐसी छाप छोड़ी है जो चिरकाल तक भुलाई नहीं जा सकती। उन्होंने साहित्य को जीवन अनुभव के विकल्प के रूप में चुना और उसका सार्थक निर्वाह किया। मधुकर सिंह के अनुसार ," सच तो यह है कि कमलेश्वर अपनी कथाओं में युग के सत्य को उद्घाटित करने में अत्यंत सफल रहते हैं। यही नहीं स्वातंत्र्योत्तर हिंदी साहित्य को विकास देने और नई दिशा देने में उनका महत्वपूर्ण योगदान है।"[6] युग और समाज को संपूर्ण परिवेश में प्रकट करने का प्रयास किया गया है।उत्कंठा के परिणामस्वरूप लिखे गए उनके उपन्यासों में लघु किंतु पूर्ण चित्रफलक प्रस्तुत किया गया है। युगबोध और युग सत्य को कमलेश्वर ने अपनी रचनात्मकता में सदैव प्राथमिकता दी है।

हिंदी में कथा लेखन और फिल्म निर्माण की शुरुआत लगभग साथ साथ हुई है। दादा साहब फाल्के ने अपनी फिल्म 'राजा हरिश्चंद्र' 1913 में बनाई थी और 1915 में प्रेमचंद पहली बार अपनी 'पंच परमेश्वर' कहानी के द्वारा सशक्त रूप से पहचाने गए थे। 1931 में पहली बोलने वाली फिल्म 'आलम आरा' का आर्देशिर द्वारा निर्माण किया गया था। धन के आरंभ के साथ ही कथाकार को भी महत्व मिलना आरंभ हुआ क्योंकि ध्वनि के आगमन से सिनेमा में संवाद महत्वपूर्ण बन गए थे। कमलेश्वर ने टेलीविजन और सिनेमा दोनों को समान ताकत के साथ साधा और वहां अपना एक मुकाम हासिल किया। वे कहते हैं ," कहानी के अलावा फिल्म सीरियल,दरदर्शन से लेकर अखबारों तक सभी माध्यमों में जितने भी बड़े माध्यमे मुझे उपलब्ध हुए,उनका हर संभव प्रयोग मैंने जनता तक अपनी बात पहुंचाने के लिए किया। दरअसल हमारे देश में जितनी बड़ी तादाद में निरक्षरता है,उसने मुझे लगा कि मैं सिर्फ कहानी लिखकर पूरी आबादी तक अपनी बात नहीं पहुंचा सकता।आप जानते हैं क्यों? क्योंकि पढ़े लिखे लोगों में भी बहुत थोड़े लोग ही कहानी पढ़ पाते हैं। प्रेमचंद भी कभी फिल्मों में काम करने मुंबई गए थे, लेकिन फिल्मों की दुनिया उन्हें रास नहीं आई और वे हार कर लौट गए। मैंने इसे अपने लिए चुनौती माना कि प्रेमचंद जहां किन्ही कारणों से सफल नहीं हो पाए, उस चुनौती को मुझे पूरा करना है और इस तरह मैं इन कामों से प्रेमचंद का उऋण हो रहा हूं।"[7]

कमलेश्वर को फिल्म लेखन में बहुत सफलता भी मिली। उनके अनेक प्रख्यात निर्माता निर्देशकों के साथ व्यावसायिक रूप से दृढ़ एवं अत्यंत घनिष्ठ संबंध स्थापित हो चुके थे। इसलिए उनके पास काम की कोई कमी नहीं थी, पर वह सिनेमा में सिर्फ काम करने के लिए नहीं आए थे। उस समय में वे जिस मुकाम पर थे,वहां उन्हें काम और दाम की कोई कमी नहीं थी। वे किसी की छवि से आक्रांत न थे ,न अमिताभ बच्चन की और ना बीआर चोपड़ा की। वे भी अपने क्षेत्र में किसी कम नहीं थे ।उन्होंने भी बहुत सारी विदेश यात्राएं की थीं और बड़े से बड़े राजनेताओं और उद्योगपतियों से उनके गहरे संबंध थे। उनका व्यक्तित्व बहुत रौबदार था। वे सिर्फ एक बड़े लेखक ही नहीं बल्कि प्रतिष्ठित पत्रकार भी थे।उन्हें स्वयं इंदिरा गांधी ने दूरदर्शन का एक अतिरिक्त महानिदेशक बनाया था जो मीडिया के द्वारा कमलेश्वर के उपन्यास 'काली आंधी' और उसी पर निर्मित फिल्म 'आंधी' की नायिका के रूप में प्रचारित की गई और उस समय इस पर बड़ा विवाद खड़ा किया गया था। अर्थ यह कि कमलेश्वर का प्रभाव भी उतना ही बड़ा था जितना किसी भी बड़ी से बड़ी हस्ती का हो सकता था और उनके बौद्धिक आकाश, हाजिर जवाबी,वेट तथा अत्यंत आत्मीय आभार के सामंजस्य को पार कर जाना तो किसी व्यक्तित्व का ही कार्य हो सकता था। जहां वे बैठ जाते थे, वहां अपने आप महफिल सजने लगती थी। प्रख्यात साहित्यकारों और पत्रकारों से उनका बहुत घनिष्ठ संबंध था।

इस प्रकार हम देखते हैं कि कमलेश्वर ने बहुत ही गहरी जिजीविषा और फिल्मों की समझ के कारण सिनेमा की अजीबो गरीब दुनिया में अपना मुकाम हासिल किया। वे सिनेमा में लेखक की हैसियत से पूरी तरह वाकिफ थे और कला के रूप में सिनेमा की निर्मिति की आवश्यकताओं और स्वरूप से भी पूरी तरह परिचित थे। इसलिए उन्होंने वहां अपने लिए स्थान बना पाने में सफलता प्राप्त की और कुछ बहुत ही महत्वपूर्ण फिल्मों का हिस्सा बने । विश्वरूप लिखते हैं," इस समय दुनिया का सबसे बड़ा यह सत्य है कि यहां का लिखा हुआ कुछ भी अंतिम नहीं होता। उसे बार-बार लिखा जाता है। पहले लेखक लिखता है फिर उसके निर्देशक अपने दिमाग में लिखता है। इत्तेफाक से यदि निर्देशक की पत्नी कंधे से कंधा मिलाकर चलने वाली हुई या उनकी कोई साली या किसी अन्य संबंधी की सिनेमा में रुचि हुई तो दो-चार प्रसंग वे भी लिख देते हैं। उसके बाद लेखन में फाइनेंसर का दखल शुरू होता है। वह अपनी तरफ से दो-चार दृश्य लिखवाता आता है। फिर उसी फिल्म को शूटिंग के समय कैमरामैन दिखता है। यदि कैमरामैन या हीरोइन के बीच कलाकारों की देखा देखी शुरू हो गई तो कैमरामैन कुछ दृश्य हीरोइन की दृष्टि से लिख देता है। इसके बाद संपादक एडिटिंग टेबल पर दृश्यों के समीकरण बैठाता है और अंतिम लेखन सेंसर बोर्ड द्वारा होता है ।इतने लेखकों के द्वारा लिखी जाने के बाद फिल्म सामने आती है ।" 8 कमलेश्वर यह स्वीकार करते थे कि व्यावसायिक फिल्मों में उनका लिखा बहुत कुछ काट दिया जाता है। इसके बाद उन्होंने कहानी या पटकथा लेखन की बजाए संवाद लेखन में सक्रिय होना ठीक समझा क्योंकि उसमें लेखक को अपनी बात कहने का अधिकार अधिक रहता है।

बड़े आश्चर्य की बात है कि कमलेश्वर ने विभिन्न विधाओं में अपनी कलम चलाई वह किसी के लिए भी इतना सरल कार्य नहीं था। उनकी मृत्यु के उपरांत ' वसुधा' के संपादक प्रोफेसर कमला प्रसाद ने लिखा," मैंने देखा है कि कमलेश्वर की दिनचर्या बहुमुखी है। वे एकबकाम से दूसरे काम में छलांग लगाते हैं। दो विपरीत ध्रुवों में दिलचस्पी से काम करते हैं। मूड जैसी कोई चीज नहीं है उनके मानस लोक में। दोस्तों की परवाह करते हुए काम का सिलसिला जारी रखते हैं।अखबार का संपादन,स्तंभ लेखन भाषण और भी कितने काम-एक साथ... ऐसी व्यस्तता कि दिन छोटे पड़ जाएँ।" [9]कमलेश्वर के सिने लेखन को किसी ने भला कहा तो किसी ने बुरा,पर यह निर्विवाद है कि कमलेश्वर ही हिंदी साहित्य से जुड़ी हुई एकमात्र शख्सियत है जिन्होंने हिंदी सिनेमा के कांटों से भरे रास्ते पर कुशलतापूर्वक चलने में सफलता प्राप्त की है। उन्होंने इस तरह से लेखकों को यह भी समझाने की कोशिश की कि संप्रेषणीयता के लिए हमेशा बीच के रास्ते की जरूरत होती है। हमें अपनी सृजनात्मक प्रतिभा को सिर्फ अभिजात वर्ग को ही समर्पित नहीं कर देना चाहिए बल्कि स्वयं भी अभिजात्य के अहंकार से मुक्त होकर विभिन्न माध्यमों से अपनी बात कहने के अवसर तलाश करने चाहिए। कमलेश्वर के कथा लेखन की बहुत बड़ी खूबी उसकी चित्रात्मकता है।कहीं-कहीं तो ऐसा लगता है जैसे वे स्वयं घटनाओं का चित्रांकन कर रहे हैं। उनकी कहानियां और लघु उपन्यास देखे जाएं तो वहां वातावरण का रेशा-रेशा इस तरह से प्रस्तुत किया जाता है कि पाठक के मस्तिष्क में एक समग्र चित्र अंकित हो जाता है। इस उनकी इस खासियत ने उन्हें सिनेमा के लेखन के लिए विशेष सफलता प्रदान करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। हिंदी के बहुत प्रसिद्ध कथाकार मार्कंडेय ने उन्हें स्मरण करते हुए लिखा है,"किस्सागोई की जो महारत उसकी कलम में थी, इस नई ज़मीन सिनेमा को पाकर फली-फूली। 'आंधी', 'रजनीगंधा',

बदनाम बस्ती','छोटी सी बात',' अमानुष',' मौसम' की पटकथाएं स्मरणीय रहेंगी।" इस प्रकार हम देखते हैं यह कमलेश्वर ने सिनेमा के मिज़ाज़ को समझ लिया था और जो उनकी जरूरत थी, उसके अनुरूप लेखन में उन्होंने महारत हासिल की।"10 बावजूद इसके उन्होंने कहीं भी जाकर समझौते नहीं किए। 1990 के बाद तो वे सिनेमा से लगभग विरक्त हो गए थे। कुछ फिल्मों को छोड़कर उन्होंने बाकी सारी फिल्मों से किनारा कर लिया था। अपने अंतिम समय में इंदिरा गांधी के जीवन पर बनने वाली एक फिल्म लिख रहे थे। यह उनकी बहुत ही महत्वाकांक्षी फिल्म थी। इसकी सारी की सारी कथा-पटकथा कमलेश्वर ने तैयार की थीं आज भी इसके निर्माता का यह मानना है कि यह फिल्म तो अंततः बनकर ही रहेगी। अब यह केवल इंदिरा गांधी जी के प्रति श्रद्धांजलि नहीं होगी बल्कि कमलेश्वर के लिए भी श्रद्धांजलि होगी। कमलेश्वर ने लगभग 100 फिल्मों के लेखन में सहयोग दिया। किसी फिल्म की कथा लिखी , किसी की पटकथा तो किसी के संवाद लिखे। उन्होंने आरंभ में समांतर सिनेमा के द्वारा ही हिंदी सिनेमा में प्रवेश किया। सातवें और आठवें दशक के नए फिल्मकारों के द्वारा जिन अर्थ युक्त फिल्मों का समय शुरू हुआ था, उसमें लेखक का प्रमुख स्थान था। हालांकि मसाला फिल्मों की दुनिया में उन्हें उपेक्षा की दृष्टि से देखा जाता था। फिल्म जगत की बड़ी-बड़ी हस्तियां इन फिल्मों को अपने लिए कोई खतरा नहीं मानती थीं। फिल्में सिर्फ आर्थिक व्यवधान के कारण रुकती थीं। स्वयं कमलेश्वर ने गिरीश रंजन द्वारा निर्देशित 'डाक बंगला' और प्रेम कपूर द्वारा निर्देशित 'बदनाम बस्ती' रुक-रुक करवाई। संभवतः इसी कारण वे बहुत प्रभावशाली न बन सकीं। कमलेश्वर को अपने सिनेमा से जुड़ाव के आरंभिक दौर में कोई विशेष सफलता प्राप्त नहीं हुई थी। उनके दोनों उपन्यासों पर महत्वपूर्ण फिल्मों का सृजन नहीं हो सका। उन्होंने 'सारा आकाश',' रजनीगंधा' और 'छोटी सी बात' के लिए जो कार्य किया था ,उस कार्य को रेखांकित नहीं किया गया। लेखक अच्छी तरह समझ चुके थे कि यदि सिनेमा की दुनिया में रहना है तो कला फिल्मों के मुंह से बाहर निकल कर हिंदी सिनेमा के मूल धारा में मिलना होगा । वे समझ चुके थे कि व्यावसायिक सिनेमा के पास साहित्य की कहानियों के फिल्मांकन की सूझबूझ नहीं है। इसके साथ ही शायद हिंदी में वह दर्शक वर्ग विकसित नहीं हुआ है जो ऐसी फिल्मों को आत्मसात कर उन्हें सफलता प्रदान कर सकें ताकि उसका निरंतर बना रहे। इसलिए कमलेश्वर ने सिनेमा के लिए सीधी और काव्यात्मक प्रवाह की कहानियां लिखीं। इनमें 'पति पत्नी और वो', तथा 'रंग बिरंगी' बहुत महत्वपूर्ण हैं। कमलेश्वर मानते थे कि सिनेमा साधारण जन का माध्यम है। इसे साहित्य के चश्मे से नहीं देखा जाना चाहिए। कमलेश्वर ने

हिंदी सिनेमा के उस मध्य मार्ग का अनुसरण किया जिस पर चलकर गुरुदत्त, व्ही शांताराम, विमल रॉय,राज कपूर जैसे फिल्मकारों ने बहुत ज्यादा सृजन किया था। उन्होंने ऋषिकेश और गुलजार के साथ मिलकर 'आंधी','मौसम' और 'रंग बिरंगी' का सृजन किया। 'आंधी' और 'मौसम' उनके उपन्यासों पर आधारित फिल्में थी और 'रंग बिरंगी' की कहानी उनके द्वारा लिखी गई थी, फिल्म 'पति पत्नी और वो ' का विस्तार थी। इस तरह से हम देखते हैं कि जिस सीक्वल बनाने की परंपरा का हिंदी सिनेमा में 21वीं सदी के आरंभ में हो सका,वह कमलेश्वर ने दो दशक पूर्व ही संभव करके दिखा दिया था। इसके बाद कमलेश्वर ने बी.आर.चोपड़ा ,शक्ति सामंत, विजय आनंद, सावन कुमार, टीनू आनंद, मनोज कुमार आदि फिल्मकारों की अनेकानेक फिल्मों के लिए काम किया और बहुत हद तक उन्हें सफलता भी प्राप्त हुई।कमलेश्वर ने जिन 99 फिल्मों के साथ जुड़कर काम किया उनमें से अनेक प्रदर्शित भी नहीं हो सकीं। कुछ की कहानियां उन्होंने लिखी पर वे निर्मित ही नहीं हो सकीं। प्रकाश मेहरा के लिए उन्होंने 'इंसान की औलाद',' सावन कुमार' के लिए 'प्रेमदान', चेतन आनंद के लिए 'शिखर' ,सुनील दत्त के लिए 'उठ जाग मुसाफिर', दिलीप कुमार के लिए 'काली सरसों' और 'हवा खातून' और राज कपूर के लिए 'नीली झील' ऐसी ही कुछ फिल्में जो लिखी तो गईं पर बन नहीं सकी या बनकर प्रदर्शित नहीं हो सकीं। इस तरह अमिताभ बच्चन के जीवन पर आधारित फिल्म 'शिखर' जिसे अजिताभ और जया बच्चन बनाना चाहते थे,वह भी निर्मित नहीं हो सकी। इस प्रकार कमलेश्वर द्वारा बहुत-सी ऐसी फिल्में लिखीं गयीं जो या तो असफल रहीं या निर्मित नहीं हो पाईं। कमलेश्वर द्वारा लिखी गई लगभग 60 फ़िल्में उपलब्ध हैं। इनमें से 'सारा आकाश',' रजनीगंधा',' आंधी', 'मौसम',' पति पत्नी और वो ' ,'आज का एमएलए राम अवतार', 'मिस्टर नटवरलाल', 'सौतन' तो सिल्वर जुबली मनाने वाली साबित हुई और इसी प्रकार 'अमानुष', 'साजन बिना सुहागन' ने भी गोल्डन जुबली का रिकॉर्ड बनाया। अतः हम देखते हैं कि सिनेमा में सफलता के औसत प्रतिशत से बहुत कहीं आगे जाकर उनका सिनेमाई लेखन व्यावसायिक रूप में भी सफल हुआ। कमलेश्वर के संदर्भ में बात करते हुए प्रख्यात साहित्यकार और पत्रकार हिमांशु जोशी लिखते हैं,"जब उन्हें बोलते देखा तो मैं ही नहीं वहां सभी लोग प्रभावित हुए बिना नहीं रहे।"11 कमलेश्वर कुछ अर्थों में साधारण बल्कि असाधारण भी थे। सुश्री पुष्पा भारती ने लिखा है,"पारिवारिक मूल्यों के आदर्शों के पर्याय सरीखे लगते थे कमलेश्वर। बच्चों के बीच में खुद बच्चा बन जाते थे । कमलेश्वर और उनका वह रूप मेरी यादों के चिरागों की सबसे बड़ी रोशनी है।"12 प्रसिद्ध कवयित्री पद्मा सचदेव जिन्होंने कमलेश्वर की फिल्मों के लिए बहुत अविस्मरणीय गीत भी लिखे हैं, वे कहती हैं कि ,"कमलेश्वर भाई साहब ने एक बार कहा,"पदमा , काला धन फिल्मों की बर्बादी का कारण बना।उसी से सब खुराफातें निकलीं। दारू,औरत, रातों की रंगीन पार्टियां, होठों की महफिल हैवहां से जो भी बातें निकलती है,उनमें अगरबत्ती की खुशबू नहीं होती,शराब की खुराफातों की बदबू होती है।"13 तो पद्मा जी ने बहुत ही सहजता से अपनी श्रद्धांजलि में उनके उस सत्य का उद्घाटन किया है जिसके कारण कमलेश्वर ने सिनेमा के लिए लेखन से दूरी बनाई। उन्होंने उस माध्यम की अवमानना नहीं की। उसके साथ बड़ी लंबी दूरी तक साथ निभाया और अभिव्यक्ति की गली जब बहुत संकीर्ण हो गई, तो उससे दूर जाना ही बेहतर समझा। उन्होंने अनेक लेखकों को सिने लेखन के लिए प्रोत्साहित भी किया और कहा कि जहां मैं असफल हो गया हूं, वहां तुम्हें सफलता अर्जित करनी है। अतः स्पष्ट है कि कमलेश्वर ने हिंदी फिल्म लेखन में रचनात्मकता की बारीकी हासिल की। उनके पटकथा लेखन को रविंद्र नाथ टैगोर के शिशिर कुमार भादवी, जो बंगाली व्यवसायिक मंच के सुप्रसिद्ध अभिनेता थे, उनके भाई मुरारी को 1929 में लिखे गए एक पत्र में सिनेमा पर की गई टिप्पणी के द्वारा अधिक स्पष्ट रूप से समझा जा सकता है,"कला के रूप प्रयुक्त माध्यमों के अनुसार बदल जाते हैं।मैं जानता हूं कि चलचित्र के बीच जिस नई कला के विकसित होने की अपेक्षा हो सकती है, वह अभी उदित नहीं हुई है।राजनीति में हम सदा के लिए सक्रिय हैं। कला में भी हमें वही करना चाहिए। उस दुनिया के भीतर जिसे वह रचती है ,अभिव्यक्ति की अपनी स्वतंत्र शैली प्राप्त करने की कोशिश करती है अन्यथा स्वयं हमें आत्मविश्वास की कमी के कारण इसकी आत्माभिव्यक्ति अप्रिय रह जाती है।" 14

इस प्रकार स्पष्ट है कि कमलेश्वर ने सिनेमा में कुछ व्यावसायिक और कुछ आत्मीयता के समझौते भले ही किए हों लेकिन उन्होंने कभी प्रामाणिकता से समझौता नहीं किया। "उन्होंने फिल्मों के संवाद लेखन में अपने स्वभाव को इस तरह से शामिल किया कि वे बहुत ही प्रभावशाली रूप में हमारे सामने आए।"15 उन्होंने संवादों में कभी लंबे भाषण नहीं लिखे। उनके संवाद अवसर व पात्रों के अनुकूल लिखे गए हैं। 'मौसम' में दृश्यों में जिस तरह उन्होंने मासूम सादगी घोल दी है इसी के साथ ही उनकी नोकझोंक को जितने सरल,स्पष्ट शब्द प्रदान किए हैं, वह कमलेश्वर का योगदान हो सकता है। " 'अमानुष' फिल्म में नायक के चरित्र में मानसिक द्वित्व को उन्होंने बखूबी उकेरा है इसलिए यह चरित्र दर्शकों को अभिभूत करने में सफल हुआ।"16 निश्चित रूप से कमलेश्वर का अवदान सिर्फ हिंदी सिनेमा में ही नहीं साहित्य, पत्रकारिता और टेलीविजन में भी महत्वपूर्ण है। वे सभी विधाओं के कर्ता थे,महारथी थे। हिंदी में नई कहानी और समांतर कहानी की शुरुआत कमलेश्वर से होती है। उनकी रचनाओं ने साहित्य को सामाजिक रूढ़ियों, पतनशील सामाजिक मूल्यों और विघटनकारी सांप्रदायिक सोच के विरुद्ध परिवर्तनकामी तेवर दिए।लेखन में उन्होंने अपनी दृष्टि को कायम रखा और स्वाधीनता की जो हीरक जयंती थी उसके अवसर पर पिछले 70 सालों में 75 महत्वपूर्ण व्यक्तियों का चयन साप्ताहिक आउटलुक द्वारा किया गया और उसमें पंडित जवाहरलाल नेहरु,जयप्रकाश नारायण, अटल बिहारी वाजपेयी,लता मंगेशकर,इंदिरा गांधी, कपिल देव, पंडित रविशंकर, विक्रम साराभाई, बिरजू महाराज उस्ताद बिस्मिल्लाह खान,राज कपूर, गुरुदत्त सत्यजीत रे, जेआरडी टाटा, अमिताभ बच्चन, राजीव गांधी आदि लोगों के साथ कमलेश्वर का नाम भी शामिल किया गया। निश्चित रूप से कमलेश्वर स्वतंत्रता के बाद के सबसे विशिष्ट व्यक्तित्वों में से एक हैं।

****

सन्दर्भ:

1)कस्बे का आदमी -कमलेश्वर ,भूमिका पृष्ठ 7.
2) नई कहानी की मूल संवेदना, डॉक्टर सुरेश सिन्हा, पृष्ठ 107.
3) कहानी:नई कहानी ,डॉ नामवर सिंह पृष्ठ 28.
4)कमलेश्वर की कहानी कला ,खगेंद्र ठाकुर परिकथा, वर्ष 2 अंक 8, मई जून 2007 पृष्ठ 23-24.
5)आंखों देखा पाकिस्तान, कमलेश्वर ,पृष्ठ 84. 6)प्रेमचंद को किसी आलोचक की जरूरत है ना मुझे, (कमलेश्वर से शशिभूषण द्विवेदी की बातचीत)नया ज्ञानोदय, फरवरी 2007 पृष्ठ 20.
7)कमलेश्वर,मार्कंडेय ,माध्यम ,हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, अप्रैल-जून 2007 ,पृष्ठ 10.
8) बनावट और बुनावट से दूर था उनका व्यक्तित्व-हिमांशु जोशी, परीकथा, वर्ष 2 अंक 8, मई-जून 2007,पृष्ठ 32.
9) यादों के चिराग,पुष्पा भारती, परिकथा, वर्ष 2 अंक 8,मई-जून 2007, पृष्ठ 102.
10)बनावट और बुनावट से दूर था उनका व्यक्तित्व-हिमांशु जोशी, परीकथा, वर्ष 2 अंक 8, मई-जून 2007,पृष्ठ 32.
11) कितने कमलेश्वर,पद्मा सचदेव,परिकथा, वर्ष 2 अंक 8, मई जून 2007, पृष्ठ 30.
12)यादों के चिराग,पुष्पा भारती, परिकथा, वर्ष 2 अंक 8,मई-जून 2007, पृष्ठ 102.
13)यादों के चिराग,पुष्पा भारती, परिकथा, वर्ष 2 अंक 8,मई-जून 2007, पृष्ठ 102.
14)साप्ताहिक आउटलुक ,20 अगस्त 2007, पृष्ठ 47.
15)कमलेश्वर जहां है वहां वही है,प्रो.कमला प्रसाद, माध्यम, हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, अप्रैल-जून 2007, पृष्ठ 14-15.
16)हिंदी मसाला फिल्मों को कोई बदल नहीं सकता, कमलेश्वर, प्रथम विहार,फिल्म महोत्सव 2006, स्मारिका-संपादक नरेन, पृष्ठ 46.

प्रेम की वेदी : एक अनुशीलन

मिन्नु जोसेफ
शोधार्थी हिन्दी विभाग
कोच्चिन विज्ञान व प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय-682022

शोध सार – प्रेम की वेदी प्रेमचन्द का तीसरा व अन्तिम नाटक है। यह नाटक उनकी अन्य रचनाओं की तुलना में बिल्कुल भिन्न शैली का परिचायक तथा एक नयी कथ्य ज़मीन का प्रस्तुतीकरण भी है। यह नाटक विवाह संस्था में स्त्री की गुलामी और और पुरुष के स्वामीभाव पर एक सपट चर्चा है। प्रेमचन्द के अन्य स्त्री केंद्रित रचनाओं की अपेक्षा प्रेम की वेदी स्त्री की अस्मिता और स्वत्व बोध पर चर्चा के नए वातावरणों को खुलते हैं। यह नाटक सर्जानात्मक क्षेत्र में प्रेमचन्द के प्रगतिशील परिवर्तन की उपज के रूप में कहा जा सकता है।

बीज शब्द – स्त्री अस्मिता, स्वतंत्रता, गुलामी, विवाह संस्था, स्वामी, धार्मिक अन्तर, परंपरा आदर्श, कर्तव्य, ढ़ोंग।

शोध आलेख -साहित्य को प्रेमचन्द ने उपयोगितावादी दृष्टि से देखा है। अपने समय और समाज के जीवन संघर्ष के अंतरंग-बहिरंग स्तरों के अभिव्यक्ति के लिए उन्होंने यथार्थवाद पर आश्रय लिया तो आदर्शवाद के सहारे इन जीवन यथार्थों के ऊपर उम्मिद के नये सपनों को सजाया। संपादक, साहित्यकार और आम जनता के पक्षधर होने के नाते उन्होंने अपने समय के प्रत्येक राजनीतिक-सामाजिक गतिविधियों की आलोचना प्रस्तुत की। पूर्ववर्त्ति युग से भिन्न उन्होंने नयी साहित्यिक परम्परा का सूत्रपात किया तथा हिन्दी कथा साहित्य को एक नया आलोक प्रदान किया। नवजागरण, आर्यसमाज, गाँधी दर्शन, समाजवाद तथा रूसी क्रान्ति ने प्रेमचन्द के वैचारिक दृष्टि को काफी प्रभावित किया और इस प्रभाव के चलते उनकी रचनाएँ नयी संवेदना के साथ जीवन के बदलते परिदृश्य की वाणी बनी। समाज के कठु यथार्थों को शब्दबद्ध करने के लिए उन्होंने उपन्यास और कहानी के साथ-साथ नाटक को भी अपना माध्यम बनाया। उपन्यास और कहानी साहित्यिक क्षेत्र में विशेष ख्याति व उपलब्दि प्राप्त करने के कारण उनके नाट्य साहित्य की ओर विशेष ध्यान नहीं गया। एक प्रकार से उनके नाटक साहित्यिक चर्चाओं से बाहर रहे या सालों तक उनके नाट्य कर्म उपेक्षित रहे।

प्रेमचन्द ने तीन नाटकों की रचना की। 'संग्राम' उनका पहला नाटक है। जिसका प्रकाशन काल 1923 ई है। संग्राम एक सामाजिक नाटक है। दूसरा नाटक 'कर्बला' (1924 ई) एक ऐतिहासिक धार्मिक नाटक है। ये दोनों नाटक एक ही संरचनात्मक शैली पर आधारित है। दोनों नाटक भावप्रधान है। मूल रूप से कथाकार होने के कारण उनके इन दोनों नाटक उपन्यास की शैली से मिलते-जुलते है। दोनों नाटकों में अंकों की संख्या अस्वाभाविक रूप से अधिक है। संग्राम के दस साल बाद 'प्रेम की वेदी' प्रकाशित हुई थी। इस दस साल के दौरान प्रेशैली, संरचना और वैचारिक दृष्टिकोण में काफी बदलाव हुआ। इसमें उन्होंने 'प्रेम की वेदी' के लिए एक सकारात्मक पृष्ठभूमि को तैयार किया है। प्रेम की वेदी ने उनके संपूर्ण साहित्यिक कृतियों से अलग एकदम नयी कथ्य भूमि का निर्माण किया है। यह नाटक तत्कालीन रचनाओं में वर्णित विषयों से अलग स्त्री जीवन के अन्छुए पक्षों को सामने रखते हैं।प्रेम की वेदी प्रेमचन्द का तीसरा नाटक है। उनकी अन्य नाटकों की तुलना में यह नाटक आकार में काफी छोटा है जिसमें केवल सात अंक है। प्रेमचन्द की अन्य रचनाओं की अपेक्षा इस नाटक में पात्रों की संख्या कुल पाँच है। इस नाटक को उनके प्रगतिशील शाहित्य के कोटि में गिने जा सकते है। नाटक में ऐसे कई विषयों पर चर्चा की गई है जो समकालीन समय में साहित्य के केंद्र में है। नाटक में स्त्री स्वतंत्रता, अस्मिता, सेक्स एडुकेशन की आवश्यकता, विवाह संस्था में पुरुष का मालिकाना और स्त्री का दासत्व, विवाह में धर्म और जाति के नाम होने वाले उलझन आदि विभिन्न विषय चर्चा के केंद्र में आते हैं। स्त्री जीवन पर आधारित प्रेमचन्द के महत्वपूर्ण रचनाओं के रूप में सेवासदन, निर्मला, कफन, गोदान आदि आते हैं। जिसप्रकार प्रेम की वेदी ने स्त्री जीवन के विभिन्न आयामों को अंकित किया है उसी प्रकार किसी अन्य रचना ने नहीं। इस एक मात्र नाटक में चर्चित विषयों के हिसाब से वे अपने युग से भी आगे है। मचन्द की रचना प्रेमचन्द ने उपर्युक्त नाटक के लिए एक ईसाई परिवार की लड़की जेनी को लिया है। जेनी मिसेज़ गार्ड़न की एक मात्र बेटी है। मिसेज़ गार्ड़न चार साल से विधवा है। जेनी आधुनिक विचार रखने वाली लड़की है जिसकी खुद की एक दृष्टि है। मिस जेनी को प्रेमचन्द ने पितृसत्तात्मक समाज के खिलाफ एक चुनौती के रूप में खड़ा किया है। जेनी अपने विचारों, तर्कों और सवालों के ज़रिए पितृसत्तात्मक समाज पर उँगली उठाती है। मिसेज़ गार्ड़न जेनी की शादी विलियम से कराना चाहती है। लेकिन जेनी शादी नही करना चाहती। शादी को वह गुलामी का पर्याय समझती है। "रानियाँ हैं, वह भी गुलाम हैं। मज़दूरिनें है. वह भी गुलाम हैं। मर्द की दुनिया वह है, जहाँ नाम है, धन है, सम्माने है। स्त्री की दुनिया वह है, जहाँ मर्द की जवाबदेही करनी पड़ती है।... अगर वह बगैर मर्द से पूछे कहीं चली गई, तो मर्द उसके खून का प्यासा हो गया।" पितृसत्तात्मक व्यवस्था में रानियों और मज़दूरिनों की स्थिति बेहद दयनीय है। शादी के बाद पति स्त्री का स्वामी या मालिक बनता है। यानि इस वर्चस्ववादी समाज में शादी के बाद स्त्री को एक आज्ञाकारी पत्नि के रूप में रहना पड़ रहा है। स्त्री को सम्मान देने के नाम पर पुरुष द्वारा किए जाने वाले उपचारों को जेनी दिखावे का शिष्टाचार कहती है। विवाह संस्था के पितृसत्तात्मक मानदंड़ों पर ऐसी करारी चोट बीसवीं शताब्दी के किसी भी रचना में नहीं मिलती। प्रेमचन्द ने यह स्पष्ट किया है कि शादी करने या न करने का विकल्प स्त्री के समने हैं। जेनी के जैसे हर स्त्री को खुद की ज़िन्दगी का मालिक बननी चाहिए।

बचपन से ही लड़कियों को तथाकथित समाज द्वारा निर्मित अनुशासनों की शिक्षा दी जाती है जैसे कि कैसे बैठना है, कैसे उठना है, कैसे खाना है, कैसे हँसना है आदि। लड़कियों से यही कहते है कि 'शादी के बाद तुम्हें किसी और के घर जाना है।' इसतरह छोटी उम्र से ही लड़कियों को यही सिखाया जाता है कि वह एक वस्तु है और उसका मालिक कोई और है। स्त्री अपनी अस्मिता और अस्तित्व बोध से दूर किसी और के इशारों पर जीने के लिए मजबूर हो जाती है। "पुरुष दिल में खूब समझता है कि उसने स्त्री की वह चीज़ छीन ली जिसकी पूर्ति में वह जितनी खातिरदारी करे, वह थोड़ी है। वह चीज़ स्त्री की आज़ादी है।" 1930-33 के आस-पास स्त्री के सम्बन्ध में कुछ सुधार की बातें हो रही थी। लेकिन वे सब बातें केवल पारिवारिक समस्याओं तक सीमित थी। साहित्य में इस तरह की चर्चा-परिचर्चा समकालीन साहित्य की देन है। लेकिन 90 साल पहले प्रेमचन्द ने इस बात का ज़िक्र किया था कि किस तरह स्त्री की आज़ादी विवाह संस्था के ज़रिए छीन ली जाती है।

जेनी एक शिक्षित, प्रगतिशील लड़की है जो अपनी दम पर कमाकर जीना चाहती है। वह जानती है कि आर्थिक स्वालम्बन के ज़रिए ही स्त्री स्वतंत्र हो सकती है। परिवार की आर्थिक तंगी के कारण मिसेज़ गार्ड़न जेनी की शादी विलियम से कराना चाहती है। विलियम और जेनी की विचारधारा में काफी अन्तर है। पत्नी के सम्बन्ध में विलियम की कामनाएँ जेनी को नौकरानी की याद दिलाती है। भारतीय संस्कृति के अनुसार पति परमेश्वर है। जेनी इस गुलामी को मानने के लिए उमा जेनी की सहेली है। योगराज के साथ उमा की शादी बहुत साल पहले हुई थी। उमा पति-प्रेम में मग्न, कर्तव्य पारायण, परंपरा के आदर्शों में जकड़ी हुई लड़की है। विवाह संस्था में व्रत, आत्म-समर्पण, मंगलसूत्र, सिंदूर टीका सहित निशानियाँ केवल स्त्रियों के लिए है। मंगलसूत्र जैसे आभूषणे स्त्री की गुलामी का प्रतीक नहीं है तो अब तक कोई पुरुष ये आभूषण क्यों नहीं धारण किए? "यह व्रत, यह कर्तव्य और यह आत्म-समर्पण एक तरफा क्यों है? तुम्हारे ही लिए क्यों इन चिह्नों

की ज़रूरत है? तुम्हारे पति के लिए क्यों ज़रूरी नहीं? जहाँ तक मेरा अनुभव है उसके हाथों में न चूड़ियाँ हैं, न कंगन है, न गले में हार है, न माथे पर सिंदूर का टीका है। यह क्यों? तुम्हें अपने व्रत पर स्थिर रखने के लिए बन्धन चाहिए, उसे बन्धन की ज़रूरत नहीं?" जेनी का यह सवाल वर्चस्ववादी समाज के खिलाफ संघर्ष की पहली पड़ाव है। जेनी की हिसाब से माथे का सिन्दूर, मंगलसूत्र, चूड़याँ यह सब स्त्री को बार-बार उसका कर्तव्य याद दिलाने के लिए समाज द्वारा स्थापित निशानियाँ है। जो उसे सदा याद दिलाते रहते है कि 'तुम गुलाम हो, वह आज़ाद है'।

'गबन' उपन्यास में प्रेमचन्द ने स्त्रियों की आभूषण प्रियता पर इस बात को स्पष्ट किया है कि बचपन से ही लड़कियों पर आभूषणों के प्रति विशेष लगाव उत्पन्न किए जाते है। स्त्री को उसकी स्वत्व बोध से दूर रखने के लिए ही आभूषणों की तरफ उसका ध्यान मोड़ दिया गया। जंजीरों की तरह आभूषण उसे घर और परिवार में बन्ध रखती है। "...लड़की बहुमूल्य सम्पत्ति समझी जाती थी।...कन्या विजेताओं के घर में कैद कर दी जाती थी। उसके हाथों में हथकड़ियाँ ड़ाल दी जाती थी, पैरों में बेड़ियाँ, गले में तौक और उस संग्राम के स्मृति स्वरूप उसके माथे पर रक्त का टीका लगा दिया जाता होगा, जिससे कन्या समझती रहे कि उसने कभी भागने का प्रयत्न किया, तो उसकी भी वही दशा होगी जो उसकी घर वालों की हुई है।" सदियों से स्त्री को यही उपदेश दिया जा रहा है कि पति ही तेरा स्वामी है, उसको प्रसन्न रखना तेरा कर्तव्य है। किसी और बात पर मन न बहल जाए इसलिए स्त्री को सिन्दूर टीका, मंगलसूत्र जैसे वैवाहिक निशानियाँ दी गई। नाटक के तृतीय दृश्य में सेक्स एडुकेशन की आवश्यकता पर बात की गई है। भारत में इसकी चर्चा 2019-20 के बीच उठ खड़ी हुई थी। लेकिन 90 वर्ष पहले प्रेमचन्द ने इसकी आवश्यकता को समझकर साहित्य के माध्यम से इस विषय को वाणी दी। आज भी लोग सेक्स एडुकेशन को एक खिनौनी बात समझते हैं। अबोध लड़कियाँ जाने-अनजाने में विवाह व्यवस्था में कूद पड़ती है। रमा भी ऐसी दशा से गुज़री थी। सालभर में उसकी दो गर्भ पात और तीसरा गर्भ भी हुआ। रमा को बस यही पता था कि पति के इच्छा के आगे सर झुकाना उसका कर्तव्य है। पति से न कहने से वह अप्रसन्न हो जाएँगे और यह एक भारतीय स्त्री का आदर्श कतई नहीं है। रमा उसी रास्ते से चलती है जो उसके पति दिखाते है। यह सब जानकर जेनी योगराज से प्रश्न करती है कि "अगर कोई आदमी तैरना न जानने पर भी दरिया में कूदे,तो यह किसका दोष है? जिसने घोड़े पर सवारी करना न सीखा हो, उसे क्या अधिकार है कि वह घोड़े दौड़ावे? उमा देवी बालिका थी।... इस विषय में न उसने कुछ पढ़ा है, न किसी से बात-चीत की। वह तो इतना ही जानती थी कि आप उसके स्वामी हैं, आपकी इच्छाओं के आगे सिर झुकाना उसका कर्तव्य है। उसे क्या मालूम था कि वह आपकी कामुकता के सामने सिर झुकाकर अपने लिए विष बो रही है।" इन बातों के ज़रिए जेनी भारतीय वैवाहिक संस्था की कमियों को पाठकों के सामने रख देती है।

उमा की मृत्यु के बाद जेनी और योगराज के बीच प्रेम पैदा होती है। जेनी अपनी उन्मुक्त विचारों से योगराज के स्वभाव में काफी बदलाव लाती है। जेनी के विचारों, तर्कों और सवालों से प्रभावित होकर योगराज उससे शादी करना चाहता है। लेकिन धार्मिक भेदभाव के कारण दोनों प्रेम बंधन में बाँध नहीं पाते। विवाह के लिए किए जाने वाले धर्म परिवर्तन को जेनी एक ढ़ोंग मात्र समझती है। जेनी कहती है "तुम्हारे ऊपर यह आक्षेप मैं न सुन सकती कि औरत के पीछे ईसाई हो गया और न शायद तुम मेरे ऊपर यह आक्षेप सुनना पसंद करोगे कि दौलत के पीछे एक आदमी केसाथ चली गई। मैं आज-कल की प्रथानुसर सुद्ध होकर तुम्हें उस आक्षेप से बचा सकती हूँ, लेकिन शुद्ध को मैं बिल्कुल ढ़ोंग समझती हूँ, मैं अपने स्वभाव से, अपने संस्कारों से, जो कुछ हूँ वही रहूँगी।"प्रेम की वेदी केवल एक प्रेम कहानी नहीं है। विधवा विवाह को एक बहुत बड़ी समस्या के रूप में देखने वाले भारतीय समाज के सामने प्रेमचन्द ने मिसेज़ गार्ड़न के माध्यम से एक प्रगतिशील कदम रखा है। नाटक के अंत में बूढ़ी विधवा मिसेज़ गर्ड़न युवक विलियम से शादी करती है। तथाकथित समाज के लिए यह विवाह एक बूढ़ी महिला की हवस होगी, लेकिन दोनों की यह कदम सदाचार और आदर्श का व्याख्यान करने वाले सामाजिक रूढ़यों के प्रति एक चुनौती है। मिसेज़ गार्ड़न समाज से सशंकित और भयभीत नहीं है। बीसवीं सदी की 'प्रेम की वेदी' में इक्किसवीं सदी की साहित्यिक छवी झलकती है। इतने प्रगतिशील विचारों के बावजूद भी नाटक के अंतिम भाग में जेनी का हिस्सा काफी प्रभावी नहीं बन पाया है। नाटक के द्वारा जेनी भारतीय स्त्रियों के जो चित्र उकेरते है, आज भी वह भारतीय स्त्रियों का सच है। स्त्री को सम्मान देने के नाम पर पुरुष द्वारा किए जाने वाले उपचारों को जेनी दिखावे का शिष्टाचार कहती है। विवाह संस्था और पितृसत्तात्मकता पर ऐसी करारी चोट बीसवीं सदी की अन्य रचनाओं में न के बराबर है। पुरुष का मालिकाना और स्त्री की गुलामी को लेकर जेनी अपनी सशक्त तर्कों को पाठकों के सामने रखते हैं। वह तथाकथित वर्चस्ववादी पितृसत्तात्मक मानसिकता को इसी तर्कों के सहारे सवालों के कटखरे में खड़ा करते हैं। सृजनात्मकता में ऐसा हिम्मत प्रेमचन्द के समकालीनों में अन्यत्र मिलती है।

****

सन्दर्भ ग्रन्थ सूचि-

1.सं. राम आनंद, प्रेमचन्द रचनावली, खण्ड-10, जनवाणी प्रकाशन, 1996, पृ. 372-373
2.सं. राम आनंद, प्रेमचन्द रचनावली, खण्ड-10, जनवाणी प्रकाशन, 1996, पृ. 373
3.सं. राम आनंद, प्रेमचन्द रचनावली, खण्ड-10, जनवाणी प्रकाशन, 1996, पृ. 373
4.सं. राम आनंद, प्रेमचन्द रचनावली, खण्ड-10, जनवाणी प्रकाशन, 1996, पृ. 375
5.सं. राम आनंद, प्रेमचन्द रचनावली, खण्ड-10, जनवाणी प्रकाशन, 1996, पृ. 376
6.सं. राम आनंद, प्रेमचन्द रचनावली, खण्ड-10, जनवाणी प्रकाशन, 1996, पृ. 389
7.सं. राम आनंद, प्रेमचन्द रचनावली, खण्ड-10, जनवाणी प्रकाशन, 1996, पृ. 404

ग्राम्य जीवन के विभिन्न पक्ष

डॉ.सुनील
एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष
हिन्दी-विभाग गुरु नानक देव विश्वविद्यालय,
अमृतसर-143005 (पंजाब)

पवन कुमारी
सहायक प्रोफेसर (हिन्दी)
हंसराज महिला महाविद्यालय, जालंधर

भारत की अधिकतर जनसंख्या गांव में निवास करती है। इसीलिए भारत एक कृषि प्रधान देश है। देश की लगभग 70% जनसंख्या कृषि पर निर्भर करती है। भारत संसार का प्रमुख कृषि पर आधारित देश है। हमारी संपूर्ण अर्थव्यवस्था का आधार वास्तव में खुशी ही है। जिस पर संपूर्ण भारत देश की प्रगति एवं विकास निर्भर करता है। साधारण मानव की दो प्रकार के वातावरण में परवरिश होती है- गांव और शहर। ग्रामीण जीवन प्राकृत है तथा इसका आधार परंपरा रूढ़ि और धर्म हैं। गांव शब्द सुनने में जितना सरल है इसे सही अर्थ में परिभाषित करना उतना ही कठिन भी है। गांव शब्द को परिभाषित करते हुए श्रीवास्तव लिखते हैं कि-

" एक ग्रामीण क्षेत्र वह है जहां लोग किसी प्राथमिक ,उद्योग में लगे हो, अर्थात प्रकृति के सहयोगसे वस्तुओं का प्रथम बार उत्पादन करते हों।''से वस्तुओं का प्रथम बार उत्पादन करते हो"[1]

डॉ आर .एन. सक्सेना लिखते हैं –

"गांव वह समुदाय है जहां एक सापेक्षिक समानता, औपचारिकता, प्राथमिक समूह की प्रधानता, जनसंख्या का कम घनत्व और कृषि ही मुख्य व्यवसाय हो"[2]

भारतीय जीवन का यथार्थ गांव में बिखरा पड़ा है। नगरों में तो उसका सीमित एवं कृत्रिम रूप ही प्राप्त होता है। ग्राम्य जीवन के यथार्थ की अभिव्यक्ति मुख्य रूप से प्रेमचंद के उपन्यासों में हुई थी। भारतीय ग्रामीण परिवेश विविधताओं का अद्भुत जंगल है। जहां राज्य से राज्य और जिले से जिले के गांव में भी प्राय एकरूपता नहीं मिलती, देश की तो बात ही ओर है। उनकी रीति - नीतियां, उनकी परंपराएं और मान्यताएं, उनके रहन- सहन, उनके आचार- विचार, उनकी रोजी-रोटी कमाने के तौर तरीके आदि सभी कुछ तो भिन्न है कहीं जीविका अर्जन के लिए वहां के साधारण आदमी को खेतों में हल चलाना पड़ता है, तो कहीं तीर कमानों का खेल जान हथेली पर लेकर खेलना पड़ता है, कहीं समुंद्र और नदियों में जाल बिछाने पड़ते हैं तो कहीं जंगलों को काटना पड़ता है, कहीं मालिकों की फटकार सुननी पड़ती है तो कहीं शासन के अत्याचारों का शिकार बनना पड़ता है। इस प्रकार ग्राम्य जीवन की विविधता में एकता मिलती है लेकिन ग्राम्य जीवन की समग्र पहचान के लिए हमें इन सब जटिलताओं से जूझना होगा तथा विभिन्नतयो के रहस्यों को खोलना होगा। ग्राम्य जीवन के विभिन्न पक्ष है जिनके आधार पर हम ग्राम्य जीवन का अध्ययन कर सकते हैं

ग्राम्य जीवन का राजनीतिक पक्ष-राजनीतिक चेतना ग्राम्य परिवेश की वह क्रियाशील मानसिकता है जो राजनीति से प्रेरित एवं परिचालित होती है। गांव के विषय में यह मूल धारणा है कि वह सहज और सरल होते हैं। राजनीति से उन्हें कोई सरोकार नहीं होता वही शहर राजनीति के अखाड़े होते हैं परंतु आज यह बात सत्य नहीं है। भारत के गांव एवं अंतर्राष्ट्रीय पटल पर विभिन्न देशों की ग्रामीण जनता इसका स्पष्ट उदाहरण है यदि हम अपने ही गांव की राजनीतिक चेतना को देखें तो हमारा स्वतंत्रता संग्राम इसका सबसे बड़ा उदाहरण हैं, जिसमें गांव और शहर वालों ने कंधे से कंधा मिलाकर स्वतंत्रता की लड़ाई लड़ी। यह अलग बात है कि स्वतंत्रता से पहले हमारे गांव का वर्तमान स्वरूप ऐसा नहीं था। स्वतंत्रता के बाद गांव में राजनीतिक चेतना की लहर पंचायती राज, व्यस्क मताधिकार, संविधान के धर्मनिरपेक्ष लोकतंत्रात्मक स्वरूप आदि विभिन्न राजनीतिक कार्यों से आई। आज ग्रामीण भी अपने अधिकारों को जानते हैं उनके प्रति जागरूक हैं। किसान सभा ,मछुआ सभा आदि विभिन्न प्रकार के संगठन देश के दूर गांव में भी बन रहे हैं जो अपने अधिकारों के प्रति निरंतर संघर्षशील हैं

श्री ए.एन. देसाई का मत उचित है-

" **वास्तव में ग्रामीण कृषकों के मध्य उत्पन्न राजनीतिक जागरूकता और उनके दिनोंदिन बढ़ते हुए राजनीतिक क्रियाकलाप आज के मानवीय राजनीतिक जीवन के महत्वपूर्ण पहलू हैं"**प्राय : , ग्राम और राजनीति को दो विभिन्न दिशाओं के दो अलग-अलग सीमांत माने जाते है। यह एक धारणा सी बन गई है। स्वतंत्रता प्राप्ति के लंबे संघर्ष में भी ग्रामीणों ने एक मुख्य भूमिका निभाई है, जिसके साक्षी हमारा साहित्य एवं इतिहास दोनों हैं । विश्व की ओर यदि दृष्टिपात करें तो भी फ्रांस, युगोस्लाविया, पोलैंड, हंगरी और अन्य विकासशील राष्ट्रों की ग्रामीण जनता के उदाहरण हैं। वर्तमान समय में स्पेन, इटली, लैट्रिन अमेरिकी अधिकारी देशों की ग्रामीण जनता ने विभिन्न मामलों के उठने पर आंदोलनों के माध्यम से अपनी राजनीतिक जागरूकता का परिचय दिया है। स्वतंत्रता के पूर्व ही यदि हम अपने राष्ट्रीय वातावरण को देखें तो असहयोग आंदोलन, सामाजिक बहिष्कार आंदोलन,विभिन्न सत्याग्रह तथा भारत छोड़ो आंदोलन आदि ऐसे अनेक राष्ट्रीय मुक्ति संघर्ष के कार्यक्रम थे जिन्हें ग्रामीणों ने अपनी यथाशक्ति सहायता देकर अधिक गतिशील बनाया । इस प्रकार राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय दोनों स्तरों पर ग्रामीणों की राजनीतिक जागरूकता हमें दिखाई देती हैं। राजनीति की समझदारी एवं ज्ञान का स्रोत राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय धरातल पर घटने वाले विभिन्न घटनाएं होती हैं जिनसे वह अपना निष्कर्ष निकाला करते हैं। भारतीय ग्राम जीवन को सबसे अधिक प्रभावित एवं प्रचलित करने वाली उनकी मानसिकता पनपने वाली घटनाएं हमारी राष्ट्रीय स्वतंत्रता का विकास कार्य है इस स्वतंत्रता प्राप्ति और संघर्ष ने हिंदी उपन्यास साहित्य को भी विशाल कथानक दिया है। ग्राम्य जीवन पर लिखे विभिन्न उपन्यासों में स्वतंत्रता के इस संघर्ष को बड़ी गहराई से वर्णित किया गया है । जिससे ग्रामीण जनता की राजनीतिक साझेदारी का पता चलता है। स्वतंत्रता से पहले 'बलचनमा' नागार्जुन के उपन्यास के अभागे बलचनमा ने, जिसके मां और बापू उसे धरती पर छोड़ स्वर्ग सिधार गए थे जमींदारों के हाथों अनन्य करो की जातना सही, उसने भी एक स्वपन देखा था ,उसने भी अपनी कल्पना में आजादी का सुख अनुभव किया था ।जिसका विवरण हमें उनके कथन में ही प्राप्त होता है ।]नागार्जुन के भी एक अन्य उपन्यास 'वरुण के बेटे' भी इसी राजनीतिक व्यवस्था को चित्रित करता है। रामदरश मिश्र के उपन्यास 'जल टूटता हुआ' के पात्र मास्टर सुगन तिवारी भी ऐसे ही एक ओर पात्र हैं जिन्होंने स्वतंत्रता प्राप्ति को बड़ी आशा भरी दृष्टि से देखा था। राजनीतिक स्वतंत्रता के प्रति विभिन्न आशाओं- आकांक्षाओं को देख गांव के जनमानस का जहां पता चलता है वहां एक ओर बात इसी से संबंध है ,वह है उनके विभिन्न पर्यटन ,जिनके माध्यम से उन्होंने स्वतंत्रता के संघर्ष में अपना योगदान दिया। राजनीति ने विभिन्न संदर्भों में ग्रामीण जीवन में प्रवेश पाया । स्वतंत्रयोत्तर ग्रामीण प्रवेश में स्वतंत्रता प्राप्ति ही वस्तुतः वहां की राजनीतिक चेतना का मूल उत्स है विभिन्न प्रकार की गतिविधियां इसी के प्रभाव का परिणाम है। यही वह बिंदु है जिसने ग्राम्य जीवन में

राजनीतिक चेतना को स्वर एवं गति प्रदान की जिन्होंने हमारे साहित्यकारों को चिंतन की नवीन दिशाएं एवं लेखन के लिए नवीन विषय -वस्तु प्रदान की। सब इसी की देन है विज्ञान की सहायता से संचार साधनों की पहुंच गांव तक हो गई है। आज टेलिफोन, तार, रेडियो, टेलिविजन, रेल, जहाज, अखबार आज विभिन्न संपर्क संचार साधन उपलब्ध हैं जिनकी छाया गांव पर भी पड़ रही है।

ग्राम्य जीवन का सामाजिक पक्ष-ग्राम्य जीवन की सामाजिक क्रियाशील मानसिकता ग्रामीण जीवन का सामाजिक पक्ष है आज का ग्रामीण समाज परिवर्तित एवं अपरिवर्तित आधुनिक और परंपरागत बोध से ग्रस्त स्थिति में है। भौतिकता के स्वर वहां के जीवन में और पारस्परिक संबंधों में घुसपैठ कर रहे हैं और गांव का समाज और उसका व्यक्ति आदर्श और यथार्थ के द्वंद का दर्द अनुभव कर रहा है। यह सच है कि गांव पहले की अपेक्षा आर्थिक दृष्टि से कुछ समृद्ध हुए हैं किंतु सामाजिक स्तर पर हीन और विघटित हुए हैं। सामाजिक स्तर पर गांव में जहां एक और नई बौद्धिक चेतना आई है, वही अंधविश्वास और रूढ़ियाँ भी जरा जरा से अपने पैर पसार बैठे हैं। संयुक्त परिवार टूट रहे हैं और गांव के व्यक्ति शहरों की ओर आकर्षित हो रहे हैं।शहरी मूल्य गांव की ओर दौड़ रहे हैं। दया, ममता, ईमानदारी गांव के किसी कोने में शेष नहीं है। झठ और फरेब गांव की आत्मा को नष्ट करते जा रहे हैं । गांव का सामाजिक जीवन वास्तव में अपनी आंतरिकता से टूट रहा है। और उसी टूटन को सामाजिक ग्राम चेतना के परिपेक्ष्य में देखते हुए गांव के समयक परिवर्तन पर डॉ रामदरश मिश्र ने लिखा है-

"गांव का स्वरूप भी बहुत कुछ बदल गया है वहां के मानव जीवन में, शहरी जीवन का संक्रमण हो रहा है। परंपरा और प्रकृति ,अंधविश्वास और विज्ञान ,स्वार्थ लिप्सा और सरलता का संघर्ष गांव की जीवन स्थिति को नई भंगिमा प्रदान कर रहा है"[4]

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी आंचलिक उपन्यासों में सामाजिक ग्राम चेतना को बड़ी गहराई से देखा जा सकता है। ग्रामीण परिवेश के विभिन्न वर्गों की सामाजिक नीतियों एवं मूल्यों में विभिन्न प्रकार से परिवर्तन हो रहे हैं और सामाजिक जीवन का हर पक्ष इस संक्रमण में फंसा हुआ है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में परस्पर विरोधी मूल्य एक दूसरे से टकराकर टूट रहे हैं और कहीं तोड़ रहे हैं । हिंदी के ग्राम्य जीवन परक उपन्यासकारों ने अपनी कृतियों में अपने अनुभव तथा अंतर संबंधों की व्याख्या समाजिक परिपेक्ष्य में प्रस्तुत करते हुए इसे यथार्थ धरातल पर प्रस्तुत करने का प्रयास भी किया है। परिवर्तन प्रकृति का शाश्वत नियम है। मानव जीवन और मूल्य दोनों ही इसकी प्रभाव व्याप्ति के क्षेत्र हैं क्या नगर और क्या गांव कोई भी इससे अछूता नहीं रहा है। मानव समाज का हर रूप निरंतर परिवर्तित होता रहता है। फणीश्वर नाथ रेणु के 'मैला आंचल' उपन्यास में सामाजिक परिपेक्ष्य में आए परिवर्तनों ने ग्राम्य जीवन की मूल्यवत्ता को हिला कर रख दिया है। शहरी मूल्य गांव में प्रविष्ट हो रहे हैं समाज में रहकर भी व्यक्ति अकेलापन अनुभव करता है, नैतिकता टूट रही है, ईमानदारी और सत्य के बदले बेईमानी और झठ गांव में प्रवेश कर रहा है। संत्रास कुंठाए , घुटन धीरे-धीरे ग्रामीण जीवन को प्रभावित कर रही है। भौतिकता जीवन की सामूहिक ताकत और गांव के एक संयुक्त परिवारों को विघटित कर रही है। जीवन की सामाजिक इकाई का व्यक्तित्व खंडित हो रहा है, प्रेम और सौहार्द, वैमनस्य और शत्रुता में बदल गए हैं। आज सामाजिक स्तर पर गांव में भी काफी परिवर्तन आ गया है। **ग्राम्य जीवन का आर्थिक पक्ष -** स्वाधीनता प्राप्ति के बाद भारतीय गांव पहले की अपेक्षा आज अधिक समृद्ध हुए हैं। किंतु उस समृद्धि के प्रति संतोष के स्थान पर असंतोष बढा है। लोगों को पराधीनता की अवस्था में प्रशासक के प्रति इतनी शिकायत नहीं थी जितनी स्वतंत्रता की अवस्था में देश के शासकों से होती है अंग्रेजों ने देश की आर्थिक स्थिति को खोखला कर दिया था, लोग खोखलेपन दुष्परिणामों को झेलते हुए यह समझ रहे थे कि प्राचीनता की अवस्था में तो यह सब होना ही है किंतु स्वतंत्रता के बाद भारत के लोगों ने आर्थिक समानता के स्थान पर जो आर्थिक विषमता प्राप्त की उससे उनका क्रोध शासकों के प्रति बढ़ गया। आज गांव के लोगों में असंतोष और विद्रोह का भाव अधिक है। इस प्रकार उनमें आर्थिक चेतना का विकास हुआ है। ग्राम का आर्थिक जीवन जो पहले से कुछ बदला नहीं है इसके मूल में जहां अन्य कारण है वहां उसकी मांगों में भी आशातीत वृद्धि हुई है। आजीविका का प्रश्न आज गांव में वहां की मानसिकता को झकझोरने वाला प्रश्न है देश के विकास के लिए आज पंचवर्षीय योजनाएं समाप्त हो चुकी हैं लेकिन गांव आर्थिक दृष्टि से वही खड़े हैं जहां पचीस वर्ष पहले थे पंचवर्षीय योजनाएं, सामुदायिक विकास योजनाएं, कृषि सुधार संबंधी योजनाएं, कुटीर उद्योग, जमींदारी उन्मूलन जैसे अनेक विकास कार्यक्रम आज सरकारी स्तर पर चल रहे हैं लेकिन आर्थिक विषमताओं की दरियां घटने के स्थान पर बढ़ रही है। बेकारी, निर्धनता जैसे आर्थिक दुर्भाग्य समेटने में नहीं आ रहे हैं। ग्राम का जनजीवन टूट रहा है। गांव जीविका की तलाश में शहरों में आ रहे हैं जमीदार गांव में आज भी विभिन्न रूपों में जिंदा है और छोटे मजदूर एवं निम्न वर्ग का शोषण कर रहे हैं। वैज्ञानिकता ने जहां बड़े किसानों में उत्साह पैदा किया है। वहां छोटे मजदूर मन ही मन कोसते हैं क्योंकि वह बेकार बना दिए गए हैं। देश के गांव में निर्धन और बेकारों की भीड़ पैदा हो रही है जो ग्राम मानस की आर्थिक चेतना को प्रभावित कर रही है। गांव की आर्थिक स्थिति बड़ी ही अनिश्चित सी है और उसके सामने समस्याएं, आवश्यकता और अभावों की भीड़ खड़ी है। आधुनिक जीवन में पर्याप्त जटिलताएं बढ़ती जा रही हैं व्यक्ति चारों ओर से आर्थिक दबावों, अनुभव एवं विविध विसंगतियों के बीच से यात्रा पूर्ण यात्रा तय कर रहा है देश की अर्थव्यवस्था विभिन्न मुश्किलों से गुजरती हुई राष्ट्रीय विकास की ओर गतिशील है। संतुलित अर्थव्यवस्था राष्ट्रीय जीवन का प्रमुख आधार होती है। ग्राम विकास राष्ट्रीय निर्माण का अत्यंत आवश्यक पहलू है । स्वाधीनता प्राप्त होते ही राष्ट्रीय निर्माण की पंचवर्षीय योजनाओं में यथासंभव गांव और उनकी विसंगतियों को सामने रखा गया यह अलग बात है कि सदियों से जर्जर इस ग्राम जीवन के अभाव आज विशेष हैं ग्राम विकास से तात्पर्य ग्राम्य जीवन की उन तमाम राहों के विविध प्रकार की भौतिक प्रगति से है जो वहां के लोगों को नहीं वेचारिक चेतना प्रदान करें इसी पर चेस्टर बोल ने कहा है कि-

" ग्राम विकास से मेरा अभिप्राय केवल कृषि संबंधी विस्तार से नहीं है, अपितु लघु उद्योगों, विद्यालयों, प्रशिक्षण केंद्रों, उन्नत संचार साधनों, ग्रामों में बिजली लगाने, सार्वजनिक स्वास्थ्य, जनसंख्या नियमन केंद्रों की वृद्धि से और यहां तक कि ग्रामीण सांस्कृतिक चेतना को जगाने से भी है"[5]

हमारे गांव परंपरावादी हैं और उनकी परंपरा ही उन्हें विकास कार्यों की ओर बढ़ने से रोकती हैं। अशिक्षा इसका मूल कारण है शैक्षणिक चेतना का प्रसार अभी पूरी तरह नहीं हो पाया है फिर भी आज ग्रामीण परिवेश निरंतर सामाजिक परिवर्तन की ओर अग्रसर है। चाहे आज ग्रामीण विकास हेतु अनेक कार्य हो चुके हैं परंतु फिर भी आज भी गांव में जागृति की आवश्यकता है गांव की आर्थिक स्थिति में सुधार लाने के लिए आज भी अनेक प्रयत्न करने की आवश्यकता है आज भी अनेकानेक कई ऐसी समस्याएं हैं जिनका सामना गांव के लोगों को करना पड़ रहा है आज गांव में आर्थिक स्थिति निम्न होने के कारण लोग शहरों की तरफ भाग रहे हैं और गांव खाली होते जा रहे हैं जबकि गांव भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता का एक अमूल्य भाग है इसलिए गांव की सभ्यता एवं संस्कृति को बचाए रखने के लिए उन्हें आर्थिक दृष्टि से मजबूत करना अति आवश्यक है।

ग्राम्य जीवन का धार्मिक एवं सांस्कृतिक पक्ष - ग्राम्य जीवन के विभिन्न पक्षों में धार्मिक एवं सांस्कृतिक मान्यताओं, विभिन्न उत्सवों, त्योहारों, धर्म के परिवर्तित आयामों की गतिशील मानसिकता आती है ग्रामीण परिवेश में धर्म और संस्कृति के बीच कोई स्पष्ट विभाजक रेखा नहीं खींची जा सकती हैं धार्मिक एवं सांस्कृतिक मूल्यगत विशेषता अधिक मात्रा में गांव में ही उपलब्ध है। नगरों में यह विशेषताएं कम मात्रा में देखी जा सकती है भारत के छोटे बड़े नगरों में आज पश्चिमी सभ्यता की आंधी चल रही है पश्चिमीकरण की आंधी ने गांव में भी कोई कमी नहीं रखी है गांव के मठ मंदिरों में बैठे महंत और पुजारी शहरी आधुनिकता को ओर जा रहे हैं डॉ सुरेश सिन्हा ने कहां है-

" **आधुनिकता की विडंबना यह है कि इसने हमें दोहरे व्यक्तित्व दे दिए है घर पर हम घोर धार्मिक, परंपरावादी और नैतिकता वादी एवं रूढ होते हैं पर घर के बाहर हम प्रगतिशील होने, नारी की स्वतंत्रता का पक्षपाती होने और अछूतों के साथ समानता स्थापित करने की हवाई बातें करते हैं"**[6]

गांव की सामूहिक भावना लगभग नष्ट होती जा रही है व्यक्ति आज भरे गांव में अकेला रह गया है ना उसके साथ कोई सच्चा हमदर्द है और ना साथ देने वाला कोई साथी. जीवन आधुनिकता धर्म के व्यापार राजनीति से नियंत्रित होने लगे हैं । राजनीतिकता का प्रभाव मंदिरों, मठों, तीर्थ स्थान वाली सभी जगह पहुंच गया है. दुरभावनाओं का विष गांव की धरती पर भी फैल रहा है । गांव में शिक्षा के प्रसार में और भी तिक्तता पैदा की है और गांव की भूमि संघर्ष का स्थल बन गई है। परंतु परंपरावादी संस्कृति को जीवित रखे हुए हैं वहां आधुनिक दृष्टि वाले पढ़े-लिखे ग्रामीण धार्मिक सांस्कृतिक कार्य को व्यर्थ की पोंगा पंथी कहते हैं ग्रामीण समाज रूढ़िवादी धार्मिक मान्यताओं के मानने वालों तथा धर्मनिरपेक्ष जनतांत्रिक ने रुचि वाले व्यक्तियों के संघर्ष का क्षेत्र बन गया है इस प्रकार ग्राम्य जीवन नव विषयों में विशिष्ट सांस्कृतिक भंगिमा लिए हैं। धर्म शक्ति भी है और विश्वास है । इसकी धारणा अमूर्त एवं अति प्राचीन है मनुष्य जन्म से लेकर मृत्यु पर्यंत जीवन के विविध चौपालों में धार्मिक मान्यताओं को एक आवश्यकता के रूप में मानता आया है। ग्रामीण धर्म आज परिवर्तन की प्रक्रिया में है। विज्ञान और शिक्षा तथा परिवर्तित सामाजिक व्यवस्था के कारण ग्रामीणों के दृष्टिकोण एवं मनोभावों में परिवर्तन हो रहा है धर्म की केंद्रीय सत्ता पर विज्ञान ने अधिकार कर लिया है।

भारतीय संस्कृति का मूल एवं उसका सच्चा समूह ग्राम्य जीवन में ही मिलता है ग्राम्य जीवन के बुनियादी गहराइयों के आधार को जाने बिना इस विशाल भारत के विविध रूप और उसकी आंतरिक एकता को नहीं समझा जा सकता। हमारी संस्कृति का मूल स्रोत कृषि है हमारा संपूर्ण सांस्कृतिक प्रसार कृषि और ग्राम जीवन में ही पर्याप्त है संस्कृति ही वे आधार है जिसके माध्यम से व्यक्ति ज्ञान कला नैतिकता प्रथाएं एवं परंपराएं सीखता है। संस्कृति एक सामाजिक विरासत है भारतीय कृषक का समस्त जीवन ग्रामीण संस्कृति से अनुप्राणित है ग्रामीण कला, पर्व ,त्यौहार, संस्कार ।दूरियां, प्रथाएं ,रीति-रिवाज ,खेलकूद आदि विभिन्न अवयवों के योग से ही स्वतंत्र्योत्तर ग्रामीण भारत में सांस्कृतिक परिवर्तनों की गति बढ़ी है हिंदी उपन्यासों में भारतीय संस्कृति की उन समस्त प्रभाव रेखाओं को उजागर करने का प्रयत्न किया गया है जो आज हमें ग्राम्य जीवन की समस्त संभावनाओं से परिचित कराती है।

निष्कर्ष रूप से ग्राम्य जीवन के विविध पक्ष इसकी अनंत विशिष्टाओं को समेटे हुएँ हैं । भारतीय संस्कृति का जीवंत रूप आज हमें गांव में ही प्राप्त होता है हमारे जीवन की बुनियादी गहराईयां शहरों में ना होकर गांव में ही दृष्टिगत होती है आज प्राचीन और नवीन मान्यताओं में संघर्ष चल रहा है और इन दोनों के समन्वय से नई संस्कृति का उदय हो रहा है जिसमें वैज्ञानिकता और परंपरावादी दोनों का मेल हो रहा है युगीन प्रभावों की परिणति से ग्राम जीवन नए आकाश प्राप्त कर रहा है.

****

संदर्भ ग्रथ सूची –

1. एम.एल.गुप्ता एवं डी.डी.शर्मा , समाजशास्त्र ,पृष्ठ- 153,
2. डॉ आर.एन.सक्सेना , समाजशास्त्र , पृष्ठ – 194
3. डॉक्टर ज्ञानचंद गुप्ता, स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यास और ग्राम चेतना, पृष्ठ –19
4. डॉक्टर ज्ञानचंद गुप्ता, स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यास और ग्राम चेतना, पृष्ठ -20
5. डॉक्टर ज्ञानचंद गुप्ता, स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यास और ग्राम चेतना, पृष्ठ -22
6. डॉक्टर ज्ञानचंद गुप्ता, स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यास और ग्राम चेतना, पृष्ठ 149
7. सहायक पुस्तक सूची
8. एम.एल.गुप्ता एवं डी.डी.शर्मा , समाजशास्त्र , तृतीय संस्कारण ,साहित्य भवन :आगरा
9. डॉ आर.एन.सक्सेना , समाजशास्त्र , छठा संशोधन एवं विस्तृत संस्कारण ,हिंदुस्तान बुक हाउस।
10. डॉक्टर ज्ञानचंद गुप्ता, स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यास और ग्राम चेतना,प्रथम संस्करण - 1974,अभिनव प्रकाशन
11. डॉक्टर ज्ञानचंद गुप्ता, स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यास और ग्राम चेतना, पप्रथम संस्करण - 1974,अभिनव प्रकाशन
12. डॉक्टर ज्ञानचंद गुप्ता, स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यास और ग्राम चेतना ,प्रथम संस्करण - 1974,अभिनव प्रकाशन
13. डॉक्टर ज्ञानचंद गुप्ता, स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यास और ग्राम चेतन ,प्रथम संस्करण - 1974,अभिनव प्रकाशन

बदलते हुए राजनीतिक परिदृश्य : 'एक हत्या की हत्या' नाटक के संदर्भ में

चिप्पी एम. आर.
शोधार्थी, हिंदी विभाग
कोच्चिन विज्ञान व प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय- 682022

राजनीति शब्द की उत्पत्ति संस्कृत के 'राज' और 'नीति' शब्दों के योग से हुई है। इसका तात्पर्य राज्य के संयक संचालन से है। राजनीति शब्द अंग्रेज़ी शब्द 'पोलिटिक्स' का समानार्थी शब्द है। अंग्रेज़ी शब्द 'पोलिटिक्स' (Politics) की व्युत्पत्ति युनानी शब्द 'पोलिस' से माना जाता है जिसका अर्थ नगर राज्य है। मुकुन्दीलाल श्रीवास्तव के अनुसार "राजनीति वह नीति है जो राज्य की रक्षा और शासन द्वारा किसी राज्य को दृढ़ करने का उपाय बताती है।" राजनीति शब्द का अर्थ है – लोकतांत्रिक व्यवस्था के संचालन के लिये बनाये गए समता, न्याय और विवेक पर आधारित विधि – विधान। 'नीति' शब्द कल्याणकारी मूल्यों का द्योतक है। प्राचीन भारत में राजनीति केलिए राजधर्म शब्द का भी प्रयोग होता रहा । राजनीति या राजधर्म को लोक धर्म का पर्याय मानते हुए भारतीय मनीषियों ने मानवीय बौद्धिक एवं नैतिक धरातल पर कल्याणकारी राज्य की आधारशिला रखी है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व और उसके बाद की राजनीतिक चेतना में बहुत अन्तर आ गया है। स्वतंत्रता आँदोलन के दौरान राजनीति सेवा का क्षेत्र रहा था। देश हित केलिए देश को एकत्रित करना स्वतंत्रता पूर्व के राजनीतिज्ञों का लक्ष्य था। राजनीतिज्ञ एक आदर्श देश का निर्माण चाहते थे। वे कुछ आदर्शों से जुड़े हुए थे। स्वतंत्रता के बाद ये स्वप्न टूटने लगे। भारतीय जन मानस में निराशा छाने लगी। "स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद देश का विभाजन, गांधीजी की हत्या, सांप्रदायिक वैमनस्य, जातिगत विद्वेष, प्रांतीय विवाद, भाषागत संघर्ष, क्षेत्रीय और जातीय दलों के उदय, बड़े राजनीतिक दलों का विघटन, बढ़ते आतंकवाद, बड़े-बड़े घोटाले और भ्रष्टाचार जैसी घटनाओं और कारणों ने राजनीतिक अस्थिरता और संक्रमण को बढ़ावा दिया।" स्वातंत्र्योत्तर भारत में राजनीतिक क्षेत्र से सेवा भाव धीरे-धीरे गायब होने लगा, वह पेशे का रूप धारण करने लगा। राजनीतिक नेताओं के चरित्र में भी स्वतंत्रतापूर्व की तुलना में स्वातंत्र्योत्तर समय में काफी परिवर्तन हुआ। राजनीति और राजनीतिज्ञों के लिए भाई-भतीजावाद, छल-कपट आदि आदर्श बनने लगे। डॉ.चन्द्रशेखर के अनुसार "राजनैतिक परिदृश्य में निरंकुश सत्ता और उसके दागी, दारोगाओं तथा टुच्चे दलालों ने (जनता) को न केवल उसके मौलिक अधिकारों से ही वंचित किया है प्रस्तुत उसकी मानवीय स्थिति को ही स्थगित कर डाला।" विद्वानों का मानना है कि आज राजनीति करना एक मुहावरा बन गया है। इसका अर्थ है षड्यंत्र करना।

किसी भी देश की राजनीति देश के समाज से जुड़ी रहती है। देश के जनजीवन के साथ राजनीति घुल मिल गयी है। देश की जनता के कल्याण और एक स्वस्थ समाज का निर्माण ही राजनीति का परम लक्ष्य होना चाहिए। लेकिन पथभ्रष्ट राजनीति के कारण वर्तमान भारतीय समाज भ्रष्टाचार, अराजकता, आतंकवाद, सांप्रदायिकता, भाई-भतीजावाद आदि से गुज़र रहा है। आजकल राजनीति अपने लक्ष्य से कोसों दूर पहुँच गयी है। आज राजनीति का लक्ष्य मात्र अधिकार है। राजनीतिज्ञ अपनी और अपनों की जेब भरने के लिए जो नीतियँ बनाते हैं वही आज राजनीति का अर्थ बन गया है। "स्वातंत्र्योत्तर भारत की राजनीतिक गतिविधियों में इतनी तीव्रता से परिवर्तन हुआ कि उसका स्वरूप ही बदल गया। सत्ता की लोलुपता ने नए भ्रष्ट नेताओं को जन्म दिया जिनसे राजनीतिक माहौल गंदगी का जमघट होकर प्रदूषित हो गई। भ्रष्ट राजनीति राजनीतिज्ञों केलिए एक ऐसा हथकंडा बन गया जिससे वह सरलता में अपनी स्वार्थ सिद्धि कर सकता था।" आज राजनीति को कुछ लोगों के स्वार्थ की पूर्ति के माध्यम में परिवर्तित किया गया है। राजनीतिज्ञ जनतंत्र के नाम पर चुनाव के नाम पर जनता का ही शोषण कर रहे हैं। इससे अवगत होने पर भी जनता जागती नहीं कहीं अपनी छोटी सुविधा और कहीं स्वार्थ के कारण प्रतिक्रिया हीन हो गयी है।

समकालीन समय में राजनीति एक अभिशाप बन गयी है। नाटककारों द्वारा राजनीति के बदलते चेहरे और राजनीतिक विद्रूपताओं को नाटकों में उभारा गया है। भ्रष्ट, सत्तालोलुप, स्वार्थ राजनीतिज्ञों और राजनीतिक दलों का चित्रण भी इन नाटककारों ने किया है। विनोद शाही एक ऐसा नाटककार है जिन्होंने अपने नाटकों में युगीन यथार्थ का चित्रण किए हैं। इसके साथ-साथ उन्होंने राजनीति के जनविरोधी कार्यकलापों का भी पर्दाफाश किए हैं। आज की क्रूर व्यवस्था और भ्रष्ट शासन व्यवस्था का चित्रण भी उन्होंने अपनी रचनाओं में किया है। देश की राजनीति जब एक मज़ाक में तब्दील हो गयी तो उन्होंने इस पर व्यंग्य भी किए हैं।

स्वातंत्र्योत्तर भारतीय सामाजिक, राजनीतिक वातावरण खासकर पंजाब की स्थितियों से प्रेरित हो कर उन्होंने नाटक लिखना शुरू किया था। युगीन राजनीतिक विड़म्बनाओं का चित्रण उन्होंने अपने नाटकों के ज़रिए किया है। ब्लू स्टार ओपरेशन के दौरान पंजाब में कर्फ्यू लगाया गया था। पंजाब के भिन्न-भिन्न भागों में हत्याएँ, अपहरण, दंगे, लूट-पाट घटित होते थे। इसके आधार पर उन्होंने अपना पहला नाटक लिखा था 'झूठ पुराण'। इस नाटक के ज़रिए पंजाब में व्याप्त आतंकवाद, दंगे और विभाजन का यथार्थ चित्र उन्होंने प्रस्तुत किया है। आज भ्रष्ट राजनीति जन कल्याण और जन हित से कोसों दूर है। व्यक्ति हित और स्वार्थ ही आधुनिक मनुष्य का लक्ष्य बन गया है। नेता लोग अपने हितों की रक्षा केलिए जनहित का नज़रअंदाज़ करते हैं। वर्तमान राजनीति और राजनीतिज्ञ का, खासकर उनके नैतिक पतन का खुलासा उन्होंने अपने नाटक 'पंचम वेद' के ज़रिए किया है। स्वतंत्रता के पूर्व राजनीतिक नेता कुछ आदर्शों के, उसूलों के आधार पर कार्य करते थे, जीते थे। आज के नेता आदर्श एवं नैतिकता से कोसों दूर खड़े हैं। नेता राजनीति को एक व्यवसाय के रूप में मानते हैं। ज़्यादा-से-ज़्यादा पैसा कमाने के चक्कर में कई नेता अपने उसूलों का दाव पर लगाते हैं। वे राजनीति को एक जुआ ही समझते हैं। इसका चित्रण उन्होंने अपने नाटक 'एक हत्या की हत्या' में किया है। विनोद शाही के अन्य नाटकों में राजनीतिक गिरावट का खुलासा किया गया है। आज की स्वार्थ नीति का चित्रण भी उनके नाटकों की विशेषता है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद के राजनीतिक परिवर्तनों को खासकर पंजाब में जो राजनीतिक परिवर्तन हुए उसका चित्रण उन्होंने अपने नाटकों की ज़रिए किया है। धर्म, पैसा, शराब आदि का इस्तेमाल कर के लोगों को खरीदने की जो मानसिकता नेताओं की है, उस पर भी उन्होंने अपने नाटकों के ज़रिए टिप्पणी की है।

एक आदर्श नेता का दायित्व है जनता के हितों का ख्याल रखना। आदर्श नेता जनता को सच्छंद जीवन जीने की सुविधाएँ उपलब्ध कराता है। लेकिन नाटककार ने इस नाटक में इन आदर्शों से विमुख नेता प्रकाशेन्द्र का चित्रण किया है। अपने रास्ते के कांटा समझकर प्रकाशेन्द्र मज़दूर नेता गतिबोध को हटाने का निश्चय करते हैं। वह अपने दोस्तों से कहता है कि " कुछ समझ नहीं आता,एक अकेला आदमी,जिसके पास न पैसा है न घर हमारे लिए इतनी बड़ी समस्या कैसे बन गया है ? कैसे बे-परवाह होकर झोंपड़-पट्टियों और गलियों में घटिया लोगों की वकालत करने निकल पड़ा है ? छोटी-मोटी नंग धंड़ग भेड़-बकरियाँ मानती है,उसकी बातें। उसकी ये ऊल-जुलूस बातें एक बड़े खतरे की तरफ इशारा कर रही है। मुझे उसकी आंधी को रोकना

होगा। रोकना होगा। .....मैं कुछ सोचता हूँ। आप दोनों भी अपने अपने तौर पर कुछ करे.....।" सत्ता की भूख के आगे आदर्शों को भूलनेवाले नेताओं का खुलासा भी नाटककार ने प्रस्तुत नाटक में किया है ।गतिबोध की हत्या कराने के बाद उसका आरोप विरोधी दल के नेता पर थोंपने की कोशिश भी प्रकाशेन्द्र करते हैं। यह विरोधी पार्टी के नेता गतिबोध का दोस्त भी है। इस प्रकार विरोधी पार्टी के नेता पर आरोप लगाकर उन्हें दोषी स्थापित कर के उससे फायदा उठाने की कोशिश वह करता है। अपने फायते के लिए किसी भी हद तक गिरने केलिए तैयार नेताओं का चित्रण नाटककार ने किया है।

समकालीन समय में भारत में राजनीतिक दलों की संख्या बहुत अधिक है। राजनीतिक नेताओं की संख्या भी हज़ारों हैं। लेकिन जनता के जीवन में ज़्यादा सुधार अभी तक नहीं आया है। नेता अपनी सत्ता और आर्थिक सुरक्षा को बनाए रखने के लिए छल-कपट करते हैं। झूठे आश्वासनों और वादों से लोगों को एक तात्कालिक सांत्वना प्रदान करते हैं।'एक हत्या की हत्या' नाटक में नाटककार ने राजनीतिज्ञों की घिनौनी हरकतों का चित्रण किया है। नाटक का पात्र नेता प्रकाशेन्द्र समझौता के बहाने मज़दूर नेता गतिबोध को जुआखाने में बुलाते हैं। अपने दोस्तों और प्यादे के साथ मिलकर धोखे से उसकी हत्या करते हैं। बाद में प्रकाशेन्द्र सरकार के खिलाफ खड़ा होने के लिए तैयार हो कर कहता है कि "मैं अकेला क्या कर सकता हूँ। मुझे गृहमंत्रालय के साथ यह मसला उठाना चाहिए। हम कल से गृहमंत्रालय के खिलाफ हड़ताल करेंगे। जब तक वो हत्यारों को पकड़ नहीं लेता, हड़ताल रहेगी स्कूलों में, कालिजों में,दफ्तरों में, घरों में।" प्रकाशेन्द्र अपने फायदे के लिए सरकार का ही नहीं साधारण जनता का भी इस्तेमाल करते हैं। वह गतिबोध की मृत्यु का फायदा उठाना चाहता है। वह अपने एक प्यादे से कहता है कि "..... इस मुल्क में आज बड़े आदमी मरते हैं। पर तुम्हारी बातों से लगता है कि उसकी हत्या का अपने फायदे के लिए ज़रूर इस्तेमाल किया जा सकता है। उसके प्रति जनता की सहानुभूति को मुझे अपनी तरफ मोड़ लेना होगा। ...अब उसकी हत्या का चश्मदीद गवाह तो कोई था नहीं, इसलिए उसकी असली हत्या की आसानी से हत्या की जा सकती है।" मात्र प्रकाशेन्द्र ही नहीं विरोधी दल भी एक प्रकार से गतिबोध की मृत्यु का फायदा उठाता है। एक प्यादा दूसरे प्यादों से कहता है कि "ओपोज़ीशन पार्टी वालों ने एक नयी चाल चली है। मुआवजे की रकम उन्होंने अपने फण्ड में से निकाल कर मरे हुए मज़दूर की औरत के पास भेज दी है। वे कहते हैं कि मरने से पहले गतिबोध ओपोजीशन के लीडर से मिला था और उसे सारी रकम देकर कहा था कि मेरे बाद मज़दूरों के हितों की रक्षा तुम्ही को करनी है। बजट के मामले में उसे नेता जी की पार्टी से निकाल दिया गया था। इस लिए अब वो गतिबोध का मामला उछाल कर नेता जी से बदला लेना चाहता है।" नेता छल कपट के सहारे अपने अधिकार को बनाए रखने के लिए कोशिश करते रहते हैं।

राजनीति में चापलूसी की परंपरा रही है। अपने फायदे केलिए दूसरों की तारीफ करने की प्रवृत्ति लोग हमेशा करते आए हैं। पुराने समय में राजा को खुश कर के कवि और अन्य दरबारी लोग धन और पद प्राप्त करते थे। लोकतांत्रिक व्यवस्था में भी इस प्रवृत्ति में खास तौर पर कोई परिवर्त्तन नहीं आया है। आजकल सत्ताधारियों की ही नहीं बल्कि सत्ताधारी लोग साधारण जनता का भी चाटूकारिता करते हैं। सत्ताधारी आपस में खुशामद करते रहते हैं। इस प्रकार ज़िन्दादिली करनेवालों को ही कई तरह के फायदे मिलते हैं। राजनीतिक नेताओं को खुश कर के ही आजकल साधारण जनता से लेकर पूँजीपति तक अपने कार्य पूरा करवाते हैं। ज़्यादातर उन्हें खुश करने केलिए रिश्वत ही देना पड़ता है। राजनीतिज्ञ पूँजीपतियों की तरफदारी करते रहते हैं। राजनीतिज्ञों को चुनाव के समय प्रचार केलिए जो पैसा चाहिए अक्सर पूँजीपति उन्हें देते हैं। राजनीतिज्ञ भी बदले में अवैध तौर पर उनकी मदद करते हैं। अक्सर नीतियों और योजनाओं को पूँजीपति के हितानुसार बनाते हैं। पूँजीपतियों के करोड़ों रुपए के ऋण भी माफ कर देते हैं। सरकारी बजट भी पूँजीपतियों के हितानुसार तैयार करते हैं। इस समस्या का खुलासा करते हुए नाटक का पात्र गतिबोध कहता है कि "जब सरकारी बजट खरीदना होता है, तो हाथों में लाखों रुपए उठाए घूमते हो और आज किसी की जान गई है, तो बस पांच सात हज़ार ..... पता नहरं यह सब देख कर मुझे रावण के मायावी मृग की याद क्यों आती है ? वह बजट तुम्हारे लिए कस्तूरी है, जो तुम्हारी नाभि में छिपा हुआ तुम्हें सुनहरी मृगों में बदलता जा रही है .....।" पूँजीपतियों का कल्याण ही नेताओं का लक्ष्य है। जन कल्याण केलिए बनाई गई कई योजनाएँ इस प्रकार कुछ लोगों के कल्याण केलिए खासकर पूँजीपतियों केलिए ही होती हैं। साधारण जनता हमेशा इन कूट नीतियों से अनभिज्ञ रहती है। नेता साधारण अनपढ़ लोगों की अज्ञता का फायदा उठाकर उनके नाम पर सारी योजनाओं से लाभ उठाते हैं।

राजनीतिज्ञ का जनता के साथ सीधा और गहरा रिश्ता होना ज़रूरी है। जनता के साथ रहकर उनसे एक अच्छा रिश्ता बनाकर ही राजनीतिज्ञ जनकल्याणकारी योजनाएँ बनाने में समर्थ होंगे। लेकिन आजकल राजनीतिज्ञ एक ऐसा रिश्ता बनाना नहीं चाहता है। नेता पूँजीपतियों से रिश्ता बनाना चाहते हैं और यह रिश्ता इसलिए बनाना चाहता है कि दोनों वर्गों के बीच आपसी लेन देन हो सके। यह रिश्ता और आपसी लेन देन को विनोद शाही ने अपने नाटक 'एक हत्या की हत्या' में प्रस्तुत किया है। नाटक में राजनीतिक नेता और पूँजीपति जुआखाने में आपसी लेन देन के बारे में बात करते हैं।

" प्रकाशेन्द्र : तो फिर चलो। तेरी मिल की आउट ऑफ दि वे जा कर दिलवाए गए सारे कोटों का ध्यान रखते हुए, ये ब्लाइं चाल।

रजत : हूँ ..... मेरे इम्पोर्टिड़ कारों पर फोक्ट में किए गए तेरे सभी सेर सपाटों का ध्यान रखते हुए, ये मेरी ब्लाइंड़ चाल।"

अपने प्रतिद्वंद्वी को हमेशा केलिए खतम करने की प्रवृत्ति भी वर्तमान राजनीति में देख सकते हैं। आजकल राजनीतिक दल दूसरे दलों के विचार धाराओं से नहीं लड़ते बल्कि नेताओं से लड़ते हैं। किसी एक दल के नेताओं के विचारों एवं कर्मों से दूसरे दल के नेता खुश नहीं है तो उसे मार डालते हैं। इसके लिए पूँजीपतियों की सहायता लेती है। राजनीति में व्याप्त इस प्रकार की हिंसक वृत्ति का चित्रण भी नाटककार ने इस नाटक में किया है। नाटक में नेता प्रकाशेन्द्र पूँजीपति रजत के साथ मिलकर दोनों के शत्रु गतिबोध की हत्या करते हैं। रजत को अपने हितानुसार चलाने केलिए गतिबोध को मारना ज़रूरी था। इसके बारे में रजत पत्रकार मानिनी से कहता है कि "हम दोनों ने तो बड़ी कोशिस की थी। मैं ने तो उसकी हत्या पर सोने की कितनी ही पर्तें भी चाढ़ा दी थीं, पर हमारी कोशिशों लौट कर आखिर हमीं पर बूमरेंग करने चली आई ..... ।" इस प्रकार नाटककार ने पूँजीपति और नेता के संबन्ध को चित्रित किया है। पूँजीपतियों के तरफदारी को महत्व देनेवाले भ्रष्ट नेताओं की मूल्यहीनता को भी प्रस्तुत करने का प्रयास नाटककारों ने किया है। पत्रकारिता को लोकतंत्र का चौथा स्तंभ माना जाता है। दुनिया के कोने-कोने में पल-प्रतिपल घटित होनेवाले घटनाओं को पूरी ईमानदारी के साथ प्रस्तुत करना पत्रकारिता का दायित्व है। कहते हैं कि जनकल्याण या लोकमंगल की भावना पत्रकारिता का लक्ष्य है। समाज में घटित होनेवाले प्रत्येक घटना को निष्पक्ष रूप में प्रस्तुत करना पत्रकार का दायित्व है। पत्रकारिता का एक महत्वपूर्ण दायित्व यह भी है कि वह शासन व्यवस्था और साधारण जनता के बीच एक सेतु का कार्य करें। सरकारी नीतियों और कल्याणकारी योजनाओं को जनता तक पहुँचाना भी पत्रकारिता का कार्य है। इसके साथ-साथ साधारण जनता की समस्याओं को सरकार तक पहुँचाना भी पत्रकारिता का दायित्व है। ध्यान देने की बात यह है कि स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद

पत्रकारिता एक व्यवसाय बनती जा रही है। पत्रकार अपने दायित्व और उद्देश्यों से दूर चले गए हैं। भ्रष्ट वातावरण ने खासकर भ्रष्ट राजनीति ने पत्रकारिता को भ्रष्ट बनाया है। वर्तमान समय में प्रत्येक राजनीतिक दल खुद का अखबार निकाल रहे हैं। इन अखबारों के ज़रिए राजनीतिक दल अपने विचारधाराओं का प्रचार कर रहे हैं। अपनी गलतियों की तरफदारी करने केलिए इन अखबारों का इस्तेमाल करते हैं। राजनीतिक दल एक दूसरे के ऊपर कीचड़ फेंकने केलिए भी समाचार पत्र का इस्तेमाल कर रहे हैं। पत्रकार अपने कर्तव्य को भूल कर धन के प्रति लालची हो गए हैं। विनोद शाही भ्रष्ट पत्राचार तथा पत्रकार और राजनीति के अंतर्संबन्ध को नाटक में प्रस्तुत किया है। नाटक में नेता प्राकाशेन्द्र पत्रकार मानिनी के बारे में कहता है कि " और मेरे एक इशारा करते ही जिसे पल भर में ही योग्य मान लिया गया, जिसे डिप्लोमा पूरा करने से पहले ही पत्रकार की नौकरी दिलवा दी गयी और जो हमारी सोहब में रहने भर से खबर पर खबर पड़ने में माहिर मानी जाने लगी .....।" राजनीतिज्ञ अपनी स्वार्थ पूर्ति केलिए पत्रकारिता को भी एक हथियार बनाते हैं। इस केलिए अयोग्य को योग्य बनाते हैं।

पत्रकार नेताओं केलिए उनके इच्छानुसार खबर बनाते हैं। समाचार पत्र का नाम तो 'दैनिक धर्माधर्म' है लेकिन अधर्म ही करते रहते हैं। राजनीतिज्ञ अपने द्वारा किए जानेवाले कुकर्म को धर्म के रूप में प्रस्तुत करना ही चाहते हैं। पत्रकार भी इस स्थिति का फायदा उठाते हैं। पैसे के बदले शासकों के इच्छानुसार खबर तैयार करते हैं। सच को झूठ और झूठ को सच स्थापित करने में आज के पत्रकार माहिर हैं। ईमानदार मज़दूर नेता गतिबोध को एक लालची और अत्याचारी चित्रित करते हुए पत्रकार मानिनी खबर तैयार करती है। विनोद शाही ने अपने इस नाटकों में पत्रकार और राजनीतिज्ञों के संबन्ध का नकाब उतारा है। विनोद शाही ने युगीन विड़म्बनाओं को अपने नाटक का मुख्य विषय बनाया है। एक जागरूक नाटककार होने के कारण उन्होंने राजनैतिक क्षेत्र में मौजूद लगभग सभी समस्याओं को 'एक हत्या की हत्या' नाटक के ज़रिए उभारा है। उन्होंने स्वातंत्र्योत्तर भारत में राजनीति के बदलते स्वरूप को पैनी दृष्टि से आंका है और इस नाटक के ज़रिए प्रस्तुत किया है। राजनीतिक मूल्यहीनता का पर्दाफाश इस नाटक की प्रमुख विशेषता है। समकालीन दौर में राजनीति का अर्थ भ्रष्ट नीति बन गयी है। राजनीति के क्षेत्र में अनैतिकता बढ़ती जा रही है। वाकपटु नेता झूठे आश्वासन और वादों से लोगों को फँसाते हैं। इन सभी मुद्दों को उन्होंने इस नाटक में बखूबी से चित्रित किया है।

****

संदर्भ

1. मुकुंदीलाल श्रीवास्तव(सं),ज्ञान मंड़ल लिमिटेड़,ज्ञान शब्दकोश,2013,पृ.682
2. ज्योतिरीश्वर मिश्र,स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटक-मूल्य संक्रमण,लोकभारती प्रकाशन,2007,पृ.72
3. डॉ.चन्द्रशेखर,दो रंगकर्मी हस्ताक्षर,आत्माराम एण्ड सन्ज़,1987,पृ.14
4. डॉ.सुधीर वाघ,समकालीन हिन्दी नाटकों में राजनीतिक व्यंग्य,विकास प्रकाशन,2009,पृ.234
5. विनोद शाही,एक हत्या की हत्या,यायावर नाट्य संस्थान,1988,पृ.18
6. विनोद शाही,एक हत्या की हत्या,यायावर नाट्य संस्थान,1988,पृ.42
7. विनोद शाही,एक हत्या की हत्या,यायावर नाट्य संस्थान,1988,पृ.37-38
8. विनोद शाही,एक हत्या की हत्या,यायावर नाट्य संस्थान,1988,पृ.50
9. विनोद शाही,एक हत्या की हत्या,यायावर नाट्य संस्थान,1988,पृ.27
10. विनोद शाही,एक हत्या की हत्या,यायावर नाट्य संस्थान,1988,पृ.13
11. विनोद शाही,एक हत्या की हत्या,यायावर नाट्य संस्थान,1988,पृ.59
12. विनोद शाही,एक हत्या की हत्या,यायावर नाट्य संस्थान,1988,पृ.13

हिन्दी पत्रकारिता के बदलते स्वरूप

कनक राज पाठक
शोधार्थी
जनजातीय एवं क्षेत्रीय भाषा विभाग
रांची विश्वविद्यालय, रांची, झारखण्ड

बीज शब्द - हिन्दी पत्रकारिता, हिन्दी मुद्रण, पत्रकारिता-मनोरंजन, पत्रकारिता का लक्ष्य

प्रस्तावना -भारत में पत्रकारिता का श्रेय महर्षि नारद मुनि को जाता है। देवत्वकाल में नारद मुनि ने धरती लोक, पाताल और स्वर्ग लोक के बीच संवाद स्थापित किया। नारद मुनि समूचे विश्व का समाचार देवतागणों को सुनाया करते थे। इसके बाद महाभारतकालीन संवाद स्थापित किया संजय ने। महाभारत की लड़ाई का आंखों देखा हाल धृतराष्ट्र को संजय ही सुनाया करते थे। इसके बाद राजाओं और महाराजाओं के काल में शिलालेख, भोज पत्रों पर लेख, मुनादी सहित अन्य जनमाध्यमों से लोगों के बीच सूचनाओं का प्रसार किया जाता था। वैश्विक मानकों के बराबर भारत में हिन्दी पत्रकारिता का श्रीगणेश उदंत मार्तंड से माना जाता है। यह साप्ताहिक प्रकाशन था और विशुद्ध हिन्दी में इसका प्रकाशन पंडित जुगल किशोर शुक्ल करते थे। भारत में पत्रकारिता के उद्भव काल में अखबारों, पत्रिकाओं का मुख्य उद्देश्य था ब्रितानी हुकूमत के खिलाफ जनमत तैयार करना। अकबर इलाहाबादी ने यहां तक कहा है कि "खींचो न कमानों को न तलवार निकालो, जब तोप मुकाबिल हो तो अखबार निकालो"। राष्ट्रीय नवीन मेल के पत्रकार वेद प्रकाश वाजपेयी जी ने कहा था कि "सूरज निकले या न निकले लेकिन अखबार को निकलना होगा"।

उद्देश्य-"वर्तमान परिदृश्य में हिंदी और पत्रकारिता" विषय का मुख्य उद्देश्य है हिन्दी पत्रकारिता के भूत, वर्तमान और भविष्य की जानकारी हासिल करना। हिन्दी पत्रकारिता का प्रादुर्भाव किन उद्देश्यों और मिशन के साथ हुआ और यह कैसे विकसित हुआ और भविष्य में इसकी क्या क्या संभावनाएं हैं। प्रस्तुत शोध आलेख में इन्हीं बातों का उल्लेख किया गया है।

"वर्तमान परिदृश्य में हिंदी और पत्रकारिता"-सन 1826 से लेकर 1884 तक का समय हिंदी पत्रकारिता का उद्भव काल है। साल 1826 में 30 मई को पंडित जुगल किशोर शुक्ल ने हिंदी पत्रकारिता की शुरुआत की थी। कलकत्ता से उदन्त मार्तंड नामक समाचार पत्र निकाल कर भारत में हिंदी पत्रकारिता का श्रीगणेश किया। जिसमें उदंत का अर्थ समाचार होता है, जबकि मार्तंड का अर्थ सूर्य है। सूर्य की किरणों की तरह ही इस समाचार पत्र ने अपने विचारों को भारतीय जनमानस तक पहुंचाया है। उदंत मार्तंड हिन्दी और हिन्दवासियों का सच्चा हितैषी था। हिन्दुस्तानियों के हित के लिए यह अखबार सबसे पहले चलाया गया। इसके संपादक जुगल किशोर ने लिखा था "हिन्दी भाषा अपनी निज भाषा में समाचार पढ़कर उसका आनंद लें और इसके महत्व को समझें" यही जुगल जी की हार्दिक कामना और पत्र प्रकाशन का सर्वोच्च लक्ष्य भी था। उल्लेखनीय है कि उतंद मार्तंड भारतवर्ष में हिन्दी का पहला साप्ताहिक समाचार पत्र था। हालांकि यह समाचार पत्र डेढ़ वर्ष तक ही चल पाया। भारत में पत्रकारिता का उदभव काल निष्पक्षता और राष्ट्रवाद से ओतप्रोत था। उदाहरण के तौर पर हम भारत के स्वतंत्रता आंदोलन को गति देने में अखबारों का प्रयोग, जनजागरण और क्रांतिकारी घटनाओं में देख सकते हैं। ब्रितानी हुकूमत के द्वारा भारतीयों की अभिव्यक्ति की आजादी पर तमाम प्रतिबंध लगाने के बावजूद शंखनाद, रणभेरी, हिंदोस्थान, हरिश्चंद्र मैगजीन, बाल बोधिनी, हिंदी प्रदीप, सरस्वती, प्रताप जैसे राष्ट्रवादी समाचार पत्र निकलते रहे और जन जन की आवाज बनते रहे। आर्थिक, शारीरिक, दण्डात्मतक

कार्रवाइयों के बाद भी उस समय के निर्भीक पत्रकारों ने राष्ट्रवाद, देशभक्ति और क्रांति के स्वर से सम्पकृत कर राष्ट्र के नव निर्माण का मार्ग प्रशस्त किया। लाख कठिनाइयों के बाद भी ऐसे देशभक्त पत्रकारों ने आज़ादी के जन जागरण रास्ता नहीं छोड़ा और माँ भारती की सेवा के लिए अपने प्राणों तक की आहुति दे दी।भारत में स्वतंत्रता के बाद हिन्दी पत्रकारिता में महत्वपूर्ण और उल्लेखनीय प्रगति हुई है। सन् 1971 तक हमारे देश में अंग्रेजी समाचार पत्रों का वर्चस्व था, लेकिन इसके अलगे वर्ष हिन्दी पत्रकारिता ने अपनी गति इतनी तीव्र कर ली कि अंग्रेजी के सभी समाचार पत्रों की प्रसार संख्या से आगे निकल कर हिन्दी समाचार पत्रों ने सर्वोच्च स्थान प्राप्त कर लिया। वर्तमान में स्थिति यह है कि सभी भारतीय भाषाओं से आगे निकल कर हिन्दी समाचार पत्रों ने सभी समाचार पत्रों से आगे निकल गए। इस समय देश का ऐसा कोई भी प्रदेश नहीं है जहां से हिन्दी के समाचार पत्र और पत्रिकाएं नहीं निकलती हों।

सन् 1974 में भारत में सर्वाधिक समाचार पत्र और पत्रिकाएं हिन्दी में ही छपते थे। हिन्दी में जहां 3200 समाचार पत्र और पत्रिकाएं छपती थी वहीं अंग्रेजी की संख्या 2453 थी। वर्ष 1971 में प्रेस रजिस्ट्रार की रिपोर्ट के अनुसार विगत दो वर्षों में हिन्दी के पत्रों की बिक्री लगभग दो लाख से अधिक बढ़ी। सन् 1971 में हिन्दी के 422, अंग्रेजी 143 और उर्दू के 107 समाचार पत्र छपते थे। प्रेस इन इंडिया की रिपोर्ट के अनुसार वर्ष 2005-06 में अन्य भाषाओं की तुलना में हिन्दी के समाचार पत्रों ने बढ़त बनाए रखा। हिन्दी में 4131 समाचार पत्र और पत्रिकाओं का प्रकाशन हो रहा है जबकि अंग्रेजी में 864, बांग्ला में 445, गुजराती 775, उर्दू में 463 और मराठी में 328 समाचार पत्रों का प्रकाशन हो रहा है।

भारतीय भाषाओं में सबसे पहले तमिल भाषा के टाइप बनाए गए। नागरी लिपि के टाइप सबसे पहले यूरोप में बने। भारत में सबसे पहले 1778 ई. में पहली बार बांग्ला भाषा का व्याकरण छपा। उसके बाद सन 1779 देवनागरी लिपि में सबसे पहली पुस्तक छपी हिन्दुस्तानी भाषा का व्याकरण, इसे गिलक्राइस्ट ने छपवाया था। 195 साल पूर्व हिंदी पत्रकारिता के सफर पर नजर डाला जाए तो समाज और राष्ट्र में बदलाव के साथ-साथ पत्रकारिता ने ही अपने तेवर और कलेवर बदले हैं। आज हिंदी अखबारों को उद्योग का दर्जा प्राप्त है, जिसमे लाखों पत्रकार रोजगार पा रहे हैं। पत्रकारिता इतना मुखर हुई है कि आमजनों की आवाज बन कर उभरी है। शोषण और उत्पीड़न के विरुद्ध आवाज उठाने के लिए लोग आज भी मीडिया का ही सहारा लेते हैं। जवाबदेह पत्रकारिता लोकतांत्रिक समाज की मज़बूती के लिए आवश्यक है।

हिंदी पत्रकारिता का प्रिंट से मोबाइल तक का सफर-हिंदी पत्रकारिता का सफर कागजी दुनिया से होते हुए आकाशवाणी और फिर टेलीविजन के दौर तक पहुंचा। सुनने और देखने जैसी सुविधाओं के कारण समाचार और मनोरंजन का माध्यम अशिक्षित और कम पढ़े लिखे लोगों तक अपनी जगह बनाने में कामयाब हुआ। कम मेहनत में आमलोगों तक अपनी बात पहुंचाने में सफल हुआ है। टीवी और रेडियो के बाद अब मोबाइल ने यह स्थान ले लिया है। शुरुआती दौर में मोबाइल सिर्फ अपने परिजनों के कुशल क्षेम जानने और सम्पर्क के तौर पर कार्य करता था लेकिन मोबाइल में इंटरनेट,कैमरा, वीडियो कैमरा और अन्य की सुविधाएं आ जाने से अब यह सिर्फ सम्पर्क का माध्यम न रहकर पूरी दुनिया से अपडेट रहने का माध्यम बन गया है। कम्प्यूटर और मोबाइल में हिंदी टाइपिंग की सुविधा आ जाने से हिंदी के लेखकों, पाठकों को और भी सुविधा मिल गई है, विशेषकर तब जब मोबाइल में हिंदी यूनिकोड टाइपिंग की सुविधा मिली। आज जिसकी जेब में मोबाइल है वही खबरची की भूमिका अदा करने लगा है। सूचना प्रोद्योगिकी के इस युग में अपने आस पास होने वाली घटनाओं को सोशल मीडिया के जरिये वायरल कर दुनिया के किसी भी कोने में आंखों देखा हाल पहुंचा रहे हैं। ऐसी स्थिति में हिंदी पत्रकारिता का भविष्यवाणी करना बेहद कठिन है। तकनीक इसी तेजी के साथ बढ़ता गया तो वह दिन दूर नहीं कि पढा जाने वाला अखबार टेलीग्राम की तरह इतिहास न बन जाये। वैसे भी अखबार ई पेपर के रूप में कम्प्यूटर, लैपटॉप और मोबाइल पर आ ही गए हैं।भारत जैसे बहुभाषा भासी देश में विदेशों से आई कंप्यूटर के प्रयोग एवं सीखने के तौर तरीकों में इस्तेमाल अंग्रेजी भाषा ने हम भारतीयों को शुरुआती दौर में आतंकित किया था पर भारतीय वैज्ञानिकों और यहां की भाषायी शक्तियों ने इस समस्या से जल्द ही निजात दिला दी। परिणामस्वरूप भारत के युवा मस्तिष्क ने इसका उत्तर भाषा प्रोद्यौगिकी से दिया। अनेक भाषाओं, उपभाषाओं एवं बोलियों से समृद्ध भारत के युवा वैज्ञानिकों ने कंप्यूटर को ही यहां की भाषा से समृद्ध कर दिया। हिन्दी अब चुटकुले कहानियां कविता या पारंपरिक गद्य-पद्य की विधाओं की भाषा मात्र न रहकर अब सूचना प्रोद्यौगिकी के तमाम आयामों, दिशाओं और क्षेत्रों तक जुड़ गई है। प्रिंट एवं इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के अंतर्गत चंहुमुखी मार्ग प्रशस्त किए हैं। समाचार पत्र, पत्रिकाओं, पोस्टर, बैनर, हैडबिल, पंपलेट, विजटिंग कार्ड, दीवार लेखन, विवाह कार्ड, पुस्तक लेखन, निमंत्रण, अभिवादन पत्र, सामग्रियों की पैकिंग पर मुद्रण, स्टीकर लेखन, नाम पट्टिकाएं, विभिन्न सामग्रियों पर मुद्रण, वस्त्रों पर मुद्रण, विद्युतीय बोर्डों पर लेखन, विभागों-संस्थानों के नामोल्लेख करने वाले बोर्ड, दिशासूचक बोर्ड, सूचना देने वाले विभिन्न बोर्ड, शोध प्रबंध, टंकण मुद्रण सहित अनेक मुद्रण माध्यमों में हिन्दी अपना वर्चस्व स्थापित कर चुकी है। इसका श्रेय सूचना प्रोद्यौगिकी को ही जाता है। सूचना और संचार के बढ़ते महत्व ने चेतना को जागृत करने का काम किया है। इस क्रांति ने जन जन को अद्यतन करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। रेडियो, दरदर्शन, केबल, कंप्यूटर, इंटरनेट, फैक्स, सैल्युलर, पेजर, इलेक्ट्रॉनिक टाइपराइटर, सिनेमा, दूरभाष तथा अन्य विद्युत माध्यमों ने हिन्दी के प्रचार-प्रसार को गति प्रदान की है। आईआरएस के 2017 के सर्वेक्षण के तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर रपट में कहा गया है कि प्रिन्ट उद्योग बढ़ रहा है। आरएनआई की रिपोर्ट के मुताबिक भारत में पंजीकृत प्रकाशनों की संख्या 1,14,820 है। किसी भी भारतीय भाषा में पंजीकृत समाचार पत्र-पत्रिकाओं की सबसे अधिक संख्या हिंदी भाषा में है और यह संख्या 46,827 है, जबकि हिंदी के अलावा दूसरे नंबर पर आने वाली अंग्रेजी भाषा में प्रकाशनों की संख्या 14,365 है। सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय (MIB) द्वारा चैनलों को लाइसेंस जारी करने की स्टेटस रिपोर्ट जारी की गई है। इस रिपोर्ट के अनुसार, 31 अक्टूबर 2017 से अब तक मंत्रालय द्वारा जारी किए जाने वाले लाइसेंसों की संख्या में कोई परिवर्तन नहीं किया गया है। रिपोर्ट के अनुसार, 31 दिसंबर तक देशभर में मंत्रालय द्वारा स्वीकृत निजी टीवी चैनलों की संख्या 877 है। नवंबर और दिसंबर 2017 में कोई नया लाइसेंस जारी नहीं किया गया है।

सरकार द्वारा वर्ष 2017 में 45 लाइसेंस जारी किए गए थे, जबकि उससे पूर्व के वर्ष में जारी किए जाने वाले चैनलों की संख्या 75 थी। यदि कुल चैनलों की बात करें तो 1099 चैनलों को अनुमति दी गई, जबकि 222 चैनलों का लाइसेंस रद किया गया था, इनमें 66 तो अकेले वर्ष 2017 में ही शामिल थे। इनमें 44.4 प्रतिशत यानी 389 चैनल 'न्यूज और करेंट अफेयर्स' कैटेगरी में जबकि 488 चैनल 'नॉन न्यूज। इंडियन रीडरशिप सर्वे (आईआरएस) की रिपोर्ट जारी कर दी गई है। इसके अनुसार, दैनिक जागरण सात करोड़ 36 लाख 73 हजार पाठक संख्या के साथ पहले स्थान पर है, दैनिक भास्कर 5.14 करोड़ पाठकों के साथ दूसरे स्थान पर है, अमर उजाला पाठक संख्या 4.76 करोड़ के साथ तीसरे स्थान पर है। 'हिन्दुस्तान' और 'हिन्दुस्तान टाइम्स' के आंकड़े जारी नहीं किए गए हैं क्योंकि अभी इनकी समीक्षा की जा रही है। कुछ हफ्तों बाद हिंदुस्तान समूह के आंकड़े जारी होने पर रैंकिंग में बदलाव आने के

आसार हैं। इसमें शीर्ष 10 अखबारों की सूची में अंग्रेजी का केवल एक अखबार 'टाइम्स ऑफ इंडिया' है। यह अंग्रेजी अखबार एक करोड 52 लाख 36 हजार की पाठक संख्या के साथ नौवें स्थान पर है। टीवी निगरानी एजेंसी BARC (ब्रॉडकास्ट ऑडियंस रिसर्च काउंसिल) इंडिया के नवीनतम अनुमानों के अनुसार, भारत में लगभग 210 मिलियन घरों में अब एक टीवी सेट है, जो 2018 में 197 मिलियन से 6.9% अधिक है। टीवी दर्शकों की संख्या भी 6.7% बढ़ी, जो 2018 में 836 मिलियन से 892 मिलियन तक पहुंच गई। समाचार फॉर मीडिया डॉट कॉम के मुताबिक भारत में सबसे ज्यादा करीब 52 करोड़ लोग हिंदी बोलते हैं, इसके बाद 9.7 करोड़ लोग बंगाली, दो लाख साठ हजार लोगों ने अंग्रेजी को अपनी मातृभाषा बताया है।

सारांश-कहा जाता था कि ब्रितानी हुकूमत का सूर्यास्त नहीं होता है, लेकिन भारत के क्रांतिवीरों, युवाओं, महिलाओं और जन-जन ने मिलकर ब्रितानी हुकूमत को सात समुंदर पार खदेड़ दिया। इसका श्रेय पत्रकारिता को भी जाता है। खास कर हिन्दी पत्रकारिता जिसकी पहुंच गांव, ग्रामीण और शहरी सभी लोगों तक थी, स्वतंत्रता की चिंगारी को सभी तक पहुंचाया। इसी मिशन की पूर्ति के लिए भारत में पत्रकारिता की शुरुआत हुई थी। गणेश शंकर विद्यार्थी ने प्रताप, प्रेमचंद ने हंस, महात्मा गांधी ने नवयुग, हरिजन जैसे समाचार पत्रों का संपादन कर स्वतंत्रता की लौ हर भारतीयों के दिल में जगा दी। सैकड़ों समाचार पत्र ब्रितानी हुकूमत का नाकों दम कर दिया। अंततः 15 अगस्त 1947 को हमें आजादी मिली। इसके बाद भी हिन्दी पत्रकारिता ने अपना काम अनवरत जारी रखा। आजादी के बाद सभी समाचार पत्रों की प्रसार संख्या से आगे निकल कर हिन्दी समाचार पत्रों ने सर्वोच्च स्थान प्राप्त कर लिया। वर्तमान में स्थिति यह है कि सभी भारतीय भाषाओं से आगे निकल कर हिन्दी समाचार पत्रों ने सभी समाचार पत्रों से आगे निकल गए। इस समय देश का ऐसा कोई भी प्रदेश नहीं है जहां से हिन्दी के समाचार पत्र और पत्रिकाएं नहीं निकलती हों। भारत में सबसे ज्यादा करीब 52 करोड़ लोग हिंदी बोलते हैं, इसके बाद 9.7 करोड़ लोग बंगाली, दो लाख साठ हजार लोगों ने अंग्रेजी को अपनी मातृभाषा बताया है। भारत के युवा मस्तिष्क ने इसका उत्तर भाषा प्रोद्यौगिकी से दिया। अनेक भाषाओं, उपभाषाओं एवं बोलियों से समृद्ध भारत के युवा वैज्ञानिकों ने कंप्यूटर को ही यहां की भाषा से समृद्ध कर दिया।

हिन्दी अब चुटकुले कहानियां कविता या पारंपरिक गद्य-पद्य की विधाओं की भाषा मात्र न रहकर अब सूचना प्रोद्यौगिकी के तमाम आयामों, दिशाओं और क्षेत्रों तक जुड़ गई है। प्रिंट एवं इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के अंतर्गत चंहुमुखी मार्ग प्रशस्त किए हैं। समाचार पत्र, पत्रिकाओं, पोस्टर, बैनर, हैडंबिल, पंपलेट, विजटिंग कार्ड, दीवार लेखन, विवाह कार्ड, पुस्तक लेखन, निमंत्रण, अभिवादन पत्र, सामग्रियों की पैकिंग पर मुद्रण, स्टीकर लेखन, नाम पट्टिकाएं, विभिन्न सामग्रियों पर मुद्रण, वस्त्रों पर मुद्रण, विद्युतीय बोर्डों पर लेखन, विभागों-संस्थानों के नामोल्लेख करने वाले बोर्ड, दिशासूचक बोर्ड, सूचना देने वाले विभिन्न बोर्ड, शोध प्रबंध, टंकण मुद्रण सहित अनेक मुद्रण माध्यमों में हिन्दी अपना वर्चस्व स्थापित कर चुकी है।

****

संदर्भ

1.मीडिया का विकास, नालंदा ओपन यूनिवर्सिटी प्रोफेसर अर्जुन तिवारी, पृष्ठ संख्या 93, 115,
2.सत्याग्रह वेब पोर्टल https://www.satyagrah.com/
3.समाचार फॉर मीडिया डॉट कॉम हिंदी पत्रकारिता दिवस: चुनौतियों से चुनौतियों तक का सफर https://www.samachar4media.com/vicharmanch-news/an-article-on-hindi-journalism-day-written-by-senior-journalist-rajesh-badal-55614.html
4.सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय की वेबसाइट
5.ओरएनआई की वेबसाइट
6.इंडियन रीडरशिप सर्वे
7.गूगल

महीप सिंह की कहानियों में मानवीय सम्बंध

डॉ. प्रवीन कुमार
सहायक प्रोफेसर
मो.9811401368

हिन्दी साहित्य में कहानी का विशिष्ट स्थान है। कहानी का अपना एक अलग अस्तित्व है। साहित्यकार अपनी कहानियों में अपने युग में घटित होने वाली घटनाओं एवं बदलावों को ही कहानी का आधार बनाता है। कहानीकार एक सामाजिक प्राणी होने के कारण मनुष्यों के बीच रहकर ही किसी कृति की रचना करता है। लेखक समाज का अभिन्न अंग होने के कारण अपने आस-पास के परिवेश को अत्यंत सूक्ष्मता से जांच परख कर ही उसे साहित्य में परिलक्षित करता है। साहित्य लेखक की अभिव्यक्ति होती है।

डॉ0 नवल किशोर के अनुसार "एक बेहतर इन्सानी रिश्ते का संदर्शन ह साहित्य का लक्ष्य हो सकता है। हार्दिक मानवीय संबंधों की अनुपस्थिति के प्रति चिंता का भाव भी इसी संदर्शन का स्वरूप है। यह संदर्शन ही किसी मानववादी बनाता है।[1] हेतु भारद्वाज के अनुसारः "मनुष्यों का अन्य मनुष्यों के प्रति सहानुभूति व दया का भाव रखना तथा व्यक्तिगत स्वार्थ पूर्णतः त्याग कर सामाजिक पर्यावरण के अधिकारों व कर्तव्यों का समुचित समंजन करना ही संबंध है।" [2]

बदलते हुए परिवेश में मानवीय संबंधों को विभिन्न कारकों ने प्रभावित किया है। युग परिवर्तन के साथ-साथ मनुष्य की जीवन दृष्टि में बदलाव के साथ साथ में भी बदलाव आता रहता है। परिस्थितियों के अनुसार मानव व्यवहार में परिवर्तन होता रहता है। डॉ० महीप सिंह की कहानियों में मानवीय संबंधों के इस बदलते हुए रूप पर यहां प्रकाश डालने का प्रयास किया जा रहा है। स्वतंत्रता के पश्चात् मानवीय रिश्तों में आए बदलाव की भरसक आहट हमें महीप सिंह की कहानियों में सुनाई देती है। भारतीय समाज में जिन जीवन मूल्यों को आधार बनाकर मानवीय सम्बंध स्थापित हुए थे, आज वहीं सम्बंध बिखर रहे है। अविश्वास, शंका, स्वार्थपरता, स्वआश्रित होना इत्यादि इसके प्रमुख आधार है।आज सम्बंधों के बीच अर्थ का विशेष प्रभाव होता है। कुछ माँ-बाप अपनी की कमाई पर ही निर्भर रहते है। "परवरिश के लिए" कहानी की पदमा की माँ को जरा भी चिंता नहीं है कि उसकी बेटी देर रात तक घर से बाहर क्यों रहती है। जब उसे यह मालूम होता है कि पदमा गर्भवती है तो वह अवाक रह जाती है। वह पदमा से कहती है कि "कलमुंही काम करेगा? और काम नहीं करेगी तो घर की गुजर बसर क्या आसमान से तेरा बाप चलाएगा।"[3] यहां पर हम देखते है कि पदमा की मां को उसके गर्भवती होने की चिंता की अपेक्षा घर चलाने की चिंता है। यह स्वार्थमयी सम्बंध भारतीय मूल्य के परिचायक नहीं है।स्वराघात' कहानी में लाला दुनीचंद की जवान बेटी बिमला मर जाती है। लाला दुनीचंद अपने व्यापार में इस तरह व्यस्त है कि घर पर बैठकर मातम मनाना उन्हें बहुत खलता है। लालाजी जल्द से जल्द तेरहवीं को निपटाना चाहते है। वह अपनी पत्नी से कहते है कि-

"किरिया ग्यारवें दिन भी तो हो जाती है। बिमला की मां सोचती है - हां लोग ग्यारहवें दिन भी कर लेते है। पर करनी तो तेरहवें दिन चाहिए। तुम मेरा मतलब नही समझीं। "लालाजी समझाते है- 'मंगलवार कामकाज का दिन है, सारे मिलने जुलने वाले ठीक तरह से आ भी ना सकेगें और लड़को को भी - नाहक दफ्तर से छुट्टी लेनी पड़ेगी। [4]'सन्नाटा' कहानी महानगरीय ऊब एकाकीपन और संबंधों की रिक्तता को दर्शाती है। आज संबंधों की उष्मा को महानगर की भागदौड़ भरी जिंदगी ने नष्ट कर दिया हैं। दिवा और किटी दोनों मां बेटी है। एक ही घर में रहती है, लेकिन सम्बंधों में उष्मा नहीं है। दिवा (मा) कहती है कि-

"साल छमाही कहीं एक ऐसा दिन आता है, तब कहीं हल्का सा हमसूस

'कितने संबंध' कहानी संबंधों में कड़वाहट की कहानी है। मिसेज खन्ना के पति की मृत्यु के बाद सौतेले बेटे का व्यवहार अमानवीय है। सतिन्द्र और उर्मिल अब उनकी रत्ती भर भी परवाह नहीं करते, उससे सीधे मुंह बात भी नहीं करते । खाने की दो रोटियां उसके आगे ऐसे डाल देते हैं, जैसे लोग कुत्ते के आगे डाल देते है।"[6]आज के यांत्रिक युग में रक्त संबंधों का व्यवसायीकरण हो चुका है। 'शोक' कहानी मे सागर जी अपने पिता की मौत को अपनी प्रतिष्ठा से जोड़ने का अच्छा अवसर मानता है। परन्तु सुबह में हुई पिता की मौत से थोड़ा परेशान है। उनका कहना है कि - "अगर पिताजी की मृत्यु शाम को हुई होती तो मैं यह खबर अखबारों में देता जो दूसरे दिन सभी जगह छप जाति उसी के साथ दाह संस्कार का कार्यक्रम छप जाता। लेकिन पिताजी तो सुबह-सुबह गुजर गए।"[7]'सुर' कहानी में पिता के बाद अपने दोनों बेटों के कारोबार में हाथ बंटाने लगते है । परन्तु इस दौरान उसे अपने बेटों से पहले वाला अपेक्षित व्यवहार नहीं मिलता "----उसे महसूस होने लगा कि उसके व्यक्तित्व के साथ "डैडी" नाम का जो रंग लगा हुआ है, उसकी चमक हल्की पड़ने लगी है।"[8] आज की व्यस्त में अपने बूढ़े माँ-बाप के लिए वक्त नहीं है। बूढ़े मां-बाप अकेले को विवश है। 'कल' कहानी का इंदर विधवा मां को घर में अकेली छोड़कर कनाडा जा बसता है। वह साल भर में एक दो पत्र डालकर केवल उन्हें याद कर लेता है। आज भाई एवं बहनों के बीच पहले जैसा प्यार नही रहा है। जब से स्त्री को पैतृक सम्पत्ति में हक मिला है, तब से यह कटुता और बढ़ गई है। नाला कहानी में बहन की असाध्य बिमारी की हालत में भाई उसे पारिवारिक विकास में बाधा समझता है। बहन महसूस करती हुई कहती है कि "--- मुझे लगता है कि जैसे मैं एक बहुत बड़ा सा नाला हूँ और भाईसाहब जब भी मेरे पास से गुजरते हैं तो उसे मुझे लाकर निकलना पडता है।" [9] 'तपिश के मारे' कहानी का गोपाल अपने बड़े भाई की धोखेबाजी से पागल होकर दो जून की रोटी के लिए दर दर भटकता है। मलिक बाबू जब दिनेश से गोपाल की हालत के बारे में पूछते है तो वह बताता है कि—"---- तुम इसकी हालत देखकर अचरज कर रहे हो पर तुम्हें शायद पूरी बात मालूम नहीं कई साल पहले यह पागल हो गया था. बाप के मर जाने पर जब जायदाद का बंटवारा होने लगा तो इसके बड़े भाई ने ब्लैक में कमाया हुआ धन खुद हड़प लिया। उस बात का इस पर असर पड़ा और यह पागल हो गया है।"[10]

'कितना अजीब' कहानी में अर्थतंत्र का प्रभाव दोस्ती के बीच बाधा बनता है। परमान्द अपने दोस्त की आर्थिक सहायता नही कर पाता, क्योंकि उनकी दोस्ती अभी नई है। इसलिए दोस्त चंद मुलाकातों की दोस्ती पर विश्वास नहीं करता।"---- तुम कहते हो. इनसे तुम्हारी दोस्ती बस दो तीन मुलाकात की ही है। रूपए उधार मांगने के लिए संबंधों की इतनी पतीली और कच्ची दीवर पर कोई नही चढ़ता।"[11]

"वेतन के पैसे" कहानी में पत्नी की चिंता वेतन पर अपना अधिकार पाने की है क्योंकि पति वेतन के पैसे लाकर उसे नही देता। वह सारे पैसे स्वयं रख लेता है थोड़े बहुत उसे देता है, उनका वह हिसाब मांग लेता है। वह सोचता है कि " --- सच बात तो यह है कि स्त्री चाहती है कि कमाने का कार्य पति करे, किन्तु उसे रखने और व्यय करने का सम्पूर्ण उत्तरदायित्व उसका हो, एकमात्र उसका।" [12]'गमले का फूल' कहानी में निर्मल को अपनी पत्नी का उन्मुक्त व्यवहार पसंद नहीं है। रति उसके दोस्तों के साथ उसकी अनुपस्थिति में ताश खेलती है तथा चाय पिलाती है इसलिए वह उस पर बरसता हुआ कहता है कि "---- परपुरुषों के साथ बैठकर ताश खेलने में तुम्हें लज्जा नहीं आती? उसने जलती निगाहों से रति को देखा। कोध और क्षोभ से उसके होठ कांप रहे थे।परपुरुष ---? रति ठगी सी देखती रही, वे तो तुम्हारे बचपन के मित्र है।"[13] 'लोग' कहानी में पत्नी के 'स्व' को लेकर उनके दाम्पत्य संबंधों में दरार पैदा हो गई है। पत्नी नौकरी करती है, अतः पति को इतना महत्व नहीं देती। पति कहता है " --- नीला से मेरी बहुत अच्छी तरह निभ सकती है- यदि वह बस थोड़ा सा मेरी भावनाओं की कद्र कर लिया करे। पर पता नहीं क्या बात है कि मुझे हर्ट करने में उसे बड़ा स्वाद आता है। बात-बात में वह मुझे खिझाती है। टीज करती है। अपनी बात वह जबरदस्ती मनवा लेती है, लेकिन मुझे इतना भी भरोसा नहीं रहता हकि मेरे मांगने पर वह एक गिलास पानी भी मुझे पिला देगी।"[14]

निष्कर्ष : अतः हम कह सकते हैं कि महीप सिंह जी मुख्यतः सम्बंधों के कथाकार है। संबंधों को देखने की उनकी दृष्टि यथार्थवादी होते हुए भी मूल्यवादी है। महीप सिंह ने संबंधों को टूटन में भी बचे हुए मानवीय संवेदन की तलाश की है। महीप सिंह जी की कहनियों में जीवतता है। उन्हें अपने परिवेश के जीवत यथार्थ की पहचान है। महीप सिंह जी ने युग की नब्ज को पहचान कर एक नवीन मानवीय संबंधों की सामाजिक दृष्टि हमें प्रदान की है। उन्होंने मानवीय संबंधों में नष्ट होती कोमलता पर चिंता व्यक्त की है। आज स्वार्थपरता के कारण संबंधों से लोगों का विश्वास टूटता जा रहा है। महीप सिंह जी भारतीय संस्कृति के सजग रक्षक एवं संबंधों में उष्मता के सजग कथाकार है। महीप सिंह जी महानगरीय परिवेश के कथाकार है। उन्होंने वहां के लोगों के संबंधों में बढ़ते तनाव बिखराव तथा आत्मकेन्द्रिकरण को उजागर किया है।

****

सन्दर्भ ग्रन्थ:

1. डॉ0 नवल किशोर, मानववाद और साहित्य, पृष्ठ 106
2. हेतु भारद्वाज, स्वातंत्रयोत्र हिन्दी कहानी में मानव प्रतिभा, पृष्ठ 91
3. डॉ० महीप सिंह, क्षणों का संकट, परवरिश के लिए, पृष्ठ 41-42
4. डॉ० महीप सिंह, क्षणों का संकट, स्वराघात, पृष्ठ 76
5. डॉ० महीप सिंह सम्बन्धों का सन्नाटा, सन्नाटा पृष्ठ 14-15
6. डॉ० महीप सिंह, सम्बंधों का सन्नाटा, कितने सम्बंध पृष्ठ 73 -
7. डॉ० महीप सिंह, सम्बन्धों का सन्नाटा, शोक, पृष्ठ - 160
8. डॉ0 महीप सिंह, सम्बन्धों का सन्नाटा, सुर पृष्ठ
9. डॉ0 महीप सिंह, क्षणों का संकट, नाला, पृष्ठ 202
10. डॉ० महीप सिंह सुबह की महक के मारे पृष्ठ 100
11. डॉ० महीप सिंह संबंध का सन्नाटा कितना अजीब पृष्ठ 70
12. डॉ0 महीप सिंह, सुबह की महक, वेतन के पैसे पृष्ठ – 40
13. डॉ० महीप सिंह सुबह की महक गमले का फूल पृष्ठ-157
14. डॉ० महीप सिंह, क्षणों का संकट लोग, पृष्ठ- 131

मणिपुरी बाल साहित्य: उद्भव और विकास

एस. साधना चनु
शोधार्थी
हिंदी विभाग मणिपुर विश्वविद्यालय

'बाल्यावस्था' इस शब्द को सुनते ही हमें बचपन की यहां-वहां की दौड़-धूप आंखों के सामने आती है। यह दौर मनुष्य जीवन में सबसे महत्वपूर्ण होता है। मनुष्य के जीवन की विकास यात्रा में इस अवस्था को हम भुला नहीं सकते हैं। जीवन में हर अवस्था का विकासक्रम मूल्यवान होता है, परंतु इस अवस्था का विकास अच्छे से नहीं हुआ तो जीवन आगे चलकर अव्यवस्थित, खुरदरा और असंगठित रहता है। इस अवस्था में हम बालक का जिस वातावरण में पालन-पोषण करते हैं एवं उसको शिक्षा-दीक्षा देते हैं, उसी के अनुरूप बालकों की मानसिक स्थिति का विकास होता है। उसी अनुसार बालक के आचरण का निर्माण देखने को मिलता है। यह वह समय है, जिसमें हम बालक को किसी भी रास्ते में ले जा सकते हैं और उसका उचित मार्गदर्शन भी कर सकते हैं। यहां मणिपुर की एक प्रसिद्ध कहावत प्रस्तुत है-

'अङाङु दि अपेत्पा लैखोम् गुम्बनी' अर्थात् बच्चा गीली मिट्टी के समान होता है। हम गीली मिट्टी को रगड़ कर, मोड़ कर तथा तराश कर कोई भी अकार प्रदान कर सकते हैं। उससे उपयोगी वस्तु का निर्माण कर सकते हैं। उसी प्रकार हम बच्चे को शिक्षा देकर, मार्गदर्शन करके व उसको तराशते हुए सही रास्ते में ले जा सकते हैं। बच्चों को गुणकारी मूल्य प्रदान करके अच्छा, सूक्ष्म और संवेदनशील व्यक्ति बना सकते हैं। जिससे वह समाज में सार्थक योगदान एवं सहयोग दे सके। आधुनिकता का यह दौर अत्यंत नाजुक है। इस समय बच्चों को नैतिक एवं मूल्यपरक शिक्षा प्रदान करना अत्यंत आवश्यक है। बच्चों को संस्कारित करने में बाल साहित्य की मुख्य भूमिका है।'बाल साहित्य' वह बाल साहित्य है, जो बच्चों के लिए लिखा गया है। बालक उस साहित्य को पढ़कर अपनी मानसिक जिज्ञासाओं, कल्पनाओं, भावनाओं आदि को विकसित करता हैं। इसके साथ-साथ यह साहित्य बच्चों को शिक्षा एवं मनोरंजन प्रदान करता है।प्रकाश मनु के अनुसार- "बाल साहित्य (Children's Literature) वह साहित्य है जो विशेष रूप से बच्चों के लिए लिखा जाए या जो बच्चों को संबोधित हो तथा जिसके केंद्र में बच्चे और उनका बहुरंगी संसार हो।"[1]निरंकार देव सेवक के अनुसार- "वह साहित्य जिसमें रुचि, जिज्ञासा, इच्छा-आकांक्षा, राग-द्वेष, भावना-कल्पना की अभिव्यक्ति हो। बच्चे के मन में किस वातावरण और किन परिस्थितियों में किस प्रकार के भाव उत्पन्न होते हैं, इसे समझ पाना बड़ों के लिए आसान नहीं है। बाल मन इतना चंचल होता हैं कि उसे ठीक-ठीक समझ पाना कभी-कभी असंभव हो जाता है। बच्चे जिस दृष्टि से सूरज, चांद, तारों, आकाश, बादल, पर्वत, सागर और नदियों को देखते हैं, बड़े उन्हें हजार बार देखने के बाद भी उस दृष्टि से नहीं देख सकते। भक्ति, श्रद्धा, आस्था और विश्वास के जो परदे बड़े की आंखों पर पड़े रहते हैं, बच्चों की आंखों पर नहीं होते। फूल-कलियों के सौंदर्य, पेड़-पौधों की हरियाली, चिड़िया की चहचहाहट और कुत्ते-बिल्ली के रंग तथा हाव-भाव से जो मौन संदेश बच्चों के मन को प्राप्त होते रहते हैं, वे बड़ों के मन में नहीं होते हैं। अनुभव, ज्ञान, आयु और आकार में बच्चों से कोई गुना बड़ा होकर, धूल में खेलता, शैतानियां करता, बात-बात पर मचलता बन जाना बड़ी कठिन साधना है।"[2]बाल साहित्य यह शब्द सुनते ही प्रत्येक लोग इसको अलग-अलग अर्थों में समझलेते हैं ।जैसे बच्चों द्वारा लिखा गया साहित्य, वयस्कों द्वारा बच्चों के लिए लिखा गया साहित्य, बालकों के लिए लिखा गया साहित्य आदि विभिन्न रूप में मानते हैं। इस के संदर्भ में मस्तराम कपूर जी की 'हिंदी बाल साहित्य का विवेचनात्मक अध्ययन' पुस्तक में बाल साहित्य के निम्नलिखित अर्थ दिए गए हैं:"वयस्क साहित्य का बाल अर्थात लघु रूप, जैसे बाल रामायण, बाल महाभारत।

बालकों द्वारा लिखा गया साहित्य।
बालकों के विषय में लिखा गया साहित्य।
बालकों के लिए लिखा गया साहित्य।
बालकों द्वारा लिखा गया अस्वाद्य साहित्य।"[3]

बाल-साहित्य के उद्भव में लोरी, खेलगीत तथा लोक कथाओं की मुख्य भूमिका रही है। आगे चलकर बाल साहित्य ने अपना अलग विकास करते हुए विस्तृत रूप ले लिया है।मणिपुरी बाल साहित्य के उद्भव को देखा जाए तो लोरी, खेलगीत, लोक-कथाएं, बाल-कविता एवं बाल गीत, पहेली आदि का मुख्य योगदान है। बाल साहित्य का एक रूप बाल लोकसाहित्य है परंतु मणिपुरी बाल-साहित्य को लोक-कथाओं तथा लोक-साहित्य से पूरी तरह अलग नहीं किया गया हैं। मणिपुरी बाल कहानियों का आधार लोककथाओं से ज्यादातर प्रेरित है। यहां बाल लोक -कथाएं, बाल लोक-नाट्य, बच्चों के खेल गीत के साथ लोरी, पहेली, ऊल-जुलूल गीत पद्य कविताएं आदि से बालकों को मनोरंजन प्रदान किया जाता हैं, जो बाल साहित्य का मुख्य अंग हैं।बाल लोक-साहित्य बाल साहित्य का एक अंग है। परंतु मणिपर में लोक साहित्य को ही बाल साहित्य मान लेते हैं। बालकथाओं की पुस्तकों में बालकों की कथा के अतिरिक्त लोककथाएं जो वयस्कों के लिए भी होती है, उन्हें भी बालसाहित्य के अंतर्गत शामिल कर लेते हैं जबकि लोककथा बालकथा से भिन्न होती हैं। लोककथा तो बालसाहित्य का एक छोटा-सा अंग होता है और इसका कोई लेखक नहीं होता है। बाल कहानियों में लेखक अपनी रचनात्मक क्षमता से नया निर्माण एवं सृजन कार्य करता है और पाठकों तक उद्देश्य पहुंचाने का प्रयास करता है। वह अलग-अलग रुचिपूर्ण विधि एवं प्रयोजन के माध्यम से मनोरंजन प्रदान करने का प्रयास करता है।

मणिपुर में बालकों के लिए साहित्य यानी बाल साहित्य को गंभीरता से नहीं लिया गया। फिर भी यहां पर प्राचीन समय से ही बाल-साहित्य का विकासात्मक रूप देखने को मिलता है।मणिपुरी विद्वानों के अनुसार मणिपुरी बाल साहित्य का उद्भव प्राचीन काल के समय से लोरी के रूप में देखा जा सकता है-

"था-था थाबुङतोन,/नाचा मोराम्बी पोबीगे,
पोबी सनम नमबीगे,/हैबोङु चरोङु थादाबीरकओ...."[4]

अर्थात् मां, चांद के बच्चे मोराम्बी को अपने पीठ पर धारण करने को बोलती है और मां जो उसके बदले चांद से अंजीर का एक गुच्छा गिरा देने को बोल रही है। यह लोरी रात को बच्चे को सुलाते समय मां चांद को देखकर गाती है।मणिपुरी लोकसाहित्य को मणिपुरी बाल साहित्य के नींव के रूप में देखा जाता है। बालक खेलते समय गीत गाते हैं, यह खेल-खेल में गाए जाने वाले खेल गीत भी बाल साहित्य का एक अंग हैं। जो प्राचीन काल से चले आ रहे हैं। खेल गीतों ने हमारे बचपन में बाल साहित्य का बीज बोया गया है-

"ते-ते तेनावा कैसामपात की तेनावा
हैनौ न मूलगा तेनावा न हराओ ई ऊ.....ऊ....।"[5]

अर्थात् तोता जो कैसामपात नामक स्थान का है, आम जब पकते हैं तो वह खुश होता है। यह खेलगीत ऊल-जलूल शब्दावली से युक्त बाल गीत है जो जनसामान्य बोली में विशेष रूप से पाया जाता है। यह गीत बच्चों को हंसाने एवं मनोरंजन के लिए होता है और उसका कोई निश्चित अर्थ नहीं निकालता है। जनसामान्य के मध्य मौखिक परंपरा में प्रचलित पहेलियों ने भी बालसाहित्य के उद्भव में एक स्तंभ के रूप में काम

किया है। बचपन में हम एक दूसरे से अनेक प्रकार की पहेलियों पूछकर आपस में बुद्धि की परीक्षा करके मनोरंजन करते हैं-"कारा नानथा कारा नानथा करीनो? पाओखूम- लफु"[6]अर्थात् जहां बार-बार चढ़कर भी फिसलता है वह क्या है? उत्तर- केले का पौधा। मणिपुरी बालसाहित्य के विकास में अनुवाद की भी महत्वपूर्ण भूमिका रही है। शुरुआती दौर में हिंदू पौराणिक कथाओं, लोक कथाओं, बालकथाओं आदि अन्य भाषाएं रचना की अनुवाद देखने को मिलता है।आधुनिक काल में विशेष रुप से मणिपुरी बाल साहित्य का विकास 20वीं शताब्दी के छठे-सातवें दशक के आसपास से देखा जा सकता है। ऐसा मानकर चल सकते हैं कि इन्हीं दशकों में मणिपुरी लेखकों ने बाल साहित्य का विशेष रूप से लेखन कार्य शुरू किया। इस समय बाल साहित्य के विकास हेतु विभिन्न कार्यशालाएं, प्रशिक्षणों व प्रतियोगिताओं का आयोजन मणिपुर सरकार के शिक्षा मंत्रालय तथा अन्य विभागों द्वारा संपन्न किया गया। 20वीं शताब्दी के अंतिम दशक में मणिपुर सरकार के शिक्षा मंत्रालय द्वारा आयोजित प्रतियोगिता 'चिल्ड्रंस बुक्स कंपिटीशन' के विजेताओं की किताबों के प्रकाशन हेतु अनुदान की व्यवस्था की गई।

आगे का विकास क्रम देखा जाए तो साहित्य अकादमी, नई दिल्ली द्वारा 2010 से बाल साहित्य पुरस्कार की शुरुआत होने के बाद बाल साहित्य लेखन को प्रोत्साहन मिला और उसके बाद निरंतर इसकी रचनाएं देखने को मिल रही हैं। उससे पहले 70 के दशक में कुछ रचनाएं देखने को मिली परंतु 60-70 के पहले बाल साहित्य लेखन न के बराबर हुआ। इस दौरान अनुवाद लेखन की भी भूमिका दिखाई दी। सन् 1978 में कार्लो कॉलॉडी (Carlo Collodi) के बाल उपन्यास 'पिनोकियो' (Pinocchio) का एवं अरेबियन नाइट्स (Arabian night) लोककथा को सगोलसेम इंद्रकुमार ने 'अरब की रात' नाम से अनुवाद किया। ई. सोनामणि में भी 'अरेबियन नाइट्स' का अनुवाद किया। बोर्ड ऑफ सेकेंडरी एजुकेशन मणिपुर ने हिंदी, बांग्ला, अंग्रेजी आदि अन्य भाषाओं की प्रसिद्ध रचनाएं का अनुवाद करके पाठ्य पुस्तक में शामिल किया। जैसे प्रेमचंद की ईदगाह कहानी एवं नॉर्मान मेककिनल (Norman Mckinnel) दा बिसोप्स केन्दलस्टिक्स (The Bishop's candle-sticks) नाटक आदि जैसी रचनाओं को पाठ्यपुस्तकों में शामिल किया गया। इसके साथ भारत एवं विश्व की अन्य लोक कथाओं एवं पुरानी कहानियों को भी शामिल इसमें शामिल किया गया।

60 के दशक में 'अङाङ् गी रामायण' अर्थात् 'बाल रामायण' नामक पुस्तक सुरचांद शर्मा द्वारा लिखी गयी। इसी दशक में हिंदू पौराणिक कथाओं के आधार पर आई.एस. काङ्जम द्वारा 'मयाम्बा गी खुदोल' अर्थात 'भाई का उपहार' नामक छोटी-सी बाल-कथा की कृति देखने को मिली। मणिपुरी भाषा में बच्चों के लिए मनोरंजन के साथ-साथ अन्य उपयोगी रचनाओं का भी निर्माण किया गया।

सन् 1984 में सगोलसेम इंद्रकुमार ने 'थौना फबा खम्बातोन' अर्थात् 'वीर-साहसी खम्बातोन' नामक बाल कहानी संग्रह से बाल-साहित्य की मौलिक रचना प्रस्तुत करके अपनी रचनात्मकता लोगों के समक्ष प्रस्तुत किया। मणिपुरी लोक-कथा संग्रहों में थाङजम चंद्र सिंह द्वारा 'तेनावा ना लिबा फंगावारी' अर्थात् 'तोता द्वारा लोक-कथा वाचन' और सराङथेम बोरमणि द्वारा 'चींङ तम गी फुंगावारी' अर्थात् 'पहाड़ एवं घाटी की लोक-कथाएं' लोक कथा संग्रहों को देखा जा सकता है। सन् 1989 में आई.आर. बाबू सिंह द्वारा 'फंगा वारी' अर्थात् 'लोककथा', सन् 1997 में थोकचोम थौयाङबा सिंह की 'इसूसा इपू वारी लीरागे' अर्थात् 'बच्चों दादा कथा सुनाते हैं' , सन् 1999 आई.आर.बाबु सिंह द्वारा 'फुंगा वारी तासी' अर्थात 'लोक कथा सुनते हैं' और राजकुमार भुवनसना द्वारा 'सना कोकचाओ' (नाम विशेष) को बाल साहित्य के रूप में प्रस्तुत किया गया।आगे चलकर सन् 2003 में रघु लैशाङ्थेम की बाल साहित्य पर मौलिक रचना 'अतिथि उचेक' अर्थात 'अतिथि चिड़िया' नामक बाल-कहानी संग्रह प्रकाशित हुआ और सन् 2004 में कोङ्बम इबेयाइमा देवी द्वारा 'अमाईबी अमसुङ अतै फुंगा वारी सिङ' अर्थात् 'चील और अन्य लोक कथाएं' नामक लोककथा की कृति प्रकाशित हुई। फिर सन् 2005 में रघु लैशाङ्थेम द्वारा ' तेंजै अमसुङ ङा मिमित' अर्थात् 'तीर और मछली की आंख' बाल कहानी संग्रह की रचना देखने को मिली और सन् 2006 में कोइजम शांतिबला देवी ने 'तल तरेत' अर्थात् 'सात रोटी' लोक कथाओं एवं अन्य विषयों के बाल नाटक की रचनाएं प्रस्तुत किया। सन् 2008 में कोङ्बम इबेयाइमा देवी ने ' सोरारेन गी मचानुपी अतोनबी लैमशङ अमसुङ अतै फंगवारी' अर्थात् 'आसमान की छोटी बेटी लैमशङ और अन्य लोक कथाएं' लोककथा प्रकाशित किया। सन् 2009 में रघु लैशाङ्थेम का 'पातपान थोइबी' अर्थात् 'झील के किनारे की थोइबी' बाल कहानी संग्रह प्रकाशित हुई और 2010 में सगोलसेम इंद्रकुमार की 'थादा थबातोन' अर्थात 'चाँद में थबातोन' नामक कल्पित विज्ञान (साइंस फिक्शन) पर आधारित कहानी प्रकाशित हुई। सन् 2011 में रघु लैशाङ्थेम ने फिर 'येंबा लाबा खोङ्लकले' अर्थात् 'मुर्गा कुड़कुड़ाते हैं' नामक बाल कहानी संग्रह प्रकाशित किया। उसके बाद राजकुमार भुवनसना ने भी 2012 में 'सना कोकचाओ अमसुङ भुत निङ्थौ ' अर्थात् 'सना कोकचाओ और भूत राजा' बाल कहानी प्रकाशित किया। सन् 2013 में दोनेश्वर कोनसम की 'नुङसिरबा इसै' अर्थात 'प्यारा गीत' बाल कविता और सलाम शांतिबला की 'लोत्लंबा मणि' अर्थात् 'छिपा मणि' बाल नाटक प्रकाशित हुए और किरण कुमार मयाङलमबम की 'इपु इबेन फुंगा वारीसिंङ' अर्थात 'दादा-दादी की लोककथाएं'। आगे चलकर सन् 2015 में निङोम्बम जदुमणि सिंह के 'अपून्बना पंगल नी' अर्थात 'एकता में बल' बाल नाटक प्रकाशित किया गया। मेघचंद्र हैराङ्खोङजम की 'अङाङ् गी वारी नीम्फु' अर्थात् 'बच्चों की चालीस कहानी' और 'अङाङ् गी वारी' अर्थात 'बच्चों की कहानी' बाल कहानी संग्रह तथा थोङाम जामिनी देवी की 'उमङ लाइ गी मसाइगोन दा' अर्थात 'वन देवता के समक्ष में' बाल साहित्य सन् 2016 में प्रकाशित हुई। सन् 2017 में अबूजम इबोपिसक लुवाङ' की 'अङाङ् सिङ गी खोरिरोल 'फिदम" अर्थात 'बच्चों की बाल साहित्य 'फिदम" बाल साहित्य निबंध संग्रह, नाओरेम बिद्यसागर की 'उचान मैरा' अर्थात् 'देवदार की ज्योति' बाल कविता संग्रह, राजकुमारी सनाहनबी चनु की 'थवाइ सिङ गी थवाइ' अर्थात 'आत्माओं की आत्मा' नाटक आदि लेखन प्रकाशित हुए। सन् 2018 में सुब्रम (मोरेंजम देवा सिंह) की 'पुपु गी वारी अमसुङ....' अर्थात 'दादा की कहानी और....' नामक लोककलाएं, के.सी.मङाङ की 'लौसिङ मैरा' अर्थात 'ज्ञान ज्योति' लघु कहानी संग्रह, लैशाङथेम तोनदोन की 'पानथै , पाउरौ, पाउताक' (Manipuri proverbs and sayings) अर्थात 'मणिपुरी लोकोक्ति एवं कहावतें' आदि लिखे गए। मुतुआ तोम्बा की 'सुथाङ गी चिन्बुङ वारी' अर्थात् 'पीढ़ी दर पीढ़ी की लोक कथाएं' लोक कथाएं, कैसाम प्रियोकुमार की 'नवा शैरोल अहान्बा' अर्थात् 'प्रथम शिशु गीत' नामक कविता लिखे गए हैं। इसी तरह क्रमांक सन् 2020 में नोङ्थोंबम बिश्वरजीत सिंह की ' हेलोइ गी वासक' अर्थात 'परियों के वचन' लोक कथाएं, नाओरेम लोकेश्वर सिंह की 'तोमथिन अमसुङ खुजी' अर्थात 'तोमथिन और चूड़ी' बाल कहानी आदि प्रकाशित हो चुके हैं। इसी प्रकार मणिपुरी बाल साहित्य का विकास क्रम देखा जा सकता है।अभी दो-तीन दशकों में बाल साहित्य लेखन प्रवाह के साथ कई पुरस्कार भी प्रदान किए गये। इनमें से 'नहारोल साहित्य प्रेमी समिति' द्वारा स्थापित तेलेम ओङ्बी अतोइबेम्मा अवार्ड फॉर चिल्ड्रन लिटरेचर', मणिपुरी साहित्य परिषद, इंफाल द्वारा स्थापित 'असाङबम मीनकेतन अङाङ् नवा साहित्य मना' आदि पुरस्कारों के नाम ले सकते हैं। सन् 2010 से साहित्य अकादमी द्वारा बाल साहित्य पुरस्कार स्थापना के बाद मणिपुर में कई लेखकों को बाल साहित्य से पुरस्कार से सम्मानित किया गया। जिनमें सगोलसेम इंद्रकुमार, रघु लैशाङ्थेम,

राजकुमार भुवनसना, नाउरेम लोकेश्वर सिंह आदि नाम प्रमुख हैं।बोर्ड ऑफ सेकेंडरी एजुकेशन मणिपुर द्वारा हिंदी, अंग्रेजी, मणिपुरी आदि भाषाओं की पाठ्यपुस्तकें एवं पूरक पुस्तकों में कई सारी बाल उपयोगी रचनाएं शामिल की गयी हैं। जो मणिपुर के प्रसिद्ध लेखकों तथा विशेषज्ञों द्वारा लिखा गया हैं। मणिपुर के सर्वश्रेष्ठ कवि एवं साहित्यकार ख्वाइराकपम चाओबा जीने 'छात्र मचा' नामक पाठ्यपुस्तक की किताब लिखी और उसके अतिरिक्त सात और पाठ्य-पुस्तकों हेतु शामिल करने के लिए लिखा। पर यह चर्चा का विषय रहा है कि इनको हम बाल साहित्य के रूप में नहीं रखा गया। परंतु जो रचनाएं इन्होंने रची है वे बाल साहित्य की श्रेणी के योग्य है और अभी यह चर्चा का विषय है। जबकि पाठ्यपुस्तकों के कविता, नाटक, कहानी आदि विधा को बाल साहित्य की श्रेणी के अंतर्गत नहीं रखा गया। प्रस्तुत पाठ्य-पुस्तकों में जो भी रचनाएं हैं लगभग सभी में बाल साहित्य के आवश्यक तत्व मिलते है।

अंत में यह कहा जा सकता है कि बालकों के लिए अलग साहित्य रचना आवश्यक है। जो बालकों की मानसिक स्थिति के अनुसार सृजन किया गया हो और उनमें बढ़ते हुए आधुनिकीकरण व विज्ञानकीकरण का आधार भी देखने को मिले। बाल साहित्य की विशेषताएं बताते हुए प्रकाश मनु ने बाल साहित्य के बारे में यह कहा है-'बाल साहित्य की सबसे बड़ी विशेषता है कि वह बच्चों के लिए आनंद की वस्तु है, अच्छा बाल साहित्य बच्चों के मन को रंजित करता है और फिर खेल-खेल में बहुत कुछ सिखाता भी है जिससे उनकी कल्पनाशीलता बढ़ती है और व्यक्तित्व का बहुमुखी विकास होता है।'[7] बाल साहित्य मनोरंजन के साथ-साथ नैतिक-शिक्षा, विज्ञान, मूल्य-शिक्षा, संवेदनशील एवं जिज्ञासा की भावनाएं उत्पन्न करें और बाल कहानी व बाल साहित्य के वास्तविक स्वरूप को संभाल कर रखने का भी प्रयास हो। इसके बावजूद मणिपुरी लोक कथा और बाल कहानी को अब तक अलग नहीं किया गया है। पाठक के बीच इन दोनों का अंतर स्पष्ट नहीं कर पाते हैं परंतु मूल बाल साहित्य रचना से नए-नए विषयों को रुचिपूर्ण रूप से रचना सृजन करेंगे तो बाल साहित्य के विकास रूप एवं समृद्ध बाल साहित्य मणिपुरी भाषा में भी अधिक देखने को मिल सकता है।

****

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. हिंदी साहित्य ज्ञानकोश खंड-5, संपादक: शंभुनाथ, आलेख, "बाल साहित्य: प्रकाश मनु", प्रथम संस्करण: 2019 , पृष्ठ सं.: 2436 ।
2. डॉ० हरिकृष्ण देवसरे बाल साहित्य: रचना और समीक्षा, आलेख "निरंकार देव सेवक", शकुन प्रकाशन, नई दिल्ली 1998 पृष्ठ सं. 53।
3. हिंदी बाल साहित्य का विवेचनात्मक अध्ययन: मस्तराम कपूर, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिसटीब्यूटर्स (प्रा).लि प्रथम संस्करण: 2015, पृष्ठ संख्या: 62।
4. स्रोत का विवरण: एम. गन्दमाला देवी, आयु:-70, लिंग:स्त्रि, निरक्षर, पता:थोड्जू पार्ट 2, पूर्वी इम्फाल, संग्रह दिनांक:28/04/2023
5. स्रोत का विवरण: नाम:-एस.(ओ.) अरुना लैमा, आयु:-46, लिंग:स्त्रि, साक्षर, काम: आंगनवाड़ी कार्यकर्ता, पता:पौराबी मैयाइ लैकाइ, पूर्वी इम्फाल, संग्रह दिनांक :15/04/2023
6. स्रोत का विवरण:एस.डाम्बी देवी , आयु:-75, लिंग:स्त्रि निरक्षर,पता: वाइतोन मनिङ लैकाइ पूर्वी इम्फाल, संग्रह दिनांक:28/04/2023
7. हिंदी साहित्य ज्ञानकोश खंड-5, संपादक:शंभुनाथ, आलेख "बाल साहित्य: प्रकाश मनु", प्रथम संस्करण: 2019, पृष्ठ संख्या: 2436।

सहायक ग्रंथ सूची:

1.हिंदी साहित्य ज्ञानकोश खंड-5, संपादक: शंभुनाथ , बाल साहित्य, प्रकाश मनु, प्रथम संस्करण:

2. डॉ० हरिकृष्ण देवसरे बाल साहित्य: रचना और समीक्षा, आलेख निरंकार देव सेवक, शकुन प्रकाशन, नई दिल्ली, 1998 ।

3.हिंदी बाल साहित्य का विवेचनात्मक अध्ययन मस्तराम कपूर, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिसटीब्यूटर्स (प्रा).लि, प्रथम संस्करण: 2015।

4.बाल साहित्य का इतिहास: प्रकाश मनु, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली 2018

5.सना कोकचाओ: राजकुमार भुवनसना, प्रकाशक: पोकनफम प्रकाशन, 1999।

6.सना कोकचाओ अमसुङ मरूप थेंगु: राजकुमार भुवनसना, प्रकाशक: राइटर्स फॉरम, इंफाल,2019।

7.तेंजै अमसुङ डा ममित: रघु लैशाङ्थेम, प्रकाशक :किङ पब्लिकेशन, इंफाल, 2005।

8.तल तरेत: कोईजम शांतिबला, प्रकाशक: न्यू लाइट प्रकाशन इंफाल, 2006।

9.तोमथिन अमसुङ खुजि: नाओरेम लोकेश्वर सिंह, प्रकाशक मणिपुरी लिटरेरी सोसायटी, 2020।

10.अङाङगी वारी: मेघचंद्र हैराङखोङजम, प्रकाशक: हैराङखोङजम पब्लिकेशन, 2016।

हिंदी साहित्य के परिप्रेक्ष्य में नारीवादी विचार

डॉ. पंडित बन्ने
डी.लिट्
शोध-निर्देशक एवं अध्यक्ष, हिंदी विभाग,
भारत महाविद्यालय, जेऊर (म.रेल)
तह. करमाला, जि. सोलापुर (महाराष्ट्र)

शोध सारांश :-सामाजिक विषमताओं पर, विसंगतियों पर सीमाओं पर बीसवीं शताब्दी में अत्यधिक लेखन हुआ है। मंजुला भगत, मन्नू भंडारी, मधु कांकरिया, मृदुला गर्ग, सुभद्रा कुमारी चौहान, उषा प्रियंवदा, नमिता सिंह, मृणाल पाण्डेय, नासिरा शर्मा, रमणिका गुप्ता, निर्मला पुतुल, अनामिका आदि साहित्यकारों ने नारीवादी विमर्श पर विचार किया है। स्त्रियों के लिए पुरुषों के समान शैक्षिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक क्षेत्र में पुरुषों के समान हो। हिंदी साहित्य में प्रेमचंद से लेकर राजेंद्र यादव तक अनेक पुरुष साहित्यकारों ने नारी समस्या को उकेरा है। उषा प्रियंवदा, कृष्ण, सोवती, मन्नू भंडारी एवं शिवानी आदि ने नारी मन के छिपे शक्तियों को पहचानकर नारी दिशाहीनता, युविधाग्रस्तता, कंठा आदि का विश्लेषण किया है। नारीवाद एक विचारधारा भी है और एक आंदोलन भी। नारीवाद विचारधारा मुख्य रूप से स्त्री-पुरुष भेदभाव से जुडी है तथा यह स्त्रियों की भूमिका अधिकारों से संबंधित है।

बीज शब्द :- नारीवाद, सामाजिक, समान, विमर्श, विचार, परिवेश,परिवार, अर्थव्यवस्था, संघर्ष।

प्रसिद्ध फ्रेंच लेखिका 'समोन द बोआ' ने नारी की स्थिति को स्पष्ट करते हुए 'द सेकंड सेक्स' नामक पुस्तक लिखी। उन्होंने सबसे पहले तो उन्हें स्त्री का स्त्री होना ही स्वीकार नहीं है। समाज का परिवेश, परिवार नारी को नारी बनाये रखने के लिए जिम्मेदार है। सिमोन ने कहा है- "औरत को औरत होना सिखाया जाता है। औरत बनी रहने के लिए अनुकूल बनाया जाता हैं।"[1] तथा पाश्चात्य स्त्रीवादी आंदोलन के ध्येय अलग - अलग दिखाई देते हैं। पुरुष के सामने समाज में स्थान प्राप्त करना इनका उद्देश है, लेकिन पाश्चात्य स्त्री की सबसे बडी समस्या आर्थिक स्वातंत्र्यता की है उसे केंद्र में रखकर पाश्चात्य स्त्रीवाद आगे बढ़ रहा है। भारतीय स्त्री धर्म, समाज, राजनीति, अर्थव्यवस्था, परिवार आदि क्षेत्रों में जकड़ी दिखाई देती है। भारतीय स्त्रीवाद इन स्तरों पर संघर्ष कर रहा है। समाज में विभिन्न स्थानों पर नारी को अन्याय-अत्याचार का सामना करना पड़ता है। आज इनका विरोध आरंभ हो रहा है। डॉ. विद्युत भागवत ने स्त्रीवाद का स्वरूप स्पष्ट करते हुए कहा है – "वैयक्तिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक स्तरों पर स्त्री पर जो अन्याय - अत्याचार के विरोध में संघर्ष की तैयारी रखना ही स्त्रीवाद को अपनाना है।"[2]स्त्रीवाद अर्थात पुरुषों के विरोध में संघर्ष न होकर जैविक, सामाजिक, मानसिक, आर्थिक और राजनीतिक स्तरों पर स्त्री को जो कनिष्ठ स्थान दिया जाता है, उसे नष्ट कर पुरुषों के समान स्थान प्राप्त करके अपने अस्तित्व की अलग पहचान निर्माण करना है।

मैत्रेय पुष्पा कृत 'विजन' उपन्यास नारी के स्वतंत्र अस्तित्व की खोज को प्रस्तुत करनेवाला है। इस उपन्यास की नायिका डॉ. आशा निडर और साहसी है। पति डॉ. मुकुल चाहता है उसकी पत्नी डॉ. आभा गृहिणी बनकर रहें, ससुर की सेवा करें। इस विषय को लेकर पति-पत्नी के बीच विवाद होता है। परिणामत: डॉ. आभा पति से तलाक लेती है और अपना करियर बनाने में सफल होती है। पच्चीस वर्षीय सरोज नामक मरीज पर वरिष्ठ डॉ. अनुज वर्मा के बलात्कार करने पर नीडर होकर एफ.आय.आर. दर्ज कराती है। वह अन्याय के विरुद्ध आवाज उठाती है।

बाजारवाद, भूमंडलीकरण, आधुनिकता को बढ़ावा देने वाला ममता कालिया कृत 'दौड' उपन्यास है। प्रस्तुत उपन्यास में भूमंडलीकरण तथा बाजारवाद युग की नारी परंपरागत आदर्शों की बेड़ियों को तोड़कर पुरुष के साथ कंधे से कंधा मिलाकर चलने में विश्वास रखती है। 'दौड' उपन्यास की नायिका स्टैला डिमौलो जीन्स और टॉप पहननेवाली आधुनिक युवती है। वह कार्यकुशल, कैरियारिस्ट और इंटरप्राईज कार्पोरेशन में बराबर की पार्टनर है। उसकी कंपनी पवन पांडे गुर्जर कंपनी को कम्प्यूटर सप्लाई करती है। स्टैला का पति पवन पाण्डे अपनी माँ से कहता है- "माँ उसे रसोई नहीं आती लेकिन वह कम्प्यूटर विजर्ड है। स्टैला आज के बाजारवाद युग के अनुरूप दौडनेवाली उच्चशिक्षित युवती है। उसे रसोई नहीं आती किंतु कार्पोरेट की दुनिया में कामयाबी हासिल करती है। शादी से पहले वह प्रेमी पवन के रूम में रहती है। वह आर्थिक रूप से स्वयंपूर्ण है। वह पतिपर आश्रित नहीं है बल्कि अपने जीवन के फैसले वह स्वयं लेती है।

वैश्वीकरण के दौर में पश्चिमी सभ्यता से प्रभावित नारी भारतीय संस्कृति को भूलती जा रही है। पश्चिमी चकाचौंध ने उसे दिग्भ्रमित कर दिया है। वह आत्मकेंद्रित हो सुख-सुविधाओं से खुद करने की नाकाम कोशिश कर रही है, पर वह अनजान है। "उपभोक्तावादी समाज और संस्कृति ने स्त्री का बाजारु ध्वस्तुड में तकीस कर महत्वाकांक्षाओं की ऊँधी गलियों में भटकने के लिए छोड़ दिया है।"[3]

हिंदी साहित्य के समकालीन परिदृश्य में कृष्णा सोबती, पुष्पा, प्रभा खेतान, मन्नू भंडारी, सूर्यबाला, कात्यायनी, अनामिका आदि का स्त्री विमर्श संबंधी दृष्टिकोण अधिक व्यापक होता हुआ दिखाई दे रहा है। बचपन से ही बाल मानसिकता पर पितृसत्ताक संस्कार किए जाते हैं जिनमें लड़को को श्रेष्ठ और लड़कियों को कनिष्ठ बताया जाता है।

बाप बचपन में से ही घर में स्त्रियों के लिए कोई स्थान ही नहीं होता। स्त्री पितृसत्ताक पद्धति में स्त्री रोबोट की तरह काम करती है। मेहरून्निसा परवेज और नसिरा शर्मा ने मुस्लिम समाज की स्त्रियों को लेकर लेखन कार्य किया है। नासिरा शर्मा शाल्मली और ठिकरे की मँगनी महत्वपूर्ण है। शाल्मली में जिस स्त्री दाम्पत्य स्थिति का चित्रण है वह मुसलमान न होकर हिंदू है। पति के रूप में पुरुष स्वयं कई गुना औरत से निम्न होकर भी अपनी औरत को पत्नी रूप में गुलाम समझता है। लेखिका शाल्मली के शब्दों में कहती है – "औरतों के पास दो अभिव्यक्तियाँ है सर झका देना या समस्या को अधूरा छोड़ सर काट लेना। मेरा विश्वास न घर छोडने पर पर न तोड़ने पर आत्महत्या न करने है न आपके आपने को किसी के लिए स्वाहा करने में है। मैं तो घर के साथ औरत के अधिकार की कल्पना भी करती और विश्वास भी।"[4]

मृदुला गर्ग आधुनिक विचारों से प्रभावित साहसी लेखिका है। उनके अनुसार नारी- पुरुष संबंधों को स्वतंत्र एवं स्वच्छाद होना चाहिए। उसमें किसी तरह के बंधन, पारंपारिक मान-पर्यादाएँ नहीं होनी चाहिए। 'कठगुलाब' उपन्यास के सारे नारी पात्र नर शोषण का शिकार होकर उसमें संघर्ष करते हुए दिखाई देते हैं। वह नर-नारी संबंधों पर कहती है- "अगर मर्द औरत के बीच का रिश्ता शोषक शोषीत का है तो क्या उसका विकल्प लेब्जियान्जिम है। क्या औरत मर्द से सिर्फ इसलिए आकर्षित होती है क्योंकि वह उसे बच्चा दे सकता। अगर औरत मर्द के बिना स्पर्श ज्ञान द्वारा बच्चा पैदा कर सके तो क्या औरत मर्द के बीच का आकर्षण समाप्त हो जाएगा।"[5]

आज नारी की प्रत्येक क्षेत्र में सक्रिय भूमिका निभा रही है। "शिक्षा, चिकित्सा, तननीकी, विज्ञान, कला, कविता, साहित्य सृजन,

पर्वतारोहण, क्रीडा जगत, पुलिस सेना, कोई भी क्षेत्र ऐसा नहीं जहां नारी का प्रवेश न होता है।"[6]

निष्कर्ष :-

यह कहा जा सकता है कि आज स्त्री समाज में अपने अस्तित्व तलाश कर रही है। परंपरा से चलते आ रहे बंधन, अपमान, अन्याय, अत्याचार, पारिवारिक बंधन छुटन से भरा जीवन जीना नहीं चाहती | स्त्री समाज में समानता की भावना निर्माण करना, नारी का अस्तिव स्थापित करना, संसार की बंधनों से मुक्त होना आदि कार्य स्त्री लेखन के माध्यम से हुआ है। नारी शिक्षित होने के कारण समाज में स्थित सभी कुप्रथाओं को तोड़ नारी सशक्त बना रही है। अपनी अस्मिता एवं अस्तित्व के प्रति सजग नारी अपने जीवन से जुड़े हर फैसले स्वयं लेने लगी है। शिक्षा ने उसे आत्मनिर्भर तो बनाया ही है साहस भी उत्पन्न किया है। वे आर्थिक स्वतंत्रता की समर्थक और आर्थिक स्वतंत्रता के लिए संघर्षशील है। विवाह, जैन संबंध प्रेम विवाह, विवाह विच्छेद जैसी समस्याओं मे भी साहस के साथ हल खोजती हुई आगे बढ़ रही है। यही परिवर्तन आज स्थियों भी दिखाई दे रहा है।

****

संदर्भ ग्रंथ -

1. स्त्रीवाद और महिला उपन्यासकार - डॉ. वैशाली देशपांडे, पृ.15.
2. वही, पृ.7.
3. हंस-सं-राजेंद्र यादव, पृ.6, नवंबर 2009, अक्षर प्रकाशन, नई दिल्ली.
4. स्त्री विमर्श - उमा असारडोहकर,पृ.161.
5. कठगुलाब - मृदुला गर्गन पृ.169., भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली.
6. सम्मेलन पत्रिका - संत विभूती मिश्र, पृ.162, हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, इलाहाबाद, सन 2009, अंक- 19

सेज पर संस्कृत उपन्यास में चित्रित-स्त्री

डॉ. आशीष

सहायक प्राध्यापक

सेंट क्लारेट महाविद्यालय, बैंगलोर, कर्नाटक

संस्कृति और संस्कार दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। व्यापक अर्थ में देखें तो संस्कार अर्थात् शुद्धि, संशोधन, सफाई, सुधारना, आदि अर्थात् मनुष्य के मन, वचन और कर्म का शुद्धिकरण करना या उसमें सुधार करना। गोविंद चंद्र पाण्डेय ने 'संस्कार' को परिभाषित करते हुए लिखा है - "संस्कृति का सामान्य अर्थ है - संस्कार। संस्कार कहते हैं, दोषापनयन और गुणाधान को।" संस्कृति और संस्कार के सन्दर्भ में आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का कथन भी सटीक जान पड़ता है कि "मनुष्य की श्रेष्ठ साधनाएँ ही संस्कृति है।" इस आधार पर यह समझा जा सकता है कि संस्कृति और संस्कार को लेकर जो वास्तविक मान्यताएँ समाज में प्रचलित हैं, उसका अनुसरण नहीं किया जाता। इसके विपरीत ऐसे कई पहलू सामने आते हैं, जहाँ पर समाज के सत्ताधारी अपनी वक्तिगत मान्यताओं को लागू करते हुए दिखायी देते हैं। इस संदर्भ में स्त्री को धर्म से जोड़ कर देखा जाए तो समाज के विभिन्न सत्ताधारियों की मानसिकता एक सी ही दिखायी देती है। धर्म का नाम आते ही स्त्री के प्रति संकुचित मानसिकता का प्रदर्शन खुलेआम होता है। वास्तव में, धर्म मनुष्यों को उनकी मानसिक विकृतियों से मुक्त करता है किन्तु कई लोग इसमें हस्तक्षेप कर उसे रूढ बना देते हैं और उसका पालन अनिवार्य कर देते हैं।

इस आधार पर मधु काँकरिया कृत 'सेज़ पर संस्कृत' उपन्यास को देखा जा सकता है। लेखिका ने इस उपन्यास के माध्यम से समाज की उन ग्रंथियों को उजागर किया है, जिनमें स्त्रियाँ संस्कृति और संस्कार के नाम पर उत्पीड़ित एवं प्रताड़ित होती हैं। स्त्री एवं पुरुष तथा जैन धर्म के शीर्ष पर बैठे धर्मगुरु की सत्ता के माध्यम से सामाजिक विकृतियाँ एवं अपसंस्कृति उभर कर आती है। परिणामस्वरुप मातृसत्ता के आगे एक छोटी लड़की (छुटकी) का जीवन नारकीय बन जाता है। प्रायः देखा जाता है कि संस्कार और संस्कृति की परिधि को अधिकतर स्त्रियों तक सीमित करके रख दिया जाता है, इसका उदाहरण छुटकी और उसकी माँ के द्वारा देखने को मिलता है। वहीं, उस घर की बड़ी बेटी संघमित्रा इस जंजाल में नहीं फँसती और प्रयास करती है कि किसी भी प्रकार कम-से-कम वह अपनी छोटी बहन छुटकी को साध्वी बनने की प्रक्रिया से बचा ले। इस दौरान वह अनुभव करती है कि स्त्री के अस्तित्व को संदेह की दृष्टि से देखा जाता है। स्त्री की शुद्धता एवं अशुद्धता को उसके चरित्र का पैमाना बनाया जाता है, उदाहरणस्वरूप - "शुरू से ही तर्क करने की अपनी आदत। मैं फिर अड़ी रही, 'जब रोज बिना नहाए नहीं घुसती तो आज कैसे घुसेगी?' हँसी रोकने के प्रयास में दादी की नाक फूल गई थी। दबी-दबी हँसी हँसते और नाक फुलाते हुए बोली, 'रोज तेरे पापा रात को तेरी अम्मा को गंदा कर देते हैं, इस कारण तेरी अम्मा को नहाना पड़ता है।" जो कार्य एक स्त्री के द्वारा हो रहा है, वही कार्य पुरुष (पति) द्वारा भी हो रहा है किन्तु संस्कार और संस्कृति के सारे नियम स्त्रियों पर ही लागू होते हुए दिखायी देते हैं, पुरुषों पर नहीं। यह समाज की वास्तविकता है, जो वह चयनित रूप से अपनाता है।

भारतीय संस्कृति एवं संस्कार के मूल तत्वों को देखें तो विवाह उसका एक अभिन्न अंग है और सहवास विवाह से जुड़ी हुई एक क्रिया। अतः जिस प्रकार लेखिका ने लिखा है कि सहवास के बाद स्त्री गंदी हो जाती है और रसोई में जाने से पहले उसे नहाना पड़ता है, तो यह जानना आवश्यक है कि सहवास के बाद नहाना भारतीय संस्कृति का ही एक अंग है। सहवास एक प्रकार का श्रम है, जो दो मनुष्यों के

सानिध्य से हो रहा है और उसके बाद नहाना अर्थात् अपने शारीरिक अंगों को साफ करना है। भारतीय परिप्रेक्ष्य में सहवास के बाद शुद्धि एक स्वाभाविक प्रक्रिया है, जो स्त्री और पुरुष दोनों पर लागू होती है। लेखिका ने इस पक्ष को चयनित ढंग से प्रस्तुत किया है। संस्कृति का सामाजिक स्वरूप सकारात्मक होता है। जबकि उसका यथोचित अनुसरण सामाजिकों को करना होता है। कोई काम किसी सत्ताधारी द्वारा बद्धमूल तरीके से होने लगे, तो वह संस्कृति अपसंस्कृति में बदलने लगती है। समाज में कई धारणाएँ प्रचलित हैं कि अमुक-अमुक काम करने से ऐसा होता है और उसका नकारात्मक परिणाम मिलता है।

प्रस्तुत उपन्यास के माध्यम से समाज में स्त्री को पुरुष के अधीन दिखाया गया है। सभी रीति-रिवाजों में पत्नी पति से आशीर्वाद प्राप्त करती है और पति से पूर्व भोजन ग्रहण नहीं करती। वर्तमान समय में इस दृष्टि में भी परिवर्तन दिखाई देता है। ऐसी कई मान्यताएँ समय के साथ रूढ़िग्रस्त होती चली गई हैं। समय में परिवर्तन के साथ-साथ ऐसे रिवाज और परम्पराओं में भी परिवर्तन हुआ है और हो रहा है। कुछेक जगह स्त्री के विद्रोह को दबा दिया जाता है। लेखिका ने एक कथांश में विवाह की एक रस्म का वर्णन कुछ इस प्रकार किया है - "एक राजस्थानी शादी में उसने देखा था, शादी की रस्म के बाद दुल्हे को सूखे नारियल का एक टुकड़ा दिया गया था - चबा लीजिए। मुँह में रखकर उसने दो-तीन बार चबाया ही था कि दुल्हन की माँ ने कहा, अब इस चबाए टुकड़े को निकालकर अपनी दुल्हन के मुँह में डाल दीजिए। आज समझी वह इन सारी रस्मों का निहितार्थ। शुरुआत में ही मन की ज़मीन पर हीनता का बिरवा रोप दिया जाए।" लेखिका ने संघमित्रा के माध्यम से यह बताने का प्रयास किया है कि इस प्रकार जूठन खिलाना अपमानजनक है। साथ ही यह भी बताने का प्रयास है कि परंपरा और रीति-रिवाज के नाम पर स्त्री के साथ दुर्व्यवहार होता है। पति का चबाया हुआ नारियल का टुकड़ा उसकी पत्नी को देना विकार बोधक माना गया है। यह भी कि विवाह के प्रथम दिन से ही स्त्री के मन में हीनता का भाव पैदा कर दिया जाता है एवं उसको मानसिक रूप से गुलामी की ओर धकेल दिया जाता है।

भारतीय परिप्रेक्ष्य के अनुसार देखा जाए तो विवाह के बाद सामूहिक रूप से कुछ ऐसी प्रथाएँ होती हैं, जिससे नवविवाहित दंपति के बीच सामंजस्य स्थापित हो सके। वर्तमान समय में इसे कई प्रकार की क्रीड़ाओं द्वारा संभव करवाया जाता है। उन क्रीड़ाओं में स्त्री को स्वतन्त्रता होती है कि वह उसमें भाग ले या न ले, किन्तु वह भाग लेती है और धीरे-धीरे सबके साथ घुलती-मिलती जाती है। ऐसी कई क्रीड़ाएँ प्रत्येक क्षेत्रों में भिन्न-भिन्न रूपों में होती हैं। अतः यह स्त्री पर मढ़ा या थोपा नहीं जाता कि वह जबरन कोई कार्य करे। जो कार्य वह नव दंपति के रूप में करती है, वही कार्य फिर वह दूसरे नव दंपति के साथ करवाने में भूमिका निभाती है। अतः उपरोक्त उदाहरण के माध्यम से देखा जाए तो लेखिका ने भारतीय सांस्कृतिक तत्वों को हीनता की संज्ञा दी है, जो कि भारतीय समाज एवं सांस्कृतिक दृष्टि से उचित नहीं हो सकती।

संघमित्रा अपनी छोटी बहन छुटकी को साध्वी बनने से रोकने के लिए अनेक प्रयास करती है। वह जैन आश्रम के अंतःनिवासियों से बातचीत करती है, ताकि मूल समस्या की जड़ तक पहुँच कर तर्क-वितर्क करे। इस कड़ी में संघमित्रा ने आश्रम में कई वरिष्ठ स्त्रियों से बातचीत की और पता लगाने का प्रयास किया कि आखिर उन्होंने साध्वी बनने का निर्णय क्यों लिया? इसमें कई स्त्रियों ने अपनी अलग-अलग कहानियों का बखान किया। उन्हीं में से एक स्त्री बताती है कि उसे शादी में दहेज भरपूर दिया गया था, किन्तु सुहागरात में पता चलता है कि उसके पति के बड़े भाई ने उसे ठुकराया दिया था और फिर उसके छोटे भाई ने उससे विवाह किया था। अपने आत्मसम्मान को ठेस पहुँचते देख उसका मन वैराग्य की ओर उन्मुख हो गया।

दृष्टव्य है - "दगने उत्साह और धूमधाम से पिता ने ब्याह रचाया। मैं मन मैला न करूँ, इसलिए हैसियत से बढ़कर खर्च किया। कुन्दन का सेट और सोने की बिछिया दहेज मे दी। पूरे दो दिन बारात की खातिर-तवज्जो की। इस पर भी नहीं भरा मन तो हर बाराती को विदाई में चाँदी का प्याला दिया। पर कौन टाल सकता था होनी को?" स्त्रियों को निरंतर यही कहा जाता है कि समझौता कर लो। घर-परिवार में यदि स्त्री का सम्मान हो तो उसको किसी के अधीन रहने की आवश्यकता नहीं पड़ती, वरन् वह आत्मनिर्भर होकर समाज को नई दिशा देने का दंभ भी रखती है।

संघमित्रा ने जिस तरह उस साध्वी से बात की उसी तरह एक साधु मुनिवर से भी बातचीत की। उसने पाया कि साधु मुनिवर अनैतिक रूप से ऐसे कई कार्य कर रहा था, जो समाज हित में नहीं थे। उसके पिता ईमानदारी से अपना काम करते तो वहीं उनका बेटा बेईमानी से काम करता। पिता संस्कृति के परिचायक तो बेटा अपसंस्कृति का। दो व्यक्ति दोनों में समय का अंतराल और उनके कार्यों में भी वही अंतर। इस तरह संघमित्रा को यह आभास हो रहा था कि वह अपनी छोटी बहन को इन उदाहरणों के आधार पर बचा लेगी, किन्तु अंततः वह असफल ही रहती है।

समाज में धर्म के नाम से ऐसी कई मान्यताएँ बना दी गई हैं, कि वह किसी आडंबर से कम नहीं होती। एक छोटी लड़की (छुटकी) जो समाज और मोह-माया से अपरिचित है, वह साध्वी बनने का अर्थ क्या जाने? उस पर जबरन् सामाजिक दबाव डाल कर अंधेरे में धकेलना कितना सार्थक है? धर्म को सर्वोपरि मान कर मनुष्य और उसके मनुष्यत्व को समाप्त कर देना, समाज के लिए हानिकारक सिद्ध हो सकता है। वास्तव में धर्म और संस्कृति किसी को बाँध कर नहीं रखती, वह अनेक सामाजिक बंधनो और अमर्यादित व्यवहारों से मनुष्य को मुक्त करती है। जो कार्य धर्म एवं संस्कृति के नाम पर एक जगह बाँध कर रख दिए जाते हैं वे सही मायनों में अपसंस्कृति को बढ़ावा देते हैं। वे समाज में विकृतियों का संचार करते हैं। उदाहरणस्वरूप देखा जाए तो - "दिव्यप्रभा के बालों की आखिरी लट को साध्वी प्रमुख प्रज्ञावती ने उखाड़ दिया।...दुल्हन छुटकी का जोगिन में रूपान्तरण। शृंगारहीन। बेलमुंडी। मुँह पर श्वेत पट्टी। नंगे पैर। श्वेत घाघरा-ओढ़नी। हाथों में चरवला। और चेहरे पर भावहीन उदासी। अब वह मोक्ष मार्ग की यात्री थी।"

साध्वी बनने की प्रक्रिया के दौरान छुटकी के साथ अमानवीय व्यवहार हुआ। उसके बालों को जड़ से उखाड़ दिया गया। उसके वस्त्र भी बदल दिये गए और सफेद घाघरा, ओढ़नी पहना कर सबके सामने प्रस्तुत किया गया। इतना ही नहीं उस छोटी चंचल बच्ची के मुँह को भी पट्टी से बाँध दिया गया। जिस बच्ची के खेलने-कूदने के दिन थे, उस नासमझ को साध्वी का नाम देकर जंजीरों में जकड़ दिया गया। इसके विपरीत यदि कोई व्यक्ति ऐसी किसी कुरीति का विरोध करता है तो वह धर्म विरोधी कहलाया जाता है।

वर्तमान समय जिस तीव्रता से आगे बढ़ रहा है, उसमें ऐसे कई उदाहरण आएँ हैं जिसमें युवा आधुनिक भौतिकता को त्याग कर मोक्ष का सहारा लेना उचित समझते हैं। वहीं, कुछ युवाओं को मोक्ष की आड़ में साधु-साध्वी भी बनाया जाता है। तब वे सामाजिक दबाव सहते हुए चुपचाप चले तो जाते हैं, परंतु आश्रम में कुछ समय व्यतीत करने के बाद जब उनके अंदर का व्यक्तित्व, जिज्ञासाएँ एवं इच्छाएँ जागृत होती हैं तो वे अपने आपको रोक नहीं पाते। वे सारी क्रियाएँ अचेतन होकर उनमें बसी रहती हैं और फिर किसी-न-किसी रूप में वह बाहर आती हैं। मोक्ष को जीवन का अंतिम लक्ष्य मानना उनके लिए मिथ्या साबित होता है। उपन्यास के माध्यम से देखा जाए तो एक साधु मुनिवर को जीवन की वास्तविकता का ज्ञान एक स्त्री ने कराया। वह जिस आत्मिक

सुख के लिए आया था उसे वह एक स्त्री द्वारा प्राप्त हुआ - "वह सुख एक स्त्री है जिसने पहली बार मुझे पुरुष होने का अहसास कराया है। जिसने पहली बार मुझे इस सत्य की प्रतीति कराई कि जीवन की पुकार क्या होती है? और कितना कठिन है उसे अनसुनी करना। बिना एन्द्रिक सुख से गुजरे हम कुंठित आत्मा चाहें बन जाएँ पर मुक्तात्मा नहीं बन सकते कि इंद्रिय निग्रह बकवास है।"

कई बुद्धिजीवी या साधारण मनुष्य धर्म का विरोध न कर, धर्म में पनपी कुरीति एवं आडंबरों का विरोध करते हैं। ऐसे में उनके आसपास के लोग उन्हें धर्म विरोधी करना आरंभ कर देते हैं। संघमित्रा के पिता धर्म में पनपी कट्टरताओं का खुल कर विरोध करते थे और उनकी पत्नी अर्थात् संघमित्रा की माँ का मानना था कि उनकी मृत्यु उन्हीं मान्यताओं के कारण हुई। अंधविश्वास से जकड़ी उनकी पत्नी समाज के उस वर्ग का प्रतिनिधित्व करती हैं, जहाँ ऐसा मानना सामान्य है कि धर्म (धर्म में पनपी कुरीतियाँ) के खिलाफ बोलने से उनकी कुछ हानि हो सकती है,इसलिए धर्म के खिलाफ कुछ न कहा जाए। धर्म के नाम पर पनपी कुरीतियों का विरोध न किया जाए, जबकि वास्तविकता कुछ और ही कहती है।

अतः इस उपन्यास के माध्यम से कई पहलू सामने आते हैं, जैसे असमानता, सत्ता का रूढ़ रूप, अमानवीयता, मूल्यों का नैतिक पतन एवं सांस्कृतिक मूल्यों का पतन आदि। इसके अतिरिक्त यह पहलू भी सामने आता है कि स्त्री की स्वतंत्रता को लेकर कई पुरुष मुक्त विचारों को भी अपनाते दिखाई देते हैं, परंतु कई पुरुष उसी परंपरा का निर्वहन करते दिखाई देते हैं, जो रूढ़िबद्ध हो चुके हैं। कई स्त्रियों ने इस बंधन को स्वयं तोड़ा है और वे प्रयास करती हैं कि समाज में समन्वय का संचार हो। तर्क के आधार पर वे अपनी अस्मिता एवं स्त्री के अस्तित्व को बचाने का प्रयास कर रही है, ताकि अधिक से अधिक स्त्रियाँ इस जंजाल से मुक्त हो सके। संस्कार, संस्कृति और धर्म मनुष्य में मनुष्यत्व का निर्माण करता है। आवश्यकता पड़ने पर मनुष्य ही मनुष्य के काम आने वाला प्राणी है, किन्तु समाज के कुछ बुद्धिजीवियों और धार्मिक पद पर बैठे लोगों ने इसको मूल्यहीन बना दिया है। धर्म के नाम से फैली कुरीतियों को समाप्त करने की बजाए, वे स्वयं इसका पालन करते दिखाई देते हैं।

****

सन्दर्भ सूची : -

1. गोविंद चंद्र पांडेय, समसामयिक भारतीय संस्कृति का आधार, संस्कृति की सत्ता (सं. डॉ. दयानिधि मिश्र) पृ. 21
2. हजारी प्रसाद द्विवेदी, अशोक के फूल, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, तीसवाँ संस्करण 2011, पृ. 67
3. मधु काँकरिया, सेज पर संस्कृत, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2010 पृ. 56
4. वही, पृ. 151
5. वही पृ. 95
6. वही पृ. 99
7. वही, पृ. 132
8. वही 186-187

दासताएँ औरत
(वीना वर्मा की नज़र से)

डॉ.सुनील
एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष
हिन्दी-विभाग गुरु नानक देव
विश्वविद्यालय, अमृतसर-) 143005
पंजाब)

डॉ.चमकौर सिंह
सहायक प्रोफ़ेसर,
हिंदी-विभाग
ए.एस. कॉलेज फ़ॉर वीमेन, खन्ना

वीना वर्मा का पंजाबी कहानी संग्रह "ख़रीदी हुई औरत")मुल्ल दी तींवीं) ,समाज में नंगी हो चुकी औरत की दास्तान है। औरत को औरत के पर्दे से एक औरत ही बख़ूबी देख सकती है,जो वीना वर्मा के चश्में से उभरे चित्रों में हम अनुभव और महसूस कर सकते हैं। पुरुष प्रधान समाज में औरत सबसे बड़ी गुलामी का प्रतीक है, जब तक औरत को मर्द रूपी लाठी की दरकार रहेगी,तब तक वो इसी तरह उसी लाठी का शिकार होती रहेगी। बहुत कम ऐसे कथाकार होते हैं,जो संवेदनशील मुद्दों को इतनी बेबाकी से लहू लुहान कर कर रख देते हैं और लाल रंग की आदी हो चुकी नज़रें तभी उन्हें अहमियत देती हैं, जब उनकी आंखों के सामने लाल रंग परोसा जाए, वीना वर्मा ने उन्हीं चीथड़ों में लिपटी औरत की कथा को अपने हृदय की मार्मिकताको दृढ़ता से पेश किया है।

पैसों के दाम बिक जाना,नँगा होना ही होता है, औरत की इज़्ज़त, उसका आत्मसम्मान ही उसके कपड़े होते हैं, जब वो बिक जाए या ख़रीद ली जाए...तब वो कपड़ो में भी नंगी ही होती है। नंगा होना सिर्फ कपड़े न होना ही नहीं होता, नंगा होना अपने आप से दर हो जाना भी होता है, नंगा होना भरे समाज में लाचार होना भी होता है, हर किसी की नज़रों में रखैल नज़र आना भी नंगा होना होता है, पूरे समाज की भाबी बन जाना नंगा होना होता है,दूसरों पर आश्रित होना , औरत के लिए नंगा होना ही है। कई बार औरत बिनां कपड़ों के भी नंगी नहीं होती और पुरुष कपड़ों में भी नंगे होते हैं।

विदेशों में ज़िंदा लाशों के रूप में कचील बन चुकी औरतों की कहानी बयां करती हैवीनावर्माकी कहानी कचील।पंजाबी संस्कृति में बच्चे को जन्म देते हुए मर जाती औरत,जिसकी गति नहीं हो पाती और और उसकी रूह भटकती रहती है,उसे कचील कहा जाता है। वीना की कहानी 'कचील ' की सुरजीत की ज़िंदगी समाजिक परम्पराओं और मर्द ज़ात की वहशी और शारीरिक ख्वाइशों की भेंट चढ़ चुकी है, जिससे वो ज़िंदा होते हुए भी कचील बन चुकी है,जो ज़िंदगी भर एक साथ,एक परिवार को पाने के लिए भटक रही है, सोलह साल की चढ़ती जवानी में उसकी शादी विदेशी बाप की उम्र के व्यक्ति से कर दी, व्यक्ति न होकर वो एक जानवर रहा। "उफ़्फ़ ! आदमी क्या था? राक्षश था पूरा। जानवरों की तरह सेक्स करता,कसाइयों की तरह पीटता था और जल्लादों की तरह उसकी देखनी थी।"पृष्ठ78 (1)

सात साल बाद उससे तलाक के बाद ,सुरजीत की ज़िंदगी में कुलदीप आया,जो पंजाब से पढ़ने के लिए आया था,सुरजीत के लिए कुलदीप,ज़िंदगी की नई किरण के रूप में आया,उसे लगा कुलदीप उसकी जवानी को वापिस ले कर ज़िंदगी के हसीन सपनों को पूरा करेगा, सुरजीत ,कुलदीप का पति की तरह ध्यान रखती,उसके कपड़े धो कर,इस्त्री कर ,लहज़े के साथ सम्भाल कर रखती, उसे सुबह शाम ताज़ा खाना बना कर खिलाती,रात को पढ़ते समय गर्म दूध देती, रात को उसका बिस्तर भी गर्म करती। लेकिन वो एक दिन पंजाब में घरवालों को मिलने के बहाने वापिस चला गया,कितने महीने सुरजीत उसकी प्रतीक्षा करती रही,वो नहीं आया। एक दिन पता चला ,कुलदीप तो दो महीने पहले वापिस आ गया,और उसने किसी दूसरी लड़की से

शादी कर ली। उसी दिन से सुरजीत को दौरे पड़ने शुरू हुए,और वो पागलों की तरह रहने लगी, एक बार कुलदीप को मिलने की इच्छा रखती के वो उससे पूछ सके कि उससे से क्या ग़लती हुई, उसके प्यार में कहां कमी रह गई। ऐसी ही अवस्था में एक दिन एक सहेली ने बताया के पाकिस्तान से कोई मौलवी आया है,जो काले इल्म का जानकार है,और सभी की मनचाही इच्छाओं को पूरा करता है, वो सुरजीत को पुड़िया बना कर देता है खाने के लिए, और तीन दिन में कुलदीप उसके कदमों में होगा.....आश्वासन देता है।तीन दिन के बाद कुलदीप तो नहीं आया, लेकिन सुरजीत उस मौलवी के चरणों मे पड़ी थी।सुरजीत के दिमाग पर कुलदीप की जगह अनवर ने ले ली।उसने भी सुरजीत को ज़िंदगी का साथ देने के एवज़ में जम कर चूसा...सुरजीत को एक बार फ़िर अनवर में हम साथी दिखने लगा, लेकिन सुरजीत को फिर झटका लगा,जब पता चला कि अनवर तो शादीशुदा है,बच्चों वाला है,और वो अपने परिवार को इंग्लैंड ले आता है। सुरजीत अपनी अस्मिता को बनाए रखने के लिए और समाज में जीने के लिए इस आशा के साथ अनवर के हाथों लुटती रहती है के एक दिन अनवर उससे शादी कर लेगा, और उसे दूसरी बेगम का दर्जा देगा।

"मैं फिर दुनिया के मेले में शरेआम लुट चुकी थी,और किसी को बता भी नहीं सकती थी, मैं सभी रिश्तेदारों को कह चुकी थी कि मैं अनवर से निक़ाह कर रही हूँ।"पृष्ठ 80(2)

सुरजीत, अपनी ज़िंदगी को एक नाम देने के लिए आज सुरजीत से वहीदा बन चुकी थी,उसने मस्ज़िद जाकर ,कलमा पढ़ कर , अपने आप को सिख से मुस्लिम बना लिया था।

"औरत की भी क्या ज़िंदगी है इंदू ! हमेशा किसी का होना चाहती है,खुद को किसी पे न्योछावर करना चाहती है,उसका भी कोई मालिक हो..क़िस्मत वाली होती हैं,जिनके मालिक होते हैं...कहते कहते सुरजीत चुप हो गई"पृष्ठ 82(3)

सुरजीत को लगता है वो भी एक कचील बन चुकी है,जो जीते जी मर चुकी है,और गति पाने के लिए जगह जगह भटक रही है,और वो कहती है के इंग्लैंड की आधी से ज़्यादा औरतें कचील की जून भोग रही हैं। आतंकवादी की मशूक(अत्तवादी दी मशूक) कहानी पंजाब के उस काले दौर कोदर्शाती है,जिसमें अनेकों नौजवानों की जिंदगियां तबाह हो गई,झूठे मुकद्दमों में फंसा कर जेलों में ठूस दिया या अधिक्तर नौजवानों को झूठे एनकाउंटरों में मार गिराया... पंजाब के मानव अधिकारों के पैरोकार जसवंत सिंह खालड़ा द्वारा नब्बे के दशक में पंजाब के काले समय की त्रासदियों को रिपोर्टबद्ध किया ,और स्टेट द्वारा हुए अत्त्याचारों को विश्व के सामने रखा, पंजाब के हज़ारों नौजवानों की लावारिस लाशों और सत्ता तंत्र द्वारा गयाब किए जा चुके नौजवानों की लाशों की पहचान की और अदालतों और समाज के सामने उनके सबूत रख न्यायकी फ़रियाद की। वो बात दसरी है के जसवंत सिंह खालड़ा के साथ भी वही हुआ,जो हज़ारों पंजाबी नौजवानों के साथ हुआ, 1995 में उन्हें पंजाब पुलिस द्वारा घर से उठाया गया,और आज तक उनकी लाश नहीं मिल सकी,जिसने हज़ारों लाशों को पहचान दी।

इन्हीं काले दिनों की व्यथा को वीना वर्मा की कहानी आतंकवादी की मशूक प्रस्तुत करती है,जिसमें सिस्टम द्वारा आतंकवादी की स्टम्प लगाकर प्रीतम, उसके माँ ,बाप और बहनों की ज़िंदगी नरक बना दी जाती है। स्टेट का सर्वश्रेष्ठ एथलीट जिसे उस काले दौर के तंत्र ने झूठे आरोपों में आतंकवादी बना कर जेलों में सड़ने को मजबूर कर दिया, पीछे सारा परिवार बिखर गया, मीनू का पति ,जो एक पुलिस वाला है, उसके चरित्र द्वारा कहानीकार स्थापित करता है के किस तरह पुलिस पैसे और प्रमोशनों के लिए झठे आरोपों में नौजवानों को फसा कर एनकाउंटर कर रही थी,या परिवार वालों से पैसे ऐंठ रही थी।"मेरा तथाकथित पुलिस वाला पति,हर रोज़ दो चार ग़रीबों को सलाखों के पीछे फेंक के नोटों से जेबें भर कर लाता"पृष्ठ 87(4)इस कहानी का मुख्य उद्देश्य पंजाब के उस काले दौर से, आने वाली पीढ़ियों को अवगत कराना है,और उस दौर में कैसे पंजाब की जिंदगियां बर्बाद हुई , उनका चित्रण करना भी कहानीकार का उदेश्य रहा।

वीना वर्मा की कहानियां औरतों की दिल दहला देने वाली दस्तानों को तो बयां करती ही है, साथ ही हमारे समाज में मर्दों के घिनौने चेहरे को भी बेपर्दा करती हैं। समाज में शराफ़त के चेहरे लिए , ऐसे हैवान घूमते रहते हैं, जो रिश्तों नातों को तार तार कर रख देते हैं। और औरत ज़ात की मज़बूरियों का अपने पैसे के बल पर फ़ायदा उठाते हैं। "पीछे वाला दरवाज़ा"(पिछला दरवाज़ा) कहानी मिस्टर दत्ता के रूप में एक हैवान की कहानी है,जो औरतों को पैर की जूती से ज़्यादा कुछ नहीं समझता, औरत की इज़्ज़त और आत्मसमान को पैसों में तोलता है,और मानता है कि 10-10 डॉलर में औरत मिल जाती है।

कहानी की 20 साल की गीता, तीन साल से,शराबी पति और ससुराल वालों से रोज़ मार खाती और गालियाँ खाती, गीता अपने जीवन यापन के लिए नौकरी की तलाश में मिस्टर दत्ता के घर आती है, कितनी प्यारा,स्नेही और धार्मिक परिवार था, दत्ता की पत्नी कौशल्या,सारा दिन भक्ति में लीन रहती, साल में 3-4 महीनों के लिए भारत में तीर्थाटन के लिए चली जाती। पहले दिन ही गीता को इज़्ज़त और सम्मान मिला, कौशल्या देवी ने उसे गर्म खाना दिया। सभी गीता के काम से खुश थे,लेकिन कुछ हफ्तों के बाद कौशल्या द्वारा गीता के काम में मीन मेख निकालना शुरू हो गया। सफ़ाई अच्छी तरह से नहीं करती, यह ग़लत वो ग़लत... हूवर तोड़ दिया....और ऊपर से इस छोटी बच्ची को साथ ले आती हो, सारा दिन रोती रहती है, काम क्या करोगी तुम। .....एक दिन अचानक कौशल्या ने बताया वो भारत जा रही हैं.....शाम को मिस्टर दत्ता जब घर में होते तो गीता काम करने आती, पहले पहल तो मिस्टर दत्ता कुछ नहीं बोलते थे,लेकिन कुछ दिनों बाद वो बच्ची के साथ खेलना शुरू कर देते हैं,गीता को लगा , शायद इनके बच्चा नहीं है,इस लिए इन्हें बच्ची पर प्यार आता है, मिस्टर दत्ता बच्ची के लिए खिलौने ले आए, एक दिन नए कपड़े ले आए...और एक दिन मिस्टर दत्ता गीता के लिए एक सुंदर लाल रंग की साड़ी ले आए.. "यह क्या है अंकल जी?, तुम्हारे लिए स्पेशल ले कर आया हूँ,फिर उसने कोट की जेब में हाथ डाल कर पैसों की गुथी(बन्डल) गीता आगे फेंक दी,गीता की टांगे कांपने लगी। उठा ले गीता यह तुम्हारे लिए है।" पृष्ठ 92(5)"पर यह मेहरबानी क्यों अंकल जी? और कौशल्या आंटी को तो मेरा काम भी पसंद नहीं। गोली मार कौशल्या आंटी के, पागल है साली,और क्या जीभ से फर्श साफ करोगी?, सारा दिन मंदिरों में घंटियां बजाती रहती है, कभी घर का ख्याल नहीं करती, सारा दिन हरे राम हरे कृष्णा, हरे कृष्णा हरे राम करती रहती है....." पृष्ठ 92(6)

दत्ता अपने मोहपाश में बांधने के लिए गीता के सामने, अपने आप को पत्नि द्वारा शोषित पति घोषित करने की कोशिश कर रहा था। "भक्ति करना अच्छी बात है,लेकिन किसी बात की हद्द भी होती है, औरत के लिए और भी काम होते हैं, चार चार महीने आदमी को नहीं पूछती, अगर कभी ज़बरदस्ती उसके साथ सो भी जाऊं तो, आधी रात को उठ कर नहाने लग जाती है,कहती है पाप हो गया। बेवकूफ़ औरत.....साली को यह नहीं पता के पति ही परमेश्वर होता है, आदमी की भी जरूरतें होती हैं,सिर्फ रोटी ही नहीं चाहिए होती...अब क्या बाहर जा कर मुँह काला करूं?? इज़तदर बन्दा हूँ ....."पृष्ठ93 (7)"मेरे साथ भी तीन साल से यही हो रहा है अंकल जी,गीता बोली..पर यह बेवकूफ़ लोग समझते नहीं,सेक्स इनके लिए पाप और अधर्म की बात है...मेरी बात मान, तुम्हारे साथ भी नाइंसाफी हुई है, मेरे साथ भी...क्यों न हम दोनों एक दूसरे का साथ दें? तुम भी सुखी, मैं भी सुखी। " 93(8)

दत्ता आज पूरी गर्मी दिखा रहा था, वो आज अपने मन की भड़ास निकाल रहा था,और अपनी कामुक्ता की संतुष्टि के लिए नए रास्ते की खोज़ कर रहा था।"आंटी-ऊंटी की परवाह मत कर, वो तो पागल है साली। मैं तुम्हें मजबूर नहीं करूंगा...तुम्हारा अपना फैसला है,तू मेरी बेटी जैसी है,मैं अपने हाथों से तुम्हारी शादी करूंगा...तुम इस छोटी बच्ची की ज़िंदगी की ओर देख...दत्ता ने गीता की दुखती रग पर हाथ रखा"पृष्ठ93 (9)दत्ता की आंखों में ,रिश्तों की आड़ में अपने वहशीपन को छुपाते हुए... ज़रा भी शर्म नहीं थी, मानो वो सभी समाजिक और नैतिक परम्पराओं को भूल, जंगलीपन की हदें भी पर कर चुका था। मैं तुम्हारा भी बाप हूँ,और तुम्हारी बेटी का भी..तुम्हारी ज़िंदगी पटरी पर लाना मेरा फ़र्ज़ है। एक रात मिस्टर दत्ता की मनोकामना पूरी हुई,गीता अपने ससुराल की प्रताड़ना से दुखी होकर,उनसे बदला लेने के लिए एक रात दत्ता के साथ जा सोई....दूसरे दिन दत्ता गीता और बची को सोशल सिक्योरिटी के दफ़्तर ले गयी,यहाँ उन्हें एक फ्लैट मिल गया। अब दत्ता की कामपूर्ति में और आसानी होती, वो जब भी फ्री होता,गीता के पास चला जाता,उसके साथ रातें गुज़ारता। दत्ता द्वारा अपनी पत्नी को गीता की कहानी सुनाकर ,गीता के प्रति करुणा का स्वर पैदा कर लिया,और दोनों ने कोर्ट जाकर सारी दुनिया को बता दिया कि गीता अब उनकी बेटी है.....तीन साल बीत गए,पता ही नहीं चला। लेकिन वो इन तीन सालों में पहले साल ही छह बार गर्भवती हो गई,हर दो महीने बाद गीता गर्भवती हों जाती, और दत्ता उसे पैसे देकर क्लिनिक भेज देता,और गीता हर बार फूल की तरह खाली होकर वापिस आ जाती।

गीता जब भी गर्भवती होती, तो मिस्टर दत्ता की आंखों में जोश भर जाता,उसे अपनी पुरूष शक्ति पर गुमान होता, पचास साल का होकर, बीस साल की लड़की को गर्भवती कर सकता है। तीन साल बाद उसका तलाक हो गया, और उसने चाहा अब वो अपना घर द्वारा बसा ले,और शादी कर ले.... दत्ता से दिल की बात सांझी करते ही, दत्ता का नज़रिया उसकी ओर बदल गया,दत्ता अब उस पर नज़र रखने लगा....दत्ता जैसा वहशी, कमीना इंसान, यह बात कैसे पचा लेता के उसका शिकार , उसके मुँह से कोई और चुरा के ले जाता....एक दिन एक मकेनिक घर में आया हुआ था,तभी दत्ता घर पहुंच गया, और इतने दिनों की भड़ास एक साथ गीता पर निकाल दी।"शर्म कर,माल मेरा खाती हो और ऐश यारों के साथ करती हो, साली, अगर जवान लड़कों के साथ सोने का इतना शौक है,तो मुझे बुड्ढे को पीछे क्यों लगा रखा है। "पृष्ठ94(10)मिस्टर दत्ता, गीता को हर तरह से बर्बाद कर देने की धमकी देता, उसकी बेटी के भविष्य का डर दिखाता है,गीता सारी रात अपनी वर्तमान ज़िंदगी और भविष्य की संभावनाओं को तलाशती हुई निर्णय पर पहुंचती है कि अब ज़िंदगी खुद के लिए न जी कर, अपनी बेटी के लिए जीनी है। गीता मिस्टर दत्ता के सामने झुक जाती है,अपने आप का हर तरह से समर्पण कर देती है। दत्ता भी अपनी विजय पाकर इठला देता है,और कहता है मैं तुम्हारा और तुम्हारी बेटी का ख़्याल सारी जिंदगी रखूंगा। बेटी को होस्टल में पढ़ने के लिए भेज दिया जाता है, बेटी पढ़ने में अच्छी होती है। गीता को सन्तुष्टि मिलती जब बेटी आगे बढ़ती देखती। एक दिन गीता की बेटी ,मां से पेट मे दर्द की शिकायत करती है। गीता उसे कलीनिक ले जाती है, गीता के पैरों के तले से ज़मीन खिसक जाती है,जब डॉक्टर बताती है कि तुम्हारी बेटी गर्भवती है। बेटी बाहर रहती है,और अपने किसी दोस्त के साथ यह गलत कार्य कर लिया होगा। बेटी अपनी मां के सामने सिर नहीं उठा पाती, अपनी मां से आंख तक नहीं मिला पाती। लेकिन गीता अपनी बेटी के साथ खड़ी होती है,वह कहती है कि बेटा ऐसा भी क्या जो तुम मुझे बता नहीं सकी। मुझे बताओ वो कौन लड़का है,जिसके साथ तुमने यह काम किया है। बेटी चाह कर भी नहीं बता पाती...गीता ज़ोर देकर अपनी बेटी से पूछती है,कि बेटा एक बार बता तो दो, इस बच्चे का बाप कौन है?? बेटी के मुँह से आवाज़ निकलती है.....दत्ता अंकल।

गीता की आंखों के आगे अंधेरा छा जाता है, और राक्षश की भांति दत्ता की छवि मस्तिक्ष में घूमने लग जाती है। गीता ने पूछा के दत्ता अंकल ने यह सब कुछ कब किया,तो बेटी बताती है, के जब आप सो जाती थी तो दत्ता अंकल पीछे के दरवाज़े से आते थे,जिस रास्ते से वो तुम्हें मिलने आते थे। निशब्द गीता,समय की करूपता से ख़ुद और बेटी को कुचलते हुए पाती है, 'पिछला दरवाज़ा' कहानी जहां एक ओर औरत की सामाजिक दुर्दशा को दर्शाती है,वहीं दूसरी ओर समाज में नकाबों के पीछे छुपे बैठे दत्ता जैसे हैवानों की मानसिकता को भी रेखांकित करती है। वीना वर्मा का यह पंजाबी कहानी संग्रह जातियों, धर्मों और देशों की सीमाओं से परे,समस्त विश्व की औरतों की प्रतिनिधिता करता है। हमारे वैश्विक समाज में औरत औरत है, न तो वो भारतीय है,न मलेशियन,न पाकिस्तानी,न ही अमेरिकन। औरत औरत है, और वो हर समाज,जाति और देश में मर्द जात के दमन का शिकार होती है, हमें औरत ज़ात के आत्मसम्मान की बात करनी होगी और बार बार करनी होगी। किसी भी समाज में औरत की उन्नति के बिना समाज की उन्नति बेमानी है।

****

संदर्भग्रंथ सूची:-

1. वीना वर्मा, ——नवयुग पब्लिशर्स, नई दिल्ल,(अनुवाद) पृष्ठ 78
2. पृष्ठ 80वहीं
3.पृष्ठ 83
4. पृष्ठ 87
5. पृष्ठ 92
6. पृष्ठ 92
7. पृष्ठ 93
8. पृष्ठ 93
9. पृष्ठ 93
10. पृष्ठ 84

जुलूस उपन्यास के स्त्री पात्र

डॉ. माया सगरे लक्का
सह आचार्य
कला, मानविकी और सामाजिक विज्ञान विभाग
रेवा विश्वविद्यालय, बेंगलोर

प्रास्तावना : – 1965 में प्रकाशित जुलुस रेणु जी का तीसरा उपन्यास है| इस लघु उपन्यास का मूल स्वर यथार्थवादी रहा है | उपन्यास की भूमिका में में हीं रेणु जी कहते हैं – "पिछले कुछ वर्षों से मैं एक अद्भुत भ्रम में पड़ा हूँ। दिन-रात, सोते-बैठते, खाते-पीते मुझे लगता है कि एक विशाल जुलूस के साथ चल रहा हूँ अविराम। यह जुलूस कहाँ तक जा रहा है, यह लोग कौन हैं, कहां जा रहे हैं, क्या चाहते हैं - मैं कुछ नहीं जानता। .... इस भीड़ से निकलकर राजपथ के किनारे सुसज्जित बालकनी में खड़ा होकर जुलूस देखने की चेष्टा की है। किंतु भीड़ से अलग होने की सामर्थ्य मुझ में नहीं। इस जुलूस में चलने वाले नर-नारियों से, अपने आसपास के लोगों से मेरा परिचय नहीं। लेकिन उनकी माया.... ममता.... मैं छिटककर अलग नहीं हो सकता।"इस मन स्थिति को उन्होंने अद्भुत मनोविकार की संज्ञा दी है। उनकी इस दरी मन:स्थिति का प्रभाव उपन्यास पर दृष्टिगोचर होता है। इस मन:स्थिति के दो पक्ष है - तटस्थता और संलग्नता। तटस्थ होकर जीवन यथार्थ का चित्रण करनेवाले रेणु विराट का पूर्ण आस्वादन करने के निमित्त भीड़ का ही एक अंग बन जाना चाहते हैं। भीड़ में रहकर, भीड़ से एकनिष्ठता उनकी अपनी विशेषता है।

कुंजीरूप शब्द - बिहार का अंचल (गोडियार गाँव) , मूलस्वर, भाषाशैली, परिवेश, नारी के रूप – माता, पत्नी, कन्या, बहन, भाभी, सास-बहू |

उपन्यास की कथाभूमी है - बिहार के पूर्णिया जिले का गोडियार गाँव और उसके पास बसा हुआ नया गांव नबीनगर, जहां देश विभाजन के बाद पूर्वी पाकिस्तान से आए बंगाली शरणार्थियों को बसाया गया है। इस नगर में बताए गए अधिकांश शरणार्थी पूर्व बंगाल के मैमंसिंग जिले के जुमापुर गांव के निवासी है। उपन्यास में बंगाली शरणार्थी और उनके पड़ोसी गोडियर गांव के निवासियों के पारस्परिक संपर्क की कथा है। कथा में आंचलिकता इतनी है कि दो भिन्न मान्यताओं, विश्वासों और रीति-रिवाजों वाले वर्गों की समस्याओं एवं प्रवृत्तियों की भिन्नता प्रभावशाली ढंग से प्रकट हो जाती है। गोडियर गांव का जीवन भले ही आंचलिक हो परंतु उपन्यास में उसे महत्व नहीं मिल पाया है।

उपन्यास में मुख्यतः पूर्वी बंगाली से आए शरणार्थियों की कथा है, जो एक बार उखड़ कर कहीं जम नहीं पाते। इनकी वेदना को स्वर दिया है हल्दी चिरैया ने 'का कस्य परिवेदना'। परती परिकथा की तरह रेणु जी ने इस उपन्यास का प्रारंभ पक्षी से किया है और अंत सांस्कृतिक कार्यक्रम से। बीच में नबीनगर और गोडियर गांव की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक समस्या तथा वहां के निवासियों के रहन-सहन, खान-पान और जीवन मूल्यों का यथार्थ एवं प्रभावशाली चित्रण किया है।अपने देश, अपनी भूमि के प्रति बंगाली शरणार्थियों का मोह इतना अधिक है कि वह बिहार के किसी भी शरणार्थी कैंप में टिक नहीं पाते। हालांकि नबीनगर की भूमि, नदी, नाले, पोखर, बाग-बगीचे सब कुछ वैसा ही है, जैसा कि उनके देश में था। फिर भी उनका मन नहीं लगता। पवित्रा उन्हें समझाती है-"हम लोगों का भाग्य अच्छा है कि इस जिले में हमें बसाया गया। यहां ध्यान और पाठ की खेती होती है, हम भी अपने देश में धान और पाट की खेती करते थे। यहां के लोग भी मछली भात खाते हैं। गांव- घर, बाग-बगीचे, पोखरे और नदी सब कुछ अपने देश जैसा।"पवित्रा के इतना समझाने के बावजूद उनका सवाल रहता कि देश माने हिंदस्तान कैसे हो सकता है? पवित्रा दखी होती है कि इन शरणार्थियों को यहां की मिट्टी से, लोगों से, पशु पक्षियों से मोह क्यों नहीं हो रहा है? वह अलग-अलग, कटे-कटे से रहते हैं। पवित्रा का कोई प्रयास उस दरवाजे को खोलने में सफल नहीं होता। यह लोग बात-बात में चिढ़ते हैं- जैसे गोडियर गांव के निवासी, डाकिया सभी नबीनगर को पाकिस्तानी टोला ही कहते हैं, जिससे यह चिढ़ जाते हैं। किसी बाहरी व्यक्ति का कॉलोनी में आना भी इन्हें पसंद नहीं। पवित्रा चाहती है कि यह शरणार्थी यहां के निवासियों से हिल-मिल जाए तो इनका यहां मन लगेगा। परंतु इसी बात को लेकर समस्या खड़ी होती है।आर्थिक दृष्टि से शरणार्थियों की स्थिति कंकालों की है। अधिकांश लोग खेती करते हैं और बच्चे आसपास के गांवों में बिस्कुट आदि बेचते हैं। बाकी जो भी सरकारी सहायता मिलती है उसी पर उसका जीवन-यापन चल रहा है। अधिकांश घर बांस फूस के झोपड़े है। ठाकुरतला भी एक झोपड़ा ही है, जहां हर मंगलवार को कीर्तन होता है और कीर्तन के बाद की बैठक में सामूहिक और व्यक्तिगत समस्याओं की चर्चा होती है। पवित्रा ही इस बैठक का संचालन करती है। गांव का हर आदमी सारी जिम्मेदारी उसी पर सौंप देता है। वैसे भी आज तक ये शरणार्थी पवित्रा के कारण ही अलग-अलग कम्पों में सुरक्षित रह सके हैं |

गोडियर गांव के बाबू टोला में –"15 घर मैथिल और 4 परिवार राजपूतों के हैं। 20 घर ग्वाले। 8 धानुक, 13 घर गोढी-गोडियार गांव का असल नाम इसी गोढी टोला से हुआ-जहां गोढी (मछली मारने वाली जाति) लोग रहते हैं – गोढीहार से गोडियर।" गांव का सबसे सुखी-संपन्न और सुशिक्षित परिवार है तालेवार गोढी का। सारे गांव की लक्ष्मी इसके यहां निवास करती हैं। रामचंद्र चौधरी यहां के पुराने जमींदार परंतु बड़े मुकदमे में अपनी उसकी सारी संपत्ति, जमीन, पोखरे, बाग-बगीचे और मवेशी रेहन- बंदकी, गिरवी के रूप में तालेवार गोढी के यहां चली गई।

राजपूतों के 4 परिवारों में एक है विधवा सरस्वती देवी का परिवार, जिसकी एक ही लड़की है, जिसे धोती-कुर्ता पहनाकर लड़की की तरह पालती हैं। एक परिवार है ठाकुर रणवीर सिंह का, जो कभी इलाके का नामी पहलवान था। परंतु 8 साल की उम्र में गठिया रोग से ग्रस्त है। इन के पांच बेटे शहर में रह कर कमाते हैं और हर महीने ₹10 के हिसाब से 5 मनीआर्डर आते हैं बा। की दो घर राजपूत, सौतेले भाई है - दोनों खेती करने के अलावा झठी गवाही देते हैं और लठैत का काम करते हैं। 20 घर ग्वाले हैं किंतु किसी के पास एक गाय न भैंस। किसी के पास एक धुर जमीन नहीं। खेत- मजदरी करते हैं। धानुकों का भी यही हाल है। गोडियर गांव की संपत्ति तालेवार गोढी के यहां विराजती है। सभी टोले और जाति के लोगों को तालेवार गोढी की कृपा दृष्टि पर भरोसा रहता है। पिछले 10 साल से गोडियर गांव के लोग स्कूल-स्कूल चिल्ला रहे हैं परंतु कुछ नहीं हुआ और पाकिस्तानी टोला को बसकर 6 महीने भी नहीं हुए और मिडिल स्कूल का ओऽडर पास हुआ है। इससे गांव में ईर्ष्या भाव निर्माण हुआ। राजनीतिक दृष्टि से आजादी के बाद गांव में भी जागरूकता आ रही है। देश को आजाद होकर 14 वर्ष हुए। जुलूस की यादें लोगों के दिल में अभी ताजा है। 2-2 आम चुनाव हो चुके हैं। देश में बड़े-बड़े काम हो रहे हैं। विकास हो रहा है। विकास के संबंध में लोगों की एक राय नहीं। कोई कहता है देश आगे बढ़ रहा है। तो कोई इसे योजना पर पीछे खिसका हुआ देखता है। राजनीतिक नेताओं के भ्रष्ट चरित्र को उजागर करने हेतु रेणु जी ने छोटे बाबू जैसे कुटिल, भ्रष्ट, चरित्रहीन नेता के चरित्र को प्रस्तुत किया है।

गांव में अंधविश्वास भी अधिक मात्रा में फैला हुआ है। लोगों का विश्वास है कि तालेवार गोढी भूत- प्रेत भगाता है। जिस समाज में नेतृत्व करने वाले लोग अंधविश्वासी पालते हैं तो सामान्यतः लोगों की स्थिति क्या होगी, इसकी सहज ही कल्पना की जा सकती है।

गांव में अनैतिकता का बोलबाला है। तालेवाडी के अनेक स्त्रियों से अनैतिक संबंध है। पवित्रा उखड़े हुए शरणार्थियों को सही ढंग से बचाना अपनी मुख्य समस्या मानती है और इसलिए वह मुमकिन प्रयास भी करती रहती हैं। वह जिला कॉलोनी कमेटी के सदस्य भी है और कॉलोनी की समस्याओं पर विचार विमर्श के लिए हर महीने मीटिंग में जाती है। वहां उसकी मुलाकात पत्रकार नरेश वर्मा से होती है नरेश वर्मा विनोद की हूबहू प्रतिकृति है। अपने वतन में विनोद मुखर्जी पवित्रा के सपनों का राजकुमार था जिसकी कासिम ने हत्या कर दी थी ।उस समय में आई बाढ़ और तूफान से कॉलोनी तथा गोडियर गांव में के अधिकांश घर नष्ट हो जाते हैं। खेत तबाह हो जाते हैं। पवित्रा इन दुखी पीड़ित, भूखे लोगों का जुलूस लेकर तालेवार गोढी दरवाजे पर पहुंचती है। अपनी मुंह बोली बेटी को भीख मांगता देखकर तालेवार गोढी रो उठता है और उसकी झोली में ₹5000 डाल देता है। जुलूस यहां से शहर जाता है। नरेश ने पूर्णिया शहर में सांस्कृतिक कार्यक्रम नाच दल का आयोजन किया है। पवित्रा दर्शकों की भीड़ में झोली लेकर भीख मांगती है। समूह के दुख को दूर करने हेतु अकेलेपन को त्याग कर वह समूह को अपने आप को समर्पित कर देती है और यहां से उसे अपना घर मिल जाता है। "मैं अपनी सत्ता को इस समाज में विलीन कर रही हूं। लोक संस्कृतिमूलक समाज के गठन के लिए आमि आमा के उत्सर्ग कोर्लाम।" इन पंक्तियों में रेणु जी का मानवतावादी आदर्शवाद स्पष्ट झलकता दिखाई देता है। जुलूस के इस आदर्श समापन को लेकर कई सवाल उठते हैं। क्या इस समापन को पवित्रा के जीवन का सुखांत माना जाए? पवित्रा नरेश से प्रेम करती है पर उसे अपना नहीं पाती। अपना जीवन वह लोक संस्कृतिमूलक समाज के संगठन के लिए समर्पित कर देती है। कुल मिलाकर 100 पात्रों वाला यह लघु उपन्यास आजादी के बाद भारतीय जीवन में आयी गिरावट तथा स्त्री जीवन की विवशता और शक्ति के चित्रण की दृष्टी से सफल माना जा सकता है |

जुलुस के नारी के विविध रूप –जुलूस नायिका प्रधान उपन्यास है। आंचलिक उपन्यासों में परंपरागत अर्थ में नायक और नायिका नहीं होते हैं। उपन्यास के अनेक कथाओं में से किसी एक कथा को प्रधानता प्राप्त होने से उस कथा से संबंधित पत्र नायक अथवा नायिका होने का भ्रम होता है। इस दृष्टि से पवित्र उपन्यास की नायिका ना होकर प्रमुख कथा के प्रधान पात्र हैं संपूर्ण उपन्यास में पवित्रा ही एकमात्र नारी चरित्र है। जिसका विस्तार से चित्रण हुआ है गांव में। नारी पात्रों में दीपक की मां, संध्या, संध्या की मां, गरीबाला दासी, कालाचंद की मां आदि आते हैं। गुणमंती, सिंगारो, रेशमी, गौरी, बड़ी पतोहू तथा पहलवान रणवीरसिंग की चारों पतोहू आदि ऐसे नारी पात्र हैं जिनका प्रसंग के अनुसार उल्लेख हुआ है। उपन्यास के चरित्र चित्रण में वर्गीय दृष्टिकोण नहीं है। परिवार तथा समाज में नारी की स्थिति का यथार्थ चित्रण हुआ है। पवित्रा और दीपा की माँ ही उच्च वर्ण नारियां है। बाकी सभी निम्न वर्ग से संबंधित नारियाँ है। उपन्यास में आर्थिक समस्याओं के साथ ही मानवीय संबंधों, शरणार्थियों की मानसिकता और उनके प्रति लोगों के आक्रमक रवैया का प्रभावशाली चित्रण हुआ है।

पवित्रा- पूर्वी बंगाल के मैमनसिंग जिले के जुमापुर गांव के शरणार्थियों को बिहार राज्य में पूर्णिया जिले के गोडियार गांव में के पास बसाया गया है। पवित्रा ही एकमात्र उच्च वर्गीय ब्राह्मण कन्या है, बाकी सभी पिछड़ी जाति की नारियां हैं। उपन्यास का आरंभ हल्दी चिरैया से होता है। वह भागती हुई भी या अपने गीले पंख सुखाती हुई, सबकी परिवेदना की चिंता करती है। यही हल्दी चिरैया तो पवित्रा है जिसे पुर्वी पाकिस्तान से शरणार्थी बनकर, सब कुछ गंवाकर भारत आना पड़ा है। यहां भी अपने व्यक्तिगत जीवन के दुखों को दबाकर शरणार्थियों के अभाव-अभियोगों की चिंता करती हैं।

पवित्रा जमापुर गांव के हिंदू जमींदार चटर्जी की पढ़ी-लिखी कन्या है। पवित्रा के अतीत को फ्लैशबैक पद्धति से चित्रित किया गया है। पवित्रा को परिवार में पिता के अलावा किसी का प्यार नहीं मिला। मां तो उसे सांपिन समझती।

सुंदर जवान लड़कियों का दुखद अंत ही उसके परिवार के इतिहास में होता रहा है। बचपन से ही मां पवित्रा को घर के सारे काम सोंम्पाती, कभी कोई भूल हुई कि गालियां और तमाचे उसके नसीब होते। बाबा अपना सारा प्यार लुटाना चाहते हैं। लेकिन एक दिन माँ ने उस पर भी कलंक लगा दिया, भाइयों ने मिलकर जलील किया और पवित्रा को ओठ सिकर घर के अंदर नौकरानी की तरह रहना पड़ा। पवित्रा के पिता ठाकुर बाड़ी में प्रसिद्ध थे। ठाकुर बाबा के घर और दुर्गा पूजा की जाती थी। ईद के मौके पर पवित्रा पिता के साथ कादिर अब्बा की हवेली जाया करती। और दुर्गापूजा के समय कादिर अब्बा सभी बच्चों के साथ ठाकुरबाड़ी आया करते। पवित्रा ने कासिम के आँखों में वहशीपन देखा था। देश विभाजन के समय पवित्रा का मंगेतर विनोद मुखर्जी की हत्या कर दी थी।

शरणार्थी पूर्णिया जिला के सबसे उर्वर भूमि गोडियर के पास बस जाते हैं। खान-पान, रहन-सहन, भूमि की समानता के बावजूद इस देश को शरणार्थी अपना देश मानने से कतराते हैं। वहां कॉलोनी में हर मंगलवार के दिन ठाकुरतला में सभी स्त्री-पुरुष मिलकर कीर्तन गाते हैं। किर्तन के बाद समाज और व्यक्ति की समस्याओं पर विचार विमर्श भी होता है। इसका संचालन पवित्रा करती है। जिस दिन पवित्रा नहीं होती, उस दिन सभी लोग वहां की मिट्टी, चांद सितारों तक की निंदा करते हैं। पवित्रा हर तरफ से कोशिश करती हैं कि गांव के लोगों का यहां की मिट्टी से प्रेम बना रहे।

पवित्रा को अपने पड़ोसी कासिम की आंखों में जो वह वहशीपन दिखाई दिया, वह भारत पहुंचने पर भी मिलता है। कभी रिफ्यूजी कैंप के सुपरवाइजर के रूप में, तो कभी रिलीफ कलर के रूप में। कासिम हर जगह है और रूप बदलकर वह पवित्रा का पीछा करता रहा है।

कोलोनी के लिए मिडिल स्कूल को मंजूरी मिल जाती है, तो पवित्रा चाहती है कि उन्हें बच्चों के साथ गोडियर गांव के बच्चे भी स्कूल में पढ़े। इसी हेतु पवित्रा गोडियर गांव में पैरवी करने आती है और उन्हें बच्चों को कॉलोनी स्कूल में पढ़ने आए ऐसा वह बताती है। लेकिन गांव के लोग अलग-अलग तर्क देकर विरोध करने लगते हैं। पर तालेवार गोढी के समझाने पर वह मान भी जाते हैं।

पवित्रा विविध उपक्रमों द्वारा शरणार्थी और यहां के निवासियों में मेल-मिलाप बढ़ाकर शरणार्थियों को यहां के परिवेश के साथ एकरूप होते देखना चाहती हैं। इसी कारण सुक्की बेलाही के हरिप्रसाद यादव और संध्या के प्रेम संबंध तथा विवाह का वह विरोध नहीं करती। पवित्रा शरणार्थियों के बीच अकेली है। रेणु जी उसे उसके घर तक पहुंचा देते हैं। जहां पहुंचकर वह खुद की सही पहचान करने लगती है ..... "मैं जी गयी फिर। मैं अकेली नहीं। मैं निसंग नहीं। मैं कहीं निर्जन में नहीं एक विशाल परिवार की बेटी हूं। इन आत्मीय स्वजनों के बीच पारस्परिक सहानुभूति और संयोगिता को फिर से पनपाऊंगी मैं। ...अपने गांव समाज में-लोगों के विरान हृदय में आनंद मुखर स्वर फिर से भरना होगा। ....खोयी चीजों का उद्धार करना होगा। ....अपरिचय, अजनबीपन, उदासीनता, अकेलापन, आत्मकेंद्रियता, विचीन्नता विच्छिन्नता को दूर कर के भूले-भटके लोगों को, अपने लोगों को लौटा कर लाना होगा। मैं अपनी सत्ता को इस समाज में विलीन कर रही हूं। लोक-संस्कृतिमूलक समाज के गढ़न के लिए आमा के उत्सव

कोर्लाम!" दीपा की मां- श्रीमती सरस्वती देवी ठकुराइन, विवाह से पूर्व मिडिल इंग्लिश पास करके रामगंज-पिपरा के कन्या पाठशाला में अध्यापिका की नौकरी करती थी। गांव के पोस्ट ऑफिस में दो ही नाम से पार्सल आते - सरस्वती देवी और पारस प्रसाद के नाम। सरस्वती देवी तरह-तरह की किताबें, हिमसागर तेल, बालों की जूं मारने की दवा मंगवाते रहती। स्कूल इंस्पेक्टर इस पर डोरे डालने शुरू किया था। छट्टन भी इसके साथ आता था| दोनों ने मिलकर सरस्वती को प्रेग्नेंट कर दिया| मीठी-मीठी बातों और अध्यापिका बनने के लोभ में सरस्वती को कड़वे यथार्थ का बोध होता है। कोई उसके काम नहीं आया। यह दोनों तो उन्हें दोहरा शोषण करते हैं सरस्वती सोचती है कि उस समय पारस नहीं होता तो वह पागल हो जाती।

सरस्वती देवी का विवाह गोडियर गांव में हुआ। उसका पति किसी जूट मिल में मशीन मैन था। उसका एक हाथ मशीन में कट गया था। जिंदगी भर की कमाई और हाथ कटने का हर्जाना मिलाकर पूरे ₹5000 देखकर सरस्वती को खरीदा था दीपा के बाबू ने। विवाह के पूर्व गर्भवती होने की बात मालूम होने पर भी दीपा के बाबू ने बड़े मन से सब कुछ माफ कर दिया था। जब तक वह जीवित रहे उन्होंने दीपा की मां को अपने से अलग नहीं होने दिया। 8 महीने का वह काल दीपा की मां को नरक की तरह लगा था। पारस की सहायता से उसने पति से मुक्ति प्राप्त की। सरस्वती के मन में महत्वाकांक्षा का भाव प्रबल है। पवित्रा शरणार्थियों का नेतृत्व करती है। यह जानकर उसमें लीडरानी बनने की महत्वाकांक्षा प्रबल होती है। वह पारस प्रसाद से कहती है.... "क्या चाहते हो तुम लोग? मेरे रहते हुए गांव में एक बंगालिन आकर लीडरी करेगी? मीटिंग में जाती है पूर्णिया –हाथ में चमड़े का थैला लटकाकर। लो क्या कहते होंगे? गिडियर गांव में कोई बिहारी औरत पढ़ी-लिखी नहीं है क्या? गांव पर तो राज है गोढी और गुडाम का। लाज आवे तो किसे ?" दीपा की मां एक चरित्रहिन नारी है। पति का कांटा अपने रास्ते से दूर करने के बाद अनेक पुरुषों से वह अनैतिक संबंध रखती है। सरस्वती देवी को एक ही लड़की है जिसे वह लड़के की तरह पालती हैं। नाम भी लड़के की तरह ही रखा है, दीपा। उसे लड़के का लिबास पहनाती है तथा वनस्थली विद्यापीठ भेजकर लाठी, भाला, घुडसवारी की ट्रेनिंग दिलवाना चाहती है। कुल मिलाकर दीपा की मां का चरित्र एक सामन्य नारी का है जो अपनी प्रवृत्तियों की दास है।

संध्या- संध्या योगेशदास और गिरिबाला की लड़की है। देखने में सुंदर, भोले स्वभाव की संध्या को जिस दिन पवित्रा ने देखा- पवित्रा मुग्ध हो गई देखते ही। संध्या की मां ने कहा था, "यह आपके साथ रहे। यह आप ही की बेटी है- दीदी ठाकुरुन। निगोडी ने जन्म के बाद से ही मुझे सताया है। अब आप इसे शरण में लीजिए।" और तब से पवित्रा ने संध्या को बेटी की तरह पाला। संध्या पवित्रा के साथ ही रहती है, पवित्रा की हर बात वह मानती है। संध्या में बहुत मीठा गला पाया है। शब्दों को समझकर वह गीत गाती है। शाम के समय ठाकुरतला में शंख बजाकर वह आरती की सूचना देती है। संध्या को पवित्रा कीर्तन, सिलाई के साथ हिंदी पढ़ना भी सिखाती है। हिंदी पढ़ना उसे सबसे अच्छा लगता है। संध्या सुक्की बेलाही के हरिप्रसाद जादव से प्रेम करती हैं। हरिप्रसाद जादव इस परिवार को महिचंदा कालोनी से जानता है। हरिप्रसाद जादव संध्या से विवाह करना चाहता है। संध्या के मां-बाप को भी इस विवाह की अनुमति है, पर कोलीनीवालों को यह विवाह स्वीकार नहीं है।

गिरिबाला - संध्या के मां गिरिबाला देवी का स्वभाव बड़ा विचित्र है। लोगों की चुगली करना उसकी आदत है। अपना स्वार्थ साधना वह अच्छी तरह जानती हैं। संध्या को प्राणों से भी बढ़कर प्यार करती है। पवित्रा इसका गलत लाभ उठाकर गिरिबाला कभी-कभी नाजायज बातें कह देती है। पवित्रा, का नाम लेकर लोग उनसे बेवजह हर तर्क वितर्क करते रहती है। गिरिबाला पवित्रा के नाम का गलत इस्तेमाल करके अपना स्वार्थ साधना चाहती हैं अर्थात गिरिबाला एक सामान्य स्वार्थी नारी का प्रतिनिधित्व करती है।

इन नारी चरित्रों के अलावा कुछ अन्य नारी पात्रों का प्रसंगवश उल्लेख आता है। उपन्यास में उनका कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है। हरलाल शाह की स्त्री, कनकबाला हमेशा घुंघट काढ़े रहती है। गोपाल पाइन की घरवाली गठिया से पीड़ित है। लंगडकर चलती है। पहलवान रणवीर सिंह की पांचो पतोहू एक नंबर की झगड़ालू स्त्रियां है।

निष्कर्षतः- कहा जा सकता है कि जुलूस में पवित्रा एकमात्र नारी चरित्र है जिसका विस्तार से चित्रण हुआ है। संपूर्ण उपन्यास के केंद्र में पवित्रा ही है। अन्य नारी पात्र थोड़ी देर के लिए आते हैं और अपनी भूमिका निभाकर अलग हो जाते हैं।

****

संदर्भ -

1. जुलूस – फणीश्वरनाथ रेणु भूमिका से
2. जुलूस – फणीश्वरनाथ रेणु – पृष्ठ 12
3. जुलूस – फणीश्वरनाथ रेणु – पृष्ठ 17
4. जुलूस – फणीश्वरनाथ रेणु – पृष्ठ 166
5. जुलूस – फणीश्वरनाथ रेणु – पृष्ठ 166
6. जुलूस – फणीश्वरनाथ रेणु – पृष्ठ 129
7. जुलूस – फणीश्वरनाथ रेणु – पृष्ठ 133

विस्थापन का दर्द : कश्मीरी लेखिकाओं की संघर्ष गाथा

डॉ. जयश्री सिंह
शोध निर्देशिका
विद्या प्रसारक मण्डल द्वारा संचालित के. जी. जोशी कला एवं एन. जी. बेडेकर वाणिज्य महाविद्यालय, ठाणे – ४००६०१

ममता माली
शोध छात्रा,हिन्दी शोध केंद्र
विद्या प्रसारक मण्डल द्वारा संचालित के. जी. जोशी कला एवं एन. जी. बेडेकर वाणिज्य महाविद्यालय, ठाणे – ४००६०१

शोध सार :भारत देश की आज़ादी जहाँ एक ओर गुलामी की बेड़ियों से मुक्ति का पैगाम लाई वहीं विभाजन की व्यथा कथा से जन मन को छलनी करती रही| भारत की उत्तरी सीमाओं के प्रांत इस विस्थापन को अभी भूल भी नहीं पाए थे कि उन्हें एक बार फिर कश्मीर की अपनी पुश्तैनी मिट्टी से निष्कासित होना पड़ा| किसी भी क्षेत्र में विस्थापन का मानसिक, शारीरिक, और भावात्मक दंश सबसे अधिक महिलाओं के हिस्से आता है| कश्मीरी महिलाओं द्वारा झेले गये दंश, विस्थापन के पीछे के राजनैतिक तथा स्वार्थपरक घिनौने मंतव्य को उजागर करना बेहद जोखिम भरा व संघर्ष पूर्ण काम था| कश्मीरी महिलाओं के अस्मिता और अस्तित्व के संकट के पीछे सबसे बड़ी और विकट समस्या 'विस्थापन' की ही है| चंद्रकांता, क्षमा कौल, और संजना कौल जैसी कश्मीरी लेखिकाओं ने महिला लेखिका के तौर पर इस कार्य को अपनी ज़िम्मेदारी मानते हुए व समाज के सामने इस सत्य को उजागर करने का बीड़ा उठाया| इन भुक्तभोगी लेखिकाओं ने अपने 'कथा सतीसर', 'दर्दपुर', और 'पाषाण युग' जैसे उपन्यासों में विस्थापन और उससे जुड़ी मानवीय त्रासदी का जीवंट और जीवंत वर्णन किया है| इन लेखिकाओं ने कश्मीरी महिलाओं के विस्थापन से पूर्व व पश्चात के मानसिक व शारीरिक स्थिति का सच्चा चित्र समाज के सामने प्रस्तुत किया है| कश्मीरी लेखिकाओं की कश्मीर विस्थापन पर आधारित ये रचनाएँ कश्मीर के इतिहास और वर्तमान के ज्वलंत सच का सम्पूर्ण आख्यान प्रस्तुत करती है| ये रचनाएँ मात्र उपन्यास न हो कर उनके संघर्ष की गाथा हैं| इस आलेख में उसी संघर्ष को रेखांकित करने का प्रयास किया जाएगा|

बीज शब्द : कश्मीर विस्थापन, काफिर जीवन, अल्पसंख्यक समाज, शरणार्थी की यातनाएँ, स्त्रियों की पीड़ा, मानवाधिकार का संघर्ष|

विभाजन की रेखाएँ जब जमीन पर खींची जाती है तब केवल जमीन का बँटवारा ना होकर दिलों का, संस्कृति का, भाषा का, मानव से मानव का और दो कौम का बँटवारा होता है| यह विभाजन मनुष्य का अपनी जड़ों से कटना है| यह जड़ केवल जमीन से ही नहीं जुड़ी है बल्कि जुड़ी है अपनी पहचान से, अपनी संस्कृति से, अपने धर्म से, अपनी भाषा से, अपनों से, अपने समाज से, अपने वातावरण की उस आबोहवा से जहाँ उसने पल-पल साँस ली है, उससे बिछड़ना मानो शरीर का आत्मा से जुदा होना है| विभाजन विस्थापन से पूर्व की विभीषिका है| हमारे देश ने भी आज़ादी के एवज़ में विभाजन के दर्द को झेला है और अब विस्थापन की मर्मांतक पीड़ा से गमज़दा है| 1947 में विभाजन का जो घाव हमें मिला था, आज वही घाव नासूर बन कश्मीर विस्थापन के रूप में रह-रहकर रिस रहा है| देश के अन्य राज्यों में भी विभाजन की आग ने बहुतों को झुलसाया था| कहीं आग ठंडी हुई तो कहीं राख़ बन मनुष्यों के कुकर्मों का सबूत छोड़ गई| पूर्व में बंगाल हो या पश्चिम में पंजाब, विभाजन ने मनुष्य को इस कदर विभाजित किया कि लाखों की संख्या में मनुष्य मारे गए और जो ज़िंदा बचे वे विस्थापन हेतु मजबूर हुए और आज भी विस्थापन की पीड़ा को झेलते झेलते ज़िंदा लाश बन गए हैं| जिस तरह से अपनी जड़ों से कट कर किसी पेड़ को जमीन या सड़क किनारे फेंक दिया जाता है ठीक उसी प्रकार से विभाजन के पश्चात अपनी जड़ों से विस्थापित मनुष्य की भी ठीक यही स्थिति होती है| मनुष्य को यदि दो वर्गों में विभाजित किया जाए तो, दो रूप सामने आते हैं – एक हैं पुरुष वर्ग और दूसरा है स्त्री वर्ग| स्त्री वर्ग जिसे हर स्तर पर यथा – शारीरिक, मानसिक, भावनिक, आर्थिक रूप से कमजोर मानकर या यों कहें कि अपनी-अपनी स्वार्थपूर्ति के चलते कमजोर बनाकर हर स्तर पर उसका शोषण किया गया और किया जाता रहा है| देश का विभाजन हो या मनुष्य जाति का विस्थापन सबसे ज़्यादा भुगतान और सज़ा स्त्री वर्ग के हिस्से में आती है| विभाजन के एक बिन्दु से विस्थापन के दूसरे बिन्दु तक के बीच का जो काल रूपी रेखाखण्ड है वह बलात्कार, अपहरण, शारीरिक शोषण, अत्याचार, स्त्री की सौदेबाजी, स्त्री की खरीद फ़रोख्त, जुल्म, अंग-भंग, जैसे तमाम विकृत बिन्दुओं का ऐसा समुच्चय खंड है जो स्त्री जीवन को ही पूर्णत: खंडित कर देता है| उसे अपने अस्तित्व से घृणा होने लगती है| अपनी आत्मरक्षा हेतु वह अपनी ही आत्मा और शरीर का क़त्ल कर देती है या अक्सर अपनों के द्वारा ही मौत के घाट उतार दी जाती है| विस्थापन के परिप्रेक्ष्य में स्त्री की इसी अन्तर्मन की पीड़ा को कश्मीरी लेखिकाओं ने अपनी रचनाओं के माध्यम से अभिव्यक्ति प्रदान की है| कश्मीर जैसे संवेदनशील विषय पर क्षमा कौल का उपन्यास 'दर्दपुर' एक ऐसे समय का द्योतक है जब कश्मीर में आतंक के चलते अलगाववाद अपनी चरम सीमा तक पहुँच गया है| कश्मीर की संस्कृति विखंडनवाद का परिणाम भुगत रही है| 'दर्दपुर' कश्मीर के दर्द का रेशा-रेशा उधेड़कर हमारे समक्ष इस तरह प्रस्तुत हुआ है मानो उनकी इस पीड़ा को आँखों से अपने दिल में उतारकर महसूस कर सकें| यह दर्द है आतंक के कारण अपनी ही जमीन से जुदा होने का, अपने ही वतन में विस्थापितों का जीवन जीने हेतु विवश होने का| यह दर्द है अपनी भाषा, अपनी संस्कृति, अपनी पहचान के शनै: शनै: मिटने पर विलुप्त होने का| लाख कोशिशों के बावजूद भी, अपने और अपनों के आत्मबलिदान के बावजूद भी अपने को विस्थापित होने से ना बचा पाने की जद्दोजहद में आखिरकार साहित्य के मंच से अपनी आवाज़ बुलंद करना ही इन साहित्यकारों ने श्रेयस्कर समझा| 'दर्दपुर' का दर्द कश्मीरी पंडितों का अपनी जमीन से उखाड़ फेंकने का जबरिया विस्थापन का दर्द है| कश्मीरी पंडितों का घाटी से बर्बरतापूर्वक किया गया विस्थापन दुनिया का सबसे बड़ा जीनोसाइड माना जाता है| किसी खास धर्म विशेष के वर्ग द्वारा बाहरी ताकतों के बल पर दूसरे धर्म विशेष के लोगों को अपनी ही जमीन से बहिष्कृत करने की पीड़ा का आख्यान है 'दर्दपुर'| भारत जैसे धर्म निरपेक्ष देश के लिए यह कृत्य अशोभनीय है क्योंकि हम भारत की विविधता में एकता की मिसाल देते हैं| 'दर्दपुर' उपन्यास के प्रथम पृष्ठ पर ही लेखिका क्षमा कौल जी ने यह शब्द गढ़कर **"धार्मिक आतंक की सतायी विश्व की सभी स्त्रियों के नाम"** कहकर एक तरह से स्त्रियों की वेदना को अभिव्यक्ति प्रदान करने के साथ ही समाज को इस हकीकत से भी रूबरू कराया है| 'दर्दपुर' उपन्यास की नायिका सुधा के माध्यम से लेखिका क्षमा कौल ने नायिका द्वारा भोगे गए नारी रूप में उत्पीड़न और विस्थापन की विभीषिका रूपी दर्द को उपन्यास की कथावस्तु का आधार दिया है| सुधा दिल्ली के एक एनजीओ की एक विशेष योजना अंतर्गत कार्यरत है| सुधा जो कि मूलत: कश्मीर से है किन्तु जम्मू स्थित शरणार्थी शिविर में दर्दनाक और शर्मनाक जीवन जीने हेतु विवश है| यह विवशता उसके जीवन में आई है जनवरी 1990 की उस रात से जिसे याद करते ही वह सिहर उठती है| 19 जनवरी 1990 की यही वह स्याह रात थी जब मस्जिदों से अज़ान की जगह कश्मीरी पंडितों के घाटी से विस्थापित होने के फरमान जारी किए जा रहे थे| आज एक बार फिर से सुधा कश्मीर जाने के लिए उसी एनजीओ के साथ चल पड़ी है| सुधा के लिए दोबारा कश्मीर लौटना अर्थात उसके भीतर बैठे क्रोध, आक्रोश, जलालत, और दर्द में लौटना है जो उसके,

और उसके परिवारवालों ने और जिसे उसके अपने समुदाय ने अपने तन और मन पर झेले थे| सुधा किस तरह से उनका सामना कर पाएगी| सुधा और सुधा की भाँति उस समुदाय विशेष के लोग आखिरकार अपने साथ केवल यादें ही तो ला सकें थे जो आज तक उनको भीतर ही भीतर साल रही है, कचोट रही है| सुधा कहती है, "हम| दीप्ति, सिर्फ हम? जिन्होने धर्मांधता की अमानवीयता के अंगारों पर पैर रखकर अपने को ज़िंदा-साबुत निकाल दिया| ईश्वर के दिये प्राणों को बचाकर ईश्वर को कृतकृत्य किया.....दीप्ति, हम कश्मीरी भट्ट|"1 विस्थापन की उस रात के बाद कश्मीरी पंडित आखिरकार अपने साथ तो कुछ भी ना ला सके, उन्हें इतना समय ही नहीं दिया गया कि अपने साथ कुछ ला सकें| जान बचाने की कुछ समय की मोहलत मिली थी| बस बची हुई ज़िंदगी ही बचाकर ला सके| बाकी सब कुछ पीछे ही छूट गया- कश्मीर, हारी पर्वत, डल झील, शंकराचार्य पर्वत, अपनी संस्कृति, अपनी भाषा, अपने कुछ लोग, अपनी ज़मीन और वह सब कुछ जो उन्हें मिट्टी से, ज़मीन से और आबोहवा से बाँधे रखा था| अब यह सब कुछ बस यादों के हवाले है| यही यादें अब सुधा और सुधा के साथ तमाम विस्थापितों को मानसिक विस्थापन का दंश दे रही है| सुधा ने सोचा, "हम एक सिक्के के दो पहलू हैं| ये यहाँ हमारे सपनों को ढो रहे हैं, हम वहाँ इनके साथ होने के सपनों का निर्वाह कर रहे हैं| इन पर यहाँ विभ्रम के आक्रमण हो रहे हैं और हम पर वहाँ|"[2]

'आतंकवाद' जो कश्मीर विस्थापन का मुख्य कारण बना| इसी आतंकवाद के चलते लोगों को अपने घरों से, लोगों के दिलों से, और अंतत: अपने समुदाय और समाज, अपनी जड़ों से हमेशा-हमेशा के लिए निकाल फेंका|.....'एक गाँव है.....सीमान्त पर.....कहते है कि उस गाँव में सब पुरुष आतंकवाद में मारे गए हैं| पुरुषविहीन है वह गाँव|'[3] आखिरकार आतंकवाद पुरुषों को तो मार डालता है लेकिन स्त्रियों को ज़िंदा क्यों छोड़ देता है| यह प्रश्न इस बात की ओर भी संकेत करता है कि दख, पीड़ा, अपमान स्त्रियों के हिस्से क्योंकर है| कारण यह भी है कि स्त्रियों ने ही स्त्रियों की पीड़ा को कभी समझा नहीं तो फिर पुरुष समाज से क्या अपेक्षा की जा सकती है| ....."दरअसल हम स्त्रियों की असुरक्षा ही यही है कि हम एक संगठन नहीं हैं| स्त्री की कोई संवेदनात्मकता मित्रता नहीं| विडम्बना यही है| इस विडम्बना से पुरुष संसार परिचित है और इसी ज्ञान के रहते उसने स्त्री को अपना गुलाम कर दिया है|"[4]

आतंकवाद की सताई गई ऐसी ही स्त्रियों के दर्द एहसासात को अपने उपन्यास 'कथा सतीसर' के माध्यम से लेखिका चंद्रकांता जी ने भी मुखर अभिव्यक्ति दी है| चंद्रकांता जी ने अपने उपन्यास 'कथा सतीसर' के माध्यम से न केवल स्त्री जीवन के तमाम पहलुओं को उद्घाटित किया है बल्कि समाज और परिवार में स्त्रियों के दशाओं और अस्तित्व के लिए संघर्ष के प्रयासों को भी उजागर किया है| चंद्रकांता जी के उपन्यास में चित्रित पात्र काल्पनिकता से कोसों दूर और सत्य के बेहद करीब प्रतीत होते हैं| चंद्रकांता जी ने उपन्यास में कश्मीर के तत्कालीन उन परिस्थितियों का चित्रण किया है जब कश्मीर की आबोहवा में दमघोंटू आतंकवाद का जहर शनै: शनै: ज़िंदगी को अपने आगोश में लेकर जीवनलीला को समाप्त कर रहा था| 'आतंकवाद' किसी का भी सगा नहीं होता है| आतंकवाद निर्ममता की हदों को पार करता हुआ क्या पुरुष, क्या स्त्री और क्या बच्चे, सभी पर कहर बनकर टूट पड़ता है| इसके बावजूद स्त्रियों को तड़पा-तड़पाकर मारने में आनंद की अनुभूति करता है| इसीलिए आतंकवाद की त्रासदियों की सबसे अधिक भुक्तभोगी स्त्रियाँ ही होती हैं – शारीरिक और मानसिक शोषण, बलात्कार, हत्या, मारपीट, जबरन तरीकों से यौन संबंध से बेजार होती स्त्रियाँ| चंद्रकांता जी ने उपन्यास के स्त्री पात्रों में जानकीमाल, कमला, सोना, लल्ली, विजया, पिचरी, तुलसी, मंगला, राज्ञा, खुर्शीद, प्रभावती, फाता, शारिका, सरस्वती आदि प्रमुख एवं गौण स्त्री पात्रों को चित्रित किया है| इन स्त्रियों के चित्रण के साथ ही उस समय का भी लेखिका ने वर्णन किया है जब स्त्रियों को निर्णय लेने का भी अधिकार प्राप्त न था| स्त्रियाँ कुएँ के मेंढक की भांति अपने घर-परिवार की चारदीवारी के भीतर ही अपने संसार को समेटे हुए जीवनयापन करने को विवश थी| कारण कश्मीर के समकालीन हालत जिसमें आतंकवाद, कबाइली हमले आदि शामिल है और जिसके चलते स्त्रियों को सुरक्षा का हवाला देते हुए उन्हें मानसिक, भावनिक और शारीरिक रूप से पंगु बना दिया जाता है| लेखिका ने मनु महाराज के माध्यम से उपन्यास में वर्णित इस तथ्य को उजागर किया है – "मनु महाराज ने तमाम आदर के साथ स्त्री के हर उम्र और हर हाल में पुरुष पर निर्भर रहने की जो सोच प्रदान की थी, उसका उत्तम नमूना अजोध्यानाथ के घर के परिवार की लक्ष्मियाँ थीं| पुरुष हो सोचे वह सही, जो करे वह उत्तम, जो आदेश दे, उसका पालन धर्म|"[5]

कश्मीर के तत्कालीन समाज के साथ साथ, समाज में फैले आतंकवाद ने भी स्त्रियों की बेहद ही कठिन परीक्षा ली है| आतंकवाद के चलते स्त्रियों का जीवन भी आतंकमय बन गया है| आतंकवाद ने इन स्त्रियों के जीवन को अंधकारमय बनाया दिया| निराशा, आक्रोश, शोषण, अत्याचार और निर्मम हत्याओं ने वादी की स्त्रियों के जीवन को दोज़ख बना कर रख दिया है| लेखिका ने आतंकवादियों और जिहादियों द्वारा पीड़ित स्त्रियों की वेदना को बड़ी ही मार्मिकता और संवेदना के साथ उपन्यास में वर्णित किया है| चौदह वर्षीय नूरा का जीवन जिहादियों द्वारा किस तरह से बर्बाद किया जाता है यह उपन्यास में आए इस तथ्य से स्पष्ट होता है जो नूरा की माँ के शब्दों से व्यक्त होता है, "सब ढकोसला है गुंडागर्दी, और कुछ नहीं| मेरी लड़की पागल हो गई| इन शिकसलदों ने उसे खराब कर डाला|"[6] नूरा केवल उदाहरण ही नहीं ऐसे कई और उदाहरण भी हैं जो यह स्पष्ट रूप से बताते हैं कि स्त्रियाँ किस तरह से आतंकवाद की पीड़ा से गमज़दा हैं|

आतंक से जान बचाकर भागी स्त्रियों को विस्थापन के दंश का सामना करना पड़ा| विस्थापित शिविरों में भी खूंखार आँखें इनका पीछा करती है| उपन्यास की शुभावती जो विस्थापन कर दर्द झेल रही है, अपनी दो जवान बेटियों के लिए किस कदर चिंतित है यह इस तथ्य से स्पष्ट होता है, "वहाँ से बचाकर लाई, पर यहाँ भी आँखों से लीलनेवालों की कमी नहीं| कल ही राशनवाला बोल रहा था, "लड़कियों को भेजा करो आंटी, राशन के लिए क्यों धूप में तकलीफ पाती हो?" शुभावती आदमी की नज़र को क्या पहचानती नहीं?"7 विस्थापन के कारण घर-बार छूटते ही इंसान मानों धूल-मिट्टी समान हो जाता है जिसे कोई भी अपने पैरों तले रौंद सकता है|

'पाषाण युग' उपन्यास के माध्यम से संजना कौल ने भी विस्थापन के पारिवारिक और सामाजिक पीड़ा को उजागर किया है| वादी में आतंकवाद के चलते कश्मीरी पंडितों के हो रहे विस्थापन को लेखिका ने एक नन्हें पंछी के माध्यम से प्रतिकात्मक स्वरूप में स्पष्ट किया है –"वह नन्हा पंछी गायब हो गया था| पता नहीं चला, बिल्ली निगल गई या चील-कौवे उड़ा ले गए|.....लोग भी तो इसी तरह गायब हो रहे थे| कहीं अपहरण, कहीं गोलियां तो कभी पूरे परिवार की हत्या|"8 स्त्री केवल मकान भर नहीं होती है बल्कि स्त्री एक ऐसा घर होती है जो सभी तरह के रिश्तों को अपनी भावनिक, आत्मिक, मानसिक और शारीरिक शक्तिरूपी चार दीवारी से बाँधे रखती है| यही कारण है कि घर-परिवार, रिश्ते-नाते का कोई भी व्यक्ति जब इस तकलीफ से गुजरता है तो सबसे पहले उस घर की स्त्री ही सक्ते में आ जाती है| उपन्यास की मुख्य पात्र अंजलि भी अपनी भाभी रागिनी के सपरिवार वादी से विस्थापन पर चिंतित हो उठती है –"अभी हमारी समझ में खुद नहीं आ रहा है, अंजलि| बाबूजी के हाथ में किसी ने चिट्ठी पकड़ा दी कि यह अपने बड़े बेटे को दीजिये| खोलकर पढ़ी तो विनय को गोली मार देने की धमकी, साथ ही चौबीस घंटे में कश्मीर छोड़ देने की हिदायत|

घर में सबके होश उड़े हुए हैं|"[9] सच्चाई तो यही है कि कश्मीर के आज के हालातों को देखकर यकीन करना मुश्किल है कि स्वर्ग है तो बस यहीं है, यहीं है, यहीं है| यह सत्य उपन्यास के पात्र वीरेन्द्र के द्वारा अंजलि को लिखे पत्र के माध्यम से मुखर होती है- "कश्मीर अब तुम लोगों के रहने की जगह नहीं रही| अत: तुम सब कोई और विकल्प सोचो| मैं जानता हूँ, कोई अपनी जमीन से उखड़ना नहीं चाहता| लेकिन अगर तुम लोग ज़िंदा रहना चाहते हो तो कश्मीर छोड़कर कहीं और बस जाने के सिवा और कोई रास्ता नहीं है|"[10] वीरेन्द्र के माध्यम से लेखिका संजना कौल जी ने विस्थापन का सटीक चित्रण किया है|

निष्कर्ष :- किसी भी सजीव के लिए उसके बसे-बसाये आशियाने को यकायक छोडकर अन्यत्र गमन करना कभी भी स्वीकार्य नहीं होता है| किसी भी व्यक्ति द्वारा जब स्वयं की इच्छा से स्थान को छोडना अर्थात विस्थापन किया जाता है तो हालातों के मद्देनजर स्वीकार कर लिया जाता है किन्तु वही विस्थापन यदि जबरिया हो तो उस पीड़ा को वह मरते दम तक भुला नहीं पता है| अत: कह सकते हैं कि विस्थापन किसी भी हालात में किसी के द्वारा भी स्वीकार नहीं होता है| आतंकवाद और उससे उत्पन्न विस्थापन जिसके फलस्वरूप निर्मित समस्याएँ यथा असुरक्षा, बलात्कार, शोषण व निर्मम हत्या जैसे ज्वलंत प्रश्नों को कश्मीरी लेखिकाओं ने उपन्यासों में उठाया है| कश्मीरी लेखिकाओं के उपन्यास न केवल आतंकवाद के विमर्श पर बात करते हैं अपितु कई ज्वलंत व सटीक उदाहरणों के माध्यम से आतंकवाद के संभावित खतरों की ठोस समीक्षा भी प्रस्तुत करते हैं| इन कश्मीरी लेखिकाओं ने न केवल आतंक से पीड़ित कश्मीर के ज्वलंत सत्य को उजागर करने कर साहसिक कार्य अपनी लेखनी के माध्यम से किया है बल्कि विस्थापन और विस्थापितों की पीड़ा को भी अपनी रचना में मुखर किया है|

****

संदर्भ ग्रंथ –

1.कौल, क्षमा, दर्दपुर (2014), ज्योतिपर्व प्रकाशन, गाजियाबाद, पृष्ठ सं. 32
2.वही, पृ. 70
3.वही, पृ. 163
4.वही, पृ. 173
5.चंद्रकांता, कथा सतीसर, 2007, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. सं. 29
6.वही, पृ. सं. 551
7.वही, पृ. सं. 517
8.कौल संजना, पाषाण-युग, 2003, आधार प्रकाशन, हरियाणा, पृ. सं. 7
9.वही, पृ. सं. 21
10. वही पृ. सं. 41-42

'कठगुलाब':एब्यूज्ड स्त्री चिंतन से आगे की कथा

डॉ.वीरेन्द्र प्रताप
सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग
इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय
अमरकंटक,म.प्र.484887

सारांश:-मृदुला गर्ग अंतर्राष्ट्रीय ख्यातिलब्ध कथाकार हैं | उनकी कहानियां,निबंध और वैचारिक लेख विदेश की प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहे हैं | उनके सर्वाधिक विवादित उपन्यास 'चित्तकोबरा' का 1987 में जर्मन भाषा में अनुवाद हो चुका था और 1990 में यह उपन्यास अंग्रेजी में अनूदित हुआ | 'कठगुलाब' उपन्यास का अंग्रेजी में अनुवाद 2003 में 'कंट्री ऑफ़ गुडवाइज' नाम से हुआ | इन्हीं उपन्यासों पर अश्लीलता का आरोप भी लग चुका है | 'कठगुलाब' को स्त्री की जिजीविषा का प्रतीक बनाया है मृदुला गर्ग ने | यह जिजीविषा इस उपन्यास के अनेक पात्रों में दिखाई देती है | जहां तमाम घुटन,उपेक्षा,अपमान,तिरस्कार,शोषण और प्रताड़ना को सहते ,टूटकर बिखरते हुए और फिर ताकत बटोर कर अपने लिए राह बनाती स्त्रियाँ आगे बढ़ जाती हैं | इस आगे बढ़ने की ताकत उन्हें पश्चिमी समाज के सिस्टरहुड और भारतीय समाज के बहनापे से मिलता है | समाज और परिवेश भिन्न-भिन्न होते हुए भी स्त्री का शोषण एक जैसे होता है,पुरुष की मानसिक प्रवृत्तियाँ एक जैसी देखने को मिलती हैं | इसीलिए स्त्री मुक्ति का प्रयास व्यक्तिगत न होकर सामूहिक प्रयास बन जाता है और यह सामूहिकता बोध एक सीमा के आगे जाकर जेंडर के भेद को भी खत्मकर मानवीय मुक्ति में तब्दील हो जाता है | इस उपन्यास को गालियों के लिए नहीं मानवीय मुक्ति और शोषण की संस्कृति के बरक्स समता मूलक समाज के निर्माण की चेतना के लिए पढ़ा जाना चाहिए | आत्मा और देह,स्त्री और पुरुष के अभिप्रेरित लक्षणों के मिश्रण के बिना नए समाज और संस्कृति का सृजन संभव नही है |

बीज.शब्द:कठगुलाब,एब्यूज्ड,स्त्री.मुक्ति,नारीवाद,लेस्बियनिज्म,समता,स्वतन्त्रता,सामाजिक-सांस्कृतिक सृजन

प्रस्तावना:—हिंदी कथा साहित्य में मृदुला गर्ग की पहचान एक नारीवादी लेखिका के रूप में स्थापित है| उनके कुछ उपन्यासों पर अश्लीलता का आरोप भी लगाया जाता रहा है |'चित्तकोबरा' उपन्यास पर तो इतना बवाल हुआ था कि मृदुला गर्ग जी को गिरफ्तारी का वारंट जारी हुआ और कोर्ट-कचहरी के चक्कर भी काटने पड़े थे | ऐसा नहीं है कि साहित्य में श्लीलता-अश्लीलता पर बहस पहले नहीं हुई है,रेणु का 'मैला आँचल' राही मासूम रजा का 'आधा गाँव' और जगदम्बा प्रसाद दीक्षित का 'मुर्दा घर' भगवानदास मोरवाल का 'रेत' जैसे दर्जनों ऐसे उपन्यास हैं जिनमें गालियों की भरमार है | अज्ञेय के 'नदी के द्वीप' पर भी संयत-असंयत काम प्रसंग की चर्चा होती रही है | इन सन्दर्भों को देखकर लगता है कि साहित्य में सेक्स की चटपटी भाषा, जैसे सड़क छाप उपन्यासों में होती है और देह और समाज की वैज्ञानिकता के बीच फर्क को जरूर ध्यान में रखना चाहिए | इसी अर्थ में मैं चाहता हूँ कि उपन्यास के कुछ प्रसंगों,जिन्हें अश्लील माना जाता है उन्हें सामाजिक यथार्थ की दृष्टि से देखा जाना चाहिए और इसके पार जाकर उन प्रसंगों की सामाजिक पड़ताल की जानी चाहिए जहां कथाकार का लेखिकीय उद्देश्य निहित होता है | मनुष्य की मानसिक दुष्प्रवृतियों को उजागर किये बिना या उसका लेखकीय ट्रीटमेंट किये बिना किसी चिंतन की धारा एकांगी हो सकती है | इसलिए इसे नजरअंदाज करने से न सिर्फ एक पक्ष की चिंतन प्रक्रिया तमाम आरोपों-प्रत्यारोपों से घिर जाती है बल्कि घातक भी हो जाती है | मृदुला गर्ग जी के साथ चित्तकोबरा के सन्दर्भ में भी यही हुआ था |

मृदुला गर्ग का 'कठगुलाब' उपन्यास अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर स्त्री जीवन की गहन त्रासदी की यथार्थ कथा है | भारत से लेकर पश्चिमी दुनिया तक की अनेक घटनाओं,नयी-पुरानी पीढ़ी की स्त्रियों के जीवन अनुभव और बौद्धिक जगत में विमर्श-चिंतन,आन्दोलन में सक्रिय महिलाओं से लेकर नर्मदा जैसी घरेलू महिलाओं के जीवन संघर्ष और मुक्ति की चेतना को एक प्लेटफॉर्म पर रख कर जांचने-परखने का अद्भुत प्रयास है | 'कठगुलाब' एक प्रतीकात्मक शीर्षक है जिसका आशय 'स्त्री की जीवटता' इस अर्थ में है कि समाज जिसे बंध्या संबोधित कर उपेक्षित अपमानित का भाव रखता है, यदि उसे सही से सींचा और पाला-पोसा जाए तो उसमें भी उर्वरा शक्ति आ जाती है | सिमोन द बुआ का बहुचर्चित कथन 'स्त्री पैदा नहीं होती है बना दी जाती है' यह बनाया जाना जेंडर विभेद का एक सांस्कृतिक रूप है | मृदुला गर्ग भी यही कहना चाहती हैं कि स्त्री के भीतर के कोमल तंतु सृजन की अपार संभावनाओं को समेटे हुए हैं, लेकिन वे संभावनाएं तब तक प्रतिफलित नहीं होती जब तक की उसकी देख-रेख यानी उचित वातावरण न बना दिया जाये | गुलाब की बाड लगा देने पर अपने आप खिल जाती है लेकिन कठगुलाब के लिए उचित वातावरण तैयार करना होता है | जब तक स्मिता के जीजा,डॉ जारविस, इर्विंग, गनपत और असीमा का बाप जैसे 'कठफोड़वा' इस समाज में मौजूद रहेंगे, कठगुलाब के खिलने की संभाव्यता भी शून्य रहेगी |इन्हीं संभावनाओं की तलाश है यह उपन्यास |

नारीवादी आन्दोलन के विभिन्न चरणों और लहर-दर-लहर चल रही वैचारिक बहसों में मानवीय गरिमा और स्वतन्त्रता के सवाल लगातार उठाये जाते रहे हैं | मानवीय गरिमा और स्वतन्त्रता के साथ शुरू हुआ पश्चिम का नारीवादी आन्दोलन एक ऐसे मोड़ पर भी पहुंचता है जहां बहुतेरी नारीवादी स्त्रियों ने अपने जीवन से न सिर्फ पितृसत्ता को पूरी तरह से खारिज किया बल्कि पुरुष के अस्तित्व का ही अपने जीवन में निषेध कर दिया | सवाल यह है कि इस निषेध से कोई स्वस्थ सामाजिक-सांस्कृतिक परिवर्तन हो सकता है क्या ? नर्मदा की कहानी सुनाते हुए स्मिता के मन में यह सवाल उठता है कि-"अगर मर्द-औरत के बीच का रिश्ता शोषक-शोषित का रिश्ता है,तो क्या उसका विकल्प लैस्बियनिज्म है?"[1] पितृक संस्कृति के बरक्स एक प्रति संस्कृति का सृजन स्त्रियों के लिए बेहद जरूरी है, लेकिन वह प्रति संस्कृति जैविक जरूरतों को नकार कर निर्मित नहीं हो सकती | लेस्बियनिज्म देह की जरूरतों का नकार नहीं,पुरुष के नकार की प्रवृति है | यह जरूर है कि इससे स्त्रियाँ कुछ समय तक पुरुषों पर आभाषी रूप से सफलता महसूस कर सकती हैं लेकिन प्रति संस्कृति के रूप में विकल्प के तौर पर कोई ठोस निर्मित नहीं कर सकती हैं | सिमोन ने स्वीकार किया है कि-"नारी के लिए कामेक्षा – जैविक,सामाजिक तथा मनोवैज्ञानिक तौर पर भिन्न होती है |कई बार स्त्री को - - यदि वह यौन-तुष्टि चाहती है - - ऑब्जेक्ट बनना पड़ता है|"[2] आगे सिमोन ने लिखा है कि-"कामुकता का अनुभव एक ऐसा अनुभव है जो कि मानव को अपनी स्थिति की जटिलता का तीव्रतम बोध कराता है ;इस अनुभव के अंतर्गत वे शरीर व् भावना के स्तर पर स्वयं के प्रति सचेत हो पाते हैं |यह स्थिति औरतों के लिए और भी जटिल हो जाती है,क्योंकि वह पहले स्वयं को वस्तुगत रूप में पाती हैं और यौन क्रिया के स्वतंत्र एहसास के लिए अपनी स्वतन्त्रता के विषय में सचेत नहीं हो पाती हैं ;स्वयं को बद्ध स्थिति में देखने की बजाय अपनी स्वतंत्र स्थिति का आकलन करना चाहिए –यह कठिन और खतरनाक स्थिति है ;इस स्थिति में हर कोई असफल होता है |"[3] दरसल परपीडन से बचने का उपाय कई बार आत्म पीडन में तब्दील हो जाता है | अमेरिका में उपेक्षित,प्रताड़ित स्त्रियों के लिए कार्यरत संस्था 'राँ'यानी 'रिलीफ फॉर एब्यूज्ड विमेन'में काम करते हुए स्मिता ने तीन तरह की स्त्रियों को देखा था कि "पहली वे जिन्हें एब्यूज्ड विमेन कहते थे जो लांछित,प्रताड़ित,बलात्कृत और पीटी हुई औरतें थीं,जिनके भीतर प्रतिरोध की चेतना के रूप में पलायन का भाव आया वह भी बहुत बाद में ,दूसरी वे थीं जिनपर किसी न किसी तरह का कहर टूटा था वे इस संस्था में सहानुभूति देने आती थीं,बदले में खुद भी सहानुभूति हासिल करती थीं,तीसरे दर्जे की स्त्रियाँ जो अपनी बौद्धिकता,पद और रुतवे पर गर्व करतीं थीं,इनके भीतर करुणा कम दंभ ज्यादा था |दूसरों के अनुभव को देखकर इन्हें पुरुषों के प्रति घृणा का भाव पैदा हो गया था |"[4] इस तीसरे स्तर की कुछ महिलायें लेस्बियन थीं और कुछ बिना शादी के दूसरे,तीसरे मर्दों के साथ स्वतंत्र तरीके से रह रहीं थीं –"जो हर छठें-छमासे अपना साथी बदल लेतीं थीं |मजे की बात यह थी कि अपनी तमाम तटस्थता के बावजूद जब वे मौजूदा प्रेमी से अलग होती ;तो गहरी भावात्मक यातना से गुजरतीं|"[5]यौनिक या जैविक जरूरतें मनुष्य की सहज प्रवृत्ति है |इस प्रवृति को नकार पाना सहज नहीं है |

बहुचर्चित नारीवादी लेखिका बैट्टी फ्रिडन ने भी स्त्री की यौनिकता पर सवाल उठाते हुए लिखा था कि-"क्या नारी अपने लैंगिक अस्तित्व को नकार सकती है ? क्या वह पूर्णतः स्वतंत्र हो सकती है ? क्या संतान से मुक्ति या परिवार के दायरे से बाहर रहकर जीना उसे मुक्त करता है ? यौन राजनीति नारी मुक्ति आन्दोलन का मुद्दा नहीं है |उसे केन्द्रीय मुद्दा बनाने से हमारे हितैषियों के मन में कई प्रकार के भ्रम उत्पन्न होते हैं और विरोधी इस आधार पर हमारे कार्यक्रमों को बदनाम करते हैं और हमारी शक्ति क्षय होती है |मूल मुद्दा यौन राजनीति नहीं आर्थिक समता,सामाजिक न्याय,शिक्षा का बराबर अवसर उपलब्ध होना है |एक जैसे कार्य के लिए पुरुष और नारी को सामान वेतन और सुविधाएं उपलब्ध कराना है और इस नीति को समाप्त करना है कि कुछ कार्य केवल महिलाओं के लिए ही तय हैं |"[6] 'द सेकेंड स्टेज' पुस्तक में बैट्टी फ्रीडन ने लिखा था कि-"अब हम यह महसूस करतीं हैं कि नारी मुक्ति आन्दोलन के प्रथम चरण की मांगों के आधार पर पुरुषों और बच्चों के साथ या उनके बगैर ज़िंदा रहना संभव नहीं | नया चरण व्यावसायिक सफलता और पारिवारिक जीवन दोनों की आवश्यकताओं को एक साथ लेकर बढेगा |"[7] कठगुलाब उपन्यास में बहुत सी ऐसी घटनाएं आई हैं जहां स्त्रियाँ गर्भधारण और बच्चे पैदा करने के लिए बेहद लालायित दिखाई देती हैं |वह चाहे भारत के पिछड़े क्षेत्र और निम्न वर्ग की नर्मदा हो या पश्चिम की मारियान या राक्जांन |दरसल फेमिनिस्ट होकर भी औरत की प्रकृति को नहीं नकारा जा सकता है दूसरी बात यह कि सामाजिक परिवर्तन के लिए जरुरी है पुरुष की मानसिकता में बदलाव |इसके लिए स्त्रियों के पास एक ही रास्ता है कि नयी पीढ़ी का सृजन वे अपने हाथों,अपने तरीके से करें |पितृक मूल्य कोई शाश्वत मूल्य नहीं है जिसके भीतर बदलाव नहीं हो सकता है,बल्कि यह अपनी जरूरतों के हिसाब से निरंतर बदलते रहा है यही कारण है कि स्त्री को कभी उसकी इच्छा के विरुद्ध गर्भ धारण करने के लिए मजबूर किया जाता है और कभी गर्भपात के लिए | पुरुषों पर बच्चों का बोझ न हो या उनकी यौनिक स्वच्छन्दता में कोई बाधा न आये इसलिए इर्विंग जैसे पुरुष,जो स्त्रियों पर जीवन यापन के लिए निर्भर रहते हैं, तर्क करते हैं कि-"औरत जब हर क्षेत्र में काम कर रही है |सुबह से शाम तक व्यस्त रहती है तो उसे इस आदिम प्रवृति और मान्यता से मुक्त होना चाहिए,वरना किसी महान कलाकृति की रचना नहीं हो पाएगी |"[8] इसके लिए मारियान को इर्विंग ने यह भी समझाया कि-"आदिम समाज स्त्री को शिशु की रचना में व्यस्त रखकर,उसे पुरुष की सुरक्षा पर निर्भर बनाना चाहता था और यह भी ढकोसला फैलाया कि औरत को बच्चे की सृष्टि करके इतनी पूर्णता मिल जाती है कि उसमें काव्य का कलाकृति की सृष्टि करने की भूख बची नहीं रहती |"[9] पितृक मूल्यों के इन्हीं दबाओं ने सामाजिक संरचना में बदलाव किया, परिणाम स्वरूप स्त्री-पुरुष के बीच संबंधों का स्थायित्व समाप्त हो गया और भोगवादी संस्कृति ने जन्म लिया | नारीवादी आन्दोलन स्थापित

व्यवस्था में आमूलचूल या क्रांतिकारी परिवर्तन चाहता है | इस परिवर्तन के लिए स्त्री विद्रोह की हद तक मुखर होती है,इसलिए कई बार यह आन्दोलन बहुत उग्र हो जाता है और एकांगिकता की ओर बढ़ जाता है ,जबकि जर्मेन ग्रीयर का मानना है कि ऐसी स्थिति से बचना चाहिए | "जब यह आन्दोलन पुरुषों से अपनी स्वतंत्रता मांगते हैं या स्वतन्त्रता देने को मजबूर करते हैं तो यह स्त्री-पुरुष के अलगाव और अपनी निर्भरता को ही आगे बढ़ा रहे होते हैं |"[10] अलगाववाद के मूल्यों वाली क्रांतियों,स्त्री देह और यौनिकता पर सचेत करते हुए जर्मेन ग्रीयर ने लिखा है कि- "क्रांति को उन कुछ सन्दर्भों को ठीक कर पाना चाहिए जिन्हें स्त्रीत्व,काम,प्रेम और समाज की हमारी पूर्वधारणाओं ने मिलकर गढ़ा है | यह ऊर्जा के पुनर्विस्तार का प्रस्ताव रखती है,दमन के लिए नहीं कामना,गति और सृजन के लिए ऊर्जा का उपयोग | काम को शक्तिशाली और शक्तिहीन,दबंग और दबैल,लैंगिक और अलिंगी, के बीच व्यापार से बचना होगा ताकि वह प्रभविष्णु,सौम्य,कोमल लोगों के बीच संवाद का एक स्वरूप बन पाए ,यह इतर लिंगी संपर्क की मनाही से नहीं हो सकता |"[11] आन्दोलन विषमता को समाप्त करने के लिए होते हैं वर्चस्व को स्थापित करने के लिए नहीं,इस बात का ध्यान हर परिवर्तनकामी व्यक्ति को रखना चाहिए |विवाह नामक संस्था को स्त्री-पुरुष के जीवन में स्थायित्व का आधार माना जाता है | यह आधार परस्पर एक-दूसरे की निर्भरता पर ही टिका होता है,लेकिन अक्सर यह देखा जाता है इस व्यवस्था में एक पदानुक्रम मौजूद है | इस पदानुक्रम से बचने का एक रास्ता प्रेम या स्त्री-पुरुष के विवाहेतर सम्बन्ध हैं,लेकिन इन संबंधों की अस्थिरिता इसकी आलोचना की जमीन तैयार करती है |वैसे तो प्रेम को बहुत उच्च और पवित्र दर्जा दिया जाता है लेकिन कई बार यह इतना विकृत हो जाता है कि घृणा की हद तक पहुँच जाता है - आत्मपीडन,परपीडन,अपराधबोध और स्त्रियों के शारीरिक हिंसा ,दमन और अक्सर गाली-गलौज पर जाकर ख़त्म होता है | विवाह संस्था के भीतर सामाजिक दबाव और असुरक्षाबोध की वजह से सालों-साल स्त्रियों को शोषण-उत्पीडन का शिकार होना पड़ता है,यह उपन्यास इन सन्दर्भों को बहुत बारीकी से उठाता है | इस उपन्यास में स्मिता,मारियान,एलेना,सूजन,राक्जांन,नर्मदा और असीमा जैसी बहुत सी स्त्रियाँ हैं जिन्होंने पितृसत्तात्मक मूल्यों की घुटन और यातना को झेला है | जीजा द्वारा बलात्कृत स्मिता प्रतिशोध की आग लिए बडौदा के लिए निकली तो कानपुर पहुँच गयी और फिर अमेरिका | जिस शोषण और दमन से मुक्त होने के लिए उसने घर छोड़ा आखिरकार अमेरिका पहुंचकर उसका कोई समाधान नहीं निकला | सांस्कृतिक द्वंद्व से जूझते हुए अमेरिका में वह एक साइक्याट्रिस्ट डॉ जारविस के द्वारा फिर उसी शोषण का शिकार होती है अंतर बस इतना था कि जीजा के लिए प्रतिशोध की आग ज़िंदा थी और जारविस को स्मिता ने भी अच्छे से ठोक-पीट कर कुछ संतुष्ट हो ली थी | मारियान का रूथ से मारियान बनने की एक त्रासद कथा है |लेकिन जीवन में कई उलट-फेर,उतार-चढ़ाव से उसका यही निष्कर्ष था कि-"हर औरत में जुल्म उठाने की एक ऐसी महारत देखी जा सकती है कि सोफेस्टकेटेड से सोफेस्टकेटेड औरत भी कहीं-न –कहीं एक मामूली किसान सी औरत की तरह रोती-कलपती पायी जाती है |"[12] सातवें दशक के आस-पास अमेरिका में पूंजीवाद चरम पर था | पूंजी की ताकत पर हर चीज खरीदी जा सकती थी एक ऐसा भ्रम का वातावरण बनाया गया था |जीवन में यांत्रिकता इस तरह हावी होने लगी की मानवीय संवेदनाओं में रिक्तता भर गई | पूंजी में अंधे लोगों ने दौलत को शाश्वत मूल्य के रूप में स्वीकार किया,उसकी ताकत पर हर चीज खरीद लेनी चाही | दौलत की ताकत पर सौन्दर्य का बाज़ार परवान चढ़ा और सौन्दर्य के इस बाजारीकरण ने स्त्री को सिर्फ देह या उपभोग की वस्तु के रूप में तब्दील कर दिया |परिणाम यह हुआ कि स्त्रियों को अपनी बदली हुई भूमिका में खुद को पारिभाषित करना जरुरी हो गया | मारियान की माँ वरजिनया एक खूब सूरत महिला थी | जिसने अपने सौन्दर्य को बनाए रखने के लिए प्लास्टिक सर्जरी कराई हुई थी और लिबास पर खासा ध्यान देती थी | पिट्सवर्ग के नामी-गिरामी लेखक ,कलाकार,उद्योगपति और व्यापारी सब उसके सौन्दर्य से प्रभावित थे | लेकिन कैंसर की बिमारी से जूझती वरजिनया जब मृत्यु शैया पर पड़ी थी उस समय मारियान ने जो महसूस किया वह महत्वपूर्ण है | वह कहती है "उस बिमारी के दौरान,मैंने सिर्फ माँ को कंगाल होते ही नहीं देखा था,अमेरिका के दो कल्ट आइकांस को टूटते बिखरते भी देखा था- दौलत और जवानी |"[13] मृदुला जी ने मारियान के इस कथन से पूंजी और सौन्दर्य के मिथ को तोड़ा है |

नर्मदा एक कामकाजी घेरलू महिला है | निरंतर अन्याय,अत्याचार सहते हुए भी वह हिम्मत नहीं हारती,पहले आर्थिक स्वतन्त्रता हासिल करती है,अपने भीतर शोषण के विरुद्ध प्रतिरोध की चेतना विकसित करती है,स्वभाव में दबंगई भी आ जाती है | इस व्यवहार को हासिल करने में बहुत कुछ असीमा का प्रभाव था | लेकिन इसके बावजूद वह पति और बच्चों के मोह से विरक्त नहीं हो पाती है | असीमा ने उपन्यास में खुद नाटकीय तरीके से अपना परिचय दिया है | पहला तो यह की उसने खुद के सीमा नाम को असीमा में तब्दील किया था | दूसरा यह की उसे मर्दों से नफरत थी | सबसे ज्यादा नफरत अपने बाप से | उसके बाप ने उसकी माँ के रहते ही दूसरी औरत रख ली थी क्योंकि माँ हर वक़्त उसकी भूख मिटाने को न तत्पर रहतीं थीं और नही उन्हें देह प्रदर्शन पसंद था |असीमा की माँ हर तरह की सीमा में बंधी,एक अड़ियल,जिद्दी औरत थी |यह असीमा का कथन है |असीमा की माँ को फेमिनिज्म के बारे में कितनी जानकारी थी इसका अंदाजा इस बात से लगाया जा सकता है वह – "आदर्श गृहिणी,कर्तव्यपरायण माँ ,अपनी सीमाओं में आबद्ध,सतयुगी काल से चली आ रही,संतोषी भारतीय नारी थी |"[14] लेकिन माँ के अड़ियल व्यवहार से असीमा कहती है –"क्या महज जिद के बल पर कोई औरत फेमिनिस्ट कहला सकती है ?जरूरी नहीं है कि हर जीवन मूल्य को विचारधारा में बाँध कर ही देखा जाए | असीमा के बाप की दूसरी शादी के बाद माँ ने खुद ही सारे रिश्ते तोड़ दिए और "उसने न रोना-धोना मचाया,न गाली-गुफ्तार की | न तलाक मांगा न जेब खर्च | उलटे छाती ठोंक कर एलान कर दिया,;मेरे सिद्धांत मुझे ऐसे पति से एक पैसा लेने की इजाजत नहीं देते,जो किसी और का पति बन चुका हो |"[15] असीमा की माँ ने अपना रास्ता खुद बनाया तो यह उसका स्वाभिमान और सम्मान है | स्वाभिमान और अपनी शर्तों पर जीवन जीना एक मूल्य है | आर्थिक स्वतन्त्रता फेमिनिज्म के भीतर एक जरुरी मुद्दा है लेकिन जरूरी नहीं कि हर जीवन मूल्य को विचार धारा पर आंका जाए |

पश्चिमी सन्दर्भ में देखा जाए तो लेस्बियनिज्म और गर्भपात के लिए कानूनी लड़ाई नारीवादी आन्दोलन का हिस्सा है |इसकी आलोचना चाहे जितनी की जाये लेकिन स्त्रियों को इस स्थिति तक पहुंचाने में सर्वाधिक भूमिका पुरुषों की ही है | पुरुष की हिंसा और प्रताड़ना से त्रस्त होकर ही महिलाओं के भीतर पुरुषों के लिए घृणा का भाव पैदा हुआ | जबकि सृजन स्त्रियों का स्वभाव है | किसी व्यवस्था को विकृत करने के लिए स्त्रियों ने उसमें परिवर्तन नहीं किया है बल्कि विसंगतिपूर्ण ढाँचे को समाप्त कर उसका पुनर्निर्माण करना और समता मूलक समाज की स्थापना करना स्त्री चिंतन का केंद्र विन्द है | फिर यह मामला गर्भ धारण,घरेलू श्रम या सामाजिक दायित्व का ही क्यों न हो | यही वजह है कि मृदुला गर्ग जी ने स्त्री सृजन को नया आयाम दिया है | स्मिता और असीमा जैसी नारीवादी स्त्रियाँ सिर्फ बौद्धिक विमर्श ही नहीं करतीं बल्कि सृजन के अन्य पक्षों का तलाश भी करती हैं और अपनी सामाजिक जिम्मेदारियों का निर्वाह भी करती हैं | स्मिता के सूडो फेमिनिस्ट कहने के जबाब में असीमा का कथन देखा जा सकता है-"मुझे फेमिनिस्ट का तमगा लगाने के लिए किसी नीम-मर्दानी औरत के साथ सोना मंजूर नहीं है|"[16] उपन्यास में अतिवैज्ञानिकता या कहें यांत्रिकता की प्रवृति की भी कटु आलोचना की

गयी है | विपिन मजूमदार और असीमा के संवाद में टेस्ट ट्यूब शिशु का जिक्र किया गया है | यह बात साफ़ तौर पर उपन्यासकार ने बता दिया है कि यह मातृत्व का विकल्प नहीं हो सकता है | गर्भ धारण का एक तरिका मात्र है | शिशु के गर्भ और स्तनपान की जरुरत तो माँ के बिना पूरी नहीं हो सकती है |यह क्षमता केवल स्त्रियों में है इसीलिए लेखिका का मानना है कि स्त्री के भीतर सृजन की क्षमता है,उदारता और संवेदनशीलता को बनाए रखने में मातृत्व की महत्वपूर्ण होती है | यह मानवीय मूल्य और मानवीय चेतना को किसी जड़ व्यवस्था से सिर्फ लड़ने में ख़त्म कर देने से बेहतर है उसका सृजनात्मक उपयोग करना | इस उपन्यास में मृदुला गर्ग जी ने स्मिता और असीमा के माध्यम से आक्सकॉम की सहायता से 'डिपराइल्ड गर्ल्स चाइल्ड ' के लिए काम करना और गुजरात के बन्थाल और गोधड जैसे गरीब,पिछड़े गाँव और वहाँ की उसर,बंजर धरती को हरा भरा करवा देना न सिर्फ स्त्री की पर्यावरणीय चेतना या ईको फेमिनिज्म को दर्शाता है बल्कि प्रति संस्कृति का निर्माण भी करना है | यह संस्कृति बृहत्तर मानवीय समाज को अपने भीतर समाहित करने की क्षमता रखती है |

निष्कर्ष:-

निष्कर्षतः देखा जाए तो सम्पूर्ण मानव मुक्ति ही साहित्य का उद्देश्य होता है | व्यक्तिगत मुक्ति या व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का प्रयास एकांगी या एक पक्षीयता की निशानी है | व्यक्तिगत मुक्ति से कोई बड़ा सामाजिक-सांस्कृतिक परिवर्तन नहीं हो सकता है | कठगुलाब उपन्यास में स्मिता और असीमा का गुजरात के गोधड और बन्थाल जैसे पिछड़े आदिवासी क्षेत्र में जाकर लड़कियों के लिए स्कूल खोलना,उसर-बंजर जमीन में सुधार करके हरा भरा और उपजाऊ बनाने का जिक्र न भी किया जाता तो भी स्त्री जीवन का पूरा संघर्ष उभर कर आता | लेकिन इस स्थिति में यह स्त्री संघर्ष सिर्फ स्त्री के लिए होता | पितृसत्ता के वर्चश्व को चुनौती देती स्त्रियाँ अपना प्रतिशोध पूरा कर सकती थीं,अपने निजी जीवन में सफलता के उच्च शिखर पर पहुँच सकती थीं लेकिन स्त्री विमर्श के प्रचलित पैटर्न से आगे नहीं बढ़ पातीं | यह उपन्यास स्त्री विमर्श के परम्परागत ढाँचे को तोड़कर नया रूप गढ़ता है जिसमें सिर्फ स्त्री मुक्ति की चेतना नहीं,सम्पूर्ण मानव मुक्ति की चेतना विद्यमान है |

****

सन्दर्भ सूची:-

1.गर्ग,मृदुला,कठगुलाब (2013,सातवाँ संस्करण)भारतीय ज्ञान पीठ,नयी दिल्ली,पृ.190
2.इस्सर,देवेन्द्र,स्त्री मुक्ति के प्रश्न (2009)संवाद प्रकाशन,मेरठ,पृ.18
3.पूर्वोक्त,पृ.19
4.कठगुलाब,पृ.56
5.पूर्वोक्त,पृ.57
6.स्त्री मुक्ति के प्रश्न,पृ.45
7.पूर्वोक्त,पृ.45
8.कठगुलाब,पृ.79
9.पूर्वोक्त,पृ.78
10.ग्रीयर,जर्मेन,बधिया स्त्री,अनुवाद मधु बी.जोशी(2001),राजकमल प्रकाशन,नयी दिल्ली,पृ.19
11.पूर्वोक्त,पृ.19
12.कठगुलाब,पृ.97
13.पूर्वोक्त,पृ.72
14.पूर्वोक्त,पृ.165
15.पूर्वोक्त,पृ.166
16.पूर्वोक्त,पृ.173

गुरु रैदास का पाठ – संपादन

डॉ. राजेंद्र प्रसाद सिंह
प्रोफेसर, हिंदी विभाग
शांति प्रसाद जैन महाविद्यालय सासाराम-821115(बिहार)

संत रैदास के जमाने की एक भी पांडुलिपि अभी तक नहीं मिल सकी है। इसीलिए रैदास बानी का सबसे पुराना प्रमाणिक स्रोत " आदिग्रंथ " को माना जाता है। " आदिग्रंथ " का संकलन 1604 ई. में गुरु अर्जुन देव ने किया था। इसमें रैदास के 39 पद तथा 1 श्लोक शामिल हैं। एक पद मामूली पाठभेद के साथ दो बार अलग - अलग रागों में संकलित है। उसे जोड़कर अक्सर 40 पद और 1 श्लोक कहा जाता है। इसके अलावा संत - मत के अनेक संग्रहों में उनकी रचनाएँ संकलित मिलती हैं। दादू ग्रंथ के रूप में लिखी हुई पोथियों के सैकड़ों संग्रह, विभिन्न रूप और रूपांतर के साथ राजस्थान के जयपुर, जोधपुर, उदयपुर, बीकानेर, आमेर के पुस्तकालयों में उपलब्ध हैं। नागरी प्रचारिणी सभा, काशी तथा हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग के हस्तलेख संग्रहों में भी कबीर के साथ - साथ रैदास की अनेक रचनाएँ उपलब्ध हैं। " रैदास बानी " में डॉ. शुकदेव सिंह ने लिखा है कि रज्जबदास की सर्वगी में 9 और गोपालदास की सर्वगी में 67 रचनाएँ अंगों और रागों में वर्गीकृत हैं (रैदास बानी, सं. शुकदेव सिंह, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 16)। महाराष्ट्र और पंजाब के अनेक गुरुद्वारों तथा रैदासी डेरों में भी ऐसे हस्तलेख उपलब्ध हैं, जिनमें रैदास की रचनाएँ हैं। अभी तक जो प्राचीनतम हस्तलेख मिल सका है, जिसमें रैदास की बानी है, वो 1582 ई का है। इसे फतेहपुर हस्तलेख कहा जाता है। फतेहपुर हस्तलेख का परिचय देते हुए डॉ. शुकदेव सिंह ने लिखा है कि फतेहपुर हस्तलेख (1582 ई.) को चित्राजी कुँवर को पढ़ने के लिए तैयार कराया गया था, जो कछवाहा राजा नरहरिदास के पुत्र थे। इसमें कुल 441 पद हैं, जिनमें से 5 पद रैदास के हैं (रैदास बानी, सं. डॉ. शुकदेव सिंह, पृ. 22)।

जैसा कि विदित है कि राजस्थान, पंजाब, गुजरात एवं महाराष्ट्र आदि प्रांतों में अनेक पांडुलिपियाँ मिलती हैं, जिनमें संत रैदास के पद संगृहीत हैं। रैदास बानी की पांडुलिपियाँ संभालने में दादू पंथ एवं राम स्नेही पंथ के अनुयायियों की सराहनीय भूमिका रही है। इसमें सिख धर्म का भी योगदान महत्वपूर्ण है। किंतु जिस काशी में रैदास का जन्म हुआ था, वहाँ से एक भी स्वतंत्र हस्तलेख अभी तक प्राप्त नहीं हो सका है। यह दुखद है। दुखद इसलिए कि रैदास की मातृभाषा काशी की थी। इसलिए उनकी बानी में काशी की भाषा की प्रमुख भूमिका रही होगी। ऐसा सहज ही अनुमान किया जा सकता है। लेकिन काशी में लिखित कोई हस्तलेख नहीं मिल पाने के कारण अन्य प्रांतों की भाषाएँ उनकी बानी पर हावी हो गई हैं। यह पाठ - संपादन की सबसे बड़ी कठिनाई है। जैसा कि हम डॉ. शुकदेव सिंह द्वारा संपादित " रैदास बानी " में देखते हैं कि " चाम का हाती चाम का राजा " लिखा है। बनारस की भाषा में " हाथी " को " हाती " कहने और लिखने का प्रचलन पहले भी नहीं था और आज भी नहीं है। "कबीर ग्रंथावली" में एक बार भी " हाती " का लेखन नहीं है। वहाँ " हाथी " लिखा जरूर मिलता है। चूँकि कबीर और रैदास दोनों बनारस के थे। दोनों समकालीन थे। दोनों में परस्पर संवाद भी होता था। मुगल काल की चित्रकारी में हमें कबीर और रैदास के संयुक्त चित्र मिलते हैं। इसलिए रैदास की काव्यभाषा भी कबीर की काव्यभाषा से बिल्कुल अलग नहीं रही होगी। दोनों पर काशी की भाषा की छाप रही होगी। रैदास के पाठ - संपादन में हमें सदैव इस बात का ख्याल रखना होगा। चूँकि कबीर की भाषा, पाठ-संपादन तथा उनके शब्दकोश पर अनेक काम हो चुके हैं। सो, रैदास के पाठ - संपादन के सिलसिले में कबीर के पाठ - संपादन से मदद मिलेगी। अनेक पदों के पाठ इतने भ्रष्ट हो चुके हैं कि उसके मूल को पकड़ना बहुत कठिन है। एक उदाहरण " रैदास बानी " से लिया जा सकता है, वह पद संख्या 69 है। लिखा है -चाम की गऊ

चाम का बचड़ां।
चामहि धुने चामहि टांडां।।

जाहिर है कि दूसरी पंक्ति का पाठ भ्रष्ट है। इसलिए इस पद का भाव और अर्थ पकड़ने में कठिनाई है। प्रथम पंक्ति में साफ है कि गाय भी चाम की तथा बछड़ा भी चाम का है। लेकिन दूसरी पंक्ति का प्रथम पंक्ति से कोई सामंजस्य नहीं है। यदि हम " धुने " की जगह " दुहे " कर दें तथा " ठांड़ां " की जगह " थांड़ां " कर दें तो पाठ सही हो जाएगा।

चाम की गऊ चाम का बचड़ां।
चामहि दुहे चामहि थांड़ां।।

दरअसल इस पद में रैदास चाम का महत्व स्थापित कर रहे हैं। इसलिए वे कहते हैं कि गाय भी चाम की तथा उसका बछड़ा भी चाम का है। इतना ही नहीं बल्कि गाय को दुहनेवाला ग्वाल भी चाम का है और जिस थन को ग्वाल दुह रहा है, वह थन भी चाम का है। गो - दोहन को वे दो पंक्तियों में बताते हैं। इसके ठीक नीचे राजा और उसके काफिले का वर्णन है, वह भी दो पंक्तियों में है। दूसरी बात कि " बचड़ां " के तर्ज पर हमें " थांड़ां " लिखना होगा, जबकि मूल पाठ में " ठांडां " लिखा है। " ड " की जगह यहाँ " ड़ " होगा।

पाठ - संपादन और अर्थ - निर्धारण के बीच गहरा रिश्ता होता है। यदि पाठ अशुद्ध है तो जाहिर है कि अर्थ भी गलत होगा। एक उदाहरण बेगमपुर वाला पद से लेते हैं। इसमें एक जगह " दोम न सेम " लिखा मिलता है, जिसका अर्थ अनेक आलोचकों ने अनेक प्रकार से किया है। वे दोम को " दोयम " का लघु रूप मान लेते हैं तथा आगे सेम की मनमानी व्याख्या कर डालते हैं। सेम का अर्थ तीसरे दर्जे का नागरिक किसी भी भाषा में नहीं है। कुछ लोगों ने इसे "सोम" कर लिया है और फिर बता दिया है कि इसका अर्थ तीसरे दर्जे का नागरिक होगा। लेकिन "सोम " का अर्थ भी अरबी - फारसी - तुर्की या भारत की अन्य भाषाओं में कहीं भी तीसरे दर्जे का नागरिक नहीं मिलता है। कतिपय आलोचकों ने इसे " सौम " मान लिया है, जो अरबी का है। लेकिन अरबी के सौम का अर्थ " महंगा करके बेचना " होता है। यदि यहाँ " सौम " मान भी लें तो इसका कोई तालमेल " दोम " के साथ नहीं है। पद में आगे लिखा है कि " एक सो आहि " मतलब कि बेगमपुर में सभी एक समान हैं। फिर दूसरे और तीसरे दर्जे के नागरिक की कल्पना करने का कोई औचित्य नहीं जान पड़ता है। दरअसल यहाँ सटीक पाठ है - दाम न साम। चूँकि इस पूरे पद में पातिसाही का वर्णन है। राज सत्ता किस तरह से दाम और साम का प्रयोग करती है, बताने की जरूरत नहीं है। रैदास ने जिस बेगमपुर की संकल्पना प्रस्तुत की है, उसमें उन्होंने यह बताने का प्रयास किया है कि बेगमपुर बिना शोक की नगरी है, सो वहाँ साम - दाम जैसे राजकीय हथियार इस्तेमाल नहीं किए जाते हैं। मैंने यहाँ रैदास बानी के पाठ - संपादन की एक झलक मात्र प्रस्तुत की है, इसकी पूरी प्रक्रिया को लिखने के लिए स्वतंत्र पुस्तक तैयार करनी होगी, जो यहाँ संभव नहीं है।

मध्यकाल के "आदिग्रंथ" में रैदास की 40 बानियाँ संगृहीत हैं। इसे रैदास बानी का प्रामाणिक तथा प्राचीनतम संग्रह माना जाता है। लेकिन आदिग्रंथ में शामिल रैदास की बानियाँ कहाँ से ली गई हैं,

इसका पता नहीं चल सका है। इसका संकलन 1604 ई. में सिखों के पाँचवें गुरु अर्जुन देव ने किया था। आधुनिक काल में रैदास बानी का पहला संकलन बेलवीडियर प्रेस, इलाहाबाद से प्रकाशित हुआ। बेलवीडियर प्रेस ने 1907 ई. से संतों की बानी प्रकाशित करना प्रारंभ कर दिया था। इस संकलन का नाम "रैदास जी की बानी" है। संकलन के आरंभ में रैदास जी का जीवन - चरित्र दिया गया है। जीवनी एकदम से पारंपरिक ढंग से लिखी गई है। फिर सबसे पहले रैदास की 6 साखियाँ संकलित हैं। फिर आगे 87 पद संकलित हैं। संकलन राग के हिसाब से है और इसमें कठिन शब्दों का अर्थ भी देने की कोशिश है। आजादी के बाद परशुराम चतुर्वेदी ने संत - काव्य " का संपादन किया, जिसका प्रथम संस्करण 1952 ई. में आया था। यह संपादन किताब महल, इलाहाबाद से छपा है। इस संकलन में कवि जयदेव से लेकर स्वामी रामतीर्थ के समय तक की चुनी हुई रचनाएँ शामिल की गई हैं। इसमें सबसे पहले रैदास की संक्षिप्त जीवनी लिखी गई है। फिर उनके पद दिए गए हैं। पद विषय के अनुसार रखे गए हैं, जैसे विनय, दैन्य भाव, नाम महत्व, चेतावनी आदि। इसमें रैदास के कुल पदों की संख्या 28 है। आखिरी में रैदास की 3 साखियाँ संकलित की गई हैं। संपादक ने हर पद के नीचे पाठकों की सुविधा के लिए कठिन शब्दों का अर्थ दिया है। परशुराम चतुर्वेदी के बाद वियोगी हरि ने "संत - सुधा - सार" का संपादन किया। यह संपादन संस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली से प्रकाशित हुआ। वह साल 1953 ई. था। इस संपादन में कुल मिलाकर 37 संतों की रचनाएँ हैं। सिद्ध सरहपाद से लेकर तुलसी साहब तक की रचनाएँ इसमें शामिल हैं। आचार्य विनोबा ने इसकी प्रस्तावना लिखी है। इस संग्रह में रैदास के 31 पद और 5 साखियाँ हैं। आरंभ में छोटी - सी जीवनी लिखी गई है। फिर रैदास के पद दिए गए हैं। हर पद में राग का जिक्र है। कठिन शब्दों का अर्थ भी दिए गए हैं। संपादन का आधार संपादक ने खुद बता दिया है। इसमें श्री गुरुग्रंथ साहब, रैदास जी की बानी, भक्तमाल तथा भगवान रविदास की सत्य कथा से मदद ली गई है। रैदास जी की बानी (बेलवीडियर प्रेस) में आदिग्रंथ में संकलित रैदास के कुछेक पदों को जगह मिली है। कई पद ऐसे भी हैं जो "आदिग्रंथ" में नहीं हैं। परशुराम चतुर्वेदी ने अपने संकलन में "आदिग्रंथ" और "रैदास जी की बानी" दोनों को आधार बनाया है। " संत - सुधा - सार " के बाद 1955 ई. में "संत रैदास और उनका काव्य" नामक पुस्तक प्रकाशित हुई। इसमें भी रैदास की बानियाँ संकलित हैं। इसके संपादक रामानंद शास्त्री हैं और इसका प्रकाशन रविदास आश्रम ज्वालापुर, हरिद्वार से हुआ।

1950 के दशक के आखिर में रैदास पर एक नए ढंग की आलोचनात्मक पुस्तक प्रकाशित हुई, जिसका नाम "संतप्रवर रैदास साहेब" है। इसके लेखक चंद्रिका प्रसाद जिज्ञासु हैं। "संतप्रवर रैदास साहेब " (पूर्वार्द्ध) का प्रकाशन 1959 ई. में हुआ था। इस पुस्तक ने रैदास को देखने की एक नई दृष्टि दी। इस पुस्तक में जिज्ञासु ने रैदास को ब्राह्मणवादी कहानियों से मुक्त किया। उन्होंने बताया कि रैदास के गुरु रामानंद नहीं थे। जिज्ञासु ने रैदास के जीवन से जुड़ीं ऐसी सभी चमत्कारी घटनाओं का खंडन किया है। "संतप्रवर रैदास साहेब " का दूसरा खंड 1968 ई. में प्रकाशित हुआ। दोनों भाग बहुजन कल्याण प्रकाशन, लखनऊ से छपे हैं। डॉ. जोगिंदर सिंह, पृथ्वी सिंह आजाद, रत्न चंद और बेणी प्रसाद शर्मा ने भी अपने - अपने ढंग से रैदास बानी का संपादन किया। 1986 में इंद्रराज सिंह लिखित "संत रविदास " का प्रकाशन हुआ। इसे प्रकाशन विभाग ने छापा है। इसमें रैदास के 58 पद एवं 6 साखियाँ हैं। लेकिन पुस्तक इसलिए महत्वपूर्ण है कि इसमें रैदास का जीवन - वृत्त, उपलब्धियाँ एवं अन्य पक्षों पर भी विस्तृत प्रकाश डाला गया है। इंद्रराज सिंह ने रैदास पर प्रकाशित पुस्तकों के बारे में भी जानकारी दी है। उन्होंने बताया है कि डॉ. बेणी प्रसाद शर्मा ने 8 - 10 वर्षों के अथक प्रयत्न से रैदास के उपलब्ध प्राय: सभी महत्वपूर्ण हस्तलेखों का निरीक्षण करके अधिकाधिक पदों को संगृहित कर प्रामाणिक रूप से संपादित करने का प्रयास किया है। उनके संपादन में 177 पद तथा 49 साखियाँ हैं। साखियाँ इसलिए कम हैं कि उन्होंने पृथ्वी सिंह आजाद के "रैदास - दर्शन" में शामिल 193 साखियों को छोड़ दिया है (संत रविदास, इंद्रराज सिंह, प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली, परिशिष्ट 2) । डॉ. बेणी प्रसाद शर्मा द्वारा संपादित पुस्तक का नाम "संत गुरु रविदास वाणी" है। डॉ. धर्मपाल मैनी और डॉ. धर्मवीर ने भी इस दिशा में महत्वपूर्ण काम किया है। इक्कीसवीं सदी के आरंभ में डॉ. शुकदेव सिंह ने "रैदास बानी" का संपादन किया है। इसका पहला संस्करण राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली से 2003 ई. में छपा है। इसमें 193 पद संकलित हैं। हर पद का पाठांतर भी दिया गया है। इसमें 14 साखियाँ भी हैं। पाठ - संपादन निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है। अभी रैदास के पाठ - संपादन और भी होंगे तथा उनकी भूली - बिसरी बानियाँ और भी मिलेंगी।

****

श्यौराज सिंह बेचैन की कहानियों में संवेदना के विविध रूप :'हाथ तो उग ही आते हैं '

शमीम पी
सहायक आचार्य
हिंदी विभाग सरकारी ब्रेनन कॉलेज
धर्मडम, तलशेरी, कन्नूर – 670106 मोब: 7356108164

हिंदी साiहित्य धारा को जाति एवं वर्ग चेतना की मशाल से रोशन करने वाले प्रतिष्ठित साहित्यकार एवं पत्रकार हैं श्यौराज सिंह बेचैन। उनकी कहानियों के केंद्र में शोषण, गरीबी, अशिक्षा, जातिवाद और भेदभाव के शिकार दलित जीवन का संघर्ष रहा है। उन्होंने वर्तमान और अतीत का विश्लेषण करके उसके आधार पर सवर्णवादी मानसिकता को बेनकाब करने का सफल प्रयास किया है । यही नहीं दलितों के संघर्ष, उत्पीड़न, प्रतिकार, चेतना आदि को उजागर कर सामाजिक न्याय साबित करने का आह्वान थी सशक्त रूप से उनकी रचनाओं में प्रतिफलित है। भोगे हुए यथार्थ को वास्तविकता के धरातल पर प्रतिष्ठित करते हुए अपने अनुभव के आलोक से सदियों से संतप्त दलित वर्ग के संघर्ष को पाठक के सामने समग्रता से प्रस्तुत करने का भी प्रयास किया है।

श्यौराज सिंह बेचैन जी की साहित्यिक प्रेरणा के पीछे एक लंबा संघर्ष रहा है। बचपन से ही उन्होंने दलित होने की पीड़ा को भोगा। वे एक प्रखर वक्ता, संवेदनशील कवि, सामाजिक लेखक, समीक्षक, नाटककार, कहानीकार, एवं कहानीकार है। उनकी प्रसिद्ध रचनायें है: हिन्दी दलित पत्रकारिता पर अंबेडकर का प्रभाव, क्रौंच हूँ में, नई फसल(कविता संग्रह), उत्तर आधुनिक अस्पृश्यता के दौर में(निबंध संकलन), मेरा बचपन मेरे कंधों पर (आत्मकथा), भरोसे की बहन(कहानी संग्रह) आदि। श्यौराज जी ने अपना रचनाओं के माद्धम से दलित वर्ग की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, व सांस्कृतिक समस्याओं, पीड़ाओं और अत्याचारों को बड़ी सजीवता से उठाने का साहसिक प्रयास किया है।

श्यौराज जी का नया कहानी संग्रह, 'हाथ तो उग ही आते हैं' में नौ कहानियां संकलित है। "इस संग्रह की एक- एक कहानी एक-एक उपन्यास की कथा समेटे हुए है ।यह देश की सांस्कृतिक बहुलता तथा विविधता का प्रतिनिधि उदाहरण है, जिसमें लगता है पात्र पृष्ठों के बाहर आकर पाठकों के कानों में अपना भोगा हुआ सच बयान कर रहे हैं"।[1] इस संकलन की कहानियों में स्त्री जीवन, जाति दंश, अस्मिता के प्रश्न, पात्रों में अधिकार चेतना, मूल्य, मर्यादा और भविष्य निर्माण की अकुलाहट से पाठक के हृदय को झकझोरती है। यह कहानियां समाज की सच्चाइयों, विद्रूपताओं, घिसी- पिटी मानसिकताओं और दलित जीवन के संघर्षों का खुलासा कर सवर्णवादी व्यवस्था को उसके लिए जिम्मेदार ठहराते हैं ।इन कहानियों में उन्होंने दलित समाज की वेदना को महसूस कर जाति भेद के अपमान सहते हुए सवर्ण मानसिकता द्वारा थोपे गए अभाव, उत्पीड़न एवं अवरोधों के संताप के खिलाफ संघर्ष करते हुए दलित एवं स्त्री पात्रों का सृजन किया है।

स्त्री जीवन की वास्तविक वेदना को उजागर करती हृदयस्पर्शी कहानी है 'घूँघट उठा था क्या'? लाडो नामक लड़की, नाचती-गाती, खिलखिलाती, पढ़ने को इच्छुक सुंदरी का विवाह अपनी बाप के उम्र के चौधरी बलाधीन के साथ कर दी जाती है। सदा घूंघट से ढके उस सुंदर मुखडे को एक बार निहारने का मोह युवा नौकर बच्चू के दिल में उमड़ता रहता है जो स्वाभाविक भी है क्योंकि वह उसकी मालकिन थी। बलाधीन की वासना का शिकार बन उसके इशारों पर घूँघट में अपना चेहरा छुपाए अपने अरमानों को भूल कर बलाधीन की पत्नी बन जीवन गुजारती है। बच्चू के मन में अपनी मालकिन को देखने की चाहत की लहर उठती रहती है जो कहानी के अंत तक कभी पूरी नहीं हो पाती। जब प्रसव के दौरान अनेक नवयुवतियों के समान कच्ची उम्र में ही रक्तस्राव से उसकी मृत्यु हो जाती है। हवेली पहुंचकर बच्चू अन्य नौकरों से आहिस्ता पूछता है "तुम में से किसी ने उनका चेहरा देखा था क्या? मुखाग्नि देते वक्त भी घूंघट हटा था क्या?"[2] उसके इस प्रश्न के साथ कहानी समाप्त हो जाती है लेकिन हमारे समाज में आज भी गरीबी के कारण, दहेज प्रथा के कारण कितनी ही लाडो का जीवन बलि वेदी पर चढ़ गया है । यह कहानी स्त्री स्वतंत्रता, स्त्री चेतना, स्त्री मुक्ति आदि नारो के आगे प्रश्नचिन्ह लगाती है कि क्या कभी स्त्री पूर्णतया इस घूँघट से बाहर निकल पाएगी?

हमशक्ल' कहानी मे लेखक ने भ्रष्ट राजनीति, अधिकार प्राप्ति का मोह, अधिकार के लिए उच्च वर्ग की राजनीतिक चालबाजी, पुरानी घिसी- पिटी मान्यताओं का प्रचलन आदि के शिकार दलित वर्ग की पीडाओ को बखूबी उकेरा हैं। अपने घर के निम्न वर्ग की नौकरानी के साथ भी शारीरिक संबंध बनाने में उच्च वर्ग के लोग पीछे नहीं हटते। उनको शारीरिक शोषण का शिकार बनाकर अपने बच्चों को जन्म देने के लिए विवश करते और अवसर प्राप्त होने पर उन बच्चों का भी शारीरिक शोषण और क्रूरता से हत्या कर देने से भी नहीं झिझकते ।इन्हीं सच्चाइयों का उद्घाटन इस कहानी में किया गया है ।

'आग और फूँस' कहानी आजीवन संघर्ष करती विधवा नारी की कहानी है जिसका नाम है सरवती। जो अपने पति के मृत्यु उपरांत अपने ससुर की जिम्मेदारी बन जाती है। जातिगत, सामाजिक विद्रूपताओं एवं सवर्ण वर्ग के उत्पीड़न का मुकाबला करते हुए संघर्षरत नारी सर्वती पग -पग पर टूटती -बिखरती संघर्ष करती आगे बढ़ती है । वह सामूहिक बलात्कार का शिकार होती है व इतनी क्रूरता और अत्याचार सहन कर वह जीने की इच्छा खो देती है दाताराम उसको समझाता है, "यह तुम कैसे बातें करती हो? मैं कहता हूं जो जबरदस्ती करता है वास्तव में वही मरता है और अपनी मनुष्यता को भी मारता है। इसलिए मैं कह रहा हूं कि तुम मेरे होते मर नहीं सकती। मैं जीते जी तुम्हें मरने नहीं दूंगा।"[3] लोगों की नजर में उनका रिश्ता आग और फूँस का रिश्ता, लेकिन दोनों के लिए यह रिश्ता जीने का हौसला और संघर्ष का मार्ग प्रशस्त करता है ।अपने ससुर के आश्वासन और सहारे के बल पर सरवती समस्याओं का मुकाबला करते हुए आगे बढ़ती है। आगे भी कई कठिनाइयां उनके आगे आती है लेकिन उनकी परवाह किए बिना आजीवन संघर्ष करते समाज के निम्न वर्ग की भलाई के लिए अपना जीवन समर्पित करती है। सर्वती गरीब बस्ती के बच्चों के लिए एक निशुल्क शिक्षा केंद्र खोलती है । वहां ज्ञानदान का बोर्ड लगाकर अत्यंत निर्धन, अछूतों और अल्पसंख्यकों के बच्चों को तालीम देती है ।उसके स्कूल में बाल श्रमिक और बेसहारा बच्चे पढ़ने आते हैं। लेकिन जब यह खबर शिक्षा व्यवसाइयों के कानों में पहुंचती है तो वे इस संस्था का विरोध करते हैं और कहते हैं "अच्छा इंसान बनाने को तुम्हें यह भूखे नंगे, मैले-कुचैले गरीब और अछूत ही मिले हैं सबसे स्वच्छ और संपन्न घरों के बच्चे नहीं मिले तुम्हारा उद्देश्य क्या है ?"[4] दलितों के प्रति समाज के दृष्टिकोण में कोई परिवर्तन नहीं आ पाया है ।शिक्षा के क्षेत्र में आज भी दलित पिछड़ रहे हैं । सवर्ण वादी मानसिकता के कारण निम्न वर्ग शिक्षा प्राप्त करने के अवसर से वंचित कर दिए जाते हैं हैं । सरवती प्रयास करती है कि वह इन बच्चों की कुछ मदद करे लेकिन उसे व्यवसायियों के घृणा का पात्र बनकर अपना सब कुछ दांव पर लगाना पड़ता है।

'हाथ तो उग ही आते हैं', कहानी, गरीब, असहाय स्त्री की कहानी है जो बड़े लोगों के घरों में काम करके अपना जीवन गुजारती है ।वह अपने बच्चे को साथ लेकर अपने मालकिन के घर काम के लिए जाती है जिसके लिए मालकिन तानाकशी करती है । शहरों में रहने वाली उच्च वर्गों की स्त्रियां निम्न वर्ग की स्त्रियों से काम कराने की इच्छुक होती है लेकिन उनकी जाति उन्हें हमेशा खलती रहती है। इसलिए वह हमेशा तानाकशी करती रहती है। एक दिन मालकिन के बेटे की असावधानी के कारण उसका बच्चा दुर्घटना का शिकार हो जाता है। अस्पताल पहुंचती है तो समझती है कि देर हो जाने के कारण अब तो उसके बच्चे के हाथ काटने पड़ेंगे ।यह हृदय विदारक कहानी मानव मन को अंदर तक झकझोर ती है आज भी हमारे देश में निरीह, असहाय नारी, जीवन की प्राथमिक आवश्यकताओं से भी वंचित, चिकित्सा से वंचित है ।उच्च वर्ग की प्रवृत्तियों का शिकार होकर जीवन भर कष्ट सहने के लिए बाध्य होकर जीते हैं ।उच्च वर्ग के लोगों की लापरवाही का शिकार बनना तो निम्न वर्ग के लोगों की तकदीर है ।'हाथ तो उग ही आते हैं' शीर्षक भविष्य में आशाओं का संचार करता है ।लेकिन दंगे फसाद शोषण से पीड़ित दलित वर्ग का जीवन नरक ही बन जाता है। जब दंगे फसाद होते हैं तो गरीब, असहाय दलित वर्ग के लोग ही उत्पीड़न का शिकार बनते हैं। रूक्खो कहती है "हम तो चौधरियों के गांव के अछूत हैं, हम न हिंदू है ना मुसलमान हैं, पर हमे लड़ाई के वक्त मुसलमान तो हिंदू समझ कर मारते हैं और हिंदू अछूत जानकर।"[5]

'कार्ड संख्या 2118' एक ऐसे निम्न वर्ग के व्यक्ति के संघर्ष का चित्रण करता है जो अपने ही जाति के लोगों की निर्मम क्रूरता का शिकार बनता है ।लेखक कहते हैं अशोक ऐसे ही था कभी प्रधान की शिकायत, तो कभी लेखपाल की, कभी बाबा साहब अंबेडकर की मूर्ति स्थापना के विवाद में टांगे अड़ाई। उसके जीवन की विडंबना यह थी की समाज के बाहरी ताकतों के हाथों नहीं बल्कि अपने समाज के लोगों के हाथों मारा गया था ।उसकी जाति के लोग हमला कर उसे मार डालते हैं ।वह व्यवस्था के खिलाफ संघर्ष करता है उसका यह विश्वास है कि वह अपने हक प्राप्त करके ही रहेगा। वह हार मानने को तैयार नहीं होता हे। लेखक उसके बारे में कहते हैं कि "अशोक को उसकी गरीबी ने हीं दुस्साहसी बनाया था।कोई मेरा क्या बिगाड़ लेगा..... मेरे पास खोने गवाँने के लिए रखा ही क्या है? कहकर बेफिक्र सा हो जाता था पर उसे धमकियां मिल रही थी ।"[6] वह उस वर्ग का प्रतिनिधि था जो समझता है कि संविधान की प्रस्तावना में ही उसका जीवन और मानव गरिमा की सुरक्षा की बात कही गई है।

'अस्थियों के अक्षर' कहानी भी निर्धन, असहाय निम्न वर्ग के नारी की व्यथा कथा को चित्रित करती है जो पुरुष वर्ग के हाथों प्रताड़ना का शिकार बनती है। वर्तमान समाज में भी, निम्न वर्ग के समाज की स्त्रियां दवा, भोजन एवं स्वास्थ्य के अभाव में मौत का शिकार बनती है। लेखक बचपन में अपनी पढ़ने की इच्छा को दबाकर न रख पाए थे और इसके लिए रुपए चुरा कर किताब खरीद कर पढने का प्रयास करते हैं ।लेकिन उनकी प्रवृत्ति का फल उनकी मां को भुगतना पड़ा। अपने पति और रिश्तेदारों के द्वारा शारीरिक एवं मानसिक अत्याचार का शिकार बनना तो दलित स्त्री के जीवन का एक कड़वा सच है। लेखक चाहते थे कि माँ के आगे अपनी गलती कुबूल करे लेकिन जीवन भर कह नहीं पाए। नारी जीवन की त्रासदी के हर पहलू का निदर्शन करती कहानी दलित नारी के जीवन संघर्ष का बखूबी चित्रण करती है। सदियों से स्त्री का उत्पीड़न वर्गगत संदर्भ में भी होता है और लिंग के आधार पर भी। दलित स्त्री का उत्पीड़न वर्ग ,जाति, व लिंग तीनों स्तरों पर होता है। वर्तमान सामाजिक व्यवस्था में अधिकांश दलित नारी का शोषण पुरुषों और उच्च वर्ग की नारियों के द्वारा होता है।परिवार में भी उसे कोई अहमियत नहीं दी जाती है। सामाजिक एवं आर्थिक सुरक्षा के अभाव में उसका जीवन बदतर होता जाता है।' वह अम्मा जैसी थी', 'सिस्टर' आदि कहानियां मानवीय संवेदना एवं जीवन की आकस्मिकता को दर्शाती है। जीवन में कुछ फैसले बाद में मानव के लिए पछतावा अकेलापन और दुख का कारण बन जाता है। कुछ रिश्तो को प्राथमिकता न देना और उपेक्षा कर देना, जीवन की इन विडंबनाओ को दर्शाने वाली कहानियां है। मिलन और बिछोह तो जिंदगी के ही दो पहलू है। लेखक का मानवतावादी दृष्टिकोण इन कहानियों में प्रतिबिंबित होता है। 'छोटू' कहानी का पात्र ऐसे बच्चों का प्रतिनिधित्व करता है जो ठेकेदार के हाथों भिखारी बनकर जीने के लिए बाध्य होता है। इन बच्चों का बचपन कूड़े के ढेर एवं ठेकेदारों के मारपीट व यातनाओ के बीच गुजरता है। वह ऐसा ही बच्चा था जो दर-दर की ठोकर खाने के लिए और ठेकेदार के प्रताड़ना का शिकार होने के लिए जन्मा था। उसे किसी कूड़े के ढेर से किसी को मिला था। उसकी परवरिश मांगे हुए पैसे से होती है जिसका दसवां हिस्सा ही उसे मिल पाता और बाकी तो मालिक हड़प कर जाता था। इस दौरान ही सड़क पर एक दुर्घटना के समय वह ज़ख्मी हो जाता है।इलाज के खर्चे के लिए पैसा ना होते हुए बस प्रतीक्षा में जीता है कि एनजीओ वाले आकर जानवरों को जिस प्रकार ले जाते हैं उसी प्रकार उन्हें भी ले जाकर उनका भी इलाज करेंगे। वह नहीं समझ पाया लेकिन वोट की राजनीति ही हर कहीं चलती है यही तो वास्तविकता है। ऐसे ही दुविधा में फँसे बच्चों की लाचारी को बयान करती कहानी दिल को छू जाती है। ज़ख्मी बच्चों की लाचारी का फायदा उठाने वाले ठेकेदार कहता है "इलाज का खर्चा क्या तेरा बाप देगा? जा मांग पहले तुझे घायल होने का नाटक करना पड़ता था, लेकिन अब तो असल में घायल है या ज्यादा मांग कर ला खून के धब्बे भी पोंछने की जरूरत नही। यहां दया पाने के लिए दया करने लायक दिखना भी चाहिए ।"[7] इस कहानी के जरिए लेखक असहाय, निर्धन, लाचार बच्चों के जीवन की लाचारी का चित्रण करते हैं जिनके जीवन में ना तो कोई रोशनी की किरण नजर आती है और न कोई उम्मीद। सिर्फ ठेकेदार की गाली और दिन रात मेहनत यही उनकी तकदीर में लिखा होता है। इसी दुर्दशा का चित्र लेखक इस कहानी के द्वारा प्रस्तुत करते हैं।'हाथ तो उग ही आते हैं कहानी संग्रह के गहन अध्ययन के उपरान्त यह निष्कर्ष लगा सक्ते हे कि श्यौराज सिंह जी अपनी कहानी संग्रह 'हाथ तो उग ही आते हैं' में मानव संवेदना के विभिन्न पहलुओं, स्त्री जीवन की विडंबना, जातिगत भेदभाव, उत्पीडन, स्त्री अस्मिता के प्रश्न, बाल उत्पीड़न, पुरुष सत्तात्मक समाज मे स्त्री शोषण, राजनेताओं के दांव- पेंच आदि का बखूबी चित्रण करते हैं । इस संग्रह की कहानियां मानव संवेदना को लोकतांत्रिक मूल्यों से जोड़ती है। रचनाकार दलित समाज के जीवन की चुनौतियों का सच्चा लेखा-जोखा प्रस्तुत करते हैं। उनका लेखन सामाजिक संघर्षों का दस्तावेज है। जीवन की चुनौतियां, भावनाएं, जीवन के कटु यथार्थ उनकी रचनात्मकता में स्वत: ही गहराई और कलात्मकता के साथ प्रकट होते है। उनकी कहानियों में अंधविश्वास और रूढ़ियों पर प्रहार, नारी चेतना राजनीति पर कटाक्ष, दलित वर्ग के प्रति सहानुभूति भ्रष्टाचार, सांप्रदायिकता, बाल विवाह जैसी कुप्रथा, अछूतों की पीड़ा, व्यवस्था विरोधी स्वर, असमानता के विरूद्ध आंदोलन, आधुनिक बोध और परिवार कल्याण आदि विषयों पर चर्चा की गई है। दलित जीवन की दशा, पीड़ा, घुटन, मजबूरी, शोषण तिरस्कार उन्होंने गहराई से समझा है। दलित वर्ग में चेतना का विकास करने के लिए उन्होंने अपने कहानियों के माध्यम से सफल प्रयास किया है।

****

संदर्भ सूची

1 श्यौराज सिंह बेचैन, हाथ तो उग ही आते हैं, आवरण पृष्ठ
2 वही, पृ. सं. 31
3 वही, पृ. सं. 103
4 वही, पृ. सं. 105
5 वही, पृ. सं. 115
6 वही, पृ. सं. 127
7 वही, पृ. सं. 157

दलित जीवन की भयानक त्रासदी : 'सद्गति'

डॉ. पान सिंह
हिंदी विभाग, हिमाचल प्रदेश
विश्वविद्यालय, शिमला-5

हिन्दी साहित्य में कहानी सबसे प्राचीन विधा के रूप में जानी जाती है। हिन्दी कहानी विधा का अध्ययन करने से पता चलता है कि हिन्दी साहित्य में विभिन्न प्रकार की कहानियां लिखी जा चुकी हैं और लिखी जा रही हैं। विद्वानों ने कहानी का वर्गीकरण करते हुए अनेक प्रकार बताए हैं। स्थूल रूप से कहानियों को तीन वर्गों में विभक्त किया जा सकता है- कथा प्रधान, वातावरण प्रधान, प्रभाव प्रधान कहानियां। कथा प्रधान कहानियां तीन प्रकार की होती हैं- घटना प्रधान, कार्य प्रधान, चरित्र प्रधान। विषयवस्तु की दृष्टि से कहानियों को विभिन्न प्रकार से विभक्त किया जा सकता है। जैसे- सामाजिक कहानियां, ऐतिहासिक कहानियां, मनोवैज्ञानिक कहानियां, राजनीतिक कहानियां आदि। शिल्प एवं शैली की दृष्टि से कहानियां पांच प्रकार की होती हैं- वर्णात्मक, आत्मकथात्मक, पत्रात्मक, संवादात्मक तथा प्रतीकात्मक। उदेदश्य की दृष्टि से कहानियां का वर्गीकरण तीन प्रकार से किया जा सकता है- आदर्शवादी कहानियां, यथार्थवादी कहानियां तथा आदर्शोन्मुख यथार्थवादी कहानियां। कहानी परम्परा में प्रेमचन्द युग को कहानी के विकास का काल माना जाता है। इस युग में कहानी सही रूप से मनुष्य तथा जनसमाज से जुड़ी और यह काम मुन्शी प्रेमचन्द जी ने किया। मुन्शी प्रेमचन्द ने आदर्शोन्मुख यथार्थवादी कहानियां लिखी। उनकी अधिकतर कहानियों में मनुष्य एवं समाज का यही रूप दिखाई देता है। मुन्शी प्रेमचन्द की तर्ज पर ही दलित लेखक रूपनारायण सोनकर ने अपनी कुछेक कहानियां रची हैं, लेकिन दोनों ही कहानीकारों का कथानक और कथ्य नितांत भिन्न है| दोनों कहानीकारों की कहानियों के नाम एक जैसे होने पर भी भिन्नता बहुत अधिक है| दोनों ही रचनाकारों की कहानियाँ वैचारिक, शिल्पगत और भावगत स्तर पर अलग हैं| जहां प्रेमचन्द जी ने आदर्शोन्मुख यथार्थवादी कहानियां लिखी हैं, वहीं रूपनारायण सोनकर ने यथार्थवादी कहानियां रची हैं। इस शोधालेख का मुख्य उद्देश्य प्रेमचन्द की कहानी 'सद्गति' और रूपनारायण सोनकर की कहानी 'सद्गति' का विश्लेषण एवं मूल्यांकन करते हुए दलित जीवन की भयानक त्रासदी को प्रस्तुत करना है।

मुन्शी प्रेमचन्द तथा सोनकर ने दलित समाज को लेकर एक ही शीर्षक की दो कहानियां लिखी हैं। जहां प्रेमचन्द की कहानी का नाम 'सद्गति' था, वहां सोनकर ने भी अपनी कहानी का नाम 'सद्गति' ही रखा। लेकिन सर्वप्रथम अन्तर यह है कि प्रेमचन्द की कहानी 20सवीं सदी में वर्णित है और सोनकर की कहानी 21सवीं सदी की कहानी है। लगभग दोनों कहानियों में एक सदी का अन्तर है। दोनों कहानियों का कथ्य और शिल्प भी भिन्न है| समानता यह है कि दोनों कहानियों में दलित समाज के शोषण की गाथा समाहित है। लेकिन कहानी कहने का अन्दाज दोनों का बिलकुल भिन्न-भिन्न। प्रेमचन्द की कहानी 'सद्गति' की पहली पंक्ति की शुरूआत बहुत ही साधारण-सी प्रतीत होती हैं- ''दुखी चमार द्वार पर झाड़ लगा रहा था।'' वहीं सोनकर ने अपनी कहानी का आरंभ बड़ी दार्शनिकता के साथ प्रस्तुत किया है| कहानी के आरंभ में वे लिखते हैं- ''जिस तरह पेन में भरी स्याही लिखते-लिखते समाप्त हो जाती है, उसी तरह मनुष्य का जीवन चलते-चलते समाप्त हो जाता है। पेन की स्याही समाप्त होने पर उसको दुबारा भरा जा सकता है। लेकिन जीवन की गति रूकने पर उसे गतिमान नहीं बनाया जा सकता है।'' उच्चवर्ग द्वारा निम्नवर्ग का शोषण दोनों कहानियों का कथानक है। समाज में फैली छुआछूत तथा दलित शोषण का पर्दाफाश करना दोनों ही कहानियों का उद्देश्य रहा है। प्रेमचन्द की कहानी 'सद्गति' में एक ब्राह्मण द्वारा दलित जाति के दुखी नामक पात्र का शोषण दिखलाया गया है। दुखी नामक पात्र अपनी लड़की की शादी की साइत सगुन विचारने हेतु ब्राह्मण के घर जाता है और ब्राह्मण उसके बदले उससे कई कार्य करवा लेता है। पंडित कहता है- ''घास को गाय के सामने डाल दे और जरा झाड़ लेकर द्वार तो साफ कर दे। यह बैठक भी कई दिन से लीपी नहीं गई। उसे भी गोबर से लीप दे। तब तक मैं भोजन कर लूं। फिर जरा आराम करके चलूंगा। हां, यह लकड़ी भी चीर देना। खलिहान में चार खांची भूसा पड़ा है। उसे भी उठा लाना और भुसौली में रख देना।'' अपनी दलित जाति के होने के कारण वह उनसे कुछ मांग भी नहीं सका और भूखा-प्यासा काम पर लगा रहा। हुक्का पीने का मन हुआ तो वह पंडित के घर केवल आग लेने जाता है, उस पर पंडिताइन क्रोधित होकर कहती है- ''चमार हो, धोबी हो, पासी हो, मुँह उठाये घर में चला जाये। हिन्दू का घर न हुआ, कोई सराय हुई। कह दो दाढ़ीजार से जला जाये नहीं तो इस लुआठे से मुंह झुलस दूंगी। आग मांगने चले हैं।'' इन उच्च वर्ग के ठेकेदारों की बात उसके कानों तक पड़ जाती है तो वह सोचता हुआ अपने आप से कहता है- ''सच तो कहती हैं। पंडित के घर में चमार कैसे चला आये। बड़े पवित्तर होते हैं यह लोग, तभी तो संसार पूजता है, तभी तो इतना मान है।'' वह अपने आपको ही कोसता है।

प्रेमचन्द की कहानी में दलित चेतना है। उन्होंने सामाजिक रूढ़ियों, अंधविश्वासों तथा बाह्याडम्बरों का नग्न चित्रण प्रस्तुत किया है। उन्होंने उच्चवर्ग के द्वारा निम्न वर्ग के शोषण का कच्चा चिट्ठा खोला है। तत्कालीन स्थिति, परिवेश तथा समाज का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया है। दुखी नामक पात्र उनके यहां काम करता हुआ मर जाता है, लेकिन उच्चवर्ग को उसके प्रति कोई दया का भाव या सहानुभूति नहीं है। वे उसे केवल एक लाश समझते हैं। ऐसी लाश जिसे पंडित रस्सी डालकर खींचकर गांव से बाहर फैंक देता है।

भूखा, थका होने के कारण वह लकड़ी चीरते-चीरते मर जाता है तो पंडिताइन कहती है- चमरौने में कहला भेजो मुर्दा उठा ले जाये।'' यहां तक कि उच्चवर्ग के लोग निम्न वर्ग का रोना धोना भी अपशगुन समझते हैं। तभी तो पंडिताइन कहती हैं- 'चमार का रोना मनहूस होता है।'' जब कोई लाश उठाने न आया तो पंडित जी ने रस्सी का फंदा बनाकर लाश को खींचकर गांव से बाहर कर दिया। ''जहां दुखी की लाश को खेत में गीदड, गिद्ध और कुते और कौए नोंच रहे थे। यहीं जीवन पर्यन्त की भक्ति, सेवा और निष्ठा का पुरस्कार था।'' उच्चवर्ग का घिनौना रूप आम आदमी के हृदय को चीत्कार कर रख देता है। प्रेमचन्द ने यह बताने की कोशिश की है कि उच्चवर्ग अपने जाति, ज्ञान व दौलत के अंहकार में अपनी सारी मनुष्यता की हदों तथा सीमाओं को पार कर देता है। प्रेमचन्द द्वारा लिखित 'सद्गति' कहानी के माध्यम से उनका मूल मन्तब्य स्पष्ट हुआ है। प्रेमचन्द ने जितनी भी कहानियां लिखीं, उनका घटनाक्रम आम जीवन से जुड़ा हुआ प्रतीत होता है। कहानियों के माध्यम से जन-जीवन का चित्रण करना प्रेमचन्द के कथा साहित्य की विशेषता रही है। उनकी कहानियों का कथाक्रम कहीं भी विछिन्न होता नहीं दिखाई देता। कहानी तत्त्वों की दृष्टि से प्रेमचन्द कहानी सार्थक रही है। आम जीवन के घटनाक्रम को कल्पना के माध्यम से संवारने की कला प्रेमचन्द जैसे मुर्धन्य कथाकार के पास ही हो सकती है, जो उन में कूट-कूट कर भरी हुई थी। उनकी अपनी अलग ही शैली थी। बात कहने का एक अलग ही अन्दाज था। घटनाक्रम को एकसूत्र में पिरोने की कला थी। पात्रों के माध्यम से कहानी को अन्तिम छोर तक ले जाने की सशक्त अभिव्यक्ति थी। कल्पना से कहानी को सम्पूर्णता प्रदान करने का एक अलग डिक्शन था। प्रेमचन्द कोई मामूली कथाकार नहीं थे। उनकी बातें ही कहानियों का

रूप ले लेती थीं। 'सद्गति' भी ठीक ऐसी ही कहानी है जिसमें प्रेमचन्द का कथाकार एक मूल मंतब्य को स्पष्ट करता हुआ कहानी चुनता-बुनता दिखाई देता है। सामाजिक ढांचे पर आधारित कहानी अपनी छाप छोड़ने में पूर्ण रूप से सक्षम रही है। भारतीय समाज की सबसे बड़ी बिडम्बना धर्म, सम्प्रदाय, जाति तथा ऊंच-नीच तथा आडम्बर रहे हैं, इन सामाजिक बिडम्बनाओं ने समाज को खोखला करने में कभी कोई कसर नहीं छोड़ी है। आज भी समाज इन बिडम्बनाओं तथा स्थितियों से उबर नहीं पा रहा है। जाति-सम्प्रदाय की गहरी खाई को आज भी हम पाट नहीं पाए हैं। यह न पाटने वाली खाई आज भी हमारा आहार बनाकर अपना आकार बढ़ाए जा रही है। 21सवीं सदी में हम वैश्वीकरण तथा आधुनिक होने का दावा ठोंकते हैं, अपनी खोजों पर इतराते हैं, कहते हैं कि हमने विज्ञान, इतिहास, दर्शन, शास्त्र, साहित्य तथा अन्य सभी क्षेत्रों में विजय पायी है। लेकिन हम अपने अन्दर पल रही मनुष्यता को कहां तक विकसित कर पाये हैं? हमारी सोच में कितना आधुनिकपन है? हमारी सोच कहां तक उच्चदृष्टिकोण के तराजू में तुल सकती है? ऐसे प्रश्न हमारी निम्न सोच की परिभाषा देते दिखाई देते हैं। हमारी मानसिकता की संकुचितता का माप दर्शाते हैं। तब हम स्वयं से प्रश्न करते हैं कि हम आज भी कहां खड़े हैं? ठीक ऐसी ही सोच को व्यक्त करने के लिए धर्म, सम्प्रदाय तथा जातीयता को मिटाने के लिए दोनों कथाकारों- प्रेमचन्द तथा सोनकर ने 'सद्गति' कहानी का सृजन किया है। सोनकर की पूरी कहानी में सत्ता लोभियों की कथा बयान हुई है। शब्बीर मुस्लिम वर्ग से संबंधित है जिसने हिन्द-मुस्लिम दंगों में मुख्य भूमिका निभाई थी। वह सत्ता पाने के लिए हिन्दू-मुस्लिम, स्वर्ण-असवर्ण सभी के साथ गिरगिट वाले रंग बदलता है। हिन्दुओं के सामने मुस्लिम धर्म को गलत ठहराता है और मुस्लिमों के समक्ष अपने कट्टर मुस्लिम होने का दावा करता है। दलितों से वोट लेने के लिए साम, दाम, दण्ड भेद की नीति अपना रहा है।

सोनकर की 'सद्गति' को पढ़कर एक बात यह अच्छी लगती है कि उनके बात कहने का ढंग बहुत ही जबरदस्त है। उनकी कहानी की क्रमबद्धता कभी विछिन्न होती नहीं दिखाई देती। उनकी बातों में दार्शनिकता का पुट मिलता है। कहानी के आरंभ में वे लिखते हैं- ''जिस तरह पेन में भरी स्याही लिखते-लिखते समाप्त हो जाती है, उसी तरह मनुष्य का जीवन चलते-चलते समाप्त हो जाता है। पेन की स्याही समाप्त होने पर उसको दुबारा भरा जा सकता है। लेकिन जीवन की गति रूकने पर उसे गतिमान नहीं बनाया जा सकता है।'' यह कहानी राजनीतिक दांव पेचों पर आधारित है। चुनाव की मारा-मारी पड़ी है, नेता लोक अपने बड़े बड़े दावों से लोगों को आश्वासन दिला रहे हैं। वोट लेने के लिए ओछी राजनीतिक चालें चली जा रही हैं। सोनकर लिखते हैं, ''युवा जोशीले उम्मीदवार वोट मांगते समय वोटरों के पैर छूना नहीं भूलते लेकिन दलितों के पैर छूना अब भी वर्जित समझते हैं। उनसे दबंगई के बल पर ही अपनी तरफ वोट डलवा लेते हैं। कहीं-कहीं विवेकशील युवा सवर्ण उम्मीदवार दलित बुजुर्गों के पैर छूत देखे गए हैं।'' एक अन्य स्थल में सोनकर कहानी में राजनीतिक लोभ का चित्रण करते हुए लिखते हैं- 'कुर्सी की चाहत एक मणि की तरह होती है इसके लिए वे विषैले सर्प की बांबी से निकाल लेते हैं। सर्प से डंसने की भी परवाह नहीं करते हैं।''मियां शब्बीर सोनपुर जिला पंचायत सदस्य का चुनाव लड़ रहा है। मियां शब्बीर के पूर्वज सदानंद सिन्हा ने मुगलों के शासनकाल में एक बहुत बड़ा ओहदा पाने के लिए इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया था। वह अपनी कौम से वोट मांगने के लिए अपने बारे में कबूलता हुआ कहता है- 'मैं कुरान की कसम खाकर कहता हूं मैं ऐसा नहीं करूंगा। दंगों के दौरान मैंने न जाने कितने हिन्दुओं को मौत के घाट उतारा है। मैंने अपनी वफादारी मुस्लिम समाज के प्रति ऐसा करके सिद्ध कर दी है।''वह हिन्दुओं से वोट मांगते हुए कहता है- 'जो अपराध मेरे बुजुर्गों ने इस्लाम धर्म स्वीकार करके किया है मैं उसका पश्चाताप करूंगा। मैं चुपचाप इस्लाम धर्म छोड़ चुका हूं, लेकिन इसकी घोषणा इलैक्शन के दौरान नहीं कर सकता क्योंकि फिर मुझे मुसलमानो का वोट नहीं मिलेगा। मियां शब्बीर के सामने धर्म एक मजाक था। स्वार्थ धर्म पर भारी पड़ रहा था।''हिन्द-मुस्लिम दंगों में सुखलाल केवट का बेटा शहीद हुआ होता है जिस कारण वह मियां शब्बीर को अपने रास्ते का कांटा नजर आ रहा था। वह सुखलाल पर चुनाव से हटने के लिए डरा धमका रहा था। लेकिन सारे प्रलोभन उसके सामने फिके पड़ गए। वह चुनाव को किसी भी हालत में जीतना चाहता था।

सत्ताधारियों के लोभ का चित्रण करते हुए सोनकर लिखते हैं- ''कुर्सी बिलकुल शहद के छते की तरह होती है। जिस तरह शहद पाने के लिए बहुत सारी मधुमक्खियों को मारना पड़ता है उसी तरह कुर्सी पाने के लिए राजनीति में बहुत सारे निदोष व्यक्ति मारे जाते हैं।'' आगे लिखते हैं, ''जैसे वंशी में चारा लगाकर जल के अन्दर मछलियों को पकड़ने के लिए धोखा दिया जाता है। मछलियां चारा खाने के लिए लोहे के कांटे में फंस जाती है।'' वैसे ही शब्बीर हिन्द-मुस्लिम सुख-दुख में शामिल होकर अपना ढंग बदलता था। कहानी का घटनाक्रम तब बदल जाता है जब मियां शब्बीर एक मृत व्यक्ति को वोट लेने के लिए कांधा देकर अपना दिखावा करना चाहता है। लेकिन वह नहीं जानता था कि वह दिखावा उस पर भारी पड़ने वाला है। बोझ उठाये वह लंगड़ाने लगा था लेकिन कोई उससे कंधा बदलने नहीं आ रहा था। ''वह कहने लगा- आप लोग कहें तो मैं एक गाड़ी की व्यवस्था कर दूं।''दूसरे बुजुर्ग ने कहा- '' नहीं बेटा! गाड़ी की क्या जरूरत है? आधा रास्ते से ज्यादा रास्ता तो आ गए हो। तुम शहर जाओगे फिर गाड़ी लाओगे। तब तक बहुत समय लग जाएगा। बढ़े चलो बेटा तुमने पुण्य का काम किया है।''शमशान घाट पहुंचने पर पता चला कि जिसको वह कंधा देकर लाया है उसके बेटे को शब्बीर ने ही बेरहमी से मारा था जिसके गम में उस व्यक्ति की मौत हुई थी। वह अपने अपराधों को याद करके बूढे गगन से माफी मांगता है- ''मैं गुनहगार हूं मैंने निर्दोष लोगो को मारा है।'' यह पश्चाताप की अग्नि में जल रहा होता है। दलित गगन बोला- ''मत सोचो पुरानी बातें। यह शमशान घाट हमारी आंखे खोलता है। जीवन का रहस्य बताता है त्याग, मौहब्बत और भाईचारा जीवन की अमूल्य निधि है। जो आदमी इन खूबियों के साथ यहां पर आता है वह सुख की नींद सोता है।''

शब्बीर कहता है- ''मैंनें गुनाह किये हैं। मैं मानवता को भूल गया था। स्वार्थ अंधे धर्म और मजहब ने मुझे बिलकुल अंधा कर दिया था। हम दोनों समुदाय के लोग भाई हैं। मैंने भाइयों को मारकर बड़ा अपराध किया है। मुझे सजा मिलनी चाहिए।'' इसी आत्मग्लानि के साथ वह भी चिता में कूद पड़ता है लेकिन दो आदमी उसे निकाल लाते हैं। लेकिन वह बच नहीं पाता, वह भी मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। उसकी लाश को कब्रिस्थान में कौए, चीलें, गिद्धें तथा सूअर कूते नोंच-नोंचकर खाते हैं।

सोनकर की कहानी का कथानक राजनीतिक जीवन की उथल-पुथल से उठाया गया है तथा सत्ता लोभियों के इर्द-गिर्द घुमाते हुए अपने उद्देश्य में सफल रहे हैं। उन्होंने अपनी कहानी 'सद्गति' में धर्म-विरोधी झठे, मक्कार, दांवपेची, स्वार्थी शब्बीर का हृदय परिवर्तन करवाकर 'सद्गति' प्रदान करते हुए सार्थकता प्रदान की है। हिन्द-मुस्लिम झगड़ों को केन्द्र बनाकर जो धर्म, सम्प्रदाय तथा जाति के नाम दंगें होते हैं, उनका जिक्र किया है तथा मनुष्य को उनका वास्तविक धर्म क्या है? का ज्ञान करवाया है। मनुष्य का वास्तविकता से सामना करवाया है। उसे एहसास करवाया है कि मृत्यु ही वास्तविक सच्चाई है। शमशान घाट में आकर मनुष्य अंहकार, द्वेष, वैर-भाव सब कुछ भूल जाता है। मनुष्य के क्षणभंगुरता का आभास इस कर्मस्थल पर जाकर हो जाता है। यही सोनकर की कहानी का मुख्य ध्येय था। सोनकर की बातों से कबीर की याद हो आई-

''रहना नहीं यह देश बेगान है।

यह संसार कागद की पुड़िया बूंद पड़े घुल जाना है।
यह संसार झाड़ झंखाड़ उलझि-पुलझि मर जाना है।''

दोनों कहानियों का अंत एक जैसा ही है। एक तरफ प्रेमचन्द की कहानी में दुखी की लाश को कौए, गीदड़, गिद्धे तथा कुते आदि नौच-नोंचकर खा देते हैं वहीं सोनकर की कहानी में भी शब्बीर की लाश को कौए, गीदड़, गिद्धे, तथा कुते वैसे ही नोंच-नोंचकर खाते हैं। लेकिन मृत्यु के पीछे दोनों कहानियों की घटनाएं विपरीत हैं। जहां प्रेमचन्द की कहानी में एक दलित होने के कारण अपनी स्वामी भक्ति के लिए शहीद हो जाता है, वहीं दूसरी ओर सोनकर की कहानी में शब्बीर जैसा दरिंदा मुसलमान अपने ही गुनाहों के पश्चाताप की अग्नि में शहीद हो जाता है। दोनों लेखकों ने बड़ी ही चतुराई से घटनाक्रम को गति प्रदान की है। दोनों लेखकों ने दलित समस्या को उठाकर कहानी का घटनाक्रम प्रस्तुत किया है। प्रेमचन्द ने कहानी को पात्रों के माध्यम से आगे बढ़ाया है और सोनकर ने कहानी में अपनी दार्शनिकता का पुट अधिक दिया है। प्रेमचन्द ने एक कथाकार की भान्ति घटनाक्रम को जोड़ा है लेकिन सोनकर ने एक जागरूक दार्शनिक की भान्ति अपने ज्ञान का पोलिश भी कहानी पर किया है। दोनों कहानियों में वर्ण तथा वर्ग संघर्ष दिखाई देता है। दोनों कहानियों में कर्म के प्रति आस्था दिखाई देती है। प्रेमचन्द की कहानी का बीज लड़की की शादी के रूप में जन्म लेता है। जबकि सोनकर की कहानी का बीजांकुर सत्ता चुनाव आदि से होता है। सोनकर की कहानियों में विभिन्न वर्गों का उल्लेख हुआ है लेकिन प्रेमचन्द ने दलित, ब्राह्मण तथा गौड़ आदि ही जातियों का वर्णन किया है। सोनकर की कहानी में हिन्दू-मुस्लिम दंगों की चर्चा की गई है लेकिन प्रेममचन्द की कहानी एक सामान्य जीवन से उठायी गई है। सोनकर की कहानी का नायक मक्कार, चुतर, हत्यारा, दांवपेची, आदि है, लेकिन प्रेमचन्द की कहानी का नायक अति दीन-हीन तथा स्वामीभक्त है।

निष्कर्षत: -

कहा जा सकता है कि दोनों ही कहानियां समय और स्थिति के माप-तोल में खरी उतरती हैं। दोनों ही कहानीकारों ने निम्नवर्ग की व्यथा को व्यक्त किया है। दोनों ही उच्चकोटि के कथाकार हैं। दोनों ही कहानीकार अपने-अपने उद्देश्य में सफल रहे हैं। दोनों ही कथाकारों का कथ्य एवं शिल्प भिन्न है| दोनों ही कथाकारों की अपनी-अपनी कथा जमीन है| दोनों ही कहानीकारों ने अपनी कहानियों के माध्यम से मानव-मूल्यों को सहजने का बखूवी प्रयास किया गया है। अंतत: दोनों 'सद्गति' नामक कहानियाँ दलित जीवन की भयानक त्रासदी हैं|

****

संदर्भ :-

1.प्रेमचंद की सम्पूर्ण कहानियाँ (संपादक, वाणी प्रकाशन), नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 20 19, पृष्ठ 816
2.नागफनी, त्रैमासिक पत्रिका, अंक-2, नवंबर-जनवरी, 20 11, (रूपनारायण सोनकर द्वारा रचित 'सद्गति' कहानी), पृष्ठ 35
3.प्रेमचंद की सम्पूर्ण कहानियाँ (संपादक, वाणी प्रकाशन), नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 20 19, पृष्ठ 817
4.वही, पृष्ठ 818
5.वही, पृष्ठ 819
6.वही, पृष्ठ 821
7.वही, पृष्ठ 822
8.वही, पृष्ठ 822
9.नागफनी, त्रैमासिक पत्रिका, अंक-2, नवंबर-जनवरी, 20 11, (रूपनारायण सोनकर द्वारा रचित 'सद्गति' कहानी), पृष्ठ 35
10.वही, पृष्ठ 35
11.वही, पृष्ठ 36
12.नागफनी, त्रैमासिक पत्रिका, अंक-2, नवंबर-जनवरी, 20 11, (रूपनारायण सोनकर द्वारा रचित 'सद्गति' कहानी), पृष्ठ 36
13.वही, पृष्ठ 36
14.वही, पृष्ठ 38
15.वही, पृष्ठ 38
16.वही, पृष्ठ 38
17.वही, पृष्ठ 38
18.वही, पृष्ठ 39
19.वही, पृष्ठ 39
20.नागफनी, त्रैमासिक पत्रिका, अंक-2, नवंबर-जनवरी, 20 11, (रूपनारायण सोनकर द्वारा रचित 'सद्गति' कहानी), पृष्ठ 39
21.वही, पृष्ठ 39

जयप्रकाश कर्दम के उपन्यास 'छप्पर' में सामाजिक चेतना

अजय कुमार चौधरी
सहायक प्राध्यापक, हिन्दी
पी. एन. दास कॉलेज, पलता

सारांश -जयप्रकाश कर्दम द्वारा लिखित उपन्यास 'छप्पर' एक सामाजिक उपन्यास है। इस उपन्यास में समाज के विविध पहलुओं सामाजिक व्यवस्था, शिक्षा, वर्ण व्यवस्था, जाति-पात, अंधविश्वास, रूढ़िवादी परंपरा का विरोध, शिक्षा का विकास, सामाजिक संघर्ष, वैज्ञानिक दृष्टिकोण आदि पर बल दिया गया है। जिसके मूल में सामाजिक चेतना का विकास करना है। उपन्यास का नायक चंदन शिक्षा प्राप्त करने के लिए गांव को छोड़कर शहर चला जाता है। वह शहर से ही दलित शोषित, उत्पीड़ित और आर्थिक रूप से विपन्न लोगों के बीच आत्मसम्मान, शोषण के विरुद्ध संघर्ष, रूढ़िवादी परंपराओं के विरुद्ध सामाजिक चेतना का विकास कल समाज में समरसता, अधिकार, सौहार्द स्थापित करने का प्रयास करता है।

बीज शब्द-समाज, अधिकार, समरसता, सौहार्द, वैज्ञानिक चेतना, शोषण, उत्पीड़न, संघर्ष

शोध आलेख -सामाजिक चेतना एक व्यक्ति की समाज में उसकी परिस्थितियों ,समस्याओं और जरूरतों के प्रति जागरूकता और संवेदनशीलता का मापदंड है। यह एक अवधारणा है जिसे मनुष्यों के सामाजिक और मानसिक विकास के साथ जोड़ा जाता है। सामाजिक चेतना व्यक्ति के भौगोलिक ,सांस्कृतिक ,आर्थिक ,राजनीतिक और मानसिक परिवेश की समझ ,उसके सामाजिक और नैतिक मूल्यों की संवेदनशीलता ,समस्याओं की उपेक्षा न करने की क्षमता ,और अपनी उम्मीदों और वास्तविकताओं के बीच एक संतुलन बनाने की क्षमता को समझने की क्षमता है। सामाजिक चेतना व्यक्ति को सामाजिक न्याय , इंसानियत ,सम्प्रेषण ,साझेदारी ,विश्वभ्रातृत्व और समरसता के मानकों के प्रति जागरूक बनाती है। इसके माध्यम से व्यक्ति किसी भी सामाजिक समस्या ,जैसे गरीबी ,न्याय की अभाव ,विभेद ,जातिवाद ,लिंग भेद , पर्यावरणीय मुद्दे ,अस्तित्व के खिलाफ लड़ाई ,आदि के प्रति संवेदनशील हो सकता है और इसका समाधान ढूंढ़ने के लिए सक्रिय रूप से कार्य कर सकता है। इस उपन्यास का नायक चंदन मानवीय गुणों से संपृक्त और संवेदना से भर हुआ समाज में समरसता और सामाजिक न्याय के आपने आस पास के उपेक्षित, पीड़ित, शोषित और आर्थिक रूप से विपन्न लोगों में सामाजिक चेतन का विकास कर एक ऐसे समाज का निर्माण करना चाहता है जहाँ न कोई बड़ा हो और न ही कोई छोटा हो, सभी अपने गुण-कर्म के माध्यम से पहचान जाता हो। सामाजिक चेतना के विकास के लिए चंदन स्कूल की स्थापना करता है जहाँ शोषित -पीड़ित लोगों को समझ भर शिक्षित कर सामाजिक चेतन का विकास करता है। "**चंदन का स्कूल दलित शोषित लोगों की सामाजिक गतिविधियों का केंद्र बन गया और जल्द ही इन गतिविधियों ने एक आंदोलन का रूप ले लिया। समता और स्वतंत्रता के वातावरण में सांस लेने के लिए आतुर अधिक से अधिक लोग इस आंदोलन के साथ जुड़ते गए। सामाजिक बदलाव के लिए शुरू हुआ यह आंदोलन बृहत से बेहतर होता गया और थोड़े ही दिनों में शहर की गलियों से बाहर निकल कर यह आंदोलन दूर देहातों तक फैल गया।**"[1] **82** सामाजिक चेतना मनुष्यों को समाजिक परिवर्तन के लिए प्रेरित करती है और उन्हें अपने आसपास के लोगों के साथ साझेदारी करने के लिए प्रोत्साहित करती है। यह एक सकारात्मक संघर्ष की भावना का विकास करती है जो सामाजिक, आर्थिक और मानसिक उन्नति की दिशा में साथी बनता है। "**कौन कहता है की व्यवस्था को बदला नहीं जा सकता आखिर आदमी की ही तो बनाई हुई सारी व्यवस्थाएँ, और सारी व्यवस्थाएँ आदमी के लिए ही हैं। तब, यदि किसी व्यवस्था में दोष हो और वह उत्थान की बजाय पतन का कारण बनती हो, तो उसे अवश्य बदला जा सकता है, और बदला जाना चाहिए।**"2 **सामाजिक चेतना के साथ व्यक्ति उच्चतम न्याय, सामाजिक इंसाफ, और एक समृद्ध और समरस समाज के लिए काम करने का संकल्प बना सकता है। किसी भी देश के विकास में समाज के विकास महत्वपूर्ण होता है समाज के विकास के बिना देश का विकास संभव नहीं है। हमारा देश गांव का देश है। गांव के विकास के लिए मनुष्य की चेतना का विकास आवश्यक है. जितना संपन्न व्यक्ति ही समाज और देश के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। हमारा देश विभिन्नताओं का देश जिसमें कई संप्रदाय, जाति की साथ-साथ रहती है। हमारी अलग-अलग रीति-रिवाज, परम्पराएं हैं। इतनी सारी विभिन्नताओं के होने के बावजूद भी हमारा देश एक है। इस एकता के पीछे सामाजिक चेतना का होना आवश्यक है। इस उपन्यास में उपन्यासकार ने सामाजिक चेतना के विकास के लिए चंदन जैसे नायक का चयन कर्ता हैं। चंदन मानवीय गुणों से संपन्न है। वो समाज के विकास के लिए तत्पर हैं। इसके लिए वह समाज के लोगों में सामाजिक चेतना के विकास के लिए महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।**

हमारा समाज वर्ण व्यवस्था पर आधारित समाज है। यहाँ एक वर्ण को आर्थिक और सामाजिक रूप से इतना संपन्न कर दिया गया है कि वह अन्य वर्ण पर अपना आधिपत्य स्थापित करने के लिए तरह-तरह की यंत्रणाएं करता है। इसके विरोध में चंदन संतनगर के लोगों को जागृत करता है। मुक्ति के व्यवस्था का विरोध करता है "यदि परम्पराएं गलत हो, जन विरोधी हो, यदि व्यवस्था दोषपूर्ण हो, तो उसका विरोध किया जाना चाहिए। और यदि करने की सामर्थ्य या साहस नहीं हो तो भी कम से कम इतना तो किया ही जा सकता है कि स्वयं उस व्यवस्था और परंपराओं को ना मानें।"3 जिससे सामाजिक समरसता प्रभावित होती है। चंदन इस सामाजिक समरसता के समर्थन के लिए संत नगर के लोगों में शिक्षा का प्रचार करता है। उसकी सामाजिक हैसियत को सम्मान करने के लिए उसे सम्मान से जीने के लिए सीखाता है। अधिकार और सामाजिक सम्मान के लिए के लिए सजग करता है "हमें प्रत्येक क्षेत्र में आना चाहिए। केवल सामाजिक रूप से ही हमारी प्रस्तुति निम्न नहीं है बल्कि आर्थिक, राजनीतिक और शैक्षिक, प्रत्येक क्षेत्र में हम पिछड़े हुए हैं। सो हमने प्रत्येक क्षेत्र में ऊपर आने की जरूरत है लेकिन सबसे पहली जरूरत है-सामाजिक सम्मान की।"4 चंदन का मानना है कि सामाजिक सम्मान प्राप्त करने के लिए हमें अपनी नेक्स्ट जेनेरेसन को शिक्षित करना होगा। अभी भी समाज में ऐसे बहुत लोग है जो असहाय है, आर्थिक रूप से विपन्न है। ऐसे लोगों की सहायक के रूप में हम शिक्षित युवकों

को आगे आना होगा। "अपने बच्चों को पढ़ाने के लिए उन सबको भी वही सब कुछ सहना पड़ेगा जो हमारे माता पिताओं को सहना पड़ा है। संघर्ष करने की भावना और शक्ति हर किसी में नहीं। इसलिए वे लोग संघर्षों से टूट न जाए, उनके आगे समर्पण न कर दें, इस स्थिति से बचने के लिए उनको हमारी मदद की जरूरत होगी। आर्थिक, प्रशासनिक और कानूनी, उनको हर तरह की मदद चाहिए। इसलिए हमारा कर्तव्य बनता है की हम चाहे जिस क्षेत्र में जाये लेकिन अपनी लोगों का ध्यान रखें और उसकी मदद करें।"[5] चंदन सामाजिक चेतन का विकास शिक्षा के माध्यम से करना चाहता है **"मैं अपनी शिक्षा का उपयोग अपने दिन-हीन समाज के उत्थान के लिए करूँगा। मैं उन पीड़ित, शोषित और उपेक्षित लोगों को ऊपर उठाने के लिए काम करूँगा जो कीड़े-मकड़ों की तरह जीते हैं। समाज जिनके साथ पशुवत व्यवहार करता है, उनको पास नहीं बिठाता और उनसे घृणा करता है। पीढ़ी दर पीढ़ी के कर्ज में जिन की कमर तोड़ दी हैं और कर्ज को चुकाने के लिए जो बंधुआ मजदूर बनकर जीने को विवश होते हैं।"**[6] किसी भी समाज के विकास में उसकी सबसे बड़ी बाधा सामाजिक रूढ़ियां, परंपरागत विचारधाराएं, अंधविश्वास और अज्ञानता होती है। इस अज्ञानता से मुक्ति का मूल आधार शिक्षा है। शिक्षा के माध्यम से वैज्ञानिक चेतना का विकास होता है। ये वैज्ञानिक चेतना ही हमें अच्छे बुरे की पहचान कराता है इसलिए चंदन बुनियादी शिक्षा पर ज़ोर देता है। उसका मानना है की शिक्षा के अभाव में ही धर्म इंसान का शोषण करती है धर्म अंधविश्वास पर आधारित है। इनकी जड़ें इतनी गहरी मजबूत है कि इसके खंडन के लिए ज्ञान का होना आवश्यक है। चंदन का मानेना है कि जो **"धर्मग्रंथ हमारे शोषण और अत्याचार की जड़ें है इन जड़ों को उखाड़ फेंकने की जरूरत है। आप उसके लिए जरूरी है कि लोग अभी से अधिक पढ़ें ताकि इन धर्मग्रंथों में निहित अन्याय और असमानता के दर्शन को समझ सकें तथा अन्याय, सोशल और असमानता के विरुद्ध संघर्ष करने के लिए स्वयं को तैयार कर सकें। हमारे शोषण का आधार क्या है, हमारे उत्थान और विकास में कौन से तत्व बाधक है, यह जाने बिना सार्थक संघर्ष नहीं किया जा सकता। यह ज्ञान शिक्षा से ही हो सकता है, इसलिए शिक्षा का होना बहुत ज़रूरी है। जीवन की लड़ाइयां को लड़ने के लिए शिक्षक सबसे ज्यादा मारक और शक्तिशाली शस्त्र है। शिक्षा ही उत्थान और विकास का आधार है।"**[7] जुलाई का महीना कई दिन तक बीत जाने के बावजूद भी संतनगर में बारिश नहीं है। संत नगर के लोगों ने सामूहिक रूप से निश्चय किया की यदि बारिश करवाना हो तो यज्ञ और हवन करवाना चाहिए। यज्ञ और हवन के लिए आर्थिक रूप से संपन्न होना भी जरूरी है। यह किसी एक व्यक्ति की बस की बात नहीं। इसलिए संत नगर के लोगों ने सामूहिक रूप से चंदा इकट्ठा कर वर्षा के लिए यज्ञ और हवन की बात का समर्थन करते हैं, सभी अपने सामर्थ्य के अनुरूप चंदा देते हैं। लेकिन यह जब बात चंदन तक आती है तो वह यज्ञ और हवन के लिए चंदा देने से साफ मना करता है। साथ ही साथ उसकी अंधविश्वास और रूढ़िवादी का विरोध करते हुए ईश्वर के अस्तित्व पर प्रश्न खड़ा करता है आओ उस में वैज्ञानिक चेतना के विकास के लिए अपनी बात पर ज़ोर देते हुए कहता है **"उलटी-पुलटी नहीं साफ सीधी बात कर रहा हूँ मैं। दुनिया में ऐसा कोई भगवान, ईश्वर या परमात्मा नहीं है जो सर्वशक्तिमान और सर्वव्यापी है। जो शक पैदा करने वाला, पालन करने वाला संहार करने वाला है। जो शाश्वत और चैतन्य है। जो जगत का नियामक तथा अनादि और अनंत है। यह मान्यता असत्य, भ्रामक तथा वैज्ञानिकता से परे है। सच्चाई यह है कि दुनिया में आत्मा, परमात्मा, ईश्वर, ब्रह्म, भगवान या इस तरह के किसी सत्ता का कोई अस्तित्व नहीं है। मनुष्य सबसे बड़ी सत्ता है, दुनिया में मनुष्य से बड़ी कोई चीज़ नहीं है। आत्मा परमात्मा ईश्वर ब्रह्म और भगवान ईश में से कोई भी वास्तविक नहीं है। ये सब मिथक है, काल्पनिक हैं तथा भोले-भाले लोगों को बेवकूफ बना कर अपने स्वार्थ सिद्ध करने के उद्देश्य से चालक लोगों द्वारा इजाद किए गए है।"**[8] वह अपनी बात का समर्थन करते हुए यज्ञ और हवन आदि अनुष्ठान के पीछे के उद्देश्य को भी प्रकाश में लाकर सामान्य लोगों के मस्तिष्क में फैले अंधकार को मिटाने का प्रयास करता है। **"यज्ञ और हवन आदि अनुष्ठानों की परंपरा के पीछे एक ही उद्देश्य रहा है और वह है समाज को दिव्य शक्तियों से भयभीत रख कर धर्म विशेष को जीवित रखना। यज्ञ आदि अनुष्ठान ओके पीछे यही कारण है और भारतीय समाज की यह एक त्रासदी है कि किसी भी आपदा के इस समय उससे निपटने के उपाय खोजने की बजाय देवी देवताओं की पूजा अर्चना की जाती है, तरह -तरह के अनुष्ठान किए जाते हैं।"**[9] वह केवल रूढ़िवादी और अंधविश्वास कहीं विरोध नहीं करता बल्कि समाज में फैले असमानता कभी विरोध करता है। समाज व्यवस्था के कारण सवर्ण और दलित दो वर्ग हैं। एक वर्ग आर्थिक रूप से संपन्न, ताकतवर है तो दूसरी तरफ़ आर्थिक रूप से विपन्न, शोषित पीड़ित वर्ग हैं जो अपने आत्मसम्मान के लिए आजीवन संघर्ष करते हुए काल के गाल में समा जाता है। ऐसे समाज व्यवस्था के विरोध में भी चंदन अपनी आवाज को बुलंद करता है। लोगो में इस व्यवस्था के विरुद्ध आक्रोश उत्पन्न करता है। साथ ही साथ अधिकार और आत्मसम्मान के लिए संघर्ष के लिए प्रेरित भी करता है। इसके लिए वो संगठन का निर्माण करता है। सो संगठन के माध्यम से सामाजिक उत्थान के लिए आंदोलन करता है। इस आंदोलन का प्रभाव सामान्य लोगों पर पड़ता है। वहशत नगर के पीड़ित वह शोषित लोगों को संबोधित करते हुए कहता है **"हमारा समाज सोया हुआ है। व्यक्ति हो या समाज, वह चाहे कितनी भी समर्थ और बलवान क्यों न हो, यदि वह सोया हुआ है तो वह मुर्दे के समान निश्चल और निष्प्राण है, उसे कोई भी आसानी से खत्म कर सकता है। जबकि हमारा समाज न केवल सोया हुआ है बल्कि वो जंजीरों में जकड़ा हुआ भी है। शोषण अत्याचार की मार से पीड़ित और जर्जर यह समाज कहीं हमेशा के लिए सोता ही न रह जाए इसलिए उसे जगाना जरूरी है।"**[10] है। चंदन की इस आंदोलन का प्रभाव इतना अधिक पड़ा कि **शिक्षा के प्रचार के साथ- साथ लोगों के दृष्टिकोण में भी व्यापकता शुरू हुई। केवल रोटी की चिंता में उलझे रहने वाले लोगों में चिंतन में बदलाव आया तथा अपने उत्थान और विकास के प्रति चेतना जागृत होने लगी।"**[11] जब मनुष्य में सामाजिक चेतना का विकास होता है तो समाज में समरसता, सौहार्द, ऐक्य की भावना जागृति होती है। समाज में रूढ़िगत परंपराओं का विरोध करना, वैज्ञानिक चेतना का समर्थन करना, अंधविश्वास के कूप से मुक्ति प्राप्त करना, समाज में समानता के लिए संघर्ष करना, शिक्षा का प्रसार- प्रसार करना, आत्म सम्मान और अधिकार के लिए संघर्ष करना, शोषित पीड़ित लोगों के मुक्ति के लिए आवाज बुलंद करना, संगठन बनाना, समाज में फैली कुरीतियों का विरोध करना, सम सामयिक और प्रगतिशील विचारों का समर्थन करना ही सामाजिक चेतना का विकास है। छप्पर उपन्यास में जयप्रकाश कर्दम ने इस चेतना के विकास के लिए चंदन को नायक के रूप में खड़ा कर समाज में समरसता सौहार्द, अधिकार और आत्मसम्मान की लड़ाई लड़ता है। **"चंदन की अगुवाई में सामाजिक बदलाव के लिए शुरू हुए आंदोलन की व्यापक प्रतिक्रिया हुई समाज पर। लोक मानस को झकझोर सर दिया उसने। भ्रम और भ्रांति के शिकार दलित लोगों ने यथार्थ को जानना शुरू किया। जन्म के आधार पर व्यक्ति को श्रेष्ठ या हीन मानने की भावना का लोप होने लगा**

और उसके स्थान पर यह भावना विकसित हो चली थी कि जन्म के आधार पर नहीं अपितु कर्म तथा योग्यता के आधार पर ही मनुष्य श्रेष्ठ अथवा हीन होता है।"[12]

निष्कर्ष - निष्कर्षतः हम कह सकते है कि व्यक्ति के सामाजिक माध्यमों में साझा किए गए अनुभव ,उसके सामाजिक चेतना के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। यह शिक्षा ,परिवार , समुदाय ,संगठन ,सामाजिक संबंध और साझेदारी द्वारा हो सकते हैं। शिक्षा और ज्ञान का प्राप्त होना सामाजिक चेतना के विकास में महत्वपूर्ण होता है। जब व्यक्ति विभिन्न मुद्दों ,समस्याओं और न्याय के मामलों के बारे में ज्ञान प्राप्त करता है ,तो उसकी सामाजिक चेतना जागृत होती है और उसे समाज में सक्रिय बनने के लिए प्रेरित करती है। व्यक्तिगत अनुभव ,जैसे कि संघर्ष ,संघर्ष ,उद्धार ,यात्रा आदि ,भी सामाजिक चेतना के विकास को प्रभावित कर सकते हैं। ये अनुभव व्यक्ति को अन्य लोगों की समस्याओं और जीवन की कठिनाइयों को समझने और उन पर प्रतिक्रिया करने की क्षमता प्रदान करते हैं। व्यक्ति की संवेदनशीलता और उदारता ,उसकी सामाजिक चेतना के विकास को प्रभावित करती है। जब हम दूसरों के दुःख और सुख को समझते हैं, तब हमें उनके प्रति संवेदना और सहानुभूति होती है जो हमारी सामाजिक चेतना को बढ़ाती है। सामाजिक आदर्शों ,मूल्यों और संस्कृति का प्रभाव भी सामाजिक चेतना के विकास में महत्वपूर्ण होता है। जब व्यक्ति एक समरस समाज और सामाजिक न्याय के प्रति प्रेरित होता है ,तब उसकी सामाजिक चेतना सक्रिय होती है। अतः हम कह सकते है कि यह भावना एक व्यक्ति के सामाजिक और मानसिक परिवेश ,शिक्षा ,अनुभव ,और व्यक्तिगत योग्यताओं पर भी निर्भर करती है।

****

संदर्भ सूची

1. कर्दम, जयप्रकाश, छप्पर, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला संस्करण 2017, पृष्ठ. 82
2. वही पृष्ठ – 88
3. वही पृष्ठ – 97
4. वही पृष्ठ – 41-42
5. वही पृष्ठ – 43
6. वही पृष्ठ – 44
7. वही पृष्ठ – 45
8. वही पृष्ठ – 20
9. वही पृष्ठ – 20
10. वही पृष्ठ – 83
11. वही पृष्ठ – 82
12. वही पृष्ठ – 91

ओमप्रकाश वाल्मीकि की कहानियों में 'दलित आत्म-संघर्ष'

मु.जाहिद रजा सिद्दीकी
शोधार्थी, हिंदी विभाग
अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़ (उ. प्र.)

शोध-सार :-किसी भी देश के साहित्य की मूल्यवत्ता का आकलन मुख्यतः सौन्दर्यशास्त्रीय, समाजशास्त्रीय एंव शैली वैज्ञानिक अध्ययन-पद्धति के आलोक में किया जाता है। किसी भी रचना का सौन्दर्यशास्त्रीय अध्ययन हमें मनुष्यता के विकास के प्रति आस्थावान बनाता है। भारतवर्ष का दलित साहित्य भी इससे अछूता नहीं है।

मूल शब्द: दलित, साहित्य, सवर्ण, जाति, ब्राह्मण, संवेदना, विचार, शोषण।

शोध आलेख:-आजादी के बाद वर्णाश्रम व्यवस्था को तोड़कर छुआछूत की प्रथा को भारतीय समाज से हमेशा के लिए समाप्त कर दिया गया। जिससे दलित मुख्यधारा से जुड़ने लगे और अपनी व्यथा को शब्दों में बयाँ करने लगे। दलितों के इस बयाँ को साहित्य जगत में 'दलित-साहित्य' के नाम से जाना जाता है। अपने अंदर करुणा और विद्रोह को समेटे यह साहित्य आज व्यापक रूप में लोगों को प्रभावित करते हुए दलितों के बारे में सोचने पर मजबूर कर दिया है। दलित के लिए अन्य शब्द भी प्रयोग में लाए जाते हैं जैसे- शुद्र, हरिजन, अनुसूचित जाति, अछूत आदि। डा. भीमराव अम्बेडकर ने अपने ग्रंथों में दलित के लिए डिप्रेस्ड, अनटचेबल, बहिष्कृत आदि शब्दों का प्रयोग किया है। हिन्दी शब्दकोश में दलित शब्द का अर्थ है - ''दबाया हुआ, कुचला हुआ या नष्ट किया हुआ।''1 विद्वानों के एक वर्ग ने दलित साहित्य के प्रसार के लिए और ज्यादा से ज्यादा लोगों के लिए दलित शब्द का व्यापक प्रयोग किया है। 'हंस' पत्रिका के अपने लेख में नारायण सुर्वे लिखते हैं- ''दलित शब्द की मिली-जुली कई परिभाषाएं हैं। इसका अर्थ केवल बौद्ध या पिछड़ी जातियाँ ही नहीं हैं। समाज में जो भी पीड़ित हैं वे सभी दलित हैं।''[2] इन तथ्यों को देखते हुए यह कह सकते हैं कि दलित वह है जो हिन्दू समाज में वर्णाश्रम व्यवस्था के अनुसार सबसे निचले स्तर पर है तथा जिसे अछूत माना गया है। वर्तमान समय में इस शब्द का विस्तार होता जा रहा है। आज बौद्ध, आदिवासी, पिछड़ी जातियाँ, भूमिहीन श्रमिक, कृषक तथा भटकने वाली सभी जातियाँ दलित मानी जाती हैं लेकिन दलित शब्द का इतना विस्तार होने से मूलतः जो अछूत है वही दलित है और इस दलित का जो पक्षधर साहित्य है वह दलित साहित्य है। शरण कुमार लिम्बाले अपनी पुस्तक 'दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र' में लिखते हैं- ''दलितों का दुःख, परेशानी, गुलामी, अधःपतन और उपहास के साथ ही दरिद्रता का कलात्मक शैली से चित्रण करने वाला साहित्य ही दलित साहित्य है। 'आहं का उदात स्वरूप अर्थात् साहित्य हर एक मनुष्य की स्वतंत्रता, प्रतिष्ठा और भयमुक्त सुरक्षा मिलनी चाहिए। पृष्ठभूमि पर निर्मित एक प्रवृत्ति साहित्य में ऐसी अभिव्यक्त हो रही है। इस प्रवृत्ति का नाम दलित साहित्य है।''[3]

ओमप्रकाश वाल्मीकि ने अपनी रचनाओं से हिन्दी दलित साहित्य को समृद्ध करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। दलित समाज के प्रति होने वाले उपेक्षित व्यवहार को अपनी रचनाओं के माध्यम से न केवल दलित साहित्य को प्रासंगिक बनाया बल्कि साहसपूर्ण ढंग से अपने समाज के यथार्थ को सामने लाने के लिए दलित वर्ग को प्रेरणा देने में भी सफल रहें। ये अपनी पुस्तक 'दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र' में लिखते हैं- ''दलितों द्वारा लिखा गया साहित्य ही दलित साहित्य की कोटि में आता है।''[4] वह सवर्ण

समाज द्वारा जातिगत भेदभाव भुगतने के साथ-साथ अपने अनुभवों को लेखनी के माध्यम से सामने लाकर दलित साहित्य को अग्रसर करने में महत्वपूर्ण योगदान देते रहें। 'दलितों के प्रति अमानवीय व्यवहार और दोहरे मापदण्ड' में वह लिखते हैं कि- ''एक दलित लेखक के अपने निजी अनुभव, उसके सामाजिक अनुभव कितने भयावह और कमजोर करने वाले होते हैं, इसका अंदाजा दूर खड़ा कोई लेखक, आलोचक, संपादक नहीं लगा पाता है। अनुभवों का अंतःकरण में रूपान्तरण उन भावनाओं में होता है, जो उस संघर्ष को आक्रोश की ओर ले जाती है और अंततः करुणा, प्रेम के रास्ते कविता, कहानी और आत्मकथा के रूप में सामने लाती है। इन्हीं अनुभवों ने अनेक दलित लेखक पैदा किए हैं, जिनके अंतर्द्वंद्व उन्हें दूसरों से अलग करते हैं।''5 आधुनिक समय में दलित साहित्य ने विशेष स्थान प्राप्त किया है। इस युग के दलित साहित्यकारों में प्रमुखतः ओमप्रकाश वाल्मीकि, मोहनदास नैमिश्वराय, श्यौराज सिंह बेचैन, कंवल भारती, जयप्रकाश कर्दम, सूरजपाल चौहान, सुशीला टाकभौरे, रमणिका गुप्ता, हेमलता माहिश्वर एवं डा. कुसुम वियोगी आदि उल्लेखनीय हैं, जिनके लेखनी ने दलित साहित्य को हिंदी में स्थापित किया है। इन साहित्यकारों में ओमप्रकाश वाल्मीकि का स्थान सर्वोपरि है। उनका लेखन 'भोगे हुए यथार्थ' का प्रामाणिक दस्तावेज है। जिस जद्दोजहद से वे गुजरे हैं, उनका जीवंत चित्रण साहित्य के माध्यम से हमारे सामने आकर उपस्थित होता है- ''उन्होंने अपनी कहानियों में एक ओर जहां ज्ञान और सत्ता के प्रतीक ब्राह्मणवाद और सामंतवाद पर आक्रमण करते हुए दलितों पर हो रहे शोषण, दमन और तिरस्कार का मार्मिक चित्रण किया है, वहीं दूसरी और कविताओं में वर्ण और जाति व्यवस्था पर तीखा प्रहार करते हुए परंपरागत मायाजाल को तोड़ने की कोशिश की है।''6 ओमप्रकाश वाल्मीकि का नाम वर्तमान समय में भी पथ निर्देशक के रूप में लिया जाता है। हमारे बीच वे भौतिक रूप से भले ही न हों लेकिन उनकी वैचारिक दृष्टि सदियों तक साहित्य जगत में अजर और अमर रहेगी। उनकी कविता सनातन धर्म की वर्ण-व्यवस्था के प्रति विरोध की भावना को व्यक्त करती है। जिसके अन्तर्गत वे परंपरागत जातीय रूढ़ियों को तोड़ना चाहते हैं। 'जाति' नामक कविता की ये पंक्तियां आज भी प्रासंगिक होकर हमें एक नई शक्ति प्रदान करती हैं-

'स्वीकार्य नहीं मुझे
जाना, मृत्यु के बाद
तुम्हारे स्वर्ग में।
वहाँ भी तुम
पहचानोगे मुझे
मेरी जाति से ही!'

इस कविता के माध्यम से वे उन तमाम बंधनों से मुक्त होने की जिस आकांक्षा को रखते हैं, उससे सच में एक क्रांति की लहर दौड़ने लगती है। आज की दलित कहानियों ने प्रत्रानुकूलता से जड़ता को तोड़ने का कार्य किया है- ''दलित कहानी इस व्यवस्था की सदियों के खिलाफ आवाज ही नहीं उठाती बल्कि कुछ सवाल भी पूछती है।''7 ओमप्रकाश वाल्मीकि अपनी आत्मकथा 'झठन' के लिए जितने प्रसिद्ध हुए उतने ही उनकी कहानियों ने समाज में दलितों की यथा-स्थिति का चित्रण संवेदनात्मक रूप में किया है। दलितों के प्रति छुआछूत का व्यवहार हमारे समाज में एक भयावह बीमारी है। मनुष्य होते हुए दूसरे मनुष्य को उसकी जाति के आधार पर उपेक्षित दृष्टि से देखना उसके साथ खान-पान में दूरी रखना समाज की रीति है। छुआछूत और तिरस्कार की त्रासदी से कई दलित अपनी असली पहचान को छुपाने के लिए मजबूर हैं। 'सलाम' कहानी संग्रह में 'कहाँ जाए सतीश' शीर्षक नामक कहानी में सतीश अपनी पहचान छुपाकर इसलिए रह रहा था क्योंकि समाज के उपेक्षापूर्ण व्यवहार से वह तंग हो गया। अब वह अपनी बस्ती से दूर किराए पर रहकर अच्छे से पढ़ाई करता शाम में फैक्टरी में काम करता जिससे वह अपना खर्चा चलाता अपने भविष्य को सम्मान के साथ जीने की चाहत में वह तमाम कोशिशों में लगा रहता। सतीश के कुशल व्यवहार से मकान मालिक खुश था। लेकिन सवर्ण परिवार को सतीश की जाति का पता चलते ही उसके प्रति उनके मन में नफरत का सैलाब उमड़ जाता है। दिसंबर की ठिठुरन भरी रात में सतीश को घर से बाहर कर दिया जाता है। वह समझ नहीं पाता कि आखिर उसका कसूर क्या है ? मानवीय रिश्ते जाँति के आधार पर क्यों बनते हैं?- 'उसने मुझे राखी बांधी थी साहब….. पर आज……. उन्हें पता चल गया कि मेरी जाति क्या है। साहब, भंगी होने से रिश्ते टूट जाते हैं? मैं इस भंगीपन से छुटकारा पाना चाहता हूँ साहब।''[8] सतीश उलझन में है लेकिन उसके सवालों का कोई जवाब किसी के पास क्यों नहीं है? सर्द रात में वह अपनी फैक्टरी में रात बिताने को सोचकर जाता है, परन्तु उसे वहाँ भी ठिकाना नहीं मिलता है।

'चर्चित कहानी संग्रह 'सलाम' ओमप्रकाश वाल्मीकि का पहला कहानी संग्रह है। जो वर्ष 2000 ई. में प्रकाशित हुई। इस संग्रह में 'सलाम' शीर्षक कहानी जो भारतीय समाज में समानता के लिए आन्दोलन का प्रतीक है उसका स्वरूप देखने को मिलता है। इस कहानी में दलित हरिश के सवर्ण दोस्त कमल को गाँव का चायवाला इसलिए चाय नहीं पिलाता क्योंकि वह दलित के शादी में बाराती बनकर आया है। 'चूहड़ों की बारात में बामन' आए यह उसके किए अकल्पनीय है। इसलिए वह चिल्लाकर अपनी खीझ को भीड़ में शामिल लोगों के सामने प्रकट करता है - ''चूहड़ा है। खुद को बामन बतारा है। जुम्मन चूहड़े का बाराती है। इब तुम लोग ही फैसला करो। जो यो बामन है तो चूहड़ों की बारात में क्या मूत पीने आया है। जात छिपाके चाय मांग रा है, मैने तो साफ कह दी। बुद्धू की दकान पे तो मिलेगी ना चाय चूहड़ों-चमारों कू कहीं और ढूंढ़ लें जोके।''[9]

यह कहानी दलितों की पीड़ा, त्रासदी और वेदना को दिखाते हुए सलामी के पारंपरिक रिवाज को तोड़ने की चेतना को दर्शाती है। सलामी की अपमानजनक प्रथा से ग्रस्त समस्त दलित-समाज को मुक्ति दिलाने का काम हरीश अपनी शादी के दौरान करता है। बारात की विदाई के पहले गांव के घर-घर जाकर सलाम करने की प्रथा से दलित वर-वधू में हीनता-बोध घर कर जाता है और स्वाभिमान के टुकड़े-टुकड़े हो जाते हैं। हीनता-बोध की जड़ रही सलामी की प्रथा से हरीश को मुक्ति दिलाने में मित्र कमल उपाध्याय जो प्रगतिशील विचारों वाला ब्राह्मण है का बड़ा योगदान रहा है। उसकी प्रेरणा से वह सदियों से चली आ रही इस प्रथा को ठुकराता ही नहीं बल्कि उसे खारिज भी करता है। उसका यह कदम दलितों में चेतना के स्वर को आगे बढ़ाने का काम करता है। हरीश के इस फैसले से सवर्णों का आगबबूला होना यह दर्शाता है कि उन्हें यह बिल्कुल बर्दाश्त नहीं हो पाता कि दलित अपने मान-सम्मान की पहल करें। गांव के सवर्ण बल्लू का हरिश के ससुर को परंपरा का विरोध कर अपने सम्मान के विषय में सोचने के लिए धमकाना यह साबित करता है कि दलित समाज को चेतनाशील होना सवर्ण समाज के लिए घातक लगने लगता है- ''तभी तो कहूँ- जातकों (बच्चों) को स्कूल ना भेजा करो। स्कूल जाके कोण-सा इन्हें बालिस्टर बनाना है। ऊपर से इनके दिमाग चढ़ जागें । यो न घर के रहेंगें न घाट के। गाँव की नाक तो तूने पहले ही कटवा दी जो लौंडिया कू दसवीं पास करवा दी। क्या जरूरत थी लड़की कू पढ़ाने की, गाँव की हवा बिगाड़ रहा है तू। इब तेरा जमाई 'सलाम' पर जाने से मना कर रहा है….. उसे समझा दे…..'सलाम' के लिए जल्दी आवे...।''[10] सवर्णों का यह सोचना कि सम्मानित सारे कामों में सिर्फ हमारा अधिकार है और अपमानित होते रहना और सहना दलितों की नियति है, यह विचार हमारे समाज की उन्नति में बाधक होने के बावजूद अपना परचम लहराता है।

'पच्चीस चौका डेढ़ सौ' कहानी में शिक्षा का महत्व और दलित समाज के लिए उसकी आवश्यकता की प्राथमिकता दर्शायी गई है। दलितों पर शोषण का मुख्य कारण अशिक्षा और गरीबी है। शिक्षा से उन्हें निरंतर वंचित कर उनके अधिकारों का हनन किया गया। सुदीप के पिता अनपढ़ दलित किसान हैं वह बचपन से अपने पिता के मुंह से सुनते आ रहा है कि 'पच्चीस चौका डेढ़ सौ' लेकिन जब वह स्कूल में मास्टर के द्वारा पच्चीस का पहाड़ा सुनता है कि पच्चीस चौका सौ तब वह घर में भी वह पहाड़ा पढ़ता है। किंतु इस पर उसके पिता डांटते हैं कि मास्टर जी बच्चों को गलत-सलत पढ़ा रहे हैं। जब सुदीप नौकरी पाकर पहली तनख्वाह अपने पिता के सामने गिनकर समझाते हुए रखता है तब वह समझ लेते हैं कि 'पच्चीस चौका डेढ़ सौ' नहीं सौ ही होते हैं। तब जाकर उनका चौधरी पर से विश्वास टूटता है और उनके मुंह से निकलता है, ''तेरे कीड़े पड़ेगें चौधरी, कोई पानी देने वाला भी नहीं बचेगा।''[11] शोषित वर्ग के आँखों पर लगी इस पट्टी को हटाने के उपाय है शिक्षित होना; अपने अधिकारों के प्रति जागरुक होना। जिस तरह सुदीप ने अपने पिता के सामने चौधरी के षडयंत्र का पर्दाफाश किया उसी तरह दलित समाज को अपने कर्तव्यों का बोध होना बहुत जरूरी है तभी तो वह पीढ़ियों से की जा रही इस तरह की धोखेबाजी को समझ पाएंगें क्योंकि उनकी मेहनत, ईमानदारी एवं सहजता को हमेशा दरकिनार कर उन्हें प्रताड़ित किया जाता रहा है। गरीबी की मार की झेलता दलित दिन-रात कठिन मेहनत के बावजूद भुखमरी के हालातों से गुजर रहा है। जातिगत आधार पर काम का विभाजन भी इनकी गरीबी का बड़ा कारण है। इनसे काम तो ज्यादा मेहनती व धृणित करवाएं जाते हैं परन्तु आमदनी बहुत कम है। इस प्रकार शिक्षा के महत्व के साथ-साथ सवर्णों के छल-कपट को भी उजागर करती है। यहां अंबेडकर के 'शिक्षित हो, संघटित हो, संघर्ष करो' का नारा बिल्कुल सटीक बैठता है। इनके नारे का उद्देश्य यही था कि दलितों को अपनी लड़ाई स्वयं लड़नी होगी।

'अम्मा' नामक शीर्षक कहानी में भी जागृत चेतना दिखाई देता है। इसकी नायिका दरवाजे-दरवाजे मैला साफ करती है लेकिन अपने बच्चों को इस काम से दूर रखती है और उन्हें पढ़ाती है। अम्मा का स्वाभिमान उसका चरित्र है। मिसेज चोपड़ा के घर काम करने आयी अम्मा पर विनोद बुरी नजर रखता है एवं छेड़ने की कोशिश करता है, तो उसे झाड़ू से जबाब देते हुए कहती है- ''भैंणजी, इस हरामी के पिल्ले से कह देना हर... एक औरत छिनाल न होये है।''[12] वाल्मीकि की कहानियों में स्त्री के लिए उतना सम्मान उतना ही स्पेस है जितना कि पुरुष के लिए है।

'जंगल की रानी' एक आदिवासी महिला की कहानी है। वह गांव के स्कूल में काम करती है। 'ग्रामीण महिला प्रशिक्षण शिविर' के दौरे पर आए डिप्टी साहब की गंदी नजर कमली पर पड़ती है। वह उसे अपने आगोश में लेना चाहता है, लेकिन कमली अपने आत्मसम्मान और स्वाभिमान को हरगिज झुकने नहीं देती है। वह अंत तक लड़ती है और अपनी अस्मिता को बनाए रखते हुए अपनी जान गवां देती है, लेकिन उसके सामने अपनी इज्जत को खोने नहीं देती है। 'चीड़ीमार' कहानी की नायिका सुनीति की हालातों के चलते काम पर जाना पड़ता है। समाज में किसी अकेली औरत का और अगर वह दलित हो तो स्वतंत्र होकर नौकरी करना मुश्किल ही नहीं नामुमकिन है। गली के तीन लड़को को छेड़ने के बावजूद वह काम पर जाती है, लेकिन उनके सामने हथियार नहीं डालती। अपने मित्र सुतेज के द्वारा दिए गए मनोबल के सहारे वह उनसे डटकर मुकाबला करती है और उन्हें सबक सिखाती है। सामाजिक अर्न्तविरोध के कारण जाति की समस्या दलित के सामने सदैव खड़ी रहती है। जाति के नाम पर ही दलितों को समय-समय पर और हर मोड़ पर अपमानित करना, उनका मजाक उड़ाना सवर्ण समाज का परिपाटी बन गया है । 'अधड़' कहानी का नायक मिस्टर लाल अपनी पत्नी से कहता है, ''मैं नहीं चाहता यहां के लोगों को पता चले कि हम शिड्यूल कास्ट हैं। जिस दिन से लोग जान जायेंगें, ये मान-सम्मान सब घृणा और द्वेष में बदल जायेगा।''[13] सामान्यतः ऐसा होता भी हैं। आज-कल शहरों में दलित समाज के शिक्षित लोग अपनी जाति छिपाने में ही अपनी भलाई समझते हैं। इसका कारण आधुनिक युग में भी समाज के अन्दर गहरी पैठ पकड़ी हुई जाति-व्यवस्था ही है। व्यक्ति किसी भी उच्च स्थान पर विराजमान क्यों न हो उसे जाति के नाम से ही सम्मान दिया जाता है। अगर वह अपनी जाति छिपाता भी है तो समाज उसे किसी न किसी तरह जान ही लेता है। 'दलित विमर्शः साहित्य के आईने में' जयप्रकाश कर्दम लिखते हैं- ''साहित्य का काम समाज की संवेदनाओं को झकझोर कर उसमें प्रगति - चेतना का संचार करना तथा उसे एक दिशा देना है। दलित-साहित्य इस काम को पूरी तरह से अंजाम दे रहा है।''[14] इसी तरह 'घुसपैठिए' कहानी में भी राकेश की पत्नी इन्दु नहीं चाहती कि पड़ोस में किसी को उसकी जाति के बारे में पता चलें, वह समाज के उपेक्षित व्यवहार से अपने परिवार को बचाना चाहती है। उसे अपने पति का दलितों के प्रति सौहार्दपूर्ण व्यवहार पसंद नही है। वह कई दफा अपने पति को इनसे दूर रहने को कहती है- ''तुम चाहे जितने बड़े अफसर बन जाओ, मेल-जोल इन लोगों से ही रखोगे, जिन्हें यह तमीज भी नहीं है कि सोफे पर बैठा कैसे जाता है. तुम्हें इनसे यारी दोस्ती करना है तो घर से बाहर ही रखो... आस-पड़ोस में जो थोड़ी बहुत इज्जत है, उसे भी क्यों खत्म करने पर तुले हो.... गले में ढ़ोल बाँधकर मत घूमो- यह जो सरनेम लगा रखा है... यही क्या कम है कितनी बार कहा है कि इसे बदलकर कुछ अच्छा-सा सरनेम लगाओ... बच्चे बड़े हो रहे हैं... इन्हें कितना सहना पड़ता है। कल पिंकी की सहेली कह रही थी रैदास जूते बनाते था.... तुम लोग भी जूते बनाते हो.... पिंकी रोते हुए घर आई थी.... मेरा तो जी करता है बच्चों को लेकर कहीं चली जाऊँ।''15 दरअसल इन्दु के भीतर का यह डर समाज में व्याप्त अमानवीय मान्यताओं का परिणाम है। वह नहीं चाहती कि उसके बच्चों को सामाजिक भेदभाव का सामना करना पड़े। इन्हीं कारणों से कई अच्छे पदों पर कार्यरत दलित अपनी जाति के बाकी लोगों से ही दूरी बनाने लगते हैं। हमारे समाज में जातिगत ऊँच-नीच की प्रतिस्पर्धा बहुत ज्यादा है, इसलिए प्रत्येक जाति दूसरी जाति से आगे बढ़ने की होड़ में लगी रहती है। ऐसा नहीं है कि जातिगत भेदभाव सवर्णों के बीच में ही मौजूद है दलित जातियाँ भी इससे अछूती नहीं है। यह कहानी सिर्फ जाति.... व्यवस्था को ही लेकर आगे नहीं बढ़ता बल्कि उच्च संस्थानों में दलित छात्र-छात्राओं के साथ होने वाले अमानवीय कृत्यों का भी पर्दाफाश करता है। शारीरिक, मानसिक और धार्मिक प्रताड़ना की अथाह ने मेडिकल छात्र सोनकर को मरने पर मजबूर किया वह लड़ता रहा परन्तु साजिशों के चक्रव्यूहों से लड़ते-लड़ते हार गया। आरक्षण से आए बच्चों को परेशान करना, उनकी कई शिकायतों के बावजूद कोई कार्यवाही नहीं करना, उन्हें ही चुप रहने सहने की सलाह देना, मेहनती होने के बावजूद कोई कार्यवाही नही करना, उन्हें परीक्षाओं में कम नंबर देना, इस तरह के उपेक्षापूर्ण रवैये से उन्हें कितनी तकलीफ होती है इसका एहसास वाल्मीकि की कहानियों में बहुत गहराई के साथ देखने को मिलता है। इसी तरह आरक्षण की वजह से काबिलियत पर शक करना भी आपसी मनमुटाव, द्वेष की स्थिति 'कुचक्र' कहानी में दिखाई देती है। अक्सर उनकी सफलता की तुलना आरक्षण के साथ की जाती है। काम के प्रति कर्तव्यनिष्ठ ईमानदार, जानकार होने के बावजूद उन्हें हेय दृष्टि से देखा जाता है। दलित युवक आर. बी. का प्रमोशन गैर दलितों को उचित नहीं लगता है। उनकी बौखलाहट उसके प्रति कुचक्र की तरफ बढ़ने लगती है। उसके लिए अपशब्दों का इस्तेमाल करना, उसकी बाकी अधिकारियों से शिकायत करना, चोरी के इल्जाम में फंसाना। इस तरह के कई स्तरहीन योजनाओं द्वारा अपने मूल को तसल्ली दी जाती है- ''रीढ़-वीढ़ कुछ नहीं शर्मा जी..... मर-मरकर काम करें हम और प्रमोशन मिले इन भंगी..... चमारों को..... बस शर्मा जी अब तो सेंटर में बदलाव आना ही चाहिए ..... नहीं तो य लोग देश को तबाह कर देंगें।''[16] शर्मा जी के उकसाने पर निशिकांत का यह मनोभाव दलितों के

प्रति समाज में प्रचलित धारणाओं की उजागर करता है। 'बैल की खाल' कहानी का काले और भूरे गांवों में जानवरों के डाक्टर आने से दुःखी हैं, क्योंकि उन्हें कोई जानवर मरेंगें नहीं तो वह खाएंगे क्या ? दूसरा काम भी नहीं देता। ''गांव भर की नजर में वे सबसे निकम्मे जीव थे, मरे जानवर की खाल खींचने वाले।''[17] इनकी जरूरत गांव वालों को तभी होती जब गाँव में कोई जानवर मर जाता वरना यह जीवित हैं या नहीं इसकी परवाह किसी... को नहीं थी। 'खानाबदोश' कहानी की मानो और सुकिया अपने लिए भी पक्की ईटों का मकान बनाना चाहते हैं, लेकिन उनका यह ख्याल धाराशायी कर दिया जाता है। सुबेसिंह दलित स्त्री मानो को अपने जाल में तमाम प्रलोभन के बाद भी किसनी की तरह नहीं फंसा पाया तो उसे काम से निकालने की साजिश रचता गया।

'गोहत्या' शीर्षक नामक कहानी में मुखिया के आदेश का पालन न करने की सजा गोहत्या की? साजिश में फंसाकर दी जाती है। सुक्का का अपनी बीवी को हवेली लाने से मना करना मुखिया के वर्चस्व को आघात पहुँचाता है- ''औकात में रह सुक्का। उड़ने की कोशिश ना कर, बाप-दादों से चली आई रीत है। लेकिन सुक्का का अप्रत्याशित जवाब मुखिया को तिलमिला देता है। मुखिया जी काम करता हूँ तो दो मुट्ठी चावल देते हो..... वह हवेली नहीं आएगी।''[18] सुक्का को इस विरोध की सजा लाल दहकती लौ से हाथ जलाकर मिलती है, जिससे मुखिया के भीतर की प्रतिशोध की ज्वाला तो शांत हो जाती है लेकिन सुक्का की चीत्कार से पूरा गाँव दहल जाता है। दलितों पर अपना अधिकार जमाने वाले लोग कई तरह की रीतियाँ बनाकर उनका शारीरिक, मानसिक शोषण करते रहे हैं।

'बिरम की बहू' में दलित युवक का शारीरिक, शोषण एक ठाकुर की बहू के द्वारा किया जाता है और उसे बाद में कभी नज़र उठाकर भी नहीं देखा जाता। ठाकुर के द्वारा संतान न होने के कारण बहू सूर्यग्रहण के समय याचिका के लिए अपने द्वार पर आए हुए दलित युवक के साथ सहसवास कर गर्भवती बनती है, ताकि उसे अपने घर से निकाला न जाय। यहाँ इस स्त्री की उच्चवर्णीय पितृसत्ता की अमानवीयता के कारण ऐसा कदम उठाना पड़ता है, लेकिन जब वह पुत्र जन्म देती है तो उसके असली बाप की ओर आँख उठाकर भी नहीं देखती। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि वंश प्रतिष्ठा के लिए ब्राह्मणवादी सवर्ण किसी भी हद तक गिर सकता है, चाहे वह सवर्ण पुरुष हो या स्त्री अपने सुख प्राप्ति के लिए किसी को भी इस्तेमाल कर सकते हैं। जब तक उनका स्वार्थ छिपा रहता है तब तक उनके लिए छुआ-छूत की रेखा भी आड़े नहीं आती है। तब इस शोषणकारी नीति से बचकर अपनी अस्तित्व की रक्षा करना आवश्यक हो जाता है। इसी करुण-व्यथा को देखते हुए 'ठाकुर का कुंआ' नामक शीर्षक कविता वाल्मीकि लिखते हैं-

''कुंआ ठाकुर का
पानी ठाकुर का
खेत-खलिहान ठाकुर के
गली-मुहल्ले ठाकुर के
फिर अपना क्या?
गांव ? शहर ? देश ? ''

दलित साहित्य में वाल्मीकि जी ने अपने कहानियों के माध्यम से पूरे समुदाय का चित्रण करते हैं। वे स्व की जगह हम की भावना के साथ सामाजिक सरोकार एवं भेद-भाव को दर्शाते हैं। इस साहित्य में मानवता की बात होती है, जिस समाज में लेखक रहता है, उस समाज के हित में वह सोचता है। बाबा साहब अंबेडकर ने स्वाधीनता, समानता और भाईचारे की जो बात कही, उसका पूरा-पूरा पालन दलित साहित्यकार करते हैं। अंबेडकर का यह मानना है कि- ''हिन्दू समुदाय विभिन्न जातियों का एक संग्रह मात्र नहीं है, बल्कि वह शत्रुओं का समुदाय है। उसका हर विरोधी वर्ग स्वयं अपने लिए और अपने यथार्थपूर्ण उद्देश्य की पूर्ति के लिए ही जीवित रहना चाहता है।''19 इनके गंभीर विचारों के आधार पर आज का दलित- साहित्य एक विचारात्मक पहलू के साथ वैज्ञानिक दृष्टिकोण को अपनाते हुए आगे बढ़ रहा है, जिसके मुख्य प्रेरणादायक श्रोत सिर्फ डॉ. भीमराव अंबेडकर ही हैं। लेखक के रचनाओं में उस महान व्यक्ति के आदर्श एवं विचारों का एक प्रवाह- सा मिलता है। इनके तार्किक तथ्यों को प्रामाणिक मानते हुए रमणिका गुप्ता लिखती हैं- ''अनुभवों की प्रमाणिकता से दलित- साहित्य में नया तेवर उभरा, जो सीधे मन को छूता है। यह वर्तमान साहित्य के लिजलिजेपन और वासीपन तथा एकरूपी, इस वादी प्रणाली से भिन्न है और चमत्कारी कल्पनाओं से बिल्कुल अलग होता है।''[20]

ओमप्रकाश वाल्मीकि की अन्य कहानियों में भी दलित समाज की विभिन्न समस्याओं और अंतर्विरोधों ताल-मेल है। इस समाज की नियति यही थी कि वह सवर्णों की सेवा करता रहे ताकि अपने पूर्व जन्म के पापों का प्रायश्चित कर सके, किन्तु यह सब असंगत अमानवीय और अंधश्रद्धा को बढ़ावा देने वाली बातें हैं। 'यह अंत नहीं', 'हिराई', 'सपना', 'जिनावर', 'ग्रहण', 'छतरी', 'ब्रह्मास्त्र' आदि कहानियों में दलितों की वास्तविकता, कर्मठता, वेदना आदि का सजीव चित्रण किया गया है। इनके कहानियों की भाषा शैली बेजोड़ है। दलित जीवन का दर्द, अदम्य लालसा उसकी मनोस्थिति को जिन शब्दों में अभिव्यक्ति दी है उससे कहानी पढ़ते हुए सम्पूर्ण दृश्य सामने दिखाई देते हैं, जो कहानी के महत्व को बढ़ाती है। साहित्य का काम समाज के हर उस रूप को सामने लाना है जो समाज में विद्यमान है जिससे समाज में फैली विसंगतियों को समझा जा सके। इसी सन्दर्भ में डा. जयप्रकाश कर्दम का मानना है कि- ''यथार्थ पर आधारित होने के कारण दलित साहित्य 'वाह' का नहीं 'आह' का साहित्य है। इसमें दलित जीवन देश, दर्द और आह सर्वोपरि है क्योंकि यह समाज का सबसे बड़ा कद और भयावह यथार्थ है। दलित उत्पीड़न और संवेदना के जितने भी पक्ष हो सकते हैं हिन्दी साहित्य की दलित कहानियों में लगभग उन सभी का प्रतिपाद्य बनाया गया है।''[21]

निष्कर्ष रूप से कह सकते हैं, कि ओमप्रकाश दलितों को वाल्मीकि की कहानियाँ प्रेरणांशील रही है अपने सम्मान के लिए लड़ना होगा, प्रतिरोध करना होगा हर उस नियम का जिससे उसकी अस्मिता को ठेस पहुँचे। स्वाभिमान से सम्मानपूर्ण जीने का हक सभी को है चाहे वह किसी भी जाति का हो, जब जाति मानवीय संबंधों में बाधक बनने के बजाए समानता को महत्व देगी तभी नये समाज की परिकल्पना का सपना साकार होगा एवं सभी को बराबरी का मुकाम हासिल होगा।

****

सन्दर्भ -

1.बाहरी, डा. हरदेव, हिंन्दी शब्दकोश, पृष्ठ 368
2.हंस, पत्रिका (सम्पादक) राजेन्द्र यादव, अप्रैल 1992, पृष्ठ 23
3.लिम्बाले, शरणकुमार, दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, पृष्ठ 42, 43
4.वाल्मीकि, ओमप्रकाश, दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, पृष्ठ 15
5.वाल्मीकि, ओमप्रकाश, मुख्यधारा और दलित साहित्य, पृष्ठ 68
6.चौबे, देवेन्द्र, आधुनिक साहित्य में दलित विमर्श, पृष्ठ 58
7.गुप्ता, रमणिका, दलित चेतनाः साहित्यिक एवं सामाजिक सरोकार, पृष्ठ 55
8.वाल्मीकि, ओमप्रकाश, 'सलाम' 'कहानी संग्रह', कहाँ जाए सतीश' पृष्ठ 55
9.वही, 'सलाम' कहानी, पृष्ठ 13
10.वही, पृष्ठ 18
11.वही 'पच्चीस चौका डेढ़ सौं' कहानी, पृष्ठ 82
12.वही, कहानी, 'अम्मा', पृष्ठ 23
13.वही, कहानी, 'अधड़', पृष्ठ 91
14.कर्दम, डॉ0 जयप्रकाश, दलित विमर्शः साहित्य के आईने में, पृष्ठ 117
15.वाल्मीकि, ओमप्रकाश, 'घुसपैठिए' कहानी, पृष्ठ-15
16.वाल्मीकि, ओमप्रकाश, 'सलाम' कहानी संग्रह, 'कुचक्र' कहानी पृष्ठ 105
17.वही, 'बैल की खाल', कहानी, पृष्ठ 35
18.वही, कहानी, 'गोहत्या', पृष्ठ 59
19.डा. अंबेडकर, बाबा साहेब, संपूर्ण वाङ्मय, खण्ड-01, पृष्ठ 72
20.गुप्ता, रमणिका, दलित चेतनाः साहित्यिक एवं सामाजिक सरोकार पृष्ठ 127
21.कर्दम, डा. जयप्रकाश, दलित विमर्शः साहित्य के आईने में, पृष्ठ-111

रोज केरकेट्टा के ''अबसिब मुरडअ'' में आदिवासी प्रतिरोध

कु. रेशम सोनकर
शोध छात्रा,हिन्दी विभाग
इंदिरा गांधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय
अमरकंटक (म0 प्र0)-484887

किसी भी समाज में यदि प्रतिरोध का आकलन किया जाय तो यह पता चलता है कि हर समाज में प्रतिरोध किसी न किसी रूप में रहा है चाहे सत्ता कितना भी क्रूर न रही हो। लोग पारिवारिक, सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक और धार्मिक स्थितियों के विरोध में खड़े होते रहे हैं चाहे उन्हें जो भी कीमत चुकानी पड़ी हो। प्रतिरोध की जड़ें सभ्यता के विकाश के साथ ही जुड़ी हैं। बद्री नरायण ने अपनी पुस्तक ''प्रतिरोध की संस्कृति'' में लिखा है कि "प्रतिरोध की संस्कृति भी होती है। प्रतिरोध की संस्कृति बोलती भी है और चुप भी रहती है। प्रतिरोध की बोलती संस्कृति के अनेक रूप होते हैं तो चुप संस्कृति के भी सहस्र रूप। प्रतिरोध के इन दोनों रूपों की खोज हम जनसामान्य के प्रतिदिन के व्यवहार में कर सकते हैं।''[1] डा. प्रभाकरन हेब्बार इल्लत ने माना है कि—

"प्रतिरोध का स्वर स्वाधीन मानव स्वाधीन, विवेकशील प्राणी को विवेकशील बनाने का सामाजिक कार्यक्रम है, इसी से मानव के इतिहास का निर्माण संभव है। ये प्रतिरोध के स्वर भौतिकवादी, लोकवादी, मानवतावादी रूप में साहित्य के विभिन्न स्तरों पर अनुगुँजित होते रहते हैं। ये स्वर आभिजात्य के विरुद्ध समस्त अधिनायकत्व के प्रति विकसित सास्कृतिक शंखनाद है। प्रतिरोध अतरंगता से उद्भूत होता है तथा समस्त प्रकार की जड़ता का उन्मूलन कर आगे बढ़ता है।"[2]

अगर आदिवासी प्रतिरोध की बात की जाय तो इसके विविध आयाम देखने को मिलता है। अंग्रेजी हुकूमत के दौरान आदिवासी अंग्रेजों और भारतीय जमींदारों दोनो से लड़ रहे थे। देश के आजाद होने के बाद आदिवासी समुदाय दीकुओं, सरकारी तंत्र और अपने समुदाय के अंदर व्याप्त कमियों से लड़ रहे हैं। रमणिका गुप्ता वर्तमान में आदिवासी जीवन के यर्थाथ और प्रतिरोध के कारणों पर विचार करते हुए कहती है कि-

"आज झारखण्ड हो या देश का कोई आदिवासी बसाहटों का गाँव व शहर, जल-जंगल-जमीन पर कब्जा, विस्थापन, घुसपैठ, अवमानना, अस्तित्व व पहचान का संकट तथा बेरोजगारी, भूख, बेदखली और जंगल में प्रवेश निषेध ने आदिवासियों का जीना दूभर कर दिया है। निषेध व बाजारवाद और सरकारी नीतियों के कारण उसके रोजगार, उसकी भाषा, जीवन शैली, संस्कृति व इतिहास पर संकट मड़रा रहा है। हीन-भावना का संकट अलग से उन्हें कुतर कर खा रहा है। बहिरागत दीकुओं की भरमार और आदिवासी स्त्रियों के प्रति उनकी कुत्सित दृष्टि, मानसिकता व अभद्र व्यवहार, उन्हें अलग से साल रहा है। गैर-आदिवासी दूषित समाज का इनके प्रति विकृत रुख व अंदाज-इन्हें जंगली समझना व अपने मूल्य, संस्कृति और धर्म को इन पर जबरन या फुसला कर लादना, आदिवासी बुद्धिजीवियों को सह्य नहीं है।"[3]

रमेश चन्द्र मीणा का कहना है कि "आदिवासी जीवन, समाज, संस्कृति बदलाव से गुजर रही है। आदिवासी न केवल सांस्कृतिक दृष्टि से हाशिए पर धकेला जा रहा है अपितु उसकी अस्मिता संकट में है। जब भी आदिवासी की बात आती है तब भारतीय आदिम परंपराओं की उठती है और ये परंपराएं अब किसी महानगर में नहीं आदिम जीवन जी रहे, बीहड़ जंगलों में रह रहे आदिवासियों में दृष्टिगोचर होती है। ऐसे समुदाय लगता है जैसे अंतिम सांसे गिन रहे हैं।"[4] इस परिस्थिति में आदिवासियों ने साहित्य को प्रतिरोध का अपना साधन बनाया है। महेन्द्र प्रजापति ने भी शिक्षा और साहित्य को "प्रतिरोध के अभिव्यक्ति" का साधन बताया है। झारखण्ड के आदिवासी रचनाकारों में रोज केरकेट्टा का नाम वरिष्ठ रचनाकारों में आता है।

रोज केरकेट्टा झारखण्ड की आदिवासी कवियत्री हैं। उनका कविता संग्रह ''अबसिब मुरडअ'' खड़िया और हिन्दी दोनों भाषाओं में प्रकाशित हुआ है। हलांकि उत्तराधुनिक सिद्धान्तों के विचारकों का यह मानना है कि एक कृति की रचना के बाद रचनाकार की भूमिका समाप्त हो जाती है परन्तु वहीं पर परंपरावादी विचारकों का मानना है कि किसी भी कृति से उस समय-काल की सामाजिक-सांस्कृतिक स्थितियों का आकलन किया जा सकता है जिसमें उसकी रचना हुई होती है क्योंकि तत्कालीन परिस्थितियां किसी भी रचनाकार के मनोभावों का निर्माण करती हैं और रचना को जन्म देती हैं। कविताओं के विषय वस्तु को रेखांकित करते हुए रोज केरकेट्टा कहती हैं, "ये कविताएं ऊँची उड़ान नहीं भरतीं। परन्तु युवावस्था में प्रत्येक व्यक्ति कुछ सपने देखता है, कुछ आदर्श पालता है, वैसे ही मैंने भी कुछ सपने देखे थे, कुछ आदर्श पाले थे। वे कुछ हद तक इन कविताओं में झलकते हैं। शायद कुछ हद तक मेरी विचाराधारा भी दिख जायेगी।"[5] रोज केरकेट्टा के इस कविता संग्रह में प्रतिरोध बहुत मुखर होकर प्रस्तुत नहीं होता जैसा कि वर्तमान पीढ़ी के आदिवासी लेखिकाओं में देखने को मिलता है परन्तु प्रतिरोध का स्वर विविध रूपों में मौजूद है। कहीं संदेश, कही सुझाव, कहीं सांकेतिक रूप में प्रतिरोध दिखता है तो कहीं खुलकर भी पाठक के समझ प्रस्तुत होता है।

इस संग्रह की पहली कविता "पहली बारिश" में ही कवियत्री बाजारवादी संस्कृति और आधुनिकता से ओत-प्रोत मानव के जीव-जंतुओं के प्रति निष्ठुर व्यवहार के विरुद्ध मोर्चा खोल देती हैं। पहली बारिश में नदियां उमड़ रही थी और मछलियाँ जलपरियों की भाँति "तेजी से गहराई से लदगद-लदगद करते जल में/ऊँचाई की ओर उड़ रही थीं/थिरक रही थीं, रोशनी में चमक रही थीं।"[6] नदियों के अलावा खेत-गड्ढे सब छपाछप भर उठे थे जिसके उपरान्त मछलियां छिछले पानी में भी फैल गयी थीं और नृत्य कर रही थीं। यह मौका देख जवान, बूढ़े बच्चे सब जाल लेकर निकल गये और मछलियों के काल बनकर खेतों, नदियों और नालों हर जगह काल बनकर छा गये। "बेखौफ मौत से अठखेलियाँ करती/फँस गई/फँसा ली गी गई जालों में/मछलियों की प्रणयलीला/उमंग का उत्कर्ष" देखते-देखते मौत में तांडव में परिवर्तित हो गया।[7] आज का उपभोक्तावादी मनुष्य उत्स को पहचानना भूल गया है। उसे सिर्फ अपने स्वार्थ की चिंता है। उसे यह सुध नहीं कि वह भी इस सृष्टि का एक प्राणी हैं और उसे जीवों को कम से कम उनके सृजन काल में नहीं मारना चाहिए। पारिस्थितिकी जगत के जीवों के प्रति मनुष्य की इस कठोरता को देखकर कवियत्री का मन चीख उठता है और पहली बारिस में मछलियों का बिंब लेकर कहती हैं कि-

"उनकी मौत
नहीं करती द्रवित मानव को
इतना निष्ठुर इतना निर्मम
आज का मानव
सृजनकाल में मछलियाँ मारी जाती हैं।"[8]

आज विकाश का पैमाना सिर्फ भौतिक संसाधनों का विकाश हो गया है। आदिवासी क्षेत्रों में मकशद विशेष से सरकारी नुमाइंदों और ठेकेदारों के द्वारा सड़क, पुल और बांध बनाये जाते हैं और यह प्रचारित किया जाता है कि आदिवासी जन-जीवन के विकाश के यह जरूरी है। परंतु विकाश की इस अवधारणा के फलस्वरूप निर्मित

संसाधनों से आदिवासियों के जीवन की सुगमता बाधित होती है क्योंकि उस पर कब्जा ठेकेदारों का होता है। कवियत्री अपनी कविता "पुल" में वर्णन करती हैं कि पहले नदी में सुकरा काका के पिता नाव खेते थे जो नदी में नाव उतारने के पहले नदी और नाव की पूजा करने के उपरांत प्रसाद बांटते जिसे पाकर लोग खुश होते थे। बिना किसी से पैसा मांगे और बिना किसी को मना किए "देशी परदेसी सभी को/दिन हो या घोर अंधकार/इस पार लाते उमंग में भरकर और उस पार पहुँचाते पसीना पोंछकर|"[9] इस नदी को पार करने की यात्रा रिस्तों के डोर से बंधी थी। विकाश के मॉडल ने नदी के उपर पुल का निर्माण कर दिया जिससे अब "कार, साइकिलें, मोटर साइकिलें/गुजरती रहती पुल पर से/लोग आपस में बच कर लोगों से|"[10] निःसंदेह यात्रा के गति की रफ्तार तो बढ़ गयी परंतु रिस्तों के टूटने की गति भी तेज हो गयी। अब दादा का नाव बीच नदी में खड़ी करके पैसा मांगना और यह कहना कि पैसा निकालो नहीं तो नाव खड़ी रहेगी और अजगर मगर निगल जाएंगे एवं डरते देख बीच नदी में ठठाकर हंसना, फिर हंसते-हंसते किनारे पहुंचाना और किनारे तंबाकू खाकर कहना कि आना बार-बार जब तक आजा है यहाँ, सब कुछ सपना हो गया। आज तो हुई है-

"नदी पर पुल की विजय
पर हृदय भी विजित हुआ
टी. वी. रेस्तरां अपने हुए
हम अपनों से दूर हुए
लो नदी गंदी हो गई
नेह हृदय का बहा ले गयी|"[11]

कवियत्री अपनी कविता "दाम गिनोगे" में धरतीखोर और जंगलखोर सौदागरों को चुनौती देती हैं कि जिन पेड़ों और धरती की बोली लगाने आये है वे सब पुरखा के मेहनत और पसीने से सनी है। वह कहती हैं- "यह पेड़ वही/वही धूप, थकान, पसीना/वृक्ष के प्राण भी वही/ जहां तुम बैठे हो अभी|"[12] आदिवासियों के स्वाभिमान और गर्व को सजोते हुए कहती है कि "धूप पसीना परिश्रम/नहीं खरीदे जा सकते/यही सोना-रूपा/ दाम इनके कैसे दोगे?"[13] विकास की अंधी दौड़ में मनुष्य धरती की छाती फाड़ रहा है, पेड़ काट रहा है, धरती को छलनी करके और खोदकर धन निकालता है, कारखानों में धातुओं को जलाकर बड़े-बड़े औजार बनाता है जिससे सारी दुनिया धुंए से भर रही है यानी प्रदूषण फैल रहा है। कवियत्री अपनी कविता ''प्रश्न'' में मनुष्य के इस मूर्खता पर प्रश्न करती हैं और कहती हैं कि- "मानव अपनी मूर्खता से/नहीं सोच पाता है कि/ स्वयं के लिए धरती पर/ स्वयं ही फंदा/क्यों रोपता है/क्यों बुद्धि नहीं लगाता?"[14]इतिहास लेखन की परंपरा वर्चस्ववादी ताकतों के हाथ में रही है। वर्चस्ववादी ताकतों ने जैसा चाहा, उस तरह का इतिहास लेखन करवाया। परिणामस्वरुप मौजूदा इतिहास में आदिवासी इतिहास को जगह ही नहीं मिली और वे इस तरह के इतिहास से संतुष्ट नहीं हैं। आज आदिवासी लेखक मौजूदा इतिहास के विरुद्ध अपनी आवाज को बुलन्द कर रहे हैं और आदिवासी इतिहास लेखन की ओर अग्रसर हो रहे हैं। कवियत्री अपनी कविता ''पन्ना'' में इतिहास के प्रति शिक्षक और विद्यार्थी के माध्यम से सवाल खड़ा करती हैं। जब शिक्षक विद्यार्थियों से कक्षा में पूछता है कि तुमलोगों ने कितने पन्ने भरे इतिहास के, पूरे कक्षा में सन्नाटा पसर जाता है तभी एक विद्यार्थी हिम्मत जुटा कर पूछता है "इतिहास पन्ने पर लिखूं/या क्या लिखूं पुरखों का इतिहास/या कथाओं की कथा/को लिखूं इतिहास?"[15] यह सुन शिक्षक विचार मग्न हो जाता है और कहता है-

"मत लिखो इतिहास
मत बांधो या कैद करो इतिहास
स्वतंत्र है इतिहास नहीं बंधता
जग्रत चौकीदार युग का वह
साक्षी है उथल-पुथल कर
सिपाही है युग का और
पदचिन्ह इतिहास की यात्रा का
वह इतिहास मत लिखो
जो बंधक है या पन्नों में सिकुड़ा
लिखो कि युग की छाती पूरे
चिकनी मिट्टी पर छपा जो हो
सुनहले अक्षरों में|"[16]

आगे शिक्षक कहता है- "लिखो वह इतिहास जो/हवा में रच जाए मन में खिले/ऐसा नहीं कि अगर बत्ती/जले, धुआं करे बुझ जाए/ और मिट जाए|"[17] वह अपील करता है कि "लिखो वह इतिहास जो हो/नीम वृक्ष की जड़ और फल/औषधी हो दर्द दुःख का/नाश करे पवित्र करे प्रसन्न करे/तन मन को|"[18] इस प्रकार कवियत्री एक ऐसे इतिहास लेखन की बात करती है जो पन्नों से परे लोगों के भावनाओं से ओत प्रोत हो, उसमें लोगों के दुखों को हरने की क्षमता हो। वह आह्वाहन करती हैं कि- "लिखो इतिहास धरती की चिकनी मिट्टी पर/समुद्र के जल पर, बादलों पर/दर करो जुल्म और दुःख/लिखो स्वर्णिम अक्षरों से/जैसा लिखो बिरसा ने|"[19]

ब्रिटिश हुकूमत के दौर से ही पूँजीवादी एवं बाजारवादी दृष्टिकोंण से ग्रसित समाज के ठेकदार या आदिवासियों की भाषा में 'दीकू' विकाश के नाम आदिवासी क्षेत्रों में मौजूद खनिज संपदा पर टकटकी लगाए रहते रहे हैं और सिलशिला आजादी के बाद भी खत्म नहीं हुआ। अपनी कविता "पचास वर्ष" में रोज केरकेट्टा आजादी के बाद की आदिवासी स्थिति पर प्रकाश डालते हुए प्रश्न करती हैं कि क्या पचास वर्ष बाद भी सामाजिक बंधन टूट पाया है? जब पृथ्वी आसामान में जा रही है और सीमा पर तोप गरज रही है तब ऐसे में वन कैसे गुलजार हो सकता है? वह कहती है- "एक बंधन टूटा/दस बंधन बंध गये।/लोहा, कोयला, सोना-हीरा/दूसरे का हुआ, हार गए हम|"[20] अब खदानों पर दूसरों का कब्जा हो गया है जिससे उनके खाने की थाली दूसरों के हांथों में चली गयी है-

"हमारे खान दूसरों के
हमारी थाली दूसरी को
थाली पर दूसरे का हाथ
चारपाई पर बाबू बैठा|"[21]

प्राचीन काल से ही भद्र समाज में तमाम तरह की विसंगतियां पसरी हुई हैं जिनमें से एक है— मानव-मानव में भेद। यह कुत्सित भावना अब और तीव्र हुई है। एक मानव अपने को ऊँचा मानता है और दूसरे को नींचा। गोरे-काले भी भेद है। इस विभत्य दृष्टिकोंण पर प्रहार करते हुए कवियत्री अपनी कविता "मानव" में लिखती हैं- "मानव-मानव एक से/ आंखे, चेहरा, हाथ-पैर/यकृत, खून आँत भी/फिर भी अलग-अलग|"[22] वह कहती हैं कि मानव जन्म एक बार मिलता है इस लिए मानव को मानव जैसा ही व्यवहार करना चाहिए राक्षस जैसा नहीं।

विस्थापन आदिवासियों की एक बड़ी समस्या रही है। कभी कारखाने स्थापित करने के लिए तो कभी बांध बनाने के लिए आदिवासियों को उनके मूल निवास क्षेत्र से जबरन विस्थापित किया जाता है। रोज केरकेट्टा अपनी कविता "मछली केलाघाघ की" में विस्थापन के बाद बधराटोली की आदिवासी स्त्रियों के प्रति चिंता व्यक्त करते हुए कहती हैं कि जो स्त्रियां आज बाजारों में सिर झुकाए मछली बेच रहीं हैं वे कभी खाते-पीते घर की किसी की बहन-बच्ची हैं जो कभी "हँसती थीं, खेतों के बीच में/बैल-बकरी चराती थी|"[23] पर आज चेहरा नीचे किए मछली खरीदने की बिना जबरदस्ती किए यह कहते हुए मछली बेंच रही हैं कि ये मछलियां पाइन की नहीं हैं बल्कि ये ऊपर के बाँध की हैं। आज उनकी यह हालात इस लिए हुई है क्योंकि उन्होनें

"जमीन बचाने का संघर्ष किया था/जेल भी जाकर देखा था|"[24] परन्तु वे न तो जमीन बचा सकीं और न ही चेहरों की मुस्कान। वे कहती हैं कि-

"निगल गया बाँध खेत
निगल गया हँसी बच्चों युवतियों की।
डूब गया अमुस का पूजा-पाठ
बच गया नाम बुधराटोली भर।
युवक मोटिया ढोते हैं।
स्त्रियाँ हुईं मछुआरिन
जाति बदल गई
जीने की राह बदल गई|"[25]

उक्त पंक्तियाँ कवियत्री के विस्थापन के विरुद्ध प्रतिरोध को व्यक्त करती हैं। बहुत ही सरल और सहज तरीके से बिना आक्रामक तरीका अपनाए वह विस्थापन के दुष्परिणामों को उजागर करते हुए विस्थापन से अपनी असहमति जाहिर करती हैं। कभी विस्थापन के कारण और कभी आधुनिकीकरण के प्रभाव से भद्र समाज जैसा जीवन जीने की लालच में आदिवासी युवा शहरों की तरफ पलायन कर रहा है। वह पेट पालने के लिए काम की खोज में बिन बताए भाग जा रहा है। उधर वह हीन काम कर रहा है, पसीना बहा रहा है, बीमार पड़ रहा है, दुख झेल रहा है, अकेले रह रहा है। वह अपनी संस्कृति और ग्रामीण प्रवेश से वंचित हो जा रहा है। वहां पर उसे बचपन और गांव के जीवन की यादें सताती हैं। जब भावनाओं पर नियंत्रण नहीं रहता तो वह घर वालों को पत्र लिखता है। इसका चित्रण कवियत्री ने अपनी कविता "पत्थलगड़ी" में किया है। निराश युवक घर वापस आने की उम्मीद हार चुका है और अपने घर वालों से अनुरोध करता है कि-

"शर्म भय से भर लिखता हूं मां
रो-रो कर याद करता हूं अब्बा
मर खप जाउंगा इधर ही
नहीं फिर भी देख पाउंगा
भाई तुमसे अपील करता
बहन से भी निवेदन करता
कभी किसी दिन माघ महीने में
कर देना पत्थलगड़ी
याद कर देना भाई को|"[26]

इस प्रकार युवक की दयनीय दशा और मार्मिक पत्र के सहारे कवियत्री शहर की ओर पलायन का विरोध करती हैं। आदिवासी समुदाय में दीकुओं, सरकारी नुमाइंदों और अंधविश्वास से भय व्याप्त है। कवियत्री अपनी कविता "डर" में भय का प्रतिरोध करती हैं। वह कहती हैं कि शैशवावस्था में शिशु के अन्दर और बाहर अन्धकार ही अंधकार छाया रहता है जिससे वह भयभीत रहता है। अन्दर का भय उसे तरह-तरह के दृश्य दिखाता है। जैसे ही मां जरा सा भी हटती है वह झिंझोक कर मां को टटोलता है। यदि अन्दर का भय नवजवानी तक व्याप्त रहता है तो वह "जिन्दगी के जंगल में/सारी जिंदगी डराएगा'' क्योंकि ''अन्दर का भय शून्य से उतरता/सुख, जीवन्तता को निगलता/निगल जाता सूर्य प्रकाश को/भय पृथ्वी के प्रकाश को चूस डालता|"[27] भय से मुक्ति का मार्ग बताते हुए कवियत्री विवेक रूपी सूर्य को प्रकाशित करने के लिए कहती हैं जिससे कि "मन का भय किनारा काटे तो/जीवन तुम्हारा विजयी होगा|"[28] वह भय का प्रतिरोध करते हुए आदिवासी समुदाय को नसीहत देती हैं कि भय को मत बो और इसे मत बांटो तथा वह जहां भी अंकुरित हो उसे जड़ से उखाड़ दो, उसे जला दो एवं उसका पास न फटने दो।

संग्रह की अंतिम कविता ''अधीन करो'' में रोज केरकेट्टा आदिवासी जीवन में व्याप्त उन विकट समस्या रूपी शक्तियों को अधीन करने की बात करती हैं जो आदिवासी जीवन में भूचाल ला देती हैं। कभी बाढ़ तो कभी विविध बिमारियां आदिवासी जीवन को संकटमय बना देती हैं। विकास की डीगें तो हांकी ताजी हैं पर सरकारी तंत्रों के द्वारा बाढ़ और बिमारियों से निजात पाने के लिए कोई ठोस उपाय नही तैयार किए गए। आदिवासी क्षेत्रों में अस्पतालें खस्ता हालत में हैं। इन ताकतों की तुलना कियत्री बाढ़, बिमारी, सर्प, करैत, जोंक से करती हुई इनसे निपटने के तरीके तैयार करने की ओर ध्यान आकर्षित करती हैं।

इस प्रकार रोज केरकेट्टा अपने कविता संग्रह "अबसिब मुरडअ" में आदिवासी जीवन की वर्तमान संकटमय परिस्थितियों का प्रतिरोध किया है। उनका प्रतिरोध निर्मला पुतुल की तरह बर्हिमुखी नहीं है और न ही केवल स्त्री केन्द्रित है। वह आदिवासी जीवन के संपूर्ण पहलुओं पर अपनी आवाज को मुखर करती हैं। सहज और सामान्य भाषा में अपने प्रतिरोध को कविता के माध्यम से दर्ज कर आदिवासी जीवन की समस्याओं का सामाधान खोजने का प्रयाश करती हैं।

****

संदर्भ

1. बद्री नारायण, प्रतिरोध की संस्कृति, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012 पृ0 83
2. डा0 प्रभाकरन हेब्बार इल्लत, पर्यावरण एवं समकालीन हिन्दी साहित्य, वाणी प्रकाशन, 2019 पृ0 102
3. रमणिका गुप्ता, सं0, कलम को तीर होने दो झारखंड के आदिवासी हिन्दी कवि, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2015, पृ0 6-7
4. रमेश चंद मीणा, ''भूमिका'', उपन्यासों में आदिवासी भारत, अलख प्रकाशन, जयपुर, 2014, पृ0 04
5. रोज केरकेट्टा "निवेदन", अबसिब मुरडअ, प्यारा केरकेट्टा फाउंडेशन, रांची, 2010 पृष्ठ 5
6. रोज केरकेट्टा, अबसिब मुरडअ, प्यारा केरकेट्टा फाउंडेशन, रांची, 2010 पृष्ठ 11
7. वही पृष्ठ 11-12
8. वही पृष्ठ 12
9. वही पृष्ठ 21
10. वही पृष्ठ 23
11. वही पृष्ठ 23
12. वही पृष्ठ 79
13. वही पृष्ठ 79
14. वही पृष्ठ 71-73
15. वही पृष्ठ 81
16. वही पृष्ठ 83
17. वही पृष्ठ 83
18. वही पृष्ठ 85
19. वही पृष्ठ 85
20. वही पृष्ठ 106
21. वही पृष्ठ 106-107
22. वही पृष्ठ 113
23. वही पृष्ठ 117
24. वही पृष्ठ 117
25. वही पृष्ठ 119
26. वही पृष्ठ 56
27. वही पृष्ठ 47-48
28. वही पृष्ठ 47

भारतीय बौद्ध दर्शन का कालजयी विश्वकाव्य : धम्मपद

प्रो.डॉ.शशिकांत 'सावन' (डी.लिट्.)
स्नातकोत्तर हिंदी विभाग, प्रताप महाविद्यालय, अमलनेर
शोध निदेशक, क.ब.चौ.उ.म.विश्वविद्यालय, जलगाँव

आशिया खंड का अविनाशी विश्वग्रंथ : बुद्धवचनावली 'धम्मपद':- आज इक्कीसवी शताब्दि में यंत्रवत-सा जीवन जीते, जब हम ढ़ाई-तीन हजार पूर्व की आशियाई संस्कृतियों का विचार करते हैं तब सब से गरिमामयी समताधिष्ठित एवं विज्ञानवादि बौद्ध सभ्यता उभरकर आती है | बौद्ध सभ्यता एवं लोकसंस्कृति भारत ही नहीं अपितु समस्त आशियाखंड में भारतीय बौद्ध दर्शन की दैदिप्यमान कीर्तिपताका रही है | यह बौद्ध कीर्तिपताका ही भारतीय संस्कृति की शिखर ध्वजा के रूप में विश्वविख्यात हुई | आर्यपूर्व भारतीय श्रमण लोकसंस्कृति मोहंजोदडो एवं हडप्पा की सिंधुघाटिय बुनियादि भारतीय सभ्यता से विकसित है | बौद्धदर्शन से प्रभावित आशियाई विराट लोकजीवन तथा सभ्यता स्वर्णिम इतिहास के साक्ष्य हैं | महात्मा बुद्ध के लोकोपयोगी समताधिष्ठित वैश्विक तथा मांगलिक संदेशों ने केवल भारत को ही प्रभावित नहीं किया अपितु तत्कालिन समग्र आशिया खंड को झकझोर दिया | मानव तथा मानवता केंद्री जीवनोपयोगी विचारों को प्रत्यक्ष आचरणों द्वारा विराट लोक तक पहुँचाने में महात्मा बुद्ध, उनके वंशज, उत्तराधिकारी तथा भिक्खु गण सफल रहें |

उक्ति और कृति की एकरूपता, वचनों की स्पष्ठता, जीवन की सत्यता, लोककल्याण के प्रति सच्ची समर्पणशिलता, वैराग्यता और लोकोपयोगी विज्ञाननिष्ठता के संदेश बीज सबसे अधिक बौद्ध धर्म ने बिजांकुरित किए, जिसके महाबोधीवृक्ष समस्त आशिया खंड में विद्यमान हुए | बुद्ध संदेशों के अनेक सारगर्भित ग्रंथों में से एक है धम्मपद, जिसने मात्र भारतभूमि में ही नहीं बल्कि विश्व के अनेक देशों को अपनी सत्यवादि समताधिष्ठित एवं मांगलिक किरणों से आलोक्ति किया | धम्मपद की विश्वव्यापी लोकोपयोगिता तथा अंतर्गत गरिमा के संदर्भ में प्रसिद्ध अभ्यासक कहते हैं, "एक पुस्तक को केवल एक पुस्तक के जीवनभर साथी बनाने की यदि कभी आपकी इच्छा हुई है तो विश्व के पुस्तकालय में आपको धम्मपद से बढ़कर दूसरी पुस्तक मिलनी कठीण है | जिसप्रकार महाभारत में भगवतगीता एक छोटी किंतु अमूल्य कृति है, उसीप्रकार त्रिपिटक में धम्मपद एक छोटा किंतु मूल्यवान रत्न है | काल की दृष्टि से भगवतगीता की अपेक्षा धम्मपद प्राचीनतर है | प्राचीन काल में चीनी तिब्बती आदि भाषाओं में इस के अनुवाद हुए हैं | वर्तमान काल में संसार की सभी सभ्य भाषाओं में- अंग्रेजी, जर्मन, फ्रेंच.....आदि में कई-कई अनुवाद है |"(1)

विश्वप्रसिद्ध पाली ग्रंथ धम्मपद महात्मा गौतम बुद्ध के लोक उपदेशों का निचोड है | बुद्ध महापरिनिर्वाण के तीन माह पश्चात भिक्खु संघ के उनके शिष्य अरिहंत/अरहंत द्वारा बुद्ध वचनों को तत्कालिन पाली में काव्यबद्ध किया है | इस लोक कार्य में तत्कालिन बौद्ध भिक्ष बुद्धघोष ने बुद्ध उपदेशों के करिबन तीन सौ प्रसंगों को कथाओं के रूप में शब्दबद्ध कराके धम्मपद के गद्य-पद्यमय मौलिक काव्य के रूप में गढ़ा है | फलत: बौद्ध भिक्ष साहित्यकार अरहंत एवं बुद्धघोष विश्वकाव्य धम्मपद के मुख्य निर्माता ठहरें हैं | धम्मपद विश्व का ऐसा महान चंपुकाव्य सिद्ध हुआ है, जो महात्मा बुद्ध की लोकशिक्षा को तत्कालिन संदर्भ काव्य एवं कथाओं को प्रमाणों द्वारा सटिक बनाता है | लोकसाहित्य तथा बौद्धदर्शन के प्रसिद्ध अध्येता अलबर्ट जे.एडमंड इस काव्यग्रंथ की लोकगरिमा एवं विश्व उपयोगिता के संदर्भ में कहते हैं, "यदि एशिया-खंड में कभी किसी अविनाशी ग्रंथ की रचना हुई है तो धम्मपद ही है | इन पदों ने अनेक विचारकों के हृदय में चिंतन की आग जलाई है | इन्हीं से अनुप्रणित होकर अनेक चीनी यात्री मंगोलिया के भयानक कांतार और हिमालय की अलंघ्य चोटियों को लाँघकर भगवान के चरणों से पूत भारत भूमि के दर्शनार्थ आए हैं | इन्हीं को महाराज अशोक ने- जिन्होंने प्राणदंड का निषेध किया, गुलामी की प्रथा को कम किया, मनुष्य और जानवरों तक के लिए अस्पताल खोले, शिलालेखों पर अंकित करवाया | आज दो हजार वर्ष से रोम और ईसाइयत की संस्कृति का प्रचार होते रहने पर भी युरोप और अमरिका के सभी विद्यामंदिरों में, कोपेनहेगन से केंब्रिज तक और शिकागों से सेटपिटर्स बर्ग (लेनीनग्राड) तक यह युरोपियन और अमरिकन लोगों द्वारा श्रद्धा की दृष्टि से देखे जाते हैं |"(2)

धम्मपद के संदेश और सत्याधिष्ठित जीवनोपयोगी मार्गदर्शन किसी भी पाठक-श्रोता को प्रभावित किए बिना नहीं रहते | बौद्ध धम्म के मूल ग्रंथ त्रिपिटिक के प्रथम 'सुत्त पिटक' के पाँचवे आयाम 'खुद्दकनिकाय' का यह दूसरा ग्रंथ है | धम्मपद के कुल 423 बुद्ध गाथाएँ है, जो 26 वग्ग/वर्गों के अंतर्गत समाविष्ठ है |
1) यमकवग्ग, 2) अप्पमादवग्ग, 3) चित्तवग्ग, 4) पुप्पवग्ग, 5) बालवग्ग, 6) पंडितवग्ग, 7) अरहंतवग्ग, 8) सहस्सवग्ग, 9) पापवग्ग, 10) दंडवग्ग, 11) जरावग्ग, 12) अत्तवग्ग, 13) लोकवग्ग, 14) बुद्धवग्ग, 15) सुखवग्ग, 16) प्रियवग्ग, 17) क्रोधवग्ग, 18) मलवग्ग, 19) धम्मवग्ग, 20) मग्गवग्ग, 21) पकिणवग्ग, 22) निरयवग्ग, 23) नागवग्ग, 24) तण्हावग्ग, 25) भिख्खुवग्ग, 26) ब्राह्मणवग्ग का अंतर्भाव है | प्रस्तुत हैं इनके कुछ प्रतिनिधि पद.....

"न हि वेरेन वेरानि सम्मन्तीधं कुदाचनं |
अवेरेन च सम्मन्ति एस धम्मो सनन्तनो ||" *(यमकवग्ग-05, धम्मपद-05)*

वैर, वैर से कभी शांत नहीं होता | अवैर से ही वैर शांत होता है | यही संसार का प्राचीन, सनातन नियम है |

"न तं मातापिता कयिरा वापिच त्रातका |
सम्मापणि हितं चितं सेच्यसो नं ततो करे ||" *(चित्तवग्ग-11, धम्मपद-043)*

न् मातापिता न् दुसरे रिश्तेदार, आदमी की उतनी भलाई कर सकते है, जितना सन्मार्गपर गया हुआ चित्त करता है |

"फंदनं चचलं चित्तं दुखख दुन्निकवारयं |
उजुं करोति मेधावी उसुकारो व तेजनं ||" *(चित्तवग्ग-01, धम्मपद-033)*चित्त चंचल है, चपल है, दूर-रक्ष्य है, दूर-निवार्य है | मेधावी पुरूष उसे उसी प्रकार से सीधा करता है, जैसे बाण बनानेवाला बाण को "पुत्ताम त्थि धनमत्थि इति बला विहत्रति |
अत्ता ही अत्तनो नत्थि कुतो पुत्ता कुतो धनं ||" *(बालवग्ग-03, धम्मपद-062)*

मेरे पुत्र हैं, मेरा धन है ऐसा सोचकर अज्ञानी व्यक्ति दुख प्राप्त

करता है | जब शरीर तक (भी) अपना नहीं है, तो धन और पुत्र कहाँ ?

"न हि पापं कतं कम्मं सज्जु सीखं मुच्चति |
डहत बाल मन्वेति भस्मच्छ न्नोव पाव को ||" *(बालवग्ग-12, धम्मपद-071)*

ताजे दुध की भांति पाप कर्म फौरन विकार नहीं लाता | वह भस्म से ढकी हुई आग की भांति जलकर मुर्ख आदमी का पीछा करता है |

"सेलो तथा एक धनने वातेनं न समीरति |
एवं निंदापसंसासु न समिजंति पंडिता ||" *(पंडितवग्ग-06, धम्मपद-08)*

अडिग और अचल पहाड़ हवा से नहीं हिलता, उसी तरह पंडित निंदा और प्रशंसा से कंपित नहीं होते |

"उय्युजंति सतीमंतो न निकेते स्मंतिते |
हंसा व पल्लल हित्वा ओक मोकं जहान्ति ते ||" *(अरहंतवग्गा-02, धम्मपद-091)* उद्यमी व्यक्ति कार्य करते हैं | वे घर में नहीं रहते | जिस तरह हंस क्षुद्र जलाशय छोड जाते हैं, उसी प्रकार उद्यमी भी घर छोडकर चलें जाते हैं |

"सहस्समपि चे वाचा अनत्थपदसंहिता |
एकं अत्यपदं सेस्योयं सुत्वा उपसम्मति ||" *(सहस्सवग्ग-01, धम्मपद-100)*

अनर्थकारी पदों से भरे सहस्त्र वणियों से एक उपयोगी पद सर्वश्रेष्ठ है, जिसे सुनकर शांति प्राप्त होती है | "पापोपि पस्सति भद्रं याव पापं न पच्चति |यदाच पच्चति पापं, अथ पापो पापानि पस्सति ||" *(पापवग्ग-04, धम्मवग्ग-119)*जब तक पाप फल नहीं देता तब तक पापी को अच्छा लगता है | जब पापफल उभरते लगता है तो उसे बुरा लगता है |वैश्विक मानव जीवन की समस्त समस्याओं का सम्यक समाधान : 'धम्मपद' :- प्राचीन काल से ही, किंबहुना मानवमन में आशा, आकांक्षा तथा सुखभोगेच्छाओं का निर्माण होने से लेकर आज तक समुचा जीवन समस्याग्रस्त बनता जा रहा है | भांति-भांति की सुखेच्छाओं ने मनुष्य मात्र को सुखी नहीं बल्कि दुखी-कष्टी बना दिया है | दुनियाभर के सुख पाकर भी सुखभोगी की लालसाएँ शांत होने की बजाय अधिकाधिक प्रक्षुभित हो रही है | इन लालसापूर्ति की होड में जीवन अशांत वैफल्यग्रस्त, भ्रष्ठ एवं ईर्षामयी बनते जा रहा है | बुद्ध वचनों की शिक्षा, जो धम्मपदों मे निहित है, हजारो वर्षों से लेकर आज तक जीवन की इन विडंबनाओं का निराकरण कर रही है | वैश्विक मानव के समस्त समस्याओं का यथोचित सम्यक निरूपण जितना धम्मपद सत्य की ठोस धरातल पर करता है, उतना अन्य कोई नहीं कर सका | फलत: विश्वशांति, संतुष्टि, सदाचार, सच्चे सुख की प्राप्ति एवं मानवकल्याण हेतु धम्मपद का अंधकारम्य मानवी जीवन का अक्षय आलोक स्तंभ है | पाली धम्मपद के प्रसिद्ध हिंदी अनुवादक भिक्खु रतनज्योति, स्थविर इस संदर्भ में दावे के साथ कहते है, "विश्व में मानव जाति के सम्यक रूप में जीवन यापन करने तथा अंतिम सुख निब्बान की मंजिल पर पहुँचाने के संदर्भ में समयानुसार बहुत से मार्गदर्शक आए | किंतु कोई भी मार्गदर्शक ऐसा सम्यक मार्ग नहीं दे सका जो प्राणी मात्र के हृदय की आवाज हो | सार्वजनिक हो एवं उसकी धार्मिक मान्यताएँ अन्य प्राणियों के लिए दुख का कारण न् हो | वास्तव में धम्मपद मानव जीवन की समस्त समस्याओं का सम्यक रूप से समाधान करता है, यदि इन शिक्षाओं को व्यक्ति गंभीरतापूर्वक अपने आचरण में लाए | बर्मा, थाईलैंड, श्रीलंका आदि देशों में यह परंपरा है कि आवश्यक ज्ञान के लिए अन्य ज्ञान के साथ-साथ धम्मपद का कंठस्थ होना अत्यंत आवश्यक है | इसी से पता चलता है कि धम्मपद नामक ग्रंथ आकार में छोटा होते हुए भी कितना महत्वपूर्ण है |"[3]प्राचीन और आधुनिक विश्व साहित्य में सर्वाधिक लोकप्रिय, विवेकनिष्ठ जीवनोपयोगी एवं अनुदित यदि कोई कृति हुई है, तो वह धम्मपद ही है | देश-विदेश के विविध अभ्यासकों, भाषाविदों, साहित्यकारों तथा दार्शनिकों ने धम्मपद के सैंकडों अनुवाद अपनी-अपनी भाषाओं में कराके, बुद्ध वचनावली को अपनाकर जीवन को सही अर्थों में सुखी कराने का प्रयास किया है | प्रसिद्ध दार्शनिक तथा अंतर्राष्ट्रिय चित्रकार सर शांतिस्वरूप बौद्ध धम्मपद की गरिमा के संदर्भ में कहते हैं, "धम्मपद बौद्ध त्रिपिटक साहित्य का बहुत प्रसिद्ध और लोकप्रिय ग्रंथ है | एक अनूठा कीर्तिमान भी धम्मपद के नाम के साथ जुड़ा है कि इस पुस्तक का अनुवाद संसार की सबसे अधिक भाषाओं में हुआ है | संसार की भाषाएँ ही क्यू ? भारतीय भाषाओं में से अकेली हिंदी भाषा में ही सैंकडों विद्ववानों द्वारा उसका अनुवाद किया जा चुका है | इस ग्रंथ की शिक्षाओं की लोकप्रियता का प्रमाण इस बात से भी मिल जाता है कि गुरू रविंद्रनाथ टैगोर को उनकी जिस गितांजली पर नोबेल पुरस्कार प्राप्त हुआ था, वह रचना भी धम्मपद को प्रभाव से अछुती नहीं रह सकी |"[4]

प्रस्तुत है धम्मपद के जीवनोपयोगी कुछ मौलिक संदेश.....

"सब्बे तसंति दंडस्स सब्बे सं जीवितं पियं |
अज्ञानं उपमं कत्वा न हनेय्य न घातेय ||" *(दंडवग्ग-002, धम्मपद-130)* सभीं दंड से घबराते हैं, सभीं को जीवन प्रिय होता है | इसलिए सभी खुद के समान औरो को भी समझे और किसी को भी न् मारे और न् मरवाये |

"यथा दंडेन गोपालो गावो पाचेति गोचरं |
एवं जरा च मच्चू च आयुं पाचेंति पाणिनं ||" *(दंडवग्ग-007, धम्मपद-135)*

ग्वाला/चरवाहा जिसप्रकार डंडे से गायों को चरागाह में ले जाता है ठीक उसी भांति बुढ़ापा और मृत्यु प्राणियों की आयु को हाँकते ले जाते हैं |

"न नग्गचरिया न जटा पंका, नानासका थंडिल साचिका वा |
रज्जोच जल्ल उक्कुटिपधान सोधेंति मच्च अवितिण्ण कणखं ||"*(दंडवग्ग-013, धम्मपद-141)*

आदमी की शुद्धि के लिए नंगा रहना, जटा धारण करना, शरिर को कीचड लपेटना, उपवास रखना, कडी जगह पर सोना, धूल लपेटना तथा उकडू बैठना कोई मायने नहीं रखते, यदि उसका मन ही संदेही हो |

"अट्ठीन नगरं कतं मंसलोहित लेपनं |
यत्थ जरा च मच्चूच मानो ओहितो |" *(जरावग्ग-005, धम्मपद-150)*

मनुष्य का शरिर मूलत: हड्डियों का एक नगर बनाया गया है | इसे मांस तथा रक्त से लिपा गया है | इस में बुढ़ापा, मृत्यु, अभिमान ढाह छिपे हुए है |

"अचरित्वा ब्रह्मचरियं अलद्धा योब्बने धनं |
जिण्णकोंचाव झायन्ति खीणमच्छेव पल्लले ||" *(जरावग्ग-010, धम्मपद-155)*

जो जीवन में ब्रह्मचर्यपालन नहीं करते, या पालन नहीं किया और जिन्होंने यौवनावस्था में धन नहीं कमाया, उनकी अवस्था उसी काँच पक्षी की भांति होती है, जो बिना मछली वाले तालाब में ध्यान लगाकर बैठते है |

"यस्यच्चन्त दुस्सील्य मालुवा सालमिवोततं |
करोति सो यथत्तानं यथानं इच्छति दिसो |" *(अत्तवग्ग-006, धम्मपद-162)*

जिस व्यक्ति का दुराचार शाल वृक्ष पर फैली मालुआ तला की भांति फैला हुआ है, वह खुद के लिए वही सब करता है, जैसे (जो) उसके शत्रुओं की इच्छा होती है |

"यस्स पापं कतं कम्मं कु सलेन पिथीयति |सोमं लोकं पभासेति अन्भा मुत्तोवचंदिभा ||" *(लोकवग्ग-006, धम्मपद-173)*

जो अपने किए गए पापकर्म को कुशल कर्म से ढँक देता है, यह बादल से मुक्त चंद्र की भांति इस लोक को प्रकाशित करता है |

"सब्ब पापस्स अकरणं कुसलस्स उपसंपदा |सचित्त परियोदपनं एतं बुद्धान सासनं ||" *(बुद्धवग्ग-015, धम्मपद-183)*

सब पापों का न करना, शुभ कर्मों का करना, चित्त को परिशुद्ध रखना यही बुद्ध की शिक्षा है|

"नत्थि रागसमो अग्गि, नत्थि दोससमो कलि |
नत्थि खधासमा दुकखा, नत्थि संतिपरं सुखं ||" *(बालवग्ग-006, धम्मपद-202)*

राग के समान अग्नि नहीं, द्वेष के समान मल नहीं | पाँच स्कंधों के समुदाय समान दु:ख नहीं | शांति से बढ़कर सुख नहीं |

"सीलदस्सन संपन्न धम्मट्ठे सच्चावादिनं |
अत्तनो कम्मकुब्बानं तं जनो कुरूते पियं ||" *(पियवग्ग-009, धम्मपद-217)*

जो शीलवान है, जो विद्वान है, जो धर्म में स्थित है, जो सत्यवादि है, जो अपने काम को करता है, करनेवाला है ऐसे व्यक्ति को ही लोग प्यार कहते हैं |

त्रिपिटिक का विशाल जीवनज्ञानसागर धम्मपद के घड़े में समाहित :- भारतीय बौद्ध ग्रंथों में धम्मपद का स्थान मौलिक है | त्रिपिटिक के अनेकानेक विशाल ग्रंथों का निचोड मानो धम्मपद में हुआ हो | करिबन इकतीस बृहत ग्रंथों की जीवनोपयोगी फलश्रुति अधिकांशत: धम्मपद में देखी जाती है | फलत: अनेका दार्शनिको तथा साहित्यकारों में धम्मपद को धम्मसार का वह घड़ा सिद्ध किया है, जो त्रिपिटिक के विशाल ज्ञानसागर से भरा हुआ है | इसमें निहित पदावली मानवी जीवन का सही दिशा दिग्दर्शन कराती है | बुद्धि, तर्क, प्रसंग तथा लोकजीवन की विशाल धरती के सक्षम प्रमाण इस ग्रंथ की विशेषताएँ है | फलत: धम्मपद विराट के साथ-साथ आधुनिकता की जीवन शैलियों को भी अनेकानेक आधार प्रदान कराता है, जो कालोपयोगी एवं प्रासंगिक भी है | धम्मपदों की यही कालोपयोगिता एवं प्रासंगिकता उसे कालजयी बनाती है | धम्मपदों की विशेष जीवन उपलब्धियों पर भाष्य करते हुए प्रसिद्ध दार्शनिक डॉ.धर्मकीर्ति कहते हें, "दार्शनिक दृष्टि से मैं धम्मपद को पूर्ण ग्रंथ की श्रेणी में रखता हूँ | यदि धम्मपद की तुलना वेदों, उपनिषदों, महाभारत, गीता, कुराण, मजीद एवं बाईबल से की जाए, तो यह ग्रंथ प्रत्येक दृष्टि से उनसे भारी पड़ता है | इस ग्रंथ का सुक्ष्म एवं विश्लेषणात्मक दृष्टि से अध्ययन किया जाए तो इस में मनोविज्ञान, न्यायशास्त्र, नीतिशास्त्र, समाजशास्त्र, धर्मशास्त्र,, दर्शनशास्त्र के मूलभूत सिद्धांतों का अवलोकन किया जा सकता है | यथार्थ में नीतिशास्त्र का यह बेजोड ग्रंथा है | इस ग्रंथ के नीतिशास्त्र के सामने कांट एवं कृष्ण का नीतिशास्त्र बौना दिखाई देता है | मैं इस बात को निश्चित एवं निरपेक्ष रूप से कह सकता हूँ कि विश्व की विकसित संस्कृति एवं सभ्यता में इसप्रकार का महत्वपूर्ण ग्रंथ न लिखा गया है और न लिखा जाएगा 'न् भूतो न भविष्यति' वाली कहावत इसपर खरी उतरती है |"[5]

धम्मपद नामक यह मौलिक तथा कालजयी लोकोपयोगी काव्य ग्रंथ हर युग की भीषण समस्याओं का सहज सुलभ निराकरण का सत्यान्वेषि मार्ग है | मनुष्य की बर्बरता को नियंत्रित कराके उन्हें प्रज्ञा, शील, करूणा तथा सदाचार के मार्ग पर लाने में धम्मपद प्रभावकारी भूमिका निभाता है | इसीलिए धम्मपद का अध्ययन तथा तदुसार जीवनाचरण यदि होता है तो भारत ही नहीं अपितु विश्व बुद्ध के सन्मार्ग से पून दीव्यालोकित हुए बिना नहीं रहेगा | इसी मौलिक सत्य को प्रमाणित करते हुए आशिया के प्रसिद्ध विद्वान कहते है, "All these characteristics are featured in the Dhammapada, one of the thirty one books that comprise the Tripitika, the three Baskets, which contain the quintessence of the Buddha's Teaching. The Dhammapada is not a book to be read supeficially like novel and shelved aside. It should be read and re-read so that it may serve or constant companion for inspiration, solace and edification in times of needs."[6]

भारत ही नहीं अपितु विश्व के विवेक को तथा मानवतापूर्ण आचरण को सही अर्थ में जाग्रत करानेवाले धम्मपद यह मात्र काव्य रूप नहीं है बल्कि समस्त जीवन को समृद्ध कराने की सक्षम शैली है | प्रस्तुत है धम्मपदों की कुछ गरिमामयी पंक्तियाँ.....

"वचीपकोपं रक्खेय वाचाय संवुतो सिया |
वची दच्चरितं हित्वा वाचाय सुचरितं चरे ||" *(क्रोधवग्ग-012, धम्मपद-232)*

वाणी की चंचलता से बचे | वाणी का संयम रखे | वाणी का दश्चरित्र छोडकर उसका सदाचरण करे |

"सुदस्यं वज्जमत्रेसं अत्तनो पन दुद्दसं |
परेसं हि सो वज्जनि ओपुगाति यथा भुसं |
अत्तनो पर छादेति कलि व कितवा साठो ||" *(मलवग्ग-018, धम्मपद-252)*

दूसरों के दोष देखना आसान है, किंतु अपने दोष देखना बडा कठीण | आदमी दूसरों के दोषों को भूस की भांति उडाता है किंतु अपने दोषों को ऐसे ढँकता है, जैसे बेईमान जुँवारी पासे को|

"सब्बे संगरवारा दक्खा, ति यदा पत्राय पस्सति |
अथ निब्बिदंते दुक्खे एस मग्गो विसुसिद्धया ||" *(मग्गवग्ग-006, धम्मपद-278)*

सभी संस्कार दुख है | जब आदमी इस बात को प्रज्ञा से देखता है तभी उसे संसार से विराग पैदा होता है, यही विशुद्धि का मार्ग है |

"दूरे संतो पकासेंति हिमवंतोव पब्बता |
असंतेत्थ न दिस्तन्ति रत्तिखित्ता यथा सरा ||" *(पकिण्णवग्ग-015, धम्मपद-304)*

सत्पुरूष हिमालय पर्वत की तरह दूर से ही प्रकाशित होते है, असत्पुरूष रात में फेंके बाण की तरह दिखाई नहीं देते |

"अलज्जिताये लज्जंति लज्जिताए न् लज्जरे |
मिच्छादिट्ठि समादाना सत्ता गच्छंति दुग्गति ||" *(निरयवग्ग-011, धम्मपद-316)*

अलज्जा के काम में तो लज्जा करते हैं और लज्जा के काम में जो लज्जा नहीं करते ऐसी झूँठी धारणावाले प्राणी दूर्गति को प्राप्त होते है

"सुखा मत्तेय्यता लोके अथो पेत्तेय्यता सुखा |
सुखा सामणंता लोके अथो ब्रह्मणंता सुखा ||" *(नागवग्ग-013, धम्मपद-332)*

संसार में माता-पिता (दोनो की) सेवा सुखकर है | साथ ही संसार में श्रमणत्व (संन्यास) सुखकर है और सुखकर है निष्पाप (ब्रह्मणत्व) होना |

"मनुजस्स पत्रत्तचारिनो तन्हा बड्ढति मालुवा विय |
से फलवती हूराहूं फलमिच्छं व वनास्मि वानरो ||" *(तण्हावग्ग-001, धम्मपद-334)*

प्रमादी मनुष्य की तृष्णा मालुंवा लता की भांति बढ़ती जाती है | फल की इच्छा करता हुआ वह बन में वानर की तरह दिनोंदिन भटकते रहता है |

"यो निब्बनयो वनाधिमुत्तो वनमेव धावती |

जो निर्वाणार्थी तृष्णा से मुक्त हो, अच्छी तरह से मुक्त होकर भी तृष्णा की ही और दौडता है, उस व्यक्ति को ऐसा समझो जैसे कोई बंधन से मुक्त होकर फिर बंधन कि ओर भागता हो |

"चक्खुना संवरो साधु साधु सोतेन संवरो |
घाणेन संवरो साधु साधु जिहव वाय संवरो ||" *(भिक्खुवग्ग-001, धम्मपद-360)*

आँख का संयम (करना) अच्छा है | कान का संयम अच्छा है | नाक का संयम अच्छा है और जिह्वा का संयम भी अच्छा है |

"हित्वा मानुसकं योगं दिब्बं योगं उपच्चगा |
सब्ब योगविसंयुक्तं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ||" *(ब्राह्मणवग्ग-035, धम्मपद-417)*

जिसने मानवी भोगो को छोड दिया है, दिव्य भोगों को भी जिसने त्याग दिया है तथा सभीं भोगो के प्रति जो अनासक्त है, उसे मैं (बुद्ध) ब्राह्मण कहता हूँ |

निष्कर्ष :-

1. बौद्धधम्म और दर्शन की त्यागमयी कीर्ति पताका ही भारतीय संस्कृति की शिखरध्वजा
2. भारतीय बुनियादी बौद्ध लोक संस्कृति से समस्त आशियाई लोकजीवन प्रभावित
3. महात्मा बुद्ध के सत्यान्वेषि, मांगलिक एवं वैश्विक लोकसंदेशों के पाठ : धम्मपद
4. बौद्ध साहित्य सागर का अनमोल रत्न : विश्वकाव्य 'धम्मपद'
5. सुत्तपिटक के पाँचवे अध्याय खुद्दकनिकाय का दुसरा काव्यग्रंथ **:** धम्मपद
6. भारतीय तथा विश्व की सर्वाधिक भाषाओं में प्रचारित प्रसारीत एवं अनूदित : धम्मपद
7. महात्मा बुद्ध महापरिनिर्वाण के तीन माह पश्चात अरहंत तथा बुद्धघोष द्वारा धम्मपद की निर्मिति
8. आशिया खंड का सर्वाधिक लोकप्रिय एवं अविनाशी लोकग्रंथ **:** धम्मपद
9. धम्मपद की पदावली तत्कालिन शिलालेख, भिक्खुसंघ एवं लोककंठ में सुरक्षित
10. धम्मपद के कुल 423 बुद्ध गाथाएँ/संदेश, जो 26 वर्गों में विभाजित
11. त्रिपिटिक के विशाल जीवनज्ञानसागर का निचोड : 'धम्मपद' का घड़ा
12. नीतिशास्त्र का बेजोड़ वैश्विक ग्रंथ : धम्मपद, जो वेद, गीता, कुराण, बाईबल से भारी
13. वैश्विक मानवजीवन की समस्त समस्याओं का सम्यक समाधान : धम्मपद
14. सब पापो से दूर रहना, शुभ कर्म करके, चित्त शुद्ध रचना **:** यही बुद्ध लोक शिक्षा
15. मनुष्य की बर्बरता नष्ठ कराते और मनुष्य को सदाचरण पर लाते **:** धम्मपद के पाठ

****

संदर्भ :-

1. दो शब्द (भूमिका) मूलगंधकुटी विहार (सारनाथ, दि.24/05/1938) धम्मपद, डॉ.भदंत आनंद कौसल्यायन, बुद्धभूमि प्रकाशन, नागपुर (छटा संस्करण, सन **1993, B.E.2537, C.E.1993)**
2. पृष्ठसंख्या-007, धम्मपद, डॉ.भदंत आनंद कौसल्यायन, बुद्धभूमि प्रकाशन, नागपुर (छटा संस्करण, सन 1993, **B.E.2537, C.E.1993)**
3. मंगल कामना, धम्मपद (बुद्ध वचनावली), डॉ.महीपाल सिंह 'महीप', सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली (द्वितीय संस्करण, सन 2003, बुद्धाब्ध-2547)
4. प्रकाशकीय-सर शांति स्वरूप बौद्ध, धम्मपद (बुद्ध वचनावली)- डॉ.महीपाल सिंह 'महीप', सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली (द्वितीय संस्करण, सन 2003, बुद्धाब्ध-2547)
5. पुरोवाक-डॉ.धर्मकीर्ति (26 जनवरी 2004 में लिखित), धम्मपद (बुद्ध वचनावली)- डॉ.महीपाल सिंह 'महीप', सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली (द्वितीय संस्करण, सन 2003, बुद्धाब्ध-2547)
6. **Preface, (Vijirarama, Colombo, 5th, 9th May 1971) The Dhammapada-Narada Thera, The Corporate Body of Buddha Educational Foundation, Taipei, Taiwan R.O.C. (Fourth Edition 2538-1993)**
7. साक्षात्कार (दूरध्वनि द्वारा), प्रो.डॉ.तुलसा डोंगरे, पाली-प्राकृत बौद्ध विद्या विभाग, राष्ट्रसंत तुकडोजी महाराज विश्वविद्यालय, नागपुर, (दि.7 मई 2020, बुद्ध जयंति)

अटल बिहारी वाजपेयी का जीवन-दर्शन

डॉ.शंकर मुनि राय
शोधनिर्देशक हिन्दी- विभागाध्यक्ष,
शास.दिग्विजय स्वशासी स्नातकोत्तर महा.राजनादंगाँव

कैलाश कुमार
शोधार्थी,शोधकेन्द्र
शास. दिग्विजय स्वशासी स्नातकोत्तर महा. राजनादंगाँव, छत्तीसगढ़

प्रस्तावना:- ''भारत तर्पण की भूमि है, अर्पण की भूमि है, वंदन की भूमि है, अभिनंदन की भूमि है। इसका कंकर-कंकर शंकर है, इसका बिन्दू-बिन्दू गंगाजल है। हम जिएंगे तो इसके लिए मरेंगे तो इसके लिए।'' -कुछ लेख कुछ भाषण, पृष्ठ - 256

भारतरत्न, जननायक एवं राजनेता जैसे अनेक अलंकारों से सुशोभित पूर्व प्रधानमंत्री, कवि स्व० अटल बिहारी वाजपेयी हिन्दी कविता के प्रसिद्ध व चर्चित हस्ताक्षर हैं। राष्ट्रवादी विचारधारा से परिपूर्ण काव्य श्रृंखला के श्रृजन में अटल बिहारी वाजपेयी का आधुनिक हिन्दी साहित्य में विशेष महात्म्य है। खोजी संपादक तथा चिंतन प्रधान सांस्कृतिक निबंधों के प्रेणता के रूप में उनकी अलग पहचान है। एक ओर संवेदनशील तथा भावुक कवि के रूप में, मानव हृदय में उद्बुद्ध विविध भावों के सतरंगी चित्र खिंचने की अद्भूत प्रतिभा से संपन्न हैं तो दूसरी ओर देश के प्रधानमंत्री के रूप में पोखरण में परमाणु परीक्षण कर राष्ट्र को सुरक्षा के दृष्टिकोण से आत्मनिर्भर एवं स्वाभिमान से पूर्ण कर गौरवान्वित करने का कठोर निर्णय लेकर सम्पूर्ण विश्व को चकित कर देने में भी सक्षम है।

उनकी अधिकांश रचना में भारत की सांस्कृतिक अस्मिता तथा गौरव-गरिमा का नवोन्मेष है। उनका काव्य कोरी कपोल कल्पना का चमत्कार न होकर अपनी मातृभूमि को सुजलाम्, सुफलाम् और शस्यश्याामलाम् से सम्पूर्ण कर चहुंदिश विकास और वैभव की धारा बहाने का संकल्प मंत्र है। उनके लिए साहित्य शिल्प मात्र रचना विधान न होकर एक पवित्र साधना है जिसके बल पर वे राष्ट्र निर्माण का पुनीत वरदान प्राप्त करना चाहते हैं। वे अपने जीवन के कण-कण भारत माता के श्री चरणों में अर्पित करते रहे।

जन्म, बाल्यावस्था एवं पारिवारिक पृष्ठभूमि:- अटल बिहारी वाजपेयी का जन्म 25 दिसम्बर सन् 1924 ई० को ब्रह्म मुहूर्त में शिंदे की छावनी ग्वालियर में हुआ था। अटल जी का घर गिरिजाघर के पास ही था, उस दिन ईसा मसीह का भी जन्मदिन होने के कारण उषाकाल से ही गिरिजाघर से घंटियों की आवाज आ रही थी। उस समय कौन जानता था कि यह सुन्दर नवजात शिशु एक दिन भारतीय राजनीति का ध्रुव तारा बनेगा तथा देश के प्रधानमंत्री के गौरवपूर्ण पद को सुशोभित करेगा। वाजपेयी जी के पिता श्री कृष्ण बिहारी एक अध्यापक थे तथा अध्यापक पद से उन्नति करते हुए प्राचार्य तथा विद्यालय निरीक्षक के पद को सुशोभित किए। माता का नाम श्रीमती कृष्णा देवी था। पं० कृष्ण बिहारी के चार पुत्र- अवध बिहारी, सदा बिहारी, प्रेम बिहारी, अटल बिहारी तथा तीन पुत्रियाँ- विमला, कमला तथा उर्मिला से भरा-पूरा परिवार था। ग्वालियर में अटल जी के पिता श्री कृष्ण बिहारी जी अध्यापन के साथ-साथ काव्य रचना भी करते थे। उनकी रचनाओं में राष्ट्रप्रेम के स्वर भरे रहते थे। '' सोते हुए सिंह के मुख में हिरण कहीं घुस जाते'' प्रसिद्ध पंक्ति उन्हीं की है। वे ग्वालियर के प्रख्यात कवि थे तथा राजदरबार में उनका विशेष मान-सम्मान था। परिवार का विशुद्ध भारतीय वातावरण अटल जी के रग-रग में बचपन से ही रचने-बसने लगा। वे आर्यकुमार सभा के सक्रिय कार्यकर्ता थे। संघ के प्रति परिवार की निष्ठा के परिणाम स्वरूप अटल जी का झुकाव उसी ओर हुआ और वे राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के स्वयं सेवक बन गए। वंशानुक्रम और परिवारिक संस्कार एवं वातावरण ने उन्हें बाल्यावस्था से ही प्रखर राष्ट्र भक्त बना दिया। शिक्षा एवं उच्च शिक्षा:- वाजपेयी जी को बचपन से ही अध्ययन में विशेष रूचि थी। वैदिक सनातन धर्मावलम्बी कान्यकुब्ज ब्राह्मण परिवार में जन्म होने के कारण उनका प्रथम साक्षात्कार श्रीमद्भागवत गीता तथा रामायण जैसे धार्मिक ग्रंथों से हुआ। उनके पितामह पं० श्यामलाल जी संस्कृत के जाने-माने विद्वान थे। वे गाँवों में भागवत कथा बांचते थे। वाजपेयी जी बचपन में अपने पितामह की पोथियाँ पढ़ा करते थे। उनकी प्राथमिक शिक्षा से बी०ए० तक की शिक्षा ग्वालियर में हुई। तत्कालीन विक्टोरिया कॉलेज जो वर्तमान में लक्ष्मीबाई कॉलेज है, से उन्होंने उच्च श्रेणी में बी०ए० उत्तीर्ण किया। वे विक्टोरिया कॉलेज के छात्रसंघ के मंत्री और उपाध्यक्ष भी रहे। वे वाद-विवाद प्रतियोगिता में सदैव भाग लेते थे। स्नातक के बाद स्नातकोत्तर शिक्षा हेतु ग्वालियर से उत्तरप्रदेश की व्यावसायिक नगरी कानपुर के प्रसिद्ध शिक्षा केन्द्र डी०ए०वी० कॉलेज गए, जहाँ से उन्होंने राजनीति शास्त्र में प्रथम श्रेणी में एम०ए० की परीक्षा उत्तीर्ण की। अटल बिहारी वाजपेयी और उनके पिता जी दोनों ने कानून की पढ़ाई के लिए एल०एल०बी० में एक साथ डी०ए०वी० कॉलेज कानपुर में प्रवेश लिया। उस समय उनके पिता राजकीय सेवा से सेवानिवृत हो चुके थे। एल०एल०बी० की कक्षाओं में दोनों साथ ही जाते थे तथा छात्रावास में भी पिता-पुत्र दोनों एक ही कमरे में छात्र रूप में रहते थे, जिससे कई बार कक्षा में अध्यापकों के मध्य हास्य -विनोद की स्थितियाँ निर्मित हो जाती थी। अंततः एल०एल०बी० की पढ़ाई को बीच में ही विराम देकर अटल जी संघ के कार्यों में तल्लीन हो गए।

काव्य में राष्ट्रीय चेतना:- वाजपेयी जी के काव्य में मानवीय संवेदनाएँ, जीवन के उतार-चढ़ाव का प्रगाढ़ अनुभव और राष्ट्रीय चेतना का स्वर भरपूर है, जो उन्हें स्वातंत्र्योत्तर भारत में राष्ट्रीय फलक पर उभरे नेताओं से बहुत आगे ले जाकर खड़ा कर देता है। अटल जी ने सदैव राजनीतिक कालक्रम को सत्ता के दायरों से निकालकर राष्ट्र निर्माण का सर्वश्रेष्ठ उपकरण बनाने का प्रयत्न किया। राष्ट्र के संबंध में उन्होंने लिखा- ''राष्ट्रीय एकता को सुदृढ़ बनाने के लिए आवश्यक है कि हम राष्ट्र की स्पष्ट कल्पना लेकर चलें। राष्ट्र कुछ संप्रदाय अथवा कुछ जनसमूह का समुच्चय मात्र नहीं अपितु एक जीवमान इकाई है, जिसे जोड-ंतोड़कर नहीं बनाया जा सकता। इसका अपना व्यक्तित्व होता है, जो उसकी प्रकृति के आधार पर कालक्रम का परिणाम है। उसके घटकों में राष्ट्रीयता की अनुभूति, मातृभूमि के प्रति भक्ति, उसके मन के प्रति आत्मीयता और उसकी संस्कृति के प्रतीक गौरव के भाव में प्रकट होती है।''

एक कवि हृदय ही मातृभूमि और राष्ट्र की ऐसी जीवंत संकल्पना प्रस्तुत कर सकता है। भारत की जिजीविषा लंबे संघर्षों के बाद भी कितनी प्रखर है, उनकी कविता ''आज सिंधु में ज्वार उठा है'' की पंक्तियाँ देखिए

''आज सिंधु में ज्वार उठा है, नगपति फिर ललकार उठा है ,
कुरुक्षेत्र के कण-कण से फिर पाञ्चजन्य हुंकार उठा है।
शत-शत आघातों को सह कर, जीवित हिंदुस्तान हमारा,
जग के मस्तक पर रोली सा शोभित हिंदुस्तान हमारा।''
-मेरी इक्यावन कविताएँ, पृष्ठ - 58

विपरीत परिस्थितियों के बावजूद भारत की एकता-अखंडता के लिए राष्ट्रीय चेतना का स्वर मुखरित करते हुए अटल जी इन पंक्तियों में संदेश देना चाहते हैं कि राष्ट्र सेवा का मार्ग कंटकाकीर्ण है, इस पथ पर स्वार्थ भेद की

बलि चढ़ानी होगी -
''बाधाएँ आती हैं आएँ
घिरे प्रलय की घोर घटाएँ
पावों के नीचे अंगारे

सिर पर बरसे यदि ज्वालाएँ
निज हाथों में हँसते-हँसते
आग लगाकर जलना होगा
कदम मिलाकर चलना होगा।''

-मेरी इक्यावन कविताएँ, पृष्ठ - 79

अटल के काव्य में मानवीय चेतना:- मानवीयता की भावना के बिना कोई भी आदमी आदम कद नहीं माना जा सकता चाहे वह ऊँचाई में कितना भी बड़ा हो। अटल जी के हृदय में मानवता का संस्कार बाल्यकाल से ही पल्लवित हुआ था। अटल जी के जीवन और काव्य पर मुख्यतः स्वामी दयानंद सरस्वती तथा स्वामी विवेकानंद के संयम एवं आदर्शों का प्रभाव है। इस प्रभाव की परिणीति है कि उन्होंने अपने काव्य में मानवीय चेतना को वाणी दी है। ''मेरी इक्यावन कविताएँ'' में संकलित यह लघु रचना उनकी भावनाओं को इंगित कर रहे हैं -

''मेरे प्रभु!
मुझे इतनी ऊँचाई कभी मत देना
गैरों को गले न लगा सकूँ
इतनी रुखाई कभी मत देना।''

-क्या खोया क्या पाया, पृष्ठ -46

अटल जी के काव्य में सांस्कृतिक चेतना:- साहित्य संस्कृति का संवाहक है और संस्कृति साहित्य का अभिलक्षित उद्देश्य। संस्कृति विहीन साहित्य की परिकल्पना पत्र विहीन वृक्ष के समान है। संस्कृति वही चिरंतन होती है, जिसका विपुल परिमाण में लिखा साहित्य उपलब्ध होता है। इस तरह साहित्य सर्जन एक सांस्कृतिक कर्म है और राष्ट्रवाद की अक्षुणता का ठोस आधार भी है। अटल जी का जीवन तथा उनका सृजन सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का ही जयघोष है। वे उस काल के कवि हैं जब सर्वश्री शिवमंगल सिंह 'सुमन', रामधारी सिंह दिनकर, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' और माखनलाल चतुर्वेदी का ओजस्वी काव्य भारत की स्वतंत्रता कालीन हवाओं में तीव्रता से गूंज रहा था। अटल जी के सामने पराधीन भारत की स्वतंत्रता का ज्वलंत प्रश्न था। अपमानित एवं तिरस्कृत होती भारतीय संस्कृति को बचाने और दलित वंचित, शोषित दरिद्रनारायण को उनके गौरवशाली अतीत का सम्मानजनक वैभवपूर्ण जीवन दिलाने की चिंता थी। यही चिंता उनके काव्य की भाव भूमि बनी। सांस्कृतिक राष्ट्रवाद से निष्पन्न ओजस्विता ही उनके काव्य का श्रृंगार है। उनकी छोटे-छोटे टुकड़ों में ओजस्वी शब्दावली में राष्ट्रीय भाव भूमि के ऊपर लिखी गई पंक्तियाँ इस प्रकार है:-

''भू भाग नहीं, शत-शत मानव के हृदय जीतने का निश्चय।''

इसमें संस्कृति मुखरता से बोल रही है। अटल जी की इसी तरह की एक और पंक्ति देखिए:-

''मैं तो समष्टि के लिए व्यष्टि का कर सकता बलिदान अभय।''

प्रकाशित रचनाएँ - अटल बिहारी वाजपेयी की प्रकाशित रचनाएँ निम्नानुसार है:-

1. मृत्यु या हत्या, 2. अमर बलिदान, 3. कैदी कविराय की कुण्डलियाँ, 4. न्यू डाइमेंशन ऑफ फॉरेन पॉलिसीज, 5. लोक सभा में अटल जी, 6. अमर आग है, 7. मेरी इक्यावन कविताएँ, 8. कुछ लेख, कुछ भाषण, 9. राजनीति की रपटीली राहें, 10. बिन्दु-बिन्दु विचार, 11. सेक्युलरवाद, 12. मेरी संसदीय यात्रा, 13. सुवासित पुष्प, 14. संकल्प काल, 15. विचार बिन्दु, 16. शक्ति से शांति, 17. न दैन्यं न पलायनम्, 18. अटल जी की अमेरिका यात्रा, 19. नई चुनौतीः नया अवसर। वाजपेयी जी के लेख और कविताएँ राष्ट्रधर्म, पाञ्चजन्य, नई कमल ज्योति, धर्म युग, कादम्बिनी तथा नवनीत आदि पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए हैं।

भारत के प्रधानमंत्री के रूप में:- 6 अप्रैल 1980 का दिन अटल जी के लिए विशेष महत्वपूर्ण था। इस दिन बम्बई (मुंबई) में भारतीय जनता पार्टी का जन्म हुआ और वाजपेयी जी उसके राष्ट्रीय अध्यक्ष बनाए गए। वे इस पद पर 1986 तक आसीन रहे। सन 1962 से 1967 तक, फिर 1986 में वाजपेयी जी राज्यसभा के सदस्य भी रहे।

(1) प्रथम कार्यकाल:- वाजपेयी जी 11वीं लोकसभा में लखनऊ से सांसद के रूप में विजयी हुए। भारतीय लोकतंत्र के प्रधानमंत्री के रूप में राष्ट्रपति महोदय ने उन्हें 16 मई 1996 को प्रधानमंत्री पद की शपथ दिलाई किंतु उनकी सरकार मात्र 13 दिन ही चली। सदन में बहुमत साबित न कर पाने के कारण विपरीत परिस्थितियों में उन्होंने 28 मई 1996 को स्वयं ही त्यागपत्र दे दिया और वे सन 1998 तक लोकसभा में विपक्ष के नेता बने रहे।

(2) द्वितीय कार्यकाल:- सन 1998 के चुनाव में भाजपा लोकसभा में सबसे बड़ी पार्टी के रूप में उभरी। इस चुनाव में देश के अन्य कई पार्टियों के साथ मिलकर चुनाव लड़े तथा बहुमत प्राप्त होने पर राष्ट्रपति महोदय ने वाजपेयी जी को सरकार बनाने के लिए आमंत्रित किया। 19 मार्च 1998 को प्रातः 9:30 बजे उन्हें प्रधानमंत्री पद की शपथ ली। इस बार भी 13 माह तक सरकार चलाने के बाद सहयोगी पार्टियों द्वारा समर्थन वापस लेने के कारण सरकार गिर गई।

(3) तृतीय कार्यकाल:- 1999 में राजग के साझा घोषणापत्र पर चुनाव लड़ा गया, जिसमें वाजपेयी जी के नेतृत्व को प्रमुख मुद्दा बनाया गया। चुनाव में राजग को बहुमत हासिल हुआ और 13 अक्टूबर 1999 को वाजपेयी जी ने तीसरी बार प्रधानमंत्री का पद संभाला तथा कार्यकाल पूरा करते हुए 2004 तक इस पद को सुशोभित किए।अटल बिहारी वाजपेयी का प्रधानमंत्री के रूप में तृतीय कार्यकाल
(छत्तीसगढ़ राज्य निर्माण के विशेष संदर्भ में):-

भारत के दो क्षेत्र ऐसे हैं जिनका नाम विशेष कारणों से बदला गया। एक तो 'मगध' जो बौद्ध विहारों की अधिकता के कारण बिहार बन गया और दूसरा 'दक्षिण कौशल' जो छत्तीसगढ़ों को अपने में समाहित करने के कारण छत्तीसगढ़ बन गया। छत्तीसगढ़ वैदिक और पौराणिक काल से ही विभिन्न संस्कृतियों के विकास का केंद्र रहा है। यहाँ की प्राचीन मंदिर तथा उनके भग्नावशेष इंगित करते हैं की यहाँ पर वैष्णव, शैव-शाक्त, बौद्ध-जैन के साथ ही अनेक आर्य तथा अनार्य संस्कृतियों का विभिन्न कालों में प्रभाव रहा है।सर्वप्रथम छत्तीसगढ़ के रूप में पृथक राज्य के स्वप्नदृष्टा पंडित सुंदरलाल शर्मा थे। सन् 1965 में आचार्य नरेंद्र दुबे ने छत्तीसगढ़ समाज की स्थापना की। इसके दो साल बाद 1967 में डॉ० खूबचंद बघेल ने छत्तीसगढ़ 'भ्रातृत्व संघ' बनाकर राज्य निर्माण की मांग को पुनर्जीवित किया। 1979 में छत्तीसगढ़ मुक्तिमोर्चा का गठन कर राज्य गठन की माँग को आंदोलन का रूप दिया गया किंतु प्रत्येक बार केवल आश्वासन ही मिल रहे थे। 2 जनवरी 1995 की सर्वदलीय मंच की रैली में सात सांसद, 23 विधायक और दो मंत्री शामिल हुए। 1998-99 के लोकसभा चुनाव के प्रचार-प्रसार के दौरान वाजपेयी जी रायपुर के सप्रे शाला मैदान के आम सभा में उद्घोष किया कि ''आप मुझे 11 सांसद दीजिए मैं आपको छत्तीसगढ़ राज्य दंगा।'' चुनाव परिणाम आने पर उन्हें राज्य में लोकसभा से 7 सीटें मिली। इस पर वाजपेयी जी ने कहा - ''रघुकुल रीत सदा चली आई, प्राण जाई पर वचन न जाई।'' अपने वचन के अनुरूप छत्तीसगढ़ राज्य निर्माण की घोषणा की। 31 जुलाई सन् 2000 को लोकसभा में और 9 अगस्त सन् 2000 को राज्यसभा में राज्य निर्माण का प्रस्ताव पारित हो गया तथा 28 अगस्त को राष्ट्रपति महोदय के० आर० नारायणन० के हस्ताक्षर हुए। 4 सितंबर सन् 2000 को भारत सरकार के राजपत्र में प्रकाशन के बाद 1 नवंबर सन् 2000 को छत्तीसगढ़ देश के 26 वें राज्य के रूप में अस्तित्व में आया और पुरुखों का सपना साकार हुआ। वाजपेयी जी ने न सिर्फ राज्य निर्माण किया बल्कि राज्य के विकास की गतिविधियों में भी राज्य सरकार का साथ दिया। जनवरी 2002 में अटल जी के हाथों बिलासपुर जिले के सीपत में 1980 मेगावाट क्षमता के विशाल सुपर थर्मल पॉवर बिजली घर की बुनियाद रखी गई। अटल जी ने सन् 2004 में छत्तीसगढ़ में तीन विश्वविद्यालयों की नींव रखी:-

1. कुशाभाऊ ठाकरे पत्रकारिता एवं जनसंचार विश्वविद्यालय रायपुर,
2. तकनीकी विश्वविद्यालय दुर्ग,
3. पंडित सुंदरलाल शर्मा मुक्त विश्वविद्यालय बिलासपुर।

सन् 1986-87 में जब अटल जी बस्तर दौरे पर आए थे तो वहाँ के वनवासियों और वन संपदा को देखकर बहुत प्रभावित हुए थे। उन्होंने तभी से मनसा बना ली थी की छत्तीसगढ़ को अलग राज्य का दर्जा देना है। वे इस बात को महसूस करते थे की छत्तीसगढ़ में प्रचुर वन संपदा, खनिज संसाधन पर्याप्त उपज तथा जल स्त्रोत होने के बाद भी यहाँ के लोग अत्यंत पिछड़े हुए हैं। छत्तीसगढ़ राज्य का निर्माण प्रदेशवासियों के लिए एक बड़ी सौगात थी। यह प्रदेश के जनता के संघर्ष का सम्मान था। वाजपेयी जी छत्तीसगढ़िया के स्वाभिमान को बेहतर तरीके से समझते थे। उनके इस महान कार्य के लिए छत्तीसगढ़ की संपूर्ण जनता उनका हमेशा कृतज्ञ एवं आभारी रहेगा तथा उनके मानस पटल में अटल जी चिरकाल तक ससम्मान स्मरणीय रहेंगे।

वाजपेयी जी का राजनीति से सन्यास तथा मृत्यु:- सन् 2005 में वाजपेयी जी ने सक्रिय राजनीति से संन्यास लेने की घोषणा कर दी। सन् 2007 में उनकी अंतिम सभा 25 अप्रैल को कपूरथला चौराहे पर भाजपा उम्मीदवारों के समर्थन में हुई थी लेकिन उसके बाद उनका स्वास्थ्य खराब होने पर कई दिनों तक वेंटिलेटर पर रखा गया था। ठीक होने पर उन्हें अस्पताल से छुट्टी तो दे दी गई किंतु उसके बाद के वर्षों में उन्हें स्वास्थ्य संबंधी गंभीर परेशानियाँ लगातार बनी रही। अंततः वे 16 अगस्त सन् 2018 को समस्त देशवासियों को अटल शून्य में छोड़कर चिर निद्रा में विलीन हो गए।

सादा जीवन उच्च विचार:- सादा जीवन व्यतीत करने वाले अटल जी सादगी एवं सरलता के जीवंत प्रतिमा थे। बचपन से ही पढ़ने-लिखने के शौकीन थे। उन्हें खाली बैठना बिल्कुल पसंद नहीं था। जब भी समय मिलता वे अपनी मनपसंद पुस्तक हाथ में उठा लेते। भोजन बनाने में उन्हें काफी रूचि थी, अपने हाथों से परोसकर खिलाने में उनको अत्यधिक प्रसन्नता होती थी। वे खिचड़ी के शौकीन थे। हिंदी कवियों में महाप्राण निराला भोजन बनाने और खिलाने के लिए विशेष प्रसिद्ध थे।

अटल जी देश के महान नेता थे किंतु साहित्य प्रेमियों को उनका कवि रूप ही अधिक प्रिय है। राजनीति में रहते हुए भी वे अजातशत्रु थे। उन्होंने आजीवन अविवाहित रहकर राष्ट्र सेवा करने का संकल्प लेकर अपना सर्वस्व देश हित में समर्पित करने का प्रण लिया था।

उपसंहार:- 'भारत रत्न', राजनेता एवं कवि अटल बिहारी वाजपेयी का व्यक्तित्व श्रेष्ठ मानवीय गुणों की जीवंत प्रतिमा है। वे एक आदर्श राजनेता के रूप में दलीय मतभेदों से परे होकर राष्ट्र की सर्वोच्च हित में चिंता करते हैं, तो दूसरी ओर एक कवि के रूप में वे देश के सभी वर्गों को विश्वबंधुत्व का संदेश देते हुए कदम मिलाकर चलने की प्रेरणा देते हैं। कवि और राजनेता दोनों ही रूपों में उनके रग-रग में राष्ट्रभक्ति ही समाई हुई है क्योंकि मूलतः वे एक राष्ट्रपुरुष ही है।

****

संदर्भ:-

1. न दैन्यं न पलायनम् - सं० डॉ० चन्द्रिका प्रसाद शर्मा, किताबघर प्रकाशन 4855-56/24, बारहवाँ संस्करण, 2013 , अंसारी रोड दरीयागंज, नयी दिल्ली।
2. हार नहीं मानुंगा - सं० विजय त्रिवेदी, हार्पर कालिंग पब्लिशर्स, ए-75,सेक्टर 57,नोएडा 201301, उत्तरप्रदेश, भारत।
3. नयी चुनौती नया अवसर - सं० चन्द्रिका प्रसाद शर्मा, किताबघर प्रकाशन, नयी दिल्ली।
4. विचार बिन्दु सं० चन्द्रिका प्रसाद शर्मा, किताबघर प्रकाशन, अंसारी रोड दरीयागंज, नयी दिल्ली।
5. कुछ लेख कुछ भाषण - सं० चन्द्रिका प्रसाद शर्मा, किताबघर प्रकाशन, अंसारी रोड दरीयागंज, नयी दिल्ली।
6. बिन्दु-बिन्दु विचार - सं० चन्द्रिका प्रसाद शर्मा, किताबघर प्रकाशन, अंसारी रोड दरीयागंज, नयी दिल्ली।
7. शक्ति से शांति - सं० चन्द्रिका प्रसाद शर्मा, किताबघर प्रकाशन, अंसारी रोड दरीयागंज, नयी दिल्ली।

कांग्रेस पार्टी और भारतीय राजीनीति:एक सूक्ष्म विश्लेषण

पूरन मल मीना
एसोसिएट प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष
राजनीति विज्ञान, विभाग
राजकीय महाविद्यालय राजगढ़, अलवर (राज.)

भारत में लोकतान्त्रिक शासन प्रणाली संविधान द्वारा अंगीकृत किया गया है.विगत 15वीं लोकसभा के चुनाव में चुनाव आयोग ने केवल 7 राजनीतिक दलों को राष्ट्रीय दल या अखिल भारतीय दल के रुप में मान्यता प्रदान की थी। भारत निर्वाचन आयोग के मई 2023 के नवीनतम प्रकाशनों और बाद की अधिसूचनाओं के अनुसार, 6 राष्ट्रीय दल, 54 राज्य दल और 2,597 गैर-मान्यता प्राप्त दल हैं। चुनाव लड़ने वाली सभी पंजीकृत पार्टियों को चुनाव आयोग द्वारा प्रस्तावित उपलब्ध प्रतीकों की सूची में से एक प्रतीक चुनने की आवश्यकता है। भारत निर्वाचन आयोग के मई 2023 के नवीनतम प्रकाशनों और बाद की अधिसूचनाओं के अनुसार, 6 राष्ट्रीय दल, 54 राज्य दल और 2,597 गैर-मान्यता प्राप्त दल हैं। राजनैतिक दल लोगों का एक ऐसा संगठित गुट होता है जिसके सदस्य किसी साँझी विचारधारा में विश्वास रखते हैं या समान राजनैतिक दृष्टिकोण रखते हैं। यह दल चुनावों में उम्मीदवार उतारते हैं और उन्हें निर्वाचित करवा कर दल के कार्यक्रम लागू करवाने का प्रयास करते हैं। चुनाव लड़ने वाली सभी पंजीकृत पार्टियों को चुनाव आयोग द्वारा प्रस्तावित उपलब्ध प्रतीकों की सूची में से एक प्रतीक चुनने की आवश्यकता है। भारत में लोकतान्त्रिक शासन प्रणाली संविधान द्वारा अंगीकृत किया गया है.विगत 15वीं लोकसभा के चुनाव में चुनाव आयोग ने केवल 7 राजनीतिक दलों को राष्ट्रीय दल या अखिल भारतीय दल के रुप में मान्यता प्रदान की थी। इन राष्ट्रीय दलों के अतिरिक्त 46 राज्य स्तरीय अमान्यता प्राप्त पंजीकृत दल तथा अन्य दल भी हैं। उस दौर में राजनीतिक मानचित्र में केवल 7 राजनीतिक दलों को राष्ट्रीय दल या राजनीतिक दल के रुप में तथा 46 राजनीतिक दलों को राज्य स्तरीय दल के रुप में मान्यता प्राप्त हैं। भारतीय कांग्रेस दल देश का सबसे पुराना और सशक्त दल है। इस दल की स्थापना सेवानिवृत अंग्रेज अधिकारी एम.ओ. ह्यूम के प्रयासों के परिणामस्वरुप दिसम्बर 1885 ई. को मुम्बई में की गई थी। इसी दल ने राष्ट्रीय आन्दोलन को सक्रिय संचालन करके भारत देश को स्वतंत्रता दिलवाने में अपनी अहम भूमिका का सफल निर्वहन किया था। हमारे देष की आजादी दिलवाने से पहले राष्ट्रीय कांग्रेस में सभी विचारधारा वाले व्यक्ति सम्मिलित किए गए थे और स्वतंत्रता मिलने के बाद भी राष्ट्रीय कांग्रेस का लगभग यही वर्चस्व भारतीय जन मानस में रहने का स्वरुप बना रहा। सन् 1948 में महात्मा मोहन दास कर्मचंद गांधी और सन् 1950 में सरदार वल्लभ भाई पटेल, जिसे लौह पुरुष कहा जाता है के निधन के बाद जवाहर लाल नेहरु के नेतृत्व में कांग्रेस दल ने समाजवाद और पंथ निरपेक्षता को अपना लक्ष्य घोषित किया समाज में वैज्ञानिक अवधारणा को इस सोच से बल मिला । औद्योगिक क्षेत्र में राज्य को सक्रिय भूमिका और सामूहिक कृषि या कृषि में सहकारिता के प्रस्ताव पारित किए गये थे। इन सभी के अलावा सन् 1961 में ही पंचवर्षीय योजनाओं के रुप में आर्थिक विकास के लिए नियोजन के मार्ग को अपनाया गया था । उसी दौर में अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में यानि विदेश निति में पं. जवाहर लाल नेहरु ने साम्राज्यवाद का घोर विरोध किया और विश्व बंधुत्व के लिए अनुपम कार्य किया और पंचषील के सिद्धांत के द्वारा नेहरु ने विश्व में शांति, सौहार्द एवं भाईचारा की स्थापना के लिए विभिन्न राष्ट्रों में सहयोग की भावना का प्रचार किया और विश्व बंधुत्व के लिए महत्त्वपूर्ण कार्य किया। 27 मई, 1964 को पं. जवाहर लाल नेहरु के निधन होने के बाद लाल बहादुर शास्त्री कांग्रेस दल के नेता चुने गये और भारत के दूसरे कांग्रेसी कार्यकारी प्रधानमंत्री बने। लाल बहादुर शास्त्री

बहुत ही कम समय तक सत्ता मे रहे। जनवरी 1966 मे श्रीमति इंदिरा गांधी कांग्रेस दल की नेता बनी और भारत की तीसरी कांग्रेसी प्रधानमंत्री बनी। इन नेताओं के कार्यकाल में कांग्रेस को एक सुनिश्चित दिशा देने वाले प्रस्ताव निरन्तर पारित किये जाते रहे। यद्यपि ये सभी प्रस्ताव अत्यधिक अस्पष्ट थे औरकांग्रेस के अंदर विद्यमान भिन्न-भिन्न वर्गों द्वारा इसकी अपने-अपने ढंग से व्याख्या कर ली गयी थी। कांग्रेस के अंदर विद्यमान वामपंथी और दक्षिणपंथी विचारधारा वाले व्यक्तियों में विचार भेद तो था ही इसके साथ ही सदस्यों में अंदरखाने में संघर्ष और गुटबंदी भी चल रही थी। इन सभी मतभेदों के कायम रहने के कारण सन् 1969 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस दो गुटों में विभाजित हो गई थी. 1. कांग्रेस और 2. संगठन कांग्रेस। सन् 1971 में मध्यावधि चुनावों में श्रीमति इंदिरा गांधी के नेतृत्व में इंदिरा कांग्रेस ने भारी विजय चुनावों में हासिल कर ली थी। इस चुनाव में कांग्रेस का मुख्य नारा ''गरीबी हटाओं'' रखा गया था। इन चुनावों में अल्पसंख्यक, पिछड़े वर्गों और भारत के जनसाधारण द्वारा कांग्रेस को बहुत अधिक समर्थन प्रदान किया गया था। परिणामस्वरुप कांग्रेस में श्रीमति इंदिरा गांधी निर्विवाद नेता के रुप में उभरकर स्थापित हुई थी। सन् 1977 के आम चुनावों में कांग्रेस दल की पराजय हुई और केन्द्र तथा राज्यों में जनता पार्टी की विजय हुई। आपसी फूट तथा कुछ अन्य कारणों से अनेक राजनीतिक दलों का यह गठबंधन भारतीय राजनीति में अधिक समय तक नहीं टिक पाया और सन् 1979 में इसका विघटन हो गया। लेकिन इससे पूर्व सन् 1978 में कांग्रेस में गुटबंदी होने के कारण पुनः कांग्रेस का दो दलों में विभाजन हो गया - एक रेड्डी कांग्रेस और दूसरी इंदिरा कांग्रेस बन गई थी। इस प्रकार यह विभाजन व्यक्तियों पर अधारित था और राजनीति का एक अंग था। दूसरे शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि यह विभाजन किनहीं सिद्धांतों पर ओधारित नहीं था। जनवरी 1980 के मध्यावधि चुनावों में इंदिरा कांग्रेस ने ऐतिहासिक सफलता प्राप्त की और उसे वास्तविक भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के रुप में मान्यता प्राप्त हुई थी। कांग्रेस (ई) संसदीय दल ने श्रीमति इंदिरा गांधी को सर्वसम्मति से अपना नेता निर्वाचित किया। फलस्वरुप उन्हें देश का प्रधानमंत्री निर्वाचित किया गया। अतः सन् 1980 के लोकसभा चुनावों में कांग्रेस द्वारा प्रकाषित घोषणा पत्र में बीस सूत्रीय कार्यक्रम की उपलब्धियों का वर्णन करते हुए यह दावा किया गया था कि यह गरीबों, भूमिहीनों, कारीगरों, हाथकरघा, बुनकरों तथा समाज के अन्य कमजोर और दबे-कुचले हुए तबकों के लिए यह वरदान सिद्ध हुआ। इसके अतिरिक्त प्रत्येक परिवार में से एक वयस्क व्यक्ति को रोजगार उपलब्ध कराने और अल्पसंख्यकों को पर्याप्त संरक्षण देने हेतु सभी वर्गों की एक शांति सेना तैयार करने की योजना बनाने का वचन दिया गया था। 31 अक्टूबर, 1984 को श्रीमति इंदिरा गांधी के स्वयं के अंगरक्षकों द्वारा हत्या कर दी गई थी। दिसम्बर 1984 के आम चुनावों में लोकसभा में कांग्रेस ने विजय के पिछले सभी अभिलेख में रिकॉर्ड तोड़ दिये। 8वीं लोकसभा दिसम्बर 1984 के चुनाव हेतु जारी किए गये घोषणा पत्र में कांग्रेस ने आष्वासन दिया कि फसल बीमा योजना को व्यापक बनाया जायेगा, धार्मिक स्थानों का दुरुपयोग रोकने के लिए कड़ी कार्यवाही सुनिष्चित की जायेगी, भ्रष्टाचार, गरीबी और बेरोजगारी दूर करने के प्रयास जारी रहेंगे। लोकसभा चुनावों में इस दल के प्रमुख नारे ''देष की एकता और अखंडता की रक्षा, केन्द्र में शक्तिषाली सरकार और राजावी गांधी को नेतृत्व संभालने के नारे देष की जनता के सामने रखे गये थे। विधानसभा चुनावों में इस दल का प्रमुख नारा ''केन्द्र एवं राज्यों में एक ही दल की सरकार बनाने या रखने का नारा रखा गया था। इस प्रकार 8वीं लोकसभा चुनाव और इसके बाद सन् 1985 के विधानसभा चुनावों में राजीव गांधी के नेतृत्व में इंदिरा कांग्रेस ने भारी सफलता इन चुनावों में प्राप्त की थी, लेकिन सन् 1987 से ही इंदिरा कांग्रेस और शासन के सम्मुख एक के बाद एक अनेक राजनीतिक चुनौतियाँ आने लगी। इसी पृष्ठभूमि में 6 नवम्बर, 1989 को 9वीं लोकसभा के चुनाव सम्पन्न हुए। 6 नवम्बर, 1989 को जारी किये गये 9वीं लोकसभा चुनाव के घोषणा पत्र में कांग्रेस दल ने के दलालों का सफाया कर जनता को सीधे सौंपने का संकल्प दोहराया। इसके अलावा पंचायती राज और नगरपालिका विधेयक स्वायत्त शासन को बढ़ावा देने के लिए लाये गये, लेकिन विपक्षी दलों ने उन्हें सदन में पास नहीं होने दिया, तब कहा गया कि अब अगर कांग्रेस (ई) में आई तो दोनों विधेयकों को पुनः संसद में प्रस्तुत किया जायेगा, जिससे विकास की प्रक्रिया के प्रत्येक स्तर पर जनता सक्रिय रुप से भागीदार बन सके। तब विष्वनाथ प्रतापसिंह भारत के प्रधानमंत्री बने लेकिन शीघ्र मंडल आयोग की रिपोर्ट के अनुसार आरक्षण अन्य पिछड़ा वर्गों को देने के कारण वी.पी. सिंह सरकार के पतन के बाद कांग्रेस (ई) के समर्थन से समाजवादी दल नेतृत्व वाली चन्द्रषेखर प्रधानमंत्री बने, लेकिन चार महिने से भी कम समय में मतभेद पैदा हो गये। अतः राष्ट्रपति ने 9वीं लोकसभा को भंग कर 10वीं लोकसभा के चुनाव करवाने की घोषणा कर दी। जून 1991 में लोकसभा के मध्यावधि चुनाव हुए। उसमें श्री पी.वी. नरसिम्हा राव के नेतृत्व में कांग्रेस (ई) की अल्पमत सरकार बनी। इस सरकार की 30 दिसम्बर, 1993 को लोकसभा में उस समय बहुमत प्राप्त हो गया जब अजीत सिंह के साथ जनता दल (अ) के सांसद कांग्रेस में सम्मिलित हो गये। इससे दल की लोकसभा में संख्या 256 से बढत्रकर 266 हो गई। 10वीं लोकसभा चुनाव में 6 अप्रैल, 1991 को जारी किए गये कांग्रेस (ई) की 64 पृष्ठीय चुनाव घोषणा पत्र में कहा गया कि उनका दल ही एक मात्र ऐसा राजनीतिक दल हैं जो देष को स्थिर सरकार प्ररदान कर सकता हैं। इस घोषणा पत्र में यह भी कहा गया कि धार्मिक स्थलों के संबंध में सरकार पूर्ववत स्थिति चाहती हैं जिससे देष की एकता और अखंडता को बनाये रखा जा सके। इसमें साम्प्रदायिक ताकतों से लडत्रने और पृथकतावादी तत्वों को कुचलने का कायदा भी किया गया था। इसमें जम्मू एवं कष्मीर के बारे में कहा गया था कि पाकिस्तान और नियंत्रण रेखा से लगती सीमा को सील कर दिया जायेगा। पंजाब और असम में पृथकतावादी तत्वों से कडत्राई से निपटा जायेगा, जन-जन के बीच का विकेन्द्रीकरण किया जायेगा और पंचायतीराज को सुदृढ़ किया जायेगा। इसके अतिरिक्त अल्पसंख्यकों, अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों के हितों की रक्षा की जायेगी। आर्थिक क्षेत्र में बढ़ती कीमतों को रोकने और बिगड़ी हुई अर्थव्यवस्था को सुधारने का संकल्प व्यक्त किया गया। इस चुनाव घोषणा पत्र में यह भी कहा गया था कि प्रतिवर्ष एक करोड़ लोगों के लिए रोजगार के नवीन अवसर जुटाये जायेंगे। कांग्रेस (इ) कहने के लिए आज भी समाजवाद में अपना विष्वास व्यक्त करती हैं, लेकिन वास्तव में इंदिरा कांग्रेस ने समाजवाद और समाजवादी अर्थव्यवस्था को अस्वीकार कर दिया हैं। जून 1991 से तो कांग्रेस ने ''उदारवादी अर्थव्यवस्था'' को अपना स्पष्ट लक्ष्य बना लिया। इस तरह से कांग्रेस के संगठन का ढांचा कम से कम दिखावे में पूर्णरुपेण जनवादी हैं तथा इसकी इकाइयां देष के प्रत्येक क्षेत्र में विस्तृत हैं। यह विष्व का सबसे बड़ा लोकतांत्रिक दल हैं, लेकिन केन्द्रीय स्तर और प्रादेषिक स्तरों पर इस दल में आज भी गहरी गुटबंदी हैं। कांग्रेस की इसी गुटबंदी के फलस्वरुप मई 1995 में एक बार फिर कांग्रेस का तीसरी बार विभाजन हुआ। एन.डी. तिवाड़ी और अर्जुन सिंह के नेतृत्व में असंतुष्ट कांग्रेसियों का एक सम्मेलन 9 मई, 1995 को दिल्ली में आयोजित हुआ था। इस सम्मेलन में अपने आप को असली कांग्रेस बताते हुए इस नवगठित कांग्रेस ने एन.डी. तिवाड़ी को अपना अध्यक्ष घोषित कर दिया था। इस दल का विधिवत गठन सन् 1995 को किया गया। इस दल ने 11वीं लोकसभा के चुनावों में अपने दल को तिवारी कांग्रेस के नाम से घोषित किया तथा लोकसभा की अधिकांष सीटों पर अपने प्रत्याषी खड़े किए गये थे। तिवाड़ी कांग्रेस ने अपने घोषणा पत्र में यह कहा था कि वह धर्म निरपेक्षता की रक्षा, महंगाई, अषिक्षा, उद्योग के प्रति अन्याय आदि समस्याओं के समाधान के लिए कार्य करेगी तथा भारत को विष्व में सम्मान दिलवायेगी। इस प्रकार कांग्रेस का तीसरा विभाजन नीतिगत मतभेदों का परिणाम नही वरन् दल के

अंदर चल रहे सत्ता संघर्ष का ही अंश था। नरसिम्हा राव कांग्रेस (इ) ने 11वीं लोकसभा चुनाव हेतु अपने 40 पृष्ठीय घोषणा पत्र में ग्रामीण और शहरी गरीबों को सार्वजनिक वितरण प्रणाली के अंतर्गत चावल और गेहूँ दो रुपये प्रति किलो की दर से बेचने और सन् 2002 तक सबको रोजगार उपलब्ध कराने का आष्वासन दिया गया था। कांग्रेस (इ) के घोषणा पत्र में 1.यह भी कहा गया था कि कांग्रेस के पुनः सत्ता में आने पर उच्च पदों पर आसीन लोगों के भ्रष्टाचार की जाँच के लिए लोकपाल की नियुकित की जायेगी। प्रधानमंत्री और मुख्यमंत्री को भी इसकी जाँच की परिधि में लाया जायेगा। इस घोषणा पत्र में महिलाओं के लिए लोकसभा और विधानसभाओं में सीटें आरक्षित करने के साथ दलित और ईसाइयों जैसे वर्गों को भी नौकरियों में आरक्षण देने की बात कही गई थी। वेतन आयोग की सिफारिष पर सैतीस लाख केन्द्रीय कर्मचारियों की सेवानिवृति आयु बढ़ाने का भी आष्वासन दिया गया था। कांग्रेस (इ) द्वारा किए गये वायदों में बेघरों को घर, समूची जनसंख्या को पेयजल उपलब्ध कराने, सभी प्राथमिक विद्यालयों के बच्चों को दोपहर का मुफ्त भोजन और किसानों को लाभकारी मूल्य दिलाने जैसे वायदे किए गये थे। मई 1996 के आम चुनावों में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस मात्र 140 स्थान ही लोकसभा चुनाव में प्राप्त कर पाई थी। कांग्रेस की इस पराजय का प्रमुख कारण दल का विभाजन एवं आंतरिक कलह माना जाता हैं। कांग्रेस (इ) ने 140 स्थान प्राप्त कर केन्द्र की संयुक्त गठबंधन मोर्चा सरकार का बाहर से समर्थन करते रहने का निर्णय लिया था। कांग्रेस प्रथम बार विपक्षी दल के रुप में विहित सीटें भी प्राप्त नहीं कर पाई। विष्व के सबसे बड़े लोकतंत्र भारत की 12वीं लोकसभा चुनाव फरवरी और मार्च 1998 में तीन चरणों में सम्पन्न हुए गत तीन लोकसभा चुनावों की भांति इस बार भी कांग्रेस ने 141 स्थान प्राप्त किये और उसकी स्थिति यथावत रही। कांग्रेस की डूबती नैया को बचाने के लिए सोनिया गांधी को राजनीति में आना पड़ा। उन्हें सन् 1998 में कांग्रेस का राष्ट्रीय अध्यक्ष नियुक्त किया गया। फरवरी-मार्च 1998 में सम्पन्न हुए लोकसभा चुनावों के बाद नवम्बर 1998 के विधानसभा चुनावों में कांग्रेस को भारी सफलता मिली। इस सफलता का पूर्ण श्रेय सोनिया गांधी को दिया गया। कांग्रेस ने सोनिया गांधी की निरन्तर बढ़ती लोकप्रियता से कांग्रेस के कुछ वरिष्ठ नेताओं का चिन्तित होना स्वाभाविक था। 14वीं लोकसभा के चुनाव अप्रैल-मई 2004 में सम्पन्न हुई। कांग्रेस ने इस चुनाव में 145 स्थानों पर जीतकर संसद आए। इन्हीं 145 सांसदों के बल पर कांग्रेस ने मनमोहन सिंह के नेतृत्व में समान विचारधारा वाले अन्य दलों के सहयोग से केन्द्र में सरकार गठित की गई थी। सन् 2009 में सम्पन्न 15वीं लोकसभा के चुनावों में इसे 206 स्थान प्राप्त हुए थे। कांग्रेस के नेतृत्व वाले सप्रंग (संयुक्त प्रगतिषील गठबंधन) ने केन्द्र में सरकार बनाई। यह सरकार वर्तमान में अपदस्थ होकर 2014 में फिर से चुनाव 16वीं लोकसभा के सम्पन्न हुए। इसमें नरेन्द्र मोदी की सरकार बनी और फिर 2019 में सम्पन्न हुए चुनाव में कांग्रेस को पराजय का सामना करना पड़ा और मोदी सरकार प्रचण्ड दो-तिहाई बहुमत 303 सीट प्राप्त होने पर जीत हासिल कर मोदी सरकार चल रही हैं। कांग्रेस पार्टी को 52 सीटों पर सिमट कर रह जाना पड़ा और कांग्रेस का प्रभुत्व एवं वर्चस्व समाप्त हो गया हैं। इस तरह कांग्रेस के नेतृत्व वाले गठबंधन ने 92 संसदीय क्षेत्रों से विजय हासिल कर पाये हैं। इस तरह भारतीय राजनीतिक व्यवस्था में यह भी एक विषेषता हैं कि जहाँ शासन का ढांचा संघात्मक है वहीं राजनैतिक दलों का ढांचा एकात्मक हैं। कांग्रेस की सभी इकाइयाँ स्थानीय से लेकर राष्ट्रीय स्तर तक हाई-कमान के अधीन हैं। मोहल्ला या ग्राम, कांग्रेस समिति कांग्रेस संगठन की आधारभूत इकाइयों या विभिनन प्रकोष्ठ कार्यरत है। इनके ऊपर तालुका/तहसील समितियाँ, उन पर जिला समितियाँ और उनके ऊपर प्रदेष या प्रान्तीय कांग्रेस समितियाँ पदस्थ होती हैं। प्रान्तीय कांग्रेस समिति के अन्तर्गत प्रत्येक प्रान्त में जिला और मध्यम समितियाँ होती हैं। इन समितियों का क्षेत्र प्रदेष कांग्रेस का राष्ट्रीय या भारतीय संगठन होता हैं। ये संगठन एक अध्यक्ष, एक 1.कार्यकारिणी समिति, एक अखिल भारतीय कांग्रेस समिति और कांग्रेस के खुले वार्षिक अधिवेषन से मिलकर गठित हुआ है। केन्द्रीय कार्यकारिणी में 21 सदस्य होते हैं। इसमें प्रधानमंत्री के अतिरिक्त 7 निर्वाचित एवं 13 मनोनीत सदस्य होते हैं। केन्द्रीय कार्यकारिणी समिति ही कांग्रेस का सर्वोच्च अंग हैं। कांग्रेस की सदस्यता दो प्राकर की है- प्रारंभिक और सक्रिय। कम से कम 18 वर्ष की आयु वाला कोई भी व्यक्ति जो कांग्रेस के उद्देष्यों में आस्था रखता हैं, कांग्रेस का सदस्य बन सकता हैं। यदि वह किसी अन्य दल का सदस्य न हो। वह व्यक्ति जो दो वर्ष तक लगातार कांग्रेस का प्राथमिक सदस्य रह चुका है तथा जिसकी आयु कम से कम 21 वर्ष हैं, 25 रुपये का चंदा अथवा 25 प्राथमिक सदस्यों की भर्ती करके कांग्रेस की सक्रिय सदस्यता प्राप्त कर सकता हैं। इस प्राकर 3 करोड़ व्यक्ति कांग्रेस के प्राथमिक सदस्य हैं। यह विष्व का सबसे बड़ा लोकतांत्रिक दल हैं। 21 वर्ष बाद वर्ष 1991-92 में कांग्रेस के संगठनात्मक चुनाव सम्पन्न हुए थे और पी.वी. नरसिम्हा राव को सर्वसम्मति से वर्ष 1992-94 की अवधि के लिए दल का राष्ट्रीय अध्यक्ष निर्वाचित किया गया था। अभी हाल ही के वर्षों में इंदिरा कांग्रेस की संस्कृति में भारी परिवर्तन आया है। इंदिरा कांग्रेस की संस्कृति कांग्रेस के परम्परागत मूल्यों से अलग हटकर हैं। मई 1994 में संसदीय दल का अध्यक्ष पुनः श्री नरसिम्हा राव को ही बनाया गया था। सन् 1997 तक पी.वी. नरसिम्हा राव कांग्रेस के निर्विवाद अध्यक्ष बने रहे, किन्तु उनके विरुद्ध भ्रष्टाचार और धोखाधड़ी के मामले प्रकाष में आने के बाद दल में उनका विरोध तेजी से बढ़ता रहा। अन्ततः उन्हें अध्यक्ष पद से त्याग पत्र देना पड़ा था। सन् 1998 में श्रीमति सोनिया गांधी कांग्रेस के अध्यक्ष पद पर आसीन हुई। 13वीं, 14वीं तथा 15वीं लोकसभा का चुनाव कांग्रेस द्वारा उन्हीं के नेतृत्व में लड़े गये थे। 15वीं लोकसभा के चुनाव में सीटें प्राप्त करने की दृष्टि से तब 114 वर्ष पुरानी कांग्रेस पार्टी ने 206 सीटों पर विजय प्राप्त करने में सफलता प्राप्त की। आज कांग्रेस पार्टी राष्ट्रीय स्तर की मान्यता प्राप्त होते हुए भी विपक्षी दल बनने की योग्यता 109 अर्थात 54 सीटें भी प्राप्त नहीं कर सकी है और 2019 के लोकसभा के आम चुनाव में केवल 52 सांसदों को जिताकर सिमट कर रह गई है। अब कोई राष्ट्रीय स्तर का कांग्रेस के पास करिष्माई नेता नहीं रह पाया है जो राष्ट्रीय अध्यक्ष के पद को सफल निर्वहन करते हुए वापस पार्टी को सरकार में ला सके। पार्टी को तृणमूल स्तर के लोकप्रिय, संयमभाषी, ईमानदार, जनसाख, संघर्षषील युवा व्यक्ति सचिन पायलट जैसे स्वच्छ छवि के प्रखर, दमदार, बेदागदार एवं लोकप्रिय कर्मठ नेता को राष्ट्रीय अध्यक्ष की कमान सौपनी होगी, तभी वापस पार्टी राष्ट्रीय सदस्य में काबिज हो सकेगी। परिवारवाद या वंषवाद की परम्परा को तोड़कर नये सिरे से पुनर्विचार करने की जरुरत हो गई है।

****

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. मंगलानी, रूपा, "भारतीय शासन एवं राजनीति", राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, 2020
2. पाण्डेय, जयनारायण, "भारत का संविधान", सेंट्रल लॉ एजेंसी, इलाहबाद, 2019
3. सिह, विकास, "भारत का संविधान: एक समग्र अध्ययन", आर्षीवाद प्रकाषन, जयपुर, 2019
4. सईद, एस.एम., "भारतीय राजनीतिक व्यवस्था", भारत बुक सेंटर, लखनऊ, 2019
5. धमीजा, भानु, "भारत में राष्ट्रपति प्रणाली: कितनी जरुरी, कितनी बेहतर," प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली,
6. कुमार, राजेंद्र, "भारत के राष्ट्रपति व प्रधानमन्त्री", प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2015
7. काश्यप, सुभाष, " संसदीय प्रक्रिया", राजस्थान ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 2014
8. वर्मा, रवीन्द्र कुमार, "राजनीतिक नेतृत्व" बिहार हिंदी ग्रन्थ अकादमी, पटना, 2013
9. मिश्र, भगवतीशरण, "भारत के प्रधानमन्त्री" राजपाल एंड संस, नई दिल्ली, 2012
10. सिंह, महेंद्र प्रसाद, 'भारतीय शासन एवं राजनीति', ओरियंट ब्लैकस्वॉन, नई दिल्ली, 2011
11. सिंह, महेन्द्र प्रताप, "भारतीय शासन एवं राजनीति", आरियंट ब्लेकस्वान, नई दिल्ली, 2011
12. मिश्र, भगवतीशरण, "भारत के राष्ट्रपति" राजपाल एंड संस, नई दिल्ली, 2010
13. इन्द्रा, उम्मेद सिंह, 'संसदीय व्यवस्था में परिवर्तन की दिशा', कल्पज पब्लिकेशन, 2010
14. बाम्भरी, सी.पी. 'पॉलिटिक्स इन इण्डिया" सिपरा पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 1993
15. माहेश्वरी, एस.आर., 'स्टेट गवर्मेण्ट इन इण्डिया" मेक मिलेन पब्लिकेशन, नई दिल्ली 1979
16. नारायण, इक़बाल, "भारतीय सरकार एवं राजनीति", राजस्थान हिंदी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 1974
17. प्रसाद, राजेंद्र, स्वतंत्र भारत की झलक, नई दिल्ली, 1973

जनसंख्या भूगोल-भविष्य का भूगोल

डॉ.सालिक सिंह
डिपार्टमेंट ऑफ ज्योग्राफी महर्षि यूनिवर्सिटी ऑफ़ इनफार्मेशन टेक्नोलॉजी (लखनऊ)

वरुण यादव
(शोध छात्र)
महर्षि यूनिवर्सिटी ऑफ इनफॉरमेशन टेक्नोलॉजी(लखनऊ)

शोध सारांश- वर्तमान समय में विश्व की जनसंख्या जिस गति से बढ़ रही है । वह पूरे मानव समाज के लिए एक समस्या का रूप बन गई है हमारे भूगोलवेत्ताओं ने इस बढ़ती जनसंख्या को पहले ही एक खतरे के रूप में भांप लिया था। और इसके निवारण के लिए जनसंख्या भूगोल जैसे विषय का विकास किया तथा अनेक ऐसे सिद्धांत और आंकड़े इस विषय के अंतर्गत प्रस्तुत किए जो आज के समय में इस समस्या से निजात दिलाने में सक्षम है। इसीलिए इस पूरे शोध का प्रमुख बिंदु जनसंख्या भूगोल के प्रति छात्रों की रुचि पैदा करना तथा जनसंख्या भूगोल को एक वैज्ञानिक और तार्किक विषय के रूप में विकसित करने की तरफ है। आज की नई पीढ़ी को जनसंख्या भूगोल के महत्व को समझना है और आने वाले समय में इसका अध्ययन कर विश्व में जनसंख्या से पैदा होने वाली समस्याओं का निवारण करना है ।

Key words- जनसंख्या भूगोल, विषय क्षेत्र, विकास, परिभाषाएं और सिद्धांत, जनसंख्या भूगोल का भविष्य।

प्रस्तावना : जनसंख्यो भूगोल का विषय क्षेत्र- आधुनिक समय में भूगोल का क्षेत्र लगातार बढ़ रहा है। उसमें भी जनसंख्या भूगोल अपने आप में भूगोल की एक विशिष्ट व स्वतंत्र शाखा के रूप में उभर कर सामने आया है। जनसंख्या भूगोल के अंतर्गत मानवीय जनसंख्या एवं इससे जुड़े विभिन्न पहलुओं का भौगोलिक अध्ययन किया जाता है, जिसमें जनसंख्या संबंधी विभिन्न विशेषताओं जैसे वृद्धि, वितरण, घनत्व आदि तथा क्षेत्रीय वितरण की भिन्नता का अध्ययन भी शामिल है । आज विश्व की जनसंख्या तीव्र गति से बढ़ रही है, 2012 के विश्व जनसंख्या आंकड़े पर दृष्टि डालें तो विश्व की जनसंख्या लगभग 7 अरब हो चुकी है। बढ़ती हुई जनसंख्या अनेक समस्याएं लेकर सामने खड़ी है इसका हल सिर्फ जनसंख्या भूगोल के अंतर्गत ही संभव है । कौन सा देश किस तरह प्रगति करेगा यह उसकी जनसंख्या पर ही निर्भर करता है अगर कोई देश अपनी जनसंख्या को एक मानव संसाधन के रूप में परिवर्तित करने में सफल रहता है तो उस देश की प्रगति तेजी से होगी,जबकि बढ़ती जनसंख्या को एक मानव संसाधन के रूप में परिवर्तित न कर पाने वाले देश लगातार समस्याओं से ग्रसित रहेंगे, आज इन समस्याओं का समाधान सिर्फ जनसंख्या भूगोल के द्वारा ही संभव है ।

जनसंख्या भूगोल का विकास- प्राचीन समय से ही मानव जनसंख्या संबंधी विशेषताओं जैसे जन्म, मृत्यु, लिंग, स्थानांतरण आदि का अध्ययन करता रहा है। इन आंकड़ों का प्रयोग मानव ने राज्य की सुरक्षा और राजस्व इकट्ठा करने में किया हैं । ईसा से 1250 वर्ष पूर्व में मिस्र के नरेश रामेज द्वितीय के राज्य में जनसंख्या पंजीयन की प्रणाली लागू हुई थी । भारतवर्ष में भी महाभारत, चाणक्य का अर्थशास्त्र, अबुल फजल की आईने-अकबरी तथा भारत आए विभिन्न विदेशी विद्वानों के ग्रंथों में भी जनसंख्या भूगोल पर ध्यान केंद्रित किया गया।

जनसंख्या अध्ययन को एक विषय के रूप में प्रारंभ करने का श्रेय जॉन ग्रांट महोदय को है, जॉन ग्रांट महोदय को जनसांख्यिकी का जनक माना जाता है । ग्रांट विश्व के पहले जनसांख्यिकीविदों में से एक थे । 17वीं तथा 18वीं शताब्दी में यूरोप में जनसंख्या के विभिन्न पहलुओं पर अध्ययन प्रारंभ हुआ । यूरोप में जीवन निर्वाह के साधनों तथा जनसंख्या वृद्धि के मध्य संतुलन पर विद्वानों ने विशेष ध्यान केंद्रित किया। जिसमे जनसंख्या वृद्धि संबंधी सिद्धांत विशेषता माल्थस का सिद्धांत जिसमें जनसंख्या वृद्धि तथा खाद्य संसाधन के बीच विशिष्ट सम्बंध बताया गया (1)। 1911 में कार सौन्डर्स महोदय ने अपनी पुस्तक "द पॉपुलेशन प्रॉब्लम्स ए स्टडी इन ह्यूमन इवोल्यूशन" में जनसंख्या के आकार और विकास का विश्लेषण किया (2) । 1929 में मार्क्सवादी सिद्धांत द्वारा जनसंख्या समस्याओं का विश्लेषण समाजवादी दृष्टिकोण से किया साथ ही जनसांख्यिकी संक्रमण सिद्धांत(3) ,इष्टतम जनसंख्या सिद्धांत आदि सिद्धांतों ने जनसंख्या भूगोल को एक विस्तृत विषय के रूप में एक व्यापक आयाम प्रदान किया ।

जनसंख्या भूगोल की परिभाषाएं- जी.टी.ट्रिवार्थी के अनुसार- ट्रिवार्थी महोदय ने अपनी परिभाषा में क्षेत्रीय भिन्नता को सर्वाधिक महत्व दिया तथा भूतल पर जनसंख्या के वितरण में पाई जाने वाली क्षेत्रीय भिन्नता के अध्ययन को "जनसंख्या भूगोल" का प्रमुख विषय माना । इनके अनुसार "जनसंख्या भूगोल का मूल तत्व पृथ्वी तल पर बसे लोगों की जनसंख्या के प्रादेशिक भिन्नताओं को समझने में निहित है(4) ।जॉन आई क्लार्क के अनुसार- जॉन आई क्लार्क एक ब्रिटिश भूगोलविद थे, इन्होंने 1965 में जनसंख्या भूगोल के गुणात्मक तथा मात्रात्मक पक्षों के विश्लेषण के साथ क्षेत्रीय भिन्नताओं के अध्ययन को प्रमुखता प्रदान करते हुए अपने विचार प्रस्तुत किये । क्लार्क के अनुसार "जनसंख्या भूगोल प्रदर्शित करता है कि जनसंख्या के वितरण, संघटन प्रवास और वृद्धि में पायी जाने वाली प्रादेशिक विभिन्नताऐं स्थानों की प्रकृति में पायी जाने वाली प्रादेशिक भिन्नत्ताओं से किस प्रकार संबंधित है।"(5)विलवर जेलेंसकी के अनुसार- विलवर जेलेंसकी ने अपनी पुस्तक (A Prologue to Population Geography) 1966 में जनसंख्या भूगोल को परिभाषित किया। जेलेंसकी के अनुसार "जनसंख्या भूगोल वह विज्ञान है जो उन विधियों की व्याख्या करता है जिसमें स्थलों की भौगोलिक प्रकृति निर्मित होती है और उसके प्रतिक्रिया स्वरूप जनसंख्या तत्वों का एक समूह तत्व होता है जो क्षेत्र और समय दोनों के संदर्भ में परिवर्तनशील होता है क्योंकि वे तत्व परस्पर तथा अनेक अजंनाकिकीय तत्वों के प्रति अंतर्क्रिया करते हुए अपने व्यावहारिक नियमों का अनुकरण करते हैं"(6)।

जी जे डेम्को के अनुसार - डेम्को के अनुसार "जनसंख्या भूगोल भूगोल की वह शाखा है जिसमें किसी क्षेत्र के जनांकिकीय तथा अजनांकिकीय लक्षणों की क्षेत्रीय भिन्नताओं का विश्लेषण किया जाता है(7)।आर.सी. चांदना के अनुसार - जनसंख्या भूगोल न केवल जनसंख्या के विभिन्न लक्षणों के क्षेत्रीय तथा सामाजिक वितरण तथा अंतरों का वर्णन करता है बल्कि उनके कारण परिणाम तथा उन प्रक्रियाओं का भी विश्लेषण करता है जो इस प्रकार की वितरण तथा अंतरों को जन्म देते हैं। (8)जनसंख्या वृद्धि- भारत कि प्रमुख समस्या / चुनौती, इसका हल : जनसंख्या भूगोल भारत में सन 2011 की जनगणना के आंकड़े उपलब्ध हैं सन 2011 के बाद से भारत में अभी तक जनगणना नहीं हुई है। इसलिए इस वक़्त भारत की जनसंख्या में कितनी वृद्धि हुई है इस बारे में कोई आधिकारिक आंकड़े उपलब्ध नहीं है। 2020 में नेशनल कमीशन ऑन पॉपुलेशन ने जनसंख्या के अनुमानों पर एक रिपोर्ट जारी की जिसमें कहा गया कि साल 2011 और 2036 के बीच के 25 सालों में भारत की जनसंख्या 121 करोड 10 लाख से बढ़कर 152 करोड़ 20 लाख हो जाएगी तथा जनसंख्या का घनत्व 368 से बढ़कर 463 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर हो जाएगा । भारत की जनसंख्या का 40 फ़ीसदी हिस्सा 25 साल से कम उम्र के लोगों का है वहीं देश की क़रीब आधी आबादी की उम्र 25 से 64 साल के बीच है। भारत की बुज़ुर्ग आबादी (65 साल से ऊपर) कुल

आबादी का महज़ 7 फ़ीसदी है(9)। लेकिन भारत की जनसंख्या वृद्धि दर गिर रही है इससे आने वाले दशकों में भारत की आबादी का एक बहुत बड़ा हिस्सा बुजुर्ग लोगों का होगा यह भी एक समस्या के रूप में जन्म लेगा ।अगर जनसंख्या लगातार इसी तरह बढ़ती रही तो भारत के एक बड़ी चुनौती बनकर सामने आएगी । संसाधनों पर जनसंख्या का दबाव , भूमि, खेत, पानी, जंगल तथा खनिज आदि संसाधनों का प्रयोग बढ़ता जाएगा जिससे आने वाले समय में इनकी उत्पादकता में कमी दर्ज करेगा । भारत जैसे विकासशील देश में आवास,परिवहन, स्वास्थ्य, शिक्षा जैसी बुनियादी जरूरतों को भी जनता तक पहुंचाना मुश्किल हो जाएगा। आधी से अधिक जनसंख्या बुनियादी जरूरतों के बग़ैर ही गरीबी में
अपना जीवन यापन करेगी इससे गरीब और अमीर के बीच खाई और बड़ी हो जाएगी ।बढ़ती जनसंख्या एक बहुत बड़े ऐसे समूह को जन्म देगी जो रोजगार के अभाव में अराजकता की तरफ अग्रसर होंगे इन युवा पीढ़ियों को रोजगार देना भी एक विकट समस्या बनकर आएगी।
अगर जनसंख्या लगातार इसी तरह बढ़ती गई तो आर्थिक असमानता, गरीबी, बेरोजगारी, संसाधनों पर दबाव तथा इंफ्रास्ट्रक्चर की कमी भारत के विकास को प्रभावित करने वाले प्रमुख कारण बन कर उभरेंगे। जिससे समाज में एक अशांति का वातावरण पैदा होगा, इन सब समस्याओं का इलाज भूगोल की एक प्रमुख शाखा जनसंख्या भूगोल के अंदर ही निहित है। जनसंख्या भूगोल में दिए गए सिद्धांतों, आंकड़ों आदि की सहायता से हम इन समस्याओं पर नियंत्रण पा सकते हैं। जनसंख्या भूगोल विषय में भूत वर्तमान और भविष्य में आने वाली परिस्थितियों तथा समस्याओं का विश्लेषण मौजूद है, जिसके अध्ययन से विकसित तथा विकासशील देश इन समस्याओं से निजात पा सकते हैं। इन परिस्थितियों से कैसे निपटना है इसका पूर्ण ज्ञान जनसंख्या भूगोल के अध्ययन से प्राप्त किया जा सकता है ।

जनसंख्या भूगोल और इसका भविष्य -

फ्रेडरिक रेटजेल ने (1844 -1904) सबसे पहले एक Anthropogeography नामक शब्द का प्रयोग किया (10) जिसका शाब्दिक अर्थ है - मानवभूगोल। यहीं से भूगोल मानव और पर्यावरण के बीच प्रमुख संबंधों का विषय बन कर सामने आया । रेटजेल के शोध ने मानव भूगोल के अध्ययन में सबकी रुचि जगाई थी। एंथ्रोपोजोग्राफी के प्रमुख समर्थक यूरोप, उत्तरी अमेरिका, जर्मनी और विशेष रूप से फ्रांस और संयुक्त राज्य अमेरिका में मौजूद थे। रेटजेल और उनके अनुयायियों कि विचारधारा मानव और पर्यावरण से विशेष रूप से संबंधित थी जिसमें मुख्य रुप से जनसंख्या की घटनाओं को भौतिक कारकों के प्रभाव के संदर्भ में समझाया गया था। हालांकि कुछ जर्मन भूगोलवेत्ता विशेष रुप से किरचॉफ मानव भूगोल के अध्ययन के विपरीत दृष्टिकोण रखते थे।जबकि अल्फ्रेड हेटनर एक अन्य जर्मन भूगोलवेत्ता जो रेटजेल के समकालीन थे, ने जनसंख्या के अध्ययन को मानव भूगोल का एक अभिन्न अंग माना तथा जनसंख्या भूगोल का समर्थन किया। हेटनर ने जनसंख्या भूगोल को एक प्रमुख विषय के रूप में प्रमुखता दी । भूगोल में जनसंख्या अध्ययन को समान महत्व के साथ क्षेत्रीय जन्म और मृत्यु दर, प्रवास और जनसंख्या की गतिशीलता आदि को इसके अध्ययन का आधार माना। हेटनर महोदय ने इस बात पर भी जोर दिया कि भूगोलवेत्ताओं को अपने अध्ययन को केवल जैविक परिघटना तक ही सीमित नहीं रखना चाहिए बल्कि सामाजिक गुणों जैसे आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक मनोवैज्ञानिक स्थितियों पर भी निर्भर करते हुए समान रूप से महत्व देना चाहिए । भूगोल में जनसंख्या के अध्ययन के महत्व पर हेटनर ने सबसे प्रत्यक्ष और प्रमुखता से अपने विचारों को प्रस्तुत किया।विडाल डी-ला-ब्लाश (1845 - 1918) ने फ्रांस में एक नए भूगोल का विकास किया । विडाल डी-ला-ब्लाश सम्भववादी विचारक थे। ब्लाश ने बताया कि मानव स्वयं एक क्रियाशील प्राणी है, जो अपने वातावरण का उपयोग स्वयं के अनुभव एवं विकास के स्तर के आधार पर करता है। उन्होंने लिखा है कि प्रकृति सीमा निर्धारित करती है और मानव गतिविधियों के लिए संभावनाएं प्रस्तुत करती हैं तथा मानव अपनी क्षमता एवं आवश्यकतानुसार उनका उपयोग कर सकता है। विडाल डी-ला-ब्लाश की पुस्तक "प्रिंसिपल द ज्योग्राफी ह्यूमैन" 1921 में उनकी मृत्यु के बाद "मानव भूगोल के सिद्धान्त " नाम से प्रकाशित की गई जिसमें उन्होंने मानव भूगोल और जनसंख्या भूगोल का पुरजोर समर्थन किया। जीन ब्रुनस जो कि विडाल डी-ला-ब्लाश के प्रिय शिष्य थे। इन्होंने मानव भूगोल के तत्वों का विश्लेषण करते हुए पृथ्वी की सतह पर जनसंख्या के असमान आवरण को बहुत उचित स्थान दिया। ब्रूनस का विचार था कि मानव भूगोल में दो विश्व मानचित्रों का मुख्य महत्व है एक जल मानचित्र दूसरा जनसंख्या मानचित्र । इसी जनसंख्या मानचित्र का व्यापक अध्ययन जनसंख्या भूगोल के अंतर्गत किया जाता है।19वीं और 20वीं शताब्दी आते-आते माल्थस , जी.टी ट्रिवार्थी (1953) जान आई क्लार्क(1965) विलियम जेलेंस्की (1966) और जी जे डेम्को आदि भूगोलवेत्ताओं ने जनसंख्या भूगोल को एक नया आयाम दिया । प्राचीन काल से लेकर आधुनिक समय के भूगोलवेत्ताओं ने जनसंख्या भूगोल के महत्व को समझा है और इसके विकास में एक अहम योगदान दिया है।

उद्देश्य- इस शोध पत्र का उद्देश्य छात्रों को जनसंख्या भूगोल जैसे महत्वपूर्ण विषय से परिचित कराना तथा भविष्य में जनसंख्या भूगोल का क्या महत्व है,इससे अवगत कराना रहा है । उम्मीद करता हूँ इस शोध पत्र से छात्रों में जनसंख्या भूगोल के प्रति जागरूकता बढ़ी होगी ।

****

संदर्भ ग्रंथ सूची-

1. 1- Principal of population(1789) - Thomas Robert Malthus
2. 2- The Population problem : A study in Human Evolution(1911)
3. 3- NCERT भारतीय समाज की जनसांख्यिकीय संरचना अध्याय 2 (पेज नंबर 10-11)
4. 4- The essence of population geography lies in the understanding of regional difference in the earth's covering of peple" G.T. Trenwarth (1953)
5. 5- Populpation geography is concenred with demonstrating how spatial variation in the distribution composition migration and growth of population are related to the spatial variation in the nature of places-
6. john I clark (1965)
7. 6- The science that deals with the ways in which the geography character.....
8. W. Zelensky (1966)
9. 7- Population geography is the study of population distribution and productive relationship existing within various population groups the settlement network and its fitness, usefulness and effectiveness for productive goal of a socity - G J Demco
10. 8- A geography of population - R.C. Chandna
11. 9- National commission on population Report (2020)
12. 10- Evolution of Geographical thought - Majid Husain
13. 2 Jun 2023

भारत में कृषि आय पर कर: संभावनाऐ और चुनौतियों का मूल्यांकन

मुकेश कुमार मीना
सहायक प्राध्यापक अर्थशास्त्र विभाग,
मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविध्यालय, उदयपुर

विनोद सेन
सहायक प्राध्यापक, अर्थशास्त्र विभाग,
इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय जनजाति विश्वविध्यालय,अमरकंटक, मध्य प्रदेश

सारांश -पिछले कुछ दशको में कृषि पर कर लगाने पर नीति निर्माता अलग-अलग विचार रख रहे हैं, कृषि को कर मुक्त रखने से सरकार को आर्थिक हानि हो रही है वही कुछ लोग इसी सहूलियत का नाजायज फायदा भी उठा रहे है। इस शोध पत्र के माध्यम से कृषि पर कर की संभावनाऐ और चुनौतियों पर चर्चा की गई है। भारत में कृषि आय पर कर के प्रावधान एवं सिफारिशे और कृषि आय को कर के दायरे में लाने के पक्ष में और विपक्ष में तर्क का विस्तार से वर्णन किया गया है। कृषि भारतीय अर्थव्यवस्था का एक बहुत ही महत्वपूर्ण अंग है, कृषि से आय पर अनिश्चितता बनी रहती है परन्तु कृषि लगातार एक बड़े जनसंख्या को रोजगार की आपूर्ति कर रही है, और दूसरी तरफ राष्ट्रीय आय में कृषि योगदान घटता जा रहा है। कृषि आय से मध्यस्त को ही बड़े पैमाने पर आय प्राप्त हो रही है या फिर जो कृषक बड़े पैमाने पर आधुनिक कृषि कार्य कर रहे है उनके लिय यह लाभ का व्यवसाय मना जाता है। प्रस्तुत शोध पत्र में किसानो की आय को दुगना करने पर भी चर्चा की गई है एवं यह शोध द्वातीयक समकों और सूचनाओं पर आधारित है।

मुख्य शब्द : कृषि आय, कर, कृषक, न्यूनतम समर्थन मूल्य, व्यापर की शर्ते, ऋणग्रस्तता

प्रस्तावना -भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि क्षेत्र रोजगार, औद्योगिक क्षेत्र हेतु कच्चे मॉल की पूर्ति, विदेशी पूंजी अर्जन, खाद्यान्न सुरक्षा, गरीबी निवारण, क्षेत्रीय असमानता में कमी इत्यादि विभिन्न आर्थिक मापदंडो पर महत्वपूर्ण स्थान रखता है। भारत सरकार कृषि में सुधार के माध्यम से विभिन्न आर्थिक लक्ष्यों को प्राप्त करने का प्रयास करती रही है, सरकार के प्रयासों के कारण कृषि क्षेत्र में लगातार कुल उत्पादन में वृद्धि और उत्पादकता का विविधीकरण हो रहा है, लेकिन कुल उत्पादन और उत्पादकता में वृद्धि के पश्चात् भी कृषि क्षेत्र का कुल राष्ट्रीय आय में योगदान निरंतर घटता जा रहा है| सरकारी प्रयासों के वाबजूद कृषि क्षेत्र में संलग्न एक बड़े वर्ग की आय में पर्याप्त वृद्धि नही हो सकी है, इसलिए अब सरकार की नीति कुल कृषि उत्पादन में वृद्धि के स्थान पर कृषि आय को दुगना करने की नीति पर कार्य कर रही है। कृषि आय को दुगना करने को लेकर सरकार ने 2016 में एक कमेटी का गठन किया, जिसने 2022-23 तक कृषको की आय को दुगना करने की बात कही| इस कमेटी ने कृषको की वर्तमान स्थिति एवं कृषि में निजी और सार्वजनिक पूंजी निर्माण फसलो के विविधिकरण, उत्पादन के बाद प्रबन्धन, कृषि आगत और फसल आय, लक्षित वृद्धि दर को लेकर विभिन्न नीतिगत सुझाव दिये गये। ये सभी सुझाव कृषि को परम्परागत जीवन निर्वाह से आधुनिक व्यवसाय में परिवर्तित करते थे। लेकिनं कृषि में आर्थिक सुधारों के क्रियान्वयन के आभाव के कारण, कृषि के एक बड़े क्षेत्र को आधुनिक उधम में परिवर्तित करना अभी तक संभव नही हो सका है| कृषि के आधुनिक उधम में परिवर्तन के साथ-साथ कृषि आय पर आधुनिक उधम की तरह प्रत्यक्ष कर के दायरे में लाने का कार्य भी महत्वपूर्ण हो जाता है। जो करारोपण में न्याय के लिए आवश्यक है |

कृषि क्षेत्र में कर का वैश्विक परिद्रश्य :विश्व व्यापार संगठन के कृषि से सम्बन्धित कृषि संधि (एग्रीमेंट ओन एग्रीकल्चर) के लागू होने के पश्चात सभी देशो ने कृषि सम्बन्धित उत्पादों की अधिकतम पहुंच के लिए धरेलू बाजार विदेशी कम्पनियों के लिए खोल दिए है। साथ ही मात्रात्मक प्रतिबंधो को समाप्त कर दिया गया है जिसका केवल कीमत के माध्यम से नियन्त्रण संभव है। इस नीति के तहत सभी देशों की कृषि सब्सिडी पर एक सीमा लगी हुए है यही कारण रहा है कि कीमत में एक सीमा से अधिक मात्रा में कृत्रिम रुप से परिवर्तन संभव नहीं हो सके हैं जिससे एक ओर उदारीकरण, निजीकरण, वैश्वीकरण की प्रक्रिया के कारण धरेलू और विदेशी कम्पनियों के माध्यम से कृषि में निजी क्षेत्र की भागीदारी बढ़ी है तो दूसरी ओर कृषि उत्पादों का व्यापार एक बड़ा बाजार बनकर उभरा है जिससे कंपनियों को अत्याधिक लाभ हो रहा है। भविष्य में कृषि क्षेत्र में उत्पादन, संग्रहण और वितरण में निजी कम्पनियों की भागीदारी तीव्र गति से बढने की सम्भावना अधिक थी इसलिए इस क्षेत्र में संलग्न इकाइयों को कर से मुक्त रखने के कोई आधार नही है| भारत जैसे विकासशील देशो में जहाँ विकसित देशो की तरह कृषि क्षेत्र और अन्य क्षेत्रों में आय की समानता के स्थान पर आय में अत्यधिक असमानता है वहां कृषि आय कर अत्यधिक उत्पादक नही कहा जा सकता है | इन परिस्थितियों के बावजूद भारत में एक बड़ा वर्ग कृषि आय के माध्यम से उच्च आय वर्ग का हिस्सा होने के वावजूद भी कृषि आय में छूट का लाभ ले रहा है| भारत में आय की असमानता अत्यधिक है इसलिए कृषि आय को कर मुक्त रखने पर प्रश्न उठाना स्वाभाविक है विकसित देशों में कृषि आय कर योग्य आय का हिस्सा है, और अन्य देशो में भी कृषि से सम्बन्ध क्षेत्रों में करारोपण में तेजी से विस्तार हो रहा है। इस प्रकार कृषि पर कर एक विश्वव्यापी प्रघटना है| कर के सिद्धांतो में सामान्य आय पर सामान्य कर के अनुसार कृषि क्षेत्र की आय को कर के दायरे में लाना न्यायसंगत है|

भारत में कृषि आय पर कर के प्रावधान एवं सिफारिशे :-भारत में संघीय व्यवस्था के तहत विषयों का बटवारा केंद्र, राज्य, और समवर्ती सूची के मध्य किया गया है, इस विभाजन के अनुसार आय कर केंद्र सूची का विषय है, और कृषि राज्य सूची का विषय है, एवं कृषि आय को आय कर के दायरे से मुक्त रखा गया है। कृषि क्षेत्र में विभिन्न प्रकार के मदों से आय हो सकती है| उसमे स्वयं के द्वारा उत्पादित कृषि वस्तुओ की बिक्री से होने वाली आय को आयकर से मुक्त रखा गया है, लेकिन चाय, कॉफी, बागवानी से आय को आयकर के दायरे में रखा गया है। जब तक राज्य सरकारे मिलकर कृषि आय को केंद्र के विषयों के अंतर्गत सम्मिलित करने का बिल स्वंय विधान सभा में पास करके ना भेज दे तब तक कृषि आय को आयकर के अतर्गत सम्मिलीत नही किया जा सकता है।

कृषि आय की परिभाषा एवं प्रावधान : कृषि आय का भारत सरकार के आयकर अधीनियम की धारा 2(1A) में परिभाषित किया है:

(अ) इसके अनुसार कृषि आय का भारत में स्थित भूमि से उत्पन्न राजस्व और किराया आय है, जो कृषि कार्य के लिए उपयोग में लाई जाती है|

(ब) उपयुक्त भूमि से प्राप्त आय को कृषि कार्य करने या कृषि उपज को विक्रय योग्य बनाने या कृषि उपज को बाजार में बेचने से प्राप्त की गयी हो|

(स) उपयुक्त तरह की भूमि से लगे मकान की आय, जिसका प्रयोग किसान के द्वारा पशुपालन और भंडारण के लिए किया जाता है|

कृषि आय और सम्पति पर कर लगाने के लिए 24 फरवरी 1972 में राज समिति का गठन किया गया था। राज समिति अनुशंसा के द्वारा कृषि कार्य में लगे समुदाय उन दूसरे समुदायों से कम कर देते है, जो गैर कृषि स्त्रोतों से आय प्राप्त करते है, इसलिए समीति ने सुझाव दिया की कृषि आय पर प्रत्यक्ष कर लागने की तुलना में अन्य वैकल्पिक उपाय किये जाने चाहिए| जिसमे कृषि आय को गैर कृषि आय से अलग नही मानने, संयुक्त परिवार को एक इकाई नही मानने, सिचाई जल की कीमत निर्धारित करने, कृषि सम्पति पर पूंजीगत लाभ पर कर लगाने,

पति-पत्नी की आय को जोड़कर कर गणना करने इत्यादि विभिन्न सिफारिशें की थी। राज समीति के द्वारा कृषि जमाखोरी पर कर लगाने की सिफारिशें की गयी। कृषि जमाखोरी पर कर लगाने में समान कृषि क्षेत्रों की उत्पादकता की गणना के पश्चात कर देने वाली इकाई की कृषि जमाखोरी के अनुसार उसकी आय की गणना करने की आवश्यकता बताई गई, उत्पादकता में प्रति तीन साल का औसत लेने की बात कही गयी, इस प्रकार विभिन्न आय कृषि आय के स्तर के अनुसार कृषि आय पर कर लगाने की बात कही गयी।राज समीति ने कृषि सम्पत्ति को सम्पति कर के साथ एकीकृत करने की सिफारिश की, राज समीति का तर्क था कि इससे निम्न स्तर पर कार्य करने वाले कृषक प्रभावित नही होगें,इससे वे व्यक्ति प्रभावित होगे जो कर बचाने के लिए कृषि कार्यो में संलग्न है |

कृषि आय को कर के दायरे में लाने के पक्ष में तर्क :

कृषि आय को कर के दायरे में क्यों लाना चाहिए यह एक बड़ा प्रश्न है? जिसका उत्तर अभी दिया जाना आवश्यक है।कृषि आय पर कर लगाने के पक्ष में क्या-क्या तर्क है?क्या कृषि आय पर कर लगाना कर सिद्धांतो के अनुकूल होगा? या नहीं| क्या कृषि आय कर से क्या सरकारी राजस्व में वृद्धि हो सकेगी?क्या कृषि आय पर कर लगाना राजस्व प्राप्ति के द्रष्टिकोण से लाभदायक है? क्या कृषि वास्तविकता में कर से मुक्त है?इस शोध पत्र में इन विभिन्न प्रश्नों पर विचार किया जाना है। सबसे पहले यह जानने का प्रयास किया जाना चाहिये की कृषि आय को कर के दायरे में लेने के पक्ष में तर्क क्या हो सकते है|

पहला: कर नीति के विभिन्न उद्देश्यों मे से एक कर राजस्व में वृद्धि करना है, कृषि क्षेत्र में बड़ी जोत के किसानो की आय को कर के दायरे में लाकर कर राजस्व में वृद्धि की जा सकती है, एक वर्ग जिसकी अन्य स्त्रोत से आय उच्च आय वर्ग में आती है वह भी अपनी कृषि आय पर कर में छूट का लाभ ले रहा है| इसके साथ ही कृषि आय पर कर के माध्यम से कर की चोरी को रोकना संभव हो सकेगा, एक बड़ा वर्ग अपनी दूसरे क्षेत्रों से उत्पन्न आय को कृषि आय में दिखाकर आय कर में छूट ले रहा है, कृषि आय पर कर लगने के बाद इस प्रकार की कर चोरी को रोकना संभव हो सकता है।

दूसरा: कृषि क्षेत्र में बटाईदारी, साहूकारी, बंधुआ मजदूरी जैसे शोषणकारी प्रक्रियाओ के कारण संलग्न इकाइयों का अत्यधिक शोषण हो रहा है, एक सीमा से अधिक आकार की जोत की इकाई सीधे कृषि कार्य में ना होकर अप्रत्यक्ष रूप से कृषि आय में छूट का लाभ ले रही है, जिनके आंकड़े भी सरकार के पास उपलब्ध नही हो पाते है, जिनके अभाव में उसे सरकारी नीतियों के माध्यम से प्रोत्साहित करना संभव नही है, इससे उस ग्रामीण क्षेत्र का विकास संभव नही हो पाता है।

तीसरा: सरकार की नीतियों में उत्पादन के पश्चात प्रबन्धन से कृषको की आय में वृद्धी के नीतिगत उपाय सम्मिलित है, इसमें बाजारोन्मुख नीतियों के माध्यम से आर्थिक विकास के मद्देनजर कृषि क्षेत्र के विकास में उत्पादन श्रृंखला तैयार करने तथा कृषि में निजी पूंजी को कार्य करने के लिए आवश्यक नियम बनाना चाहती है। जब निजी कंपनियां इस क्षेत्र में कार्य करेगी तो इनकी आय को कर से मुक्त नही रखा जा सकता है। कृषि में अनुबंध खेती, संग्रहण, वितरण, मूल्य संस्करण के साथ उत्पादन भी फर्मो के द्वारा किया जायेगा तो कृषि आय को कर मुक्त नही किया जा सकता है। इन सभी प्रक्रियाओं के माध्यम से ही कृषि में संलग्न इकाई की आय और कृषि क्षेत्र के राष्ट्रीय आय में योगदान में वृद्धि की जा सकती है।

चौथा: परम्परागत कृषि क्षेत्र से आधुनिक कृषि में परिवर्तन अर्थात् अर्थव्यवस्था के औपचारीकरण और कृषि गतिविधियों के व्यवसायीकरण के लिए कृषि की इकाई का एक फर्म की तरह व्यवहार करना आवश्यक है, जिससे उसके विकास के लिए पूंजीगत निवेश , क्षतिपूर्ति, बीमा के स्पष्ट प्रावधान किये जा सके, इसके लिए एक आर्थिक इकाई के रूप में आय और व्यय का स्पष्ट होना जरुरी है। कृषि आय पर करारोपण के अभाव में कृषि से उद्योगों की तरह व्यहवार करना संभव नही है, इसलिए कई मामलों में कृषि क्षेत्र उद्योग की तुलना में सापेक्षिक वंचन के शिकार होते रहते है।

पांचवा: सामान्य सन्तुलन के सिद्दांतो के अनुसार अर्थव्यवस्था के एक बड़े क्षेत्र को कर से मुक्त रखने से उस क्षेत्र में संसधानो के अनावश्यक हस्तांतरण होता है जो कि साधनों में अनुत्पादकता को बढाता है। इससे संसाधनों का उस क्षेत्र में अनावश्यक केन्द्रियकरण हो जाता है, इसलिए कृषि क्षेत्र की आय को कर के दायरे में लाना आवश्यक है|

छठा : करो में न्याय के लिए समता की अवधारणा के अनुसार सभी इकाइयों का कर जाल में होना आवश्यक है। जिससे विभिन्न क्षेत्र में संलग्न इकाइयों के मध्य न्याय किया जा सके। इसलिए करो में न्याय की द्रष्टि से कृषि आय को कर से क्यों मुक्त नही रखा जा सकता है, एक सामान्य व्यक्ति को भी लगता है कि जब सभी क्षेत्रों की आय पर कर लगता है, तो कृषि आय को कर से क्यों मुक्त रखा गया है इसलिए लोकतंत्रिक सरकारों के ऊपर कृषि आय को कर क्षेत्र में लानें का दबाव बना रहता है| इस प्रकार करो में न्याय, समता, कर वंचन, कृषि में बाजारोन्मुख संरचना के विकास, कृषि की शोषणकारी प्रवृत्तियों की समाप्ति इत्यादि विभिन्न आधार पर कृषि आय को कर के दायरे में लाने के तर्क दिए जाते रहे है तथा विभिन्न सलाहकारी संस्थाओ ने सरकार को कृषि पर कर लगाने का सुझाव दिया है|

कृषि आय को कर के दायरे से बाहर रखने के विपक्ष में तर्क :

सरकार बढ़ते विकासात्मक और गैर विकासात्मक खर्चों को पूरा करने और बाजारोन्मुख आर्थिक नीतियों के क्रियान्वयन के साथ-साथ कृषि क्षेत्र में कर लगाने की संभावनाएं खोज रही है। लेकिन कृषि पर कर लगाने से पहले यह देखना आवश्यक हो जाता है, कि क्या कृषि कर लगाने की संभावना बची है? क्या कृषि पहले से ही अत्यधिक कर भार से तो ग्रसित नही है? क्या कृषि क्षेत्र में अप्रत्यक्ष कर का भार अत्यधिक है? यदि सिस्टम की प्रतिकूलता के कारण कृषि क्षेत्र पहले से ही अघोषित कर दे रहा है, या कृषि क्षेत्र में नकारात्मक प्रतिफल की दर चल रही है तो क्या कृषि क्षेत्र आय कर का भार झेलने में सक्षम होगा? क्या कृषि क्षेत्र पर अत्यधिक दबाव होने पर अर्थव्यवथा की खाध्य सुरक्षा, रोजगार, कच्चे माल की पूर्ति, पूंजी निर्माण, विकास की दर, व्यक्तिगत आय की समानता इत्यादि, पर तो कोई नकारात्मक प्रभाव नही पड़ेगा? क्या कृषि आय पर कर से संग्रहित राजस्व और उसके संग्रहण के लिए प्रशासनिक खर्च में कोई बड़ा अंतर होगा, इन सभी मापदंडो के आधार पर कृषि आय पर कर की कितनी संभावना है। इन संभावना के विपरीत कृषि को कृषि आय कर के दायरे में लाने के विपक्ष में निम्न तर्क हो सकते है|

पहला : कृषि आय की गणना करना कठिन, एवं भ्रष्टाचार की संभावना होना| कृषि क्षेत्र में कृषि इकाइयों के द्वारा अनौपचारिक तरीके से उत्पादन के कारण कृषि गतिविधियो से शुद्ध आय की गणना करना कठिन है, इसके साथ-साथ कृषि में संलग्न इकाइयों में शिक्षा का स्तर कम होने के कारण कृषि आय पर कर से भ्रष्टाचार की सम्भावना अधिक है।

दूसरा : कृषि क्षेत्र में आय में अनिश्चितता तथा निम्न कर राजस्व प्राप्त होना| वर्तमान भारतीय कृषि में विभिन्न तकनीकी सुधारों के बावजूद मौसमी तथा भोगोलिक विविधता के कारण उत्पादन में निरन्तरता एक चुनौती है, कृषि के फसल चक्र में एक वर्ष अच्छे फसल उत्पादन के बाद, सामान्य फसल उत्पादन और प्रतिकूल स्थिति आना सामान्य बात है, इसलिए इस संभावना से मना नही किया जा सकता है कि कृषि आय पर कर के लिए आवश्यक प्रशासनिक खर्च और उससे संगृहीत राजस्व में कोई विशेष अंतर न हो|

तीसरा : कृषि में लाभदायकता का निम्न स्तर और ऋणग्रस्तता में वृद्धि होना| भारतीय अर्थव्यवस्था खाद्यान सुरक्षा और कृषि आधारित उधोगो के लिए सस्ता कच्चा माल पूर्ति के लक्ष्य के मध्य नजर कृषि उत्पादनों का मूल्य नियंत्रित रखा गया है। जिससे कृषि उत्पादकता और कुल उत्पादन में वृद्धि के पश्चात भी कृषको की आय में वृद्धि नहीं हुई।

किसान ऋणग्रस्तता, कृषोत्तर क्षेत्रों की ओर पलायन आम बात हो गयी। कृषि के उत्पादों के कम मूल्य के कारण अन्य क्षेत्रों को सस्ता कच्चा माल मिला है।जिससे उनकी लाभादायता बढ़ी है। इस प्रकार आज तक कृषि लाभ का कार्य नही है। सामान्य किसान कर्ज के बोझ में दब गया है। कृषकों के उत्पादों के लाभदायक मूल्य के लिए बनी स्वामीनाथन कमेटी की अभी तक लागू नही की गयी है।

चौथा : कृषि संसाधनो के वैकल्पिक उपयोग पर रोक लगाना| केंद्र और राज्य सरकार के विभिन्न भूमि अधिनियमों के तहत कृषि की जोतो को अन्य अधिक प्रतिफल देने वाले औद्योगिक एवं सेवा क्षेत्र में प्रयोग से वंचित किया हुआ है। जिससे जमीन का आर्थिक मूल्य और उस पर प्रतिफल कम बना रहता है ये आर्थिक मूल्य कृषि में लगे रहने की एक अवसर लागत होती है लेकिन इस अवसर या उसके ब्याज को किसी भी रूप में कृषि के मूल्य से संबंध नही किया जाता है इसके साथ ही उद्योगों के विकास के लिए सरकार जमीन अधिग्रहण करके उधोगों को नगण्य लागत पर देती है जो एक तरह की सब्सिडी है। जिससे उनके लाभ में वृद्धि होती है, कृषि में संलग्न इकाई को इसका उचित मुआवजा भी प्राप्त नही हो पाता है।

पांचवा :कृषि कीमतो में उतार चढ़ाव का कृषको पर नकारात्मक प्रभाव पड़ना| सरकार के द्वारा संग्रहण, वितरण और आयात निर्यात नीति के द्वारा समयानुसार कीमतों में वृद्धि को रोकने और खाद्यान उपलब्ध करवाने के लिए किया गया प्रयास किसानो की लाभदायकता को सीधा प्रभावित करता है। कई स्थिति में तो किसानो की फसल को हानि में बदल देता है। विश्व व्यापर संगठन के समझोते भारतीय किसानो के लिए सीधे हानिकारक है।

छठा : कृषि को सरकारी बजट में कम हिस्सेदारी और उधार की सीमित उपलब्धता होना |कृषि को सरकारी बजट में उधोगो की तुलना में कम प्राथमिकता दी गयी है। इसके साथ ही बैकिंग व्यवस्था में कृषि से सम्बन्धित प्रवाधान की जटिलता और प्रतिकूलता के कारण ऋण एवम् ऋण माफ़ी का प्रवाह उधोगो की तरफ ज्यादा है।

सातवा : कृषि और उधोग- सेवा क्षेत्र के बीच व्यापर की शर्ते की प्रतिकूलता होना| कृषि क्षेत्र में आयकर को तभी मूर्त रूप दिया जा सकता है। जब कृषि क्षेत्र में प्रतिकूलता को कम किया जाये। कृषि क्षेत्र का मूल्याकन अन्य सम्बन्ध क्षेत्रों के बिना देखना संभव नहीं है, देश के औधोगिक और सेवा क्षेत्र के विकास में कृषि क्षेत्र का योगदान केवल कृषि के आर्थिक मूल्य के द्वारा मापना संभव नहीं है, कृषि क्षेत्र की लागत पर अन्य क्षेत्रों को सब्सीडाइज किया हुआ है, अर्थात कृषि और उद्योग –सेवा क्षेत्र के बीच टर्म ऑफ ट्रेड, कृषि के प्रतिकूल है।

आठवा : कृषि के माध्यम से आर्थिक लक्ष्यों के साथ गैर आर्थिक लक्ष्यों को प्राप्त करने की नीति के कारण बहुत सी सीमाए है| कृषि क्षेत्र के माध्यम से सरकारों की नीति अनेको गैर आर्थिक लक्ष्यों को प्राप्त करने की रही है, इसलिए कृषि क्षेत्र में बाजार व्यवस्था या कृषि का वाणिज्यजीकरण एक बड़ी चुनोती रही है। शहरी क्षेत्रों में हो रहे व्यापार और वाणिज्य के विकास के लिए ग्रामीण क्षेत्र की कृषि के माध्यम से उधोगो को कच्चा माल, सस्ता खाद्यान और शहरी क्षेत्रों को सस्ता श्रम उपलब्ध करवाया जाना एक नीतिगत फैसला रहा है। इसके साथ ही बढ़ती जनसंख्या के लिए खाद्यान सुरक्षा की स्थिति प्राप्त करने के लिए कृषि उत्पाद की कीमत नियन्त्रण, कृषि उत्पादों में मूल्य विभेदीकरण, कृषि उत्पादों पर स्थानीय, राजकीय आदान प्रदान पर नियन्त्रण, कृषि उत्पादों पर मात्रात्मक नियन्त्रण, कृषि उत्पादों का सरकार के द्वारा संग्रहण किया जाता है, जो कृषि क्षेत्र की इकाइयों के आर्थिक आधार पर संचालन को नियान्त्रित करते रहे है।

नौवा : कृषि क्षेत्र की आगतो को उत्पन्न करने वाली फर्मो में एकाधिकारिक प्रवत्ति होना| कृषि क्षेत्र में खाद्य, बीज, कीटनाशकों, कृषि मशीनरी जैसे आगतो में सरकारी और निजी एकाधिकारिक प्रव्रतिया स्पष्ट दिखाई देती है। इन आगतो के उत्पादन में एकाधिकारिक प्रवृतियां के कारण इनका उच्च मूल्य स्थापित होता है जो कृषि में लाभ को समाप्त कर देता है।

दसवा : कृषि क्षेत्र के उत्पादों के बाजार में एकाधिकारिक प्रवर्तिया का होना | कृषि उत्पादों के बाजार पर भी आडतीया और व्यापारी संघो के माध्यम से थोक मूल्यों को नियन्त्रित किया गया है साथ ही खुरदरा मूल्यों पर कृषि उत्पादक की बाजार पहुच को रोका गया है।

ग्यारवा : कृषि में बीमा/क्षतिपूर्ति सुविधाओ का अभाव होना| कृषि में अनिश्चितताओ के बावजूद अभी तक कृषकों को होंने वाले नुकसान के लिए उचित मकेनिज्म तैयार नही किया गया है। कृषि क्षेत्र में लागू फसल बीमा योजना में अभी बहुत कमियाँ है, बीमा के जटिल मापदंड़ो की कारण किसांन को हानि होने के बावजूद पूरा मुआवजा तक नही दिया जाता है। अगर सही तरीके से देखा जाए तो इसके लिए वे क्षेत्र जिम्मेदार है, कृषि के कम मूल्य के कारण अन्य क्षेत्र लाभ कमा रहे है। इस प्रकार कृषि में आय की अनिश्चितता, बीमा सुविधाओ का अभाव, निम्न लाभदायकता, सरकारी नियन्त्रण, विभिन्न सामाजिक दायित्व, प्रतिकूल व्यापर की शर्ते, उच्च आगत मूल्य, विभिन्न प्रकार की एकाधिकारिक प्रवृतियां के कारण कृषि आय पर कर एक प्रतिकूल कदम होगा।

निष्कर्ष : एक लाभहीन व्यवसाय में जहाँ अप्रत्यक्षय करो का शुद्ध भार अत्यधिक है उस क्षेत्र की आय को प्रत्यक्ष कर के अंतर्गत लाना कर राजस्व की दृष्टि से कितना लाभप्रद हो सकता है ये देखना जरुरी है। इस विषय पर लाभ हानि की तुलना के बाद ही निर्णय किया जा सकता है। कृषि क्षेत्र से बिचोलिओं को बाहर करके कृषक को अधिक और सीधे लाभ पहुचने की जरुरत है। आज का किसान महगाई, मौसम की अनिश्चितता, कृषि क्षेत्र को सब्सिडी में कमी, निन्न न्यूनतम समर्थन मूल्य, तकनीकी सहायता की अनुपलब्धता, अपर्याप्त वित्तीय सहायता इत्यादि समस्यों से जूझ रहा है| कृषि को कर दे दायरे में लाने से पहले कृषकों की समस्यों का निराकरण करना जरूरी है।

****

सन्दर्भ ग्रन्थ :

1. Ajit Ranade, N.R. Bhanumurthy (January 24, 2020) will the budget supends FRBM's fiscal deficiat goals? https://www.thehindu.com/opinion/op-ed/will-the-budget-suspend-the-frbms-fiscal-deficit-goals/article30636439.ece.
2. Bahri Charu (March 12, 2016) Farmers tax, Business Standard, https://www.business-standard.com/article/specials/farmers-are-tax-exempt-so-is-company-with-rs-215-cr-profit-116031200292_1.html.
3. Chaudhari Shrimi (June 30, 2021) Fiscal deficit, Business standard, https://www.business-standard.com/article/economy-policy/fiscal-deficit-at-8-2-in-april-may-as-tax-collection-rises-lockdowns-ease-121063001422_1.html.
4. Economic Review (2021). RBI annual Report https://rbidocs.rbi.org.in/rdocs/ AnnualReport/PDFs/IIECONOMICREVIEW650084A9F3494152939D99449E63D040.PDF.
5. ET Bureau (Sept 25, 2017). should agriculture income be taxed https://economictimes.indiatimes.com/wealth/tax/should-agricultural-income-be-taxed/articleshow/60804911.cms?from=mdr.
6. Jain R K (2020), प्रत्यक्ष कर व्यवस्था : आयकर, SBPD Publications.
7. khoman Lal Sahu, Ashwani Mahajan, आधुनिक कृषि व्यवस्था में किसानो की सामाजिक अध्ययन, Int. J. ad social sciences, 9 (1) , 46-50, available on: https://ijassonline.in/AbstractView.aspx?PID=2021-9-1-9.
8. Rajora, Chitra, (2021), भारतीय कृषि व्यवस्था और अंतरराष्ट्रीय सहयोग: एक अवलोकन (May 13, 2021). Available at SSRN: https://ssrn.com/abstract= 3953990 or http://dx.doi.org/10.2139/ssrn.3953990.
9. Report of the Committee on Doubling Farmers' Income (2017), "Status of Farmers' Income: Strategies for Accelerated Growth", Department of Agriculture, Cooperation and Farmers' Welfare, Ministry of Agriculture & Farmers' Welfare. https://www.farmer.gov.in/imagedefault/DFI/DFI%20Volume%202.pdf.
10. ओमकार (2018), वित्तीय क्षेत्र के लिए चुनौतियाँ: कृषि क्षेत्र विशेष अध्ययन, JOURNAL OF BUSINESS MANAGEMENT & QUALITY ASSURANCE, 2(3). Retrieved from http://journal.swaranjalipublication.co.in /index.php/JBMQA/article/view/49.
11. विजय अग्रवाल, पायल शर्मा (2015). भारत में आयकर का इतिहास एवं बदलता स्वरूप, Int. J. Rev. &Res. Social Sci. 3(1): pp 24-26.

A Brief Analysis of Diversity in Indian Culture and Traditions in Jayanta Mahapatra's Poetry Collection, 'A Rain of Rites'

Dr. Ranjana Das Sarkhel
Professor, Department of English
MATS University, Raipur (CG)

Manabodh Luhura
Research Scholar
Department of English, MATS University, Raipur (CG)

ABSTRACT-This paper is an attempt to analyse the Indian culture and traditions in Jayanta Mahapatra's poetry collection 'A Rain of Rites'. It provides the socio-cultural situations, evidence and experiences, deteriorating conditions of the present generation. Mahapatra uses the tool of imagery to illustrate the most vivid descriptions of people and their cultures. His works spans the cultural landscapes of India, lives of its people, diversity and similarity of their cultural backgrounds. He has remained a flag-bearer of Indian mythology and ritualistic basis of Indian culture. His orientation towards the celebration of Indian mythology, rituals, and culture is rooted in his personal life and systems of faith. Mahapatra's poetry is a direct response to his social surroundings and incidents. His poems are consistent with his avid observations of social occurrences. His ties with social atrocities such as poverty, deprivation, and uncertainties of life are critical to carry out a postmodern reading of his works. Mahapatra's '*A Rain of Rites'* is a significant work in his oeuvre. These poems have paid special attention to the realities of Indian culture and religious rites of Hindu mythology. His social concerns and opinions of political situations are thoroughly elucidated in this work. In this work, he has placed a profound emphasis on 'woman' as a subject of social retrospection. Womanhood in the Indian context plays a crucial role in his depiction of the social situation of India. His illustration of womanhood in India reiterates the subjects of their abuse and poor treatment.

Key Words: *Culture, Tradition, Rituals, Religion, Custom*

Introduction-Many poets have been found drawing inspiration from the ancient Indian culture to create their own unique pieces of poetry and literary work. The poetry written by Jayanta Mahapatra effortlessly included the cross-sectional cultures and previously presented the deteriorating conditions of the present generation. Jayanta Mahapatra was done as a Christian family but was more influenced by Hindu culture. Though Jayanta was born in a Christian family his creative self was always influenced by the Hindu myths, cryptograms, traditions and dialects. All while his growing years till his youth Jayanta Mahapatra felt the sensation of neglect and humiliation whilst living in the society which was dominated by Hindu community and tradition. Hence, the poet grew in the mixed culture of the Hindu and Christian cultures and rituals. Very much from his natal years, Mahapatra felt the pull of two cultures. He says in his autobiography: "As children, we grew up between two worlds. The first was home where we were subjected to a rigid Christian upbringing, with rules my mother sternly imposed; the other was the vast and dominant Hindu amphitheatre outside, with the preponderance of rites and festivals which represented the way of life of our own people. Two worlds then: and I, thinking to communicate with both, and probably becoming myself incommunicable as a result through the years." Although in this due experimentation with newness and productive literary progression, he never rigidly rejects the traditional ritualistic Hindu conventions and old cultural myths and their due performances of practices in the Indian subdomain. Conversely, Mahapatra includes the old figures of religious temples, their 'sacred' customs and forgotten Hindu values and moralities in order to again relive those ancient historic chronicled times of the past.

Cultural and Traditional Diversity in India -The treatment of Hindu myths, rituals, the dilemmatic situation of Indian women, his close linkages with the culture, legacy and tradition of land, his reaction towards the spiritual trip to Puri to visit Lord Jagannath, the various illusions, thoughts, ideas, he used to get when he heard the bells ringing at the Lingam temple were all captured in the poems written by him. The most peaceful regime or era witnessed by the people was in the 6th Century BC when Buddhism had spread and Buddha preached the message of peace and equality to everyone. He was highly influenced by the communal clashes taking place in the nation and terrorism spread that as taking place in Kashmir and Punjab. The political and human changes that took place and affected the country and its people were all penned down by the poet. Along with that, it was found that Jayanta Mahapatra possessed a great knowledge about the modern and experimental poetry that was written by the Ramanuja Sahajasidhas who belonged to the Mahayana Buddhism community. He was also well aware of the contribution made into the literary field by other writers and poets like Kamala Das, Nissim Ezekiel, Mehrotra, Kolatkar, Nandy, and others. He had translated a few poems written by these poets but that did not lay any significant impact on him. He also observed the various movements like Post-impressionism, Expressionism, Cubism, Futurism, Symbolism, Imagism, Vorticism and Dadaism that took place during that era but failed to lay any impounding impact on Jayanta Mahapatra. The poet was highly encouraged to work better under such

difficult circumstances which eventually led to the evolution and growth of the poet. The writings and poetry of Mahapatra were also influenced by the changes that were taking place in India in the form of urbanization. Traces of 15th section of Requiem could also be witnessed in some of the writings of the poet. He also wrote about his experiences about the era when the presence of Buddhism and Gandhi philosophy had gone along with peace, non-violence, and tranquility.

India is a land of various religions, culture and traditions where people believe in God whose existence is felt in every living being in different forms, and this is the unique feature of Indian faith in God. The ancient culture of India inspired Mahapatra to draw his pieces of literary works. The realities of Indian culture and religious mythology reflect in his poems. His works represent the specific references to Hindu religion and culture in contrast to rituals, beliefs and rites of Hinduism. He illustrates the real situations of life in society that he experienced throughout his life. Through his works he sheds light on his thoughts of humanity which is considered as the back bone of religion. As his life was surrounded by Hindu temples, traditions, ancient rituals and cultural heritage, he describes the lost traditions in his poetry and emphasized the importance of the roots of one's culture in the upbringing of the values of an individual. '*A Rain of Rites'* reminds us about the tradition which binds Mahapatra with his past. From childhood till his youth, Mahapatra felt the perception of mistreatment and disgrace at the same time as living in the society which was dominated by Hindu community and tradition. Hence, he grew in between the pull of two different cultures as well as rituals of the Hindu and Christian cultures. He says in his autobiography, "As children, we grew up between two worlds. The first was home where we were subjected to a rigid Christian upbringing, with rules my mother sternly imposed; the other was the vast and dominant Hindu amphitheatre outside, with the preponderance of rites and festivals which represented the way of life of our own people. Two worlds then: and I, thinking to communicate with both, and probably becoming myself incommunicable as a result through the years."

The poetry written by Jayanta Mahapatra effortlessly included the cross-sectional cultures and previously presented the deteriorating conditions of the present generation. All while his growing years till his youth Jayanta Mahapatra felt the sensation of neglect and humiliation whilst living in the society which was dominated by Hindu community and tradition. Jayanta Mahapatra was caused to lose courage by the feelings of loneliness all through his growing years and first few days spent in Patna were the loneliest day he did ever experience. Amid all the seclusion he faced a huge cultural gap prevailing within the boundaries of the college.

The most prevalent issues that are dealt in an inventive manner in his artistry are Relationship between Past and Present, Tradition and Modern, Historical references versus Contemporary degeneration, Exploration of the Self, Spiritual and Metaphysical perceptions versus Modern day corrupt devotees, desolate hippies shown through the images of apocalyptic ruins, Politics of Insider and Outsider, and other most significant issues like spiritual and moral decay, hunger, poverty, disease, casteism, communalism and many other evils that encapsulate Indian land in its destructive shackles.

Imagery of the land, its past, its landscape, its stone, its rain, priest, temples, paths and ethos all find a place within the perimeter of his poems. His poems display rites of priest, housewives, whores, children, crows, and rites of cripple, poverty of young girl and of the land itself. 'Woman' surfaces as one of the essential theme in his poems. He portrays painful plight of Ahalya, pain of her grandmother and widow mother, dark streets of whores, loneliness of housewives and fantasy world of young girls. In poem called, *'Summer'* he talks about the plight of Indian Girl. *'Summer', 'Dawn', 'The Stranger, My Daughter', 'The Whorehouses in a Calcutta Street',* present the suppressed and claustrophobic image of womanhood, through the very incorporation of the myth of Ahalya. Mahapatra effectively challenges the Male morality and predatory snares of the patriarchal world that enjoys the sensitive, delicate and very feminine tastes in a woman, irrespective of her age by age deteriorating position and ongoing co modification, victimisation and categorisation. In *'Hunger'*, Mahapatra usurps as a true Socialist. As we know, Orissa has remained an old and frequent victim of the famine. Thus, he presents an image of hunger stricken fisherman selling his daughter. Here he talks about the hunger of the belly and hunger called lust.

1. In the poem *'Sunburst'*, Jayanta Mahapatra, suitably uses the images of Cow and Buffalo - which are considered as highly pious creatures and are worshipped by the followers of Hindu mythology very religiously. Here, the poet uses the animals "which are considered goddess and god in Hindu religion to present suffering of woman in a undertone of the poem." In his poem *'Dawn at Puri'*, the poet talks about a town in Orissa named Puri where the Jagannath temple is situated. Religious zeal is everywhere in this place. As the temple of Jagannath is there, it is nothing short of being the cultural hub of the Oriya people. The poet sits around in Puri's scenic beaches and his attention is on the crows and other birds that fly above. He finds a skull lying on the beach. The skull resembles a symbol which is poverty and the spiritual impediment of Puri. Poverty prevails

there even after all the cultural and religious associations.The towns, villages, streets, folks, fables, temples, rituals, festivals along with landscape of Orissa get together in verbal canvas of Jayanta Mahapatra. He symbolizes hunger of people through image of the landscape, suing image of crow and skull in the sand. The characters in his poems are street children, people living in slums, prostitutes etc. The center of his poems is the experiences and everyday life of the ordinary people and their lives.The poet indicates the social conventions when he writes the term 'empty country' in the poem. The skull also represents the illogical superstitions that the people follow in the name of religion. The poet notices some widows wearing white saris who are there to perform some rituals. These women are shown as people who have lived a major part of their lives and their old age. Mahapatra, in his writings, has time and again focused on poverty, religion, social issues, identity crisis. Intricate human relationships are reflected in his poems including cultural issues.

In another poem in *'A Rain of Rites'* which is called *'The Morning'*, the poet puts emphasis on the hopelessness of the society. The poem also serves as a contrast between eternity and moment. According to him, the word 'hunger' is an expression of his solitude. He could comprehend the level of poverty facing the people. The empty stomach of the fisherman could be felt by the poet. The poem also depicts the loss of social and moral values of not only Orissa but India as well. This gave very contrasting imagery of Orissa which on the outside is very rich in its religious culture and heritage but on the other hand, its people suffer from extreme poverty.He talks about the social and cultural discrimination against the women and the chauvinistic behavior of the men. The atrocities on the women are very much an integral part of his poetry. The women of this society are a victim of gender biases which has been part of the Indian society for hundreds of years. At both biological and cultural levels, the women are marginalized. Their job is just to take care of the husband and children. These women suffer from loneliness. This feeling of loneliness is both emotional and social. In his poem *Dawn,* the poet has rightly pointed out the sorry state of the women in India. The culture in India is heavily based on culture and rituals, myths and superstitions. The men in the society have made their own rules and regulations that do not cause any problem in their comfort and lifestyle and have done nothing to help the women except exploiting them.During the marriage, the women are not given the opportunity to dress nicely and they are bound to wear white saris for the rest of their lives after the death of their husbands. While the widow is not allowed to enjoy anything, the widower fulfills his desires and wishes without any care of the society. The shackle of society, religion and culture are only forced upon the women. Jayanta Mahapatra has emerged as someone whose poems deal with human conditions and has established himself as a great poet of his times. His poems successfully depict the woes of the women. The poet draws religion into the mix by referencing the demoness Putna who had tried to kill baby Lord Krishna by transforming herself as a beautiful woman. She had offered to breastfeed Lord Krishna but had already smeared venom which was intended to kill him. As per the Indian mythology, it is believed that Putna attained liberation or moksha after being killed at the hands of Lord Krishna. She is ultimately punished for her evil deeds attained salvation while impersonating a loving mother wanting nothing but to breastfeed a little child. The poet here wants to lay across the fact that just like Putna, the women of our society tend to hide their sufferings of life by taking care of the family. The underlying meaning her is that the salvation of the women is based on the duties of womanhood. Otherwise, their suffering will never end and the chauvinistic men will keep on exploiting them. As a poet, he attempts to free these women from all their sufferings and the orthodox society which does not let them enjoy their lives like their male counterparts. The society is deep rooted with superstitions and sexist rites and rituals which has weighed down the Indian society for decades and continues to do so.

Conclusion-He represents the class divide and the discriminations prevailing in the society and the other problems prevalent in society like poverty, hunger, and prejudice. The rituals of the Indian society particularly those practiced under Hinduism had left a mark on the poet. He is rational in his thinking and rejects the rites and rituals of the orthodox society. He does not believe in the myths and superstitions prevalent in Indian society and this feeling is reflected in the poems. The society is deep rooted with superstitions, rites and rituals which are unreasonably attached to a belief, opinion and continually troubling the Indian society for decades. He used to silently watch the blind faith, customs, and rituals that were followed form ages. However, fortunately, with time he accepted the change and infused the themes, myths, the tradition of Orissa into his writings and poems.

****

Works Cited-

1.Jayanta, Mahapatra. *A Rain of Rites*. University of Georgia Press, 1976.
2.Mahapatra, Jayanta. Portrayal of Women in the Poetry of Jayanta Mahapatra with Special Reference to A Rain of Rites and Temple. *A Peer-Reviewed International Literary Journal* Vol. XV No. I, 79.
3.Mahapatra Manamohan. *Traditional structure and change in an Orissan temple*. No. 9. Punthi Pustak, 1981.
4.Mohanty, Niranjan. "THE HERITAGE OF GROWTH: A STUDY OF JAYANTA MAHAPATRA'S." *The Research Bulletin: Arts* 31 (1969): 81.
5.Prabha, P. 'Social Perspectives in the Poetry of Jayanta Mahapatra a Study.' Manonmaniam Sundaranar University. Shodhganga: 2014.
6.Baruah, Homen and Jyoti, Sumitra. Symbolism and imagery of 'rain' in Jayanta Mahapatra's poetry, International Journal Of English Language, Literature And Translation Studies (IJELR), Vol.2. Issue 3. 2015
7.Prasad, Madhusudan, "Caught in the Currents of Time: A Study of the Poetry of Jayanta Mahapatra", Journal of South-Asian Literature: 19: 2: 1984.

Past Haunts Present: A Study of Mahesh Dattani's Where Did I Leave my Purdah?

Dr. Santosh Kumar Sonker
Assistant Professor
Department of English and FL IGNTU, Amarkantak, MP

Dr. B. Krishnaiah
Assistant Professor
Department of English, School of Humanities
University of Hyderabad, Telangana

Abstract-Past and Present are interconnected. What is today, tomorrow it will become past. Today, what is new, tomorrow it will be old. Today what is outdated, tomorrow it may be relevant. When India got independence, theatre artists went back to the roots of native theatre to give national identity to theatre. Girish Karnad, Vijay Tendulkar, Habib Tanveer, etc. inserted some native theatrical elements in their own ways but could not do away with proscenium theatre. Badal Sircar could go one step further and renounced proscenium theatre working with body language. Mahesh Dattani had tried his hard to work with margins but he has continued with legacy of proscenium theatre adopting some of the new theatrical techniques such as breaking the boundary between performers and audience with dialogues; maximum use of stage space by splitting it into various spaces, connection between past and present with the use of flash back, etc. From evils of patriarchy on men and women, gender discrimination, communal harmony to the queer issues and AIDs survivors, he has voiced the margins but the play, *Where did I Leave my Purdah* deals with a very unique issue i.e. sometimes past is present in disguise and it influences the present. The aim of the paper is to study connecting threads of past and present and analyze relevance of the past in the present.

Key words: past, present, communal harmony, theatre

Introduction-Time present and time past Are both perhaps present in time future And time future contained in time past. (T. S. Eliot's "The Four Quartets")

T. S. Eliot is right when he says that time is in continuous flux. What happened in the past floats in the present; similarly, past and present both decide the future. Time plays a crucial role in shaping one's life. One has to change with time to cop up with the present situation. Mahesh Dattani, who started his career as a dramatist with his first play on the very common but crucial issue- conflict between father and a son and tried his hands at a gamut of issues ranging from dance as a social taboo to homosexuality and transgender in his next plays, has now accepted the changing taste of the audience and has adopted change to get acceptability. He observes: "I am now hungry to move on and find another person in me, a new playwright may be" (41). He is trying his hand at presentation of the ancient plays with new adaptations: ". . . we are on the verge of exciting breakthrough in our arts . . . our identity [is] the new face of an ancient civilization" (Dattani 43). Such observations give his thoughts a way to gather in a creation named Why Did I leave my Purdah? The play, Why Did I leave my Purdah?, presents a fine tapestry of changing identity of theatre in post-modern identity and highlights effects of post-independence communal hatred. Two distinct threads have so nicely been woven that they seem to co-exist with each other. Past and present are in a perpetual flux. Before this play, Mahesh Dattani has dealt with the issue of communal tension in his play, Final Solutions which depicts the situation of post-demolition Babari Masjid and suggests respect for each religion and tolerance as solutions to the communal problems. But this play, set in the partition of the nation, comes with a new aspect of communal riots and describes how past affects life of several generations. The play is a "story set against the backdrop of the theatre, tracing some of the theatrical forms that constitute our history, and recounting a tale that mirrored the stories of multitude of women artists who were consumed with a love for their crafts, almost at the cost of everything else" (Dubey 48). The playwright has made it more deep and powerful by "heightening the tension and placing the core of the story during the Partition, with all its upheavals and far-reaching consequences" (Dubey 48-49). The third play of the trilogy, Where Did I Leave my Purdah?, the rest two being Dance Like a Man and Morning Raga, explores:

. . . the life and travails of Nazia, a stage actress who has lived a life in the theatre for sixty years. The play is a tribute to the great actresses of company theatres, who were courageous enough to pursue their passion for the state at a time when stage actresses were looked down upon. For this I have as my inspiration the legendary Zohra Sehgal" (Dattani 40).

Nazia Sahiba along with her sister Zarine and Suhel has formed Modern Indian Theatre Company in 1946. They perform Abhigyan Sakuntalam at Lahore with cast—Nazia as Shakuntala, Suhel as Dushyant, Zarine as Ansuya in 1948. Suhel is a Hindu who goes through religious conversion to marry Nazia. The play begins with the dance by Ansuya and Priyambada but at an opportune moment in the music, Shakuntala joins them. Their dance is accompanied by music and singing which describes the beauty of Shakuntala and their beautiful frolics in the forest. Shakuntala is puzzled with the bee and asks for the help. Dushyant, hidden behind the tree in the forest, appears and tears the bee in the two with his sword. They are lost in the eyes of the each other but Shakuntala cuts a shy figure to conceal her excitement. In between, gun fires and screams are heard. Some Muslims enter the vicinity and move

towards the stage to kill the present Hindus. Women of the troupe are suggested to put on their burqas and Suhel to wear cap. But hurt with the woman's statement who has played Priyambada that no Hindu should be allowed in the troupe as it is not their place, Suhel assures no harm to let them on his account. Nazia is abused by them for her assertion that there is no Hindu at present on the stage which enrages Suhel who goes backstage to tackle the man and groans being beaten by rioters; it leads her to shoot one taking gun from one of vanity bags. It creates a chaos on the stage and scatters the group. Nazia with Zarine and Suhel decides to leave Lahore. The train, Flying Mail 9 Down running from Karachi to Delhi which they board at Lahore is full with Hindu migrants. As the train stops before the border of India, rioters enter into it to kill each Hindu. Suggested by the woman sitting next to them, they search for their burqas. Zarine gets hers but Nazia still searches for. Zarine realizes that Nazia will be killed if she does not get hers. While she looks elsewhere rummaging her burqa, Zarine puts her own in her trunk and asks her that it is here. After wearing it, Nazia observes Zarine beholding her smiling instead of searching for her burqa which irritates her but suddenly she notices that the burqa which she is wearing is not hers but of her sister's. She realizes her sister's love for her but then only between gunshots and scream, Zarine is separated from her sister and is shot dead. Helpless crying Nazia is dragged away by Suhel from her sister for always. They anyhow walk all the way to the border and cross it bribing someone but Nazia forgets to put her off her burqa in the "other land" where "a different set of demons" ready to suck blood of the Musalmaans. Hindu rioters push her down behind the bush and tear her cloth. They keep humiliating her flesh until she stops staring back with hatred. Suhel stands helpless and does not come forward to save her from her own people, which comes to her as a shock breeding in her a perpetual revulsion for him. Nazia narrates:

We walked all the way to the border. We crossed the border after bribing someone. But . . . I was still wearing that piece of black cloth. But we were in another country, with a different set of demons. They came at us. They came at me. They pushed me down behind bushes. Five or six or seven, eight of them. I don't know. They tore at my clothes and at my flesh. All I could think of was why isn't Suhel saving me? These are his own people! I stopped looking at those eyes, so much anger and hatred! Hell-bent on humiliating me. I stared back with hatred too, but they hurt me even more till—I stopped looking into their eyes. (*Me and My Plays* 132)Humiliated Nazia in tattered cloth walks with Suhel. As the train having inscription on it with blood that "A present from Pakistan. For all the wrong you have done" reaches Suhel enters the bogey they sat in but cannot recognize Zarine but Nazia recognizes her sister as she sees her hand and the ring with inscription from the Koran on her finger. Zarine, killed by her own people, is shrouded in her sister's burquah and buried. This incident haunts Nazia forever. She tries hard and makes every effort and sacrifices to remove it but she does not succeed. That incident has damaged her psychology to a deeper extent. Nazia and Suhel settle in Delhi and marry but the pregnancy conceived after Nazia is humiliated by the rioters seems a curse to her. She reveals it to Suhel who promises to nurture the child as their own but she does not help herself to forget the calamity with her; whenever he tries to come closer to her, she sees that look in his eyes and senses it in his touch. She forgets everything but not that pain. Ruby is born but Nazia is not ready to accept her because even the baby's first look reminds her of the past. She tells Ruby: "You were born . . . I didn't want to hold you. I couldn't look at you without all that coming back! You were my flesh, wounded, humiliated. I didn't cry when you came out. I was relieved—that the tapeworms infesting my belly, left by those pigs who ate at my flesh were out of my body" (*MMP* 134). Suhel efforts hard to hands over the baby to Nazia but she resists it. Suhel feels that if she accepts the baby, everything would be all right; she would forget her past but she actually wants to kill the baby not because she hates it but because she is abhorrent of herself. She tells Ruby:

When Suhel gave you to me, I couldn't hold you. I told him to take you away from me! . . . He persisted and I resisted. He didn't understand that if I held you—that I could just take my veil, wrap it around your neck and snap that tiny neck—get rid of you and my pain. Not because I hated you, but because I hated myself . . . Even today when I look at you . . . it comes back. I tried really hard to forget. I tried. And I will keep trying. (*MMP* 135)After some time in 1950 during the show of *Abhigyan Shakuntlam*, they are caught in a discussion which ends in a conflict. While they are bearing costumes in the green room before the post-intermission act, Suhel's suggestion to induce more feeling in her acting and present herself more emotionally vulnerable instead of a stiffen as it is the demand of the situation because she has been deserted by Dushyant breaks off a clash between them. They start accusing each other and Suhel angrily blames Nazia of not giving Zarine an opportunity to play Shakuntala which she could do better. Realizing that Nazia is hurt and crying just because of him, Suhel explains: "I just want you to come out of yourself and looked around. We are all victim of our time. I sympathize with what happened" (MMP 98). For Nazia it comes as a strategy to look her down. His defense that he is not expressing pity over her, rather trying to help her out hits her womanhood. She sarcastically comments: "So you can take control over my life. Oh, there are so many women in dance and theatre who have succumbed to those tactics. Too many who allowed

men to ruin their lives. But I am not one of them. I certainly don't need your help in bringing about my destruction" (MMP 98-99). A look at Suhel as Dushyant makes her to regret for the mistake of falling in love with him as it recollects everything back. Dushyant's killing of bee seems to her as she killed herself for him; grabbing of her in his arm as Dushyant irritates her as to throw him away. She unveils before Suhel: "I can't play Shakuntala because of you. The first time I see you as Dushyant, I look away because it reminds me that I once made the mistake of falling in love with you. When you kill the bee it reminds me that I killed for you" (*MMP* 99). She goes further to say: "When you reject me in the court, I wish I could wipe out every memory of you, Zarine and . . . and . . . everything else!" (*MMP* 100). After this show, they start living apart. Situation gets complicated when Nazia revives Modern Indian Theatre after fifty years. She plans to perform the modern version of *Abhigyan Shakuntalam* as *Shaku*. She orders Dipti to clean the warehouse and vacate trunks full with old costumes. While she is talking to Vinay in the vanity room, she receives a call from Suhel. Nazia's responses reveal her hatred for Suhel and her effort to be away from the past:

Why do you call after fifty bloody years? . . . . No! Don't come here. Please! . . . I don't want to see you because I will feel sad to see you in a wheelchair! I will feel sorry to see you holding a bag filled with your own piss. I cannot even bear to hear your shaky voice now. You are just a phantom. (*MMP* 91). Nazia feels happy that everything has been burnt but revelation made by Ruby that the costumes are safe in her car, makes Nazia angry and she shouts at Ruby reminding her that it is she because of whom she has got post of costume historian and even London School of Fashion diploma as well. Ruby also does not fail to retort: "You manipulated everyone who was unfortunate enough to be part of your life" (*MMP* 110). Under the pressure of a sponsor whom Ruby has arranged, Nazia tells half-truth about Suhel not being Ruby's father and her mother being dead but Ruby does not believe it and rejects it saying that this is story which she wants her to believe. Nazia's hatred extends to Nikhat, daughter of Ruby, as well. She sees Nikhat as a spy set up by Ruby on her. After a while, Nikhat brings a poster of Shaku, "an original lithograph of the 1950 production of Shakuntala with a huge picture of the young Nazia" which she tells that Suhel has saved from the destructive hand of Nazia. The claim about the woman in poster being Ruby and blame that Nazia has taken over the glory of Ruby force Nazia to accept that Ruby died much before revival of the group in India. This enrages Ruby to such an extent that she exerts her anger:. . . Everyone said my mother died after giving birth to me. Everyone said that because that's what you told them. I wonder now! You are capable of anything! . . . . You looked at yourself. Never at the world around you. I didn't exist. Everyone sympathized with me. Poor girl, her aunt doesn't want to look at her. Send her to her uncle. No, no, he is married again. His wife will not want her. . . . I hate the theatre. I hate my father for deserting me like this, but I hate you more than anyone else. (MMP 124-125)Nikhat tries to console her but her words are too meagre to heal her emotional wounds. Expression of her feelings about being "an abandoned child" evokes the same in Nikhat who criticizes Ruby also for her indifferent attitude towards her daughter, Nikhat. Nikhat's words reveal how Ruby's wounded psyche has affected life of her daughter: You gave what you got. Other mother's talked to their daughters. Asked about their homework, their teachers, their friends, but you never did. There was that whole week when you would give me my lunch box without packing my lunch in it, and at lunch break, I would open an empty lunch box. You went through the motions all right of being a caring mom. But you weren't. You couldn't. I was angry too. You don't know this but Dad took me to a therapist in New York. . . . He understand that your anger came out of your own happiness. It's okay, Mom, to let go. I am trying very, very hard. (*MMP* 127)Ruby begs sorry. Nazia admits that the name on the posters of the shows in Delhi was blackened out to hide names because they were afraid of being recognized as Muslims by rioters. Insisted by Nikhat about the identity of grandmother, Nazia hints at the core truth which both mother and daughter know: "I think that deep inside you know the truth. Your mother knows the truth. But we don't want to acknowledge it. We all weave these tangled webs around the truth so we can strangle it and make it disappear. We all are deceiving one another" (*MMP* 127). Nikhat alleges Nazia of killing her grandmother which perplexes her to reveal the truth that she was killed in train by rioters. Her past comes into being and she tells about the painful and horrible brutality she met during her journey from Lahore to Delhi which she hid for years. Demystification of mystery clarifies the hatred caused by that horrible accident: "Somewhere, we had forgotten each other . . . We only remembered the pain" (*MMP* 134). After knowing the truth Ruby feels pity for Nazia but she speaks: "No! Don't do that! Don't pity me. Hate me.

Conclusion-Thus, after her rape by the rioters, Nazia has always been in the grip of the past and her present has always been threatened by it. The more she tries to avoid her past, the more it haunts her. It is the past which ruins three generations. So the play, *Where Did I Leave my Purdah?* with help of theatrical techniques such as flash back, play within play and split stage, etc. criticizes communal riots because it destroys many lives and strongly presents that past affects the present.

Works Cited

1. Dattani, Mahesh. *Me and My Plays*. Mahesh Dattani. New Delhi: Penguin, 2014. Print.
2. Dubey, Lillete. "Note on the Play." *Me and My Plays*. Mahesh Dattani. New Delhi: Penguin, 2014. Print.
3. Eliot, T. S. "The Four Quartets." <http://www.coldbacon.com/poems/fq.html> Accessed on 30.06.2023 at 09.00 AM

The Male Identity Crisis in Sarnath Banerjee's Graphic Novel *Corridor*: A Deconstructive Study

Dr. Meenakshi Rana
Assistant Professor, Dept. of English, School of Social Sciences and Language, Lovely Professional University, Punjab

Sonia Sumbria
Ph.D Research Scholar, Dept. of English, School of Social Sciences and Language, Lovely Professional University, Punjab

Abstract-In psychological terms identity crisis is a prominent part of adolescence and adolescence is of course part of human life and it can be defined by the struggle between the person one has come to be and the person society expects one to become. Society has expectations and people work really hard to fulfil those expectations, especially at such tumultuous time in life. But the problem with this is people spend so much energy putting forth their best self for the sake of others. Right now, male identity is at a crisis point. They try their best in society to pretend that historical toxic masculinity no longer exists. They do not show courage to express their mental health and vulnerabilities. The society still views a man through the lens of masculine norms. It expects man to be the protector, the fixer, the autonomous one and a man expects of himself the same as well. This identity crisis has its roots and stark contradictions across society on the one hand we proclaim that we are in a new age of accepting vulnerability amongst men but on the other hand we still expect men to adhere to those masculine norms. This paper aims to analyse the identity crisis which is faced by the male characters in Sarnath Banerjee's graphic novels. The major point of this study is to demonstrate how one's personal identity is influenced by the cultural and political climates in which one lives and affects the whole identity of that individual.

Keywords: Identity Crisis, Alienation, Deconstruction, Graphic novel

Introduction-Identity is a word with several meanings. It is a person's conception and expression of their individualism or group affinities such as national identity and cultural identity. Identity can be characterized as the unique quality that each individual possesses or that all members of a certain social category or group share. The term is derived from the French word identité, which has its linguistic roots in the Latin noun identitas, - tatis, itself a derivative of the Latin adjective idem which means the same. However, it is via the identification with significant others that one's identity is formed mainly with parents and other people during one's biographical experiences, as well as with 'groups' as they are viewed. The term was first used by theorist Erik Erikson in his 1968 book *Identity: Youth and Crisis*, who considered it to be among the most significant struggles that humans go through as they mature. He asserts, "identity formation employs a process of simultaneous reflection and observation, a process taking place on all levels of mental functioning, by which the individual judges himself in the light of what he perceives to be the way in which others judge him in comparison to themselves and to a typology significant to them; while he judges their way of judging him in the light of how he perceives himself in comparison to them and to types that have become relevant to him" (22-23). He further described identity as "the inability to settle on an occupational identity which most disturbs young people. To keep themselves together they temporarily overidentify with the heroes of cliques and crowds to the point of an apparently complete loss of individuality" (132). The question of identity is a not a fixed and transparent concept as it may expected, that gave rise to the crisis and became a phenomenon as Mercer explains "identity only becomes an issue when it is in crisis, when something assumed to be fixed, coherent and stable is displaced by the experience of doubt and uncertainty" (43). The issue of identity has continued to be a cause of disputes and wars throughout history. Literature has defined and examined the path of humanity's search for identity throughout its history. Many people in the modern society suffer greatly from identity crises. Everybody naturally considers their own identity in an effort to develop self-respect. Every writer today, whether African, American, British, or Indian, focuses on writing with a feeling of identity in mind. Sarnath Banerjee is hardly an anomaly when it comes to writers. His graphic novels investigate the philosophical significance of ideals and notions as well as the identity issue. He introduces a variety of people who are so closely related that even after their separation, they retain one another's identities. His characters are constantly trying to figure out who they are. While seeking it, they experiment with various things to determine which are most compatible with their personalities and strive to adopt them. Sometimes they make foolish choices in the process of developing their identity, which they prefer to change later. Through his writings, Banerjee portrays a very real problem—the identity crisis that is prevalent among postmodern youth—and his works beautifully address the details of that dilemma. He is able to use graphics in his work to convey the significance of the current era's key conversation topic. The theme of lost identity in Banerjee's novels and his characters' search for the self are the topics that are covered in the current study. Deep examination of characters that lose their sense of self and identity helps us to understand how fate manipulates them like puppets. The hunt for some dynamic characteristic that burns within the characters

that lose their identity continues even though they are not always aware of what they are looking for. Banerjee makes an effort to convey identity crises in his novels and focuses on the hidden inner life of a person. The pitiful state of a person's existence, which is at the core of all human beings but has regrettably been robbed of their own identity, comes to light when one pays close attention to how individuals lose their individuality in society.

The Graphic Fiction Genre-The term graphic novel has come to apply to a wide range of works that rely extensively on graphics and text to convey a message. Sheppard defines graphic novels in 2007 as:much like comics in a trade paperback format – the story is told both through text and through images. While librarians and patrons may use the term graphic novel to refer to any type of text which utilizes visual images heavily, "(Graphic novels) …tell a story, they can stand alone from other titles… many graphic novels deal with current issues, serious subjects, and learning. (12)Graphic novels have become popular among readers during the last ten years. Graphic novels are becoming increasingly popular. Amongst the most fascinating forms of storytelling in use today is the graphic novel. Its combination of art and words allows for unlimited creative possibilities and can result in highly complex and deep narratives. It pays special attention to the culture of the day, merging and altering current sensibilities with more classic aesthetics to produce something new. As a result, the graphic novel is in a perpetual state of reinvention, with creators continuing to spoof past techniques and push the boundaries of what sorts of stories, structures, and points of view it can sustain. It is a relatively new style of literature that arose in the late twentieth century, quickly acquiring popularity among readers and, over time, critics' recognition. Its nearest precursor is the comic book, which likewise rose to prominence in the twentieth century, and the two mediums are still so linked that the lines between them are frequently obscured. Will Eisner, a well-known figure in the comics industry, coined the term "sequential art" to describe both comics and graphic novels, which he defined as "a means of creative expression, a distinct discipline, an art and literary form that deals with the arrangement of pictures or images and words to narrate a story or dramatize an idea" (11). Over the last few decades, a newly evolved kind of graphic narrative has irreversibly changed the landscape of Indian comics. With his first graphic novel *River of Stories* (1994), Orijit Sen was the first to pioneer this form in Indian English literature, highlighting the controversies surrounding the Narmada dam movement in India. Following Orijit Sen, a number of major artists emerged in the arena of the graphic fiction genre. Sarnath Banerjee, Amruta Patil and Vishwajyoti Ghosh are some of the finest examples of such artists.

Deconstruction at a glance

Prior to the actual analysis of the novel, a brief mention is needed on the concept of deconstruction and what is its working principle. Deconstruction essentially alludes to an arrangement of techniques for reading and analysing texts given by Derrida, Paul de Man, and others. These arrangements, on the other hand, are associated with a group of philosophical declarations about language and its meaning. Consequently, on the ground of the universal appropriation of these methodologies and hypotheses, the term "deconstruct" is now commonly used more broadly as a synonym for criticising or displaying the incoherence of a stance. Hence, deconstruction, in association with a text is to find the unexpressed clashing viewpoints of a text which may have stayed behind undiscovered as a result of a certain kind of belief system at work. As reported by M.A.R. Habib:

While Derrida himself has insisted that deconstruction is not a theory unified by any set of consistent rules or procedures, it has been variously regarded as a way of reading, a mode of writing, and, above all, a way of challenging interpretations of texts based upon conventional notions of the stability of the human self, the external world, and of language and meaning. (240)

In this way, deconstruction, in the strict meaning, is a critical technique for disentangling the accepted ideas and presenting modern truths and facts that have previously been overlooked, at the same time acutely examining pertaining worldviews and individual participation. As believed by Barbara Johnson: Deconstruction is not synonymous with 'destruction'. It is in fact much closer to the original meaning of the word 'analysis', which etymologically means 'to undo' . . . The deconstruction of a text does not proceed by random doubt or arbitrary subversion, but by the careful teasing out of warring forces of signification within the text. (5)As a result, deconstruction here refers to a process of recuperation, which includes gaining new knowledge and decoding the incomprehensible. Deconstruction is thus a practice of restoration, re-evaluation or the revealing of different feasible simplifications of reality, even if it is not a process of meaning formation, creativity, or production. The deconstructionist approach of Jacques Derrida is founded on the concept of 'difference' which reflects volatility. The deconstruction method was developed to replace the inflexible composition of the meaning-making process, which assigns a unique, stable meaning to a text. While applying a deconstructive approach to work, the readers take the lead in deconstructing the text by finding gaps in the texts.

Sarnath Banerjee-One of the most talked-about graphic novelists of the modern era, Sarnath Banerjee is praised for his audacious idea of history, politics, and identity. Banerjee's works feature a number of characters who

struggle with identity crises from the very beginning. These characters also mirror the fragmented identity with autobiographical undertones. The identification is made and tasted, which is not surprising. Banerjee suffers from identity issues due to migration and cultural displacement at a young age in England. The majority of his books explore the themes of identity in a hostile environment, and the fragmented and hybrid character of identity, all of which are favourite topics of literary postmodernism that find more expression. His writings address the philosophical significance of values and notions and reflect the issue of identity. He introduces a variety of people who are so closely related that even after their separation, they still share the same identity. Although many authors have written about the issue of identity, Banerjee has examined it in a way that no other author has. He has depicted, drawn, and emphasized the theme of identity among numerous people, which appears strange to all, which is original and fascinating. He manipulates their play so that they appear to be victims of identity theft. His stories speak for people who have never felt at home anyplace. He writes for people who moved around in search of a better life. His writings mostly focus on his characters' way of existence and their struggles to lead normal lives in India. He strives to use humour even in the most trying times of the lives of the characters.

Textual Analysis-Banerjee's books accurately portray the plight of those with a split identity. He constantly keeps the emphasis and the sense in his mind. His first graphic novel *Corridor* records the experiences of different characters living in Delhi. However, in addition to the contemporary life in Delhi, Brighu Sen, the story's narrator and protagonist, also has a personal struggle that is described. It turns out that the book is the national anguish novel. The protagonist serves as vehicle for the author to illustrate the nation's perplexity and crisis, "My cousin inferred, I suffer from obsessive compulsive disorder. Simplistic…But a good conversation starter. Kali thought I was a little crazy…what a joke. There were afternoons I spent examining my toes and talking to Gustav the lizard" (Banerjee 8). Brighu's personality is split, broken, and superimposed, despite his claims to be a swallower of lives and an action-initiator. One of the main causes of his difficulty is this ambiguity. The author of the book has attempted to address the question of Brighu's identification in great depth. His physical characteristics and his obsession with collecting antique things are the two most significant correlations of his identity that the narrative presents. He is a young Bengali man who is compulsively involved in collecting various old and antique items. He considers himself to be a modern-day Ibn Battuta. He is desperately searching for a book by James Watson. He is very eager to get that book as he himself confides, "I am searching for a book…Life seems to depend on it" (3). It seems like he is living for that one book and all his life's goal will be achieved when he will find that.

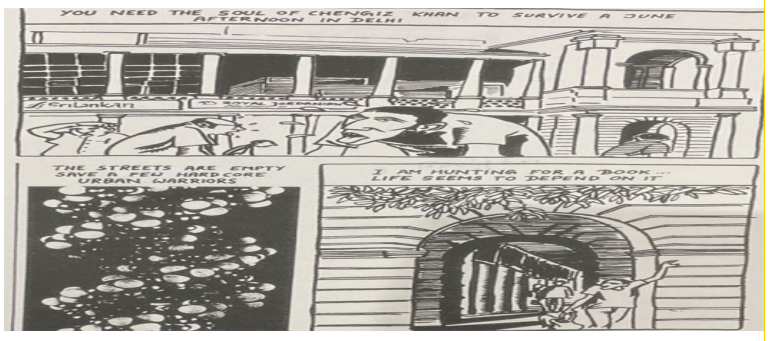


Fig. 1 Sarnath Banerjee. *Corridor*, 3

Loneliness is another form that signifies identity crisis of a person. The narrative informs the reader that he is in love relationship with Kali. But he fails to keep it safe. Brighu unable to commit to his love Kali, a documentary filmmaker, wanders around Delhi in search of rare books until he discovers Rangoonwalla's store. He finds it very difficult to continue his daily chores without any thought of Kali. There is a visual description of his emptiness in the following panel where he is shown waiting for a train on an empty platform. He is always shown in the places that are empty which signifies the emptiness that lies in his heart and life. Banerjee makes it abundantly plain for the readers to understand Brighu's conflict and mental vacillation on the significance of a perfect relationship with Kali, "Women are not goddesses or bitches, often they are both. The perfect lover doesn't exist" (92).



Fig. 2 Sarnath Banerjee. *Corridor*, 92

Underneath the representation of the characters in the story are recurrent themes and overarching motifs such as the shattered reality of urban life, the erasing of humans, and mass manufacturing. For instance, the bookseller, Jehangir Rangoonwalla remained dormant until the day he experienced an epiphany when he was in an elevator which transformed him from a wanderer to a happy and successful bookseller. Rangoonwalla, a wise bookseller who sits in the middle of Delhi's Connaught Place metro station, is ready to enlighten others with his words of wisdom and counsel. After days of

laborious work, including working forty jobs, subsisting on a "bhurjee pao" and engaging in collegiate boxing, he was battered into the city, where he had a moment where he got clarity in an elevator while enroute to an interview (16). Like though his kundalini had awakened, he understood the purpose of his existence "such as only alcoholics do" (17).

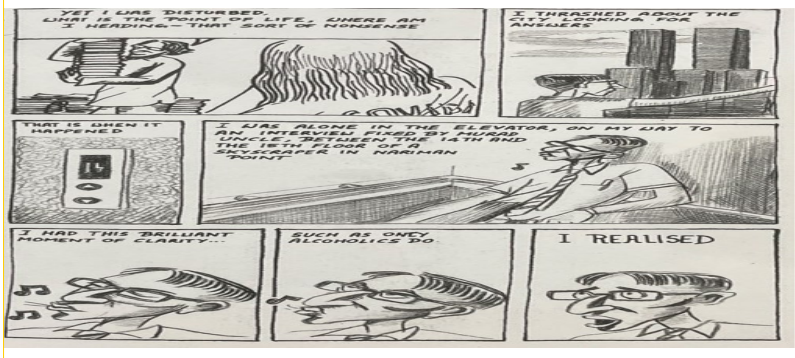


Fig. 3 Sarnath Banerjee. *Corridor*, 17

Another character who is suffering from identity crisis in the narrative is Digital Dutta. He is knowledge seeker as Banerjee says, "torn between Karl Marx and H-1B visa, Digital Dutta lives in his head…in his head he is a faith healer, a quantum physicist, a war reporter, a linguist and a kalari expert" (40). He loves Dolly and they both want to marry each other. But Dolly's father wants Digital Dutta to get a visa and settle somewhere abroad with his daughter. He is torn between his love for Dolly and his current profession which he loves, "A C++ Professional from APTECH is not enough for your father?" (36). The following panel shows that he chooses his profession at the last but at the cost of his love for Kali. He still dreams about Karl Marx and gets tormented about visa. He battles in his sleep with his own dreams against what his in-laws demand of him.



Fig. 4 Sarnath Banerjee. *Corridor*, 40

In addition to Brighu and Digital, Shintu is another significant figure who suffers from identity crisis. He has an obsession with sex, reads Cosmo in search of novel and obscure sex advice. Shintu, a newlywed who finds it difficult to satisfy his bride in bed, searches Delhi's dingy, very shady, obnoxious byways for aphrodisiacs. Additionally, while looking for aphrodisiacs, he comes upon the dilapidated home of a hakim by the name of Tartoosie, who chastises him for his bad character and counsels him to stop his nocturnal pollution and change into an ideal boy. Giving Shintu a little vial of "sande ka tel" a pale extract from the bile of a rare reptile, he claims, "the oil will awaken ten tigers that lay sleeping inside Shintu; restore his original role as hunter gatherer" (78). However, in the end he eventually understands that what he had mistaken for "sande ka tel" was actually just regular hair oil. At this moment, it goes without saying that a significant enlightenment occurs, proclaiming that "sex is in the mind, silly," (101) as Banerjee argues; yet, Shintu is more concerned about the loss of his thousand rupees than this actual fact.

Conclusion-Thus, on a close reading of the book, one can see how Banerjee's protagonists suffer from societal pressure and distance themselves from others and even from themselves. They are alienated by society and are unable to communicate effectively. They fail in both their personal and social lives since they do not express their opinions and keep to themselves. They lack the bravery to express their wants to their families and feel alienated by their oppression. Despite seeing how their life is falling apart, they make the choice to remain strong and give this world one more chance. The novel begins with more naive and careless people and finishes with more experienced and assured ones. For Instance, Brighu still continues his search for a better woman as he says, "Some men abandon the search; some never do, and get disappointed with every woman they meet… and live with the optimism that the next one will be better" (93). Digital Dutta overcomes his identity crisis and finds his life more meaningful with the ghost of Karl Marx. Shintu finally understands the real mantra of a happy married life. In a way, the ultimate actions of all the male characters are statements of the acceptance of their identity rather than an attempt to overcome it.

****

Works Cited-

1. Banerjee, Sarnath. *Corridor*. Penguin Books, 2004.
2. Erikson, E. H. *Identity, Youth and Crisis*. Norton Company: New York, 1968.
3. Habib, M.A.R. *Literary Criticism from Plato to the Present: An Introduction*. Chichester: Wiley- Blackwell, 2011.
4. Johnson, Barbara. *The Critical Difference*. Baltimore: John Hopkins UP, 1980.
5. Mercer, Kobena. "Welcome to the Jungle: Identity and Diversity in Postmodern Politics"*Identity: Community, Culture, Difference*, ed. Jonathan Rutherford, 1990, pp. 43-71.
6. Sheppard, April. "Graphic novels in the library." *Arkansas Libraries*, vol. 64, no. 3, 2007, pp. 12-16.

Refelections of Cuisine and Costumes in Naveen Patnaik 'A Second Paradise'

Dr. Ranjana Das Sarkhel
Professor
Department of English
MATS University, Raipur (C.G.)

Rajkumar Baghel
PhD Research Scholar
Department of English
MATS University, Raipur (C.G.)

Abstract-*This review paper seeks to provide an explanation of Indian customs, traditions, rituals, cuisines and festivals. It will try to understand what it is about these aspects of Indian heritage that catches the attention of foreign readers. Additionally, it will also outline the objectives of conducting this research. Since this is a review paper, the data used is from secondary sources. The findings from the literature we have surveyed will be discussed as well as the conclusions drawn from those findings.*

Keywords: *Indian culture, Indian traditions, Indian rituals, Indian cuisines, Indian history, Miniature Paintings, Naveen Patnaik*

Introduction:-As a country that has witnessed and withstood the rule of various empires and dynasties, it comes as no surprise to learn that Indian culture is a term that would involve many things. It is a culture that combines elements from different cultures such as vedic, post-vedic, Mughal and British which have played their parts in governing or dominating the country in separate ages (Mohammada, 2007). By definition, Indian culture would include the languages, religions and their traditions, dance, music, art, architecture, food, philosophy, customs and values that are followed or practiced in India. There are 29 states and 7 union territories and while they do share some similarities in these aspects with each other, there are some things distinct to each place or people. An ethnic and cultural diversity such as this is perhaps rivaled only by a few countries in the African continent.India pulls in tourists from many countries every year, with each state having its own attractions. This is an industry that generates direct expenditures of $20 billion and an estimated annual economic impact of over $34 billion. The reason why tourism will always remain a thriving industry in India is because of the diversity offered by the country. They have the opportunity to take in the cultural diversity of the country and to visit wild safaris, desert safaris, natural places, adventure spots, spiritual places, heritage/historical places and local festivals.

Objectives of the Study

- This study has the following objectives:
- To study Indian traditions, customs, rituals, and styles and thatfascinate foreign readers
- To study the Indian life that has been depicted through miniature paintings
- To explore the approach towards Indian culture and traditions in the worktitled '*A Second Paradise: Indian Courtly Life*' by Naveen Patnaik
- To critically evaluate the reflection of Indian culture and tradition in cuisine and costumes in Naveen Patnaik's book '*A Second Paradise'*

Literature Review-This part of the review paper intends to review pre-existing works related to the topic Reflections of Cuisine and Costumes in Naveen Patnaik's '*A Second Paradise*' with the intention of establishing why this study is necessary. This section will include research papers related to the current area of study, identify the research gap, thereby specifying why the study is essential.

Realistic Perception of Preserved Indian Traditions and Cultures-India is home to many religions. Of these Hinduism, Buddhism, Jainism and Sikhism are native and based on the concepts of dharma and karma. These two ideas have influenced much of Indian philosophy, literature, architecture, art and music (Prakash, 2005). Most of the population adheres to Hinduism, making in the majority religion. Abrahamic religions like Islam, Christianity, Judaism are also present in India, along with persecuted religions like Zoroastrainism and the Ba'hai Faith. Religion is an important part of an Indian's life and there are several customs, traditions, rituals and festivals tied with each of them. Foreigners have always been fascinated by the vibrant diversity of India. To encounter and celebrate so many different things in one place is precisely what makes for a unique experience in India.

The following are some of the distinctive customs and traditions of India:

Namaste - the practice of folding hands in front of the chest and saying 'namaste' (with pronunciations differing from place to place) is a common way of greeting people in India. It literally means 'I bow to you'. Seeking blessing by touching the feet of elders is also another form of showing respect.

Festive season is a constant in India, considering the religious diversity. Hinduism has Dusehra, Diwali, Holi, Makar Sankranti/Pongal/Lohri, Shivratri, Ganesh Chaturti etc. The other religions festivals include Eid (Islam), Christmas (Christianity), Baisakhi and birthdays of the Gurus (Sikhism), Mahavir Jayanti (Jainism), Buddha Poornima (Buddhism) etc. Dusehra is the most auspicious Hindu festival which is celebrated for 10days. It signifies the victory of Lord Rama over the demon Ravana in the Indian epic of Ramayana. It is one of the festivals that celebrate the victory of good over evil in Hindu religion. This festival is also known as Vijayadashami celebration is celebrated in the month of Ashwin across Indian households to spread happiness,

joy and triumph. According to Hindu mythology, it is believed that on this day Goddess Durga eliminated the demon, Mahishasura from the earth. Diwali, also known as Deepavali or the festival of lights, is one of the most important festival of Indian religions. It symbolises the spiritual " victory of light over darkness, good over evil and knowledge over ignorance." This festival is widely associated with conflagrations between good and evil entities. On this day people decorate their homes with diya, candal and lichu. People believe that on this day Maryada Purusa Prabhu Shri Ramachandra returned to his kingdom Ayodhya after completing 14years of his Banbas. Makara Sankranti is one of the most popular festival of Indian which celebrated in the month of January every year. This festival is dedicated to the Hindu religious Sun God Surya. It is observed to marks a new beginning. Every twelve years, the Hindus observe Makara Sankranti with Kumbha Mela- one of the world's largest mass pilgrimage. At this event, they say a prayer to the Sun and bathe at the Prayagraj confluence of the river Ganga and river Jamuna. It is a time of celebration and thanks giving and is marked by a variety of rituals and traditions. Pongal is really on the biggest and most popular festival celebrated in Tamilnaidu. It is the harvest festival of south India. Pongal day is celebrated as thanks giving day.It comes in the mid of January and is celebrated for 4days.Those 4days are ; Bhogi, Pongal, Maatu Pongal, Kaanum Pongal. Lohri is one of the famous festival of India. This is the most popular festival of Punjab which is celebrated every year by the people of Punjabi religion in the winter month. It is believed on the of Lohri when the day is the shorted day of the year and the night is longest night of the year. This day is celebrated as a farming festival lighting a bonfire, dancing and singing praises of the bridegroom. Maha Shivratri is one of the most important festival of the Hindus. Maha Shivratri literally means great night of Shiva. It is celebrated with great enthusiasm. This festival signifies the marriage of Lord Shiva with Mata Parvati. Maha Shivratri the temples are full with devotees. The devotees fast the whole day and worship Lord Shiva by pouring milk,water on the Shiva Linga. Leaves of Bel trees is offered to God along with flowers and fruits the day of Maha Shivratri has other significance as well. Ganesh Chaturthi is one of the eminent festivals of India. This festival is celebrated all over the country with immense joy, but it is majorly celebrated in the state of Maharatra. The festival is celebrates the birthday of the Hindu deity Lord Ganesh who is believed to be the remover of obstacles of life. Eid-ul-Fitre, also known as the " festival of Breaking the fast" is a major Muslim holidays that marks the end of Ramadan, the holy month of fasting. It is celebrated on the first day of the Islamic month of Shawwal. Muslims around the world celebrate Eid-ul-Fitre by attending prayer services, visiting friends and family, exchanging gifts and feasting on special sweets and dishes. Christmas is an important Christian holiday celebrated on 25th December to commemorate the birth of Jesus Christ. Christian around the world celebrate this day with traditions that vary from country to country, including attending the Church services, singing carols, decorating Christmas trees ,exchanging gifts and sharing special meals with friends and families. Baisakhi is a major festival of the Sikh community celebrated on 13th or 14th April every year. It marks the founding of the Sikh community known as the Khalsa by Guru Govind Singh in 1699. The festival is celebrated with great enthusiasm with processions, music and dancing in the streets. People also visit Gurudwaras, the Sikh places of worship to offers prayers and seek blessings. The birthday of Sikh Gurus is celebrated as Guruparab. It is observed by Sikhs all over the world to commemorate the birth, life and teachings of the ten Sikh Gurus. The festival is marked by prayers, singing of hymns and community meals known as langer. Mahvir Jayanti is a major festival of the Jain community, celebrated in the March or early April to commemorate the birth of Lord Mahavir, the 24th and last Tirthankara of Jainism. The festival is celebrated with great devotion, with people offering prayers, fasting and donating to charity. Buddha Purnima, also known as Vasak, is a major Buddhist holiday that commemorates the birth, enlightment and death of Gautam Buddha. The festival is celebrated on the full moon day in the month of Vaisakha (April- May). Buddhists celebrate Vasak with special prayers, meditations and visit to Buddhist monasteries, temples and shrines.

Joint Families - it is very common for all the members in a family to live in a large house. Joint Families are very rare to see joint families these days. Most of the families have become nuclear families and moved out from the large and joint family system. In the olden days, the joint families were what were very common and there are many advantages and disadvantages in the being both a joint and nuclear family.

Arranged Marriages - this practice can be traced to the vedic times and have been the accepted norm of matrimony in India for a very long time. In the past, the age at which women and men got married was young but it has increased for both sexes in recent times. Arranged Marriage is type of marital union where the bridge and groom are primarily selected by individual other than the couple themselves, particularly by the family members such as the parents.

Clothing in India is mostly traditional, with a difference in formal and informal ethnic wear. Sari, Kurta, Salwar Kameez, Kurta Pyjama are worn everyday

by people. Of course in big cities, people do wear western clothes for work and parties but if there is a wedding/ religious function, they mostly wear embellished formal ethnic wear. The clothing in India also encompasses a wide variety a wide variety of Indian embroidery, prints, handwork, emblishment and styles of wearing clothes. A wide mix of Indian traditional clothing and western styles can be seen in India.

Eating with hands - This is extremely common and is considered the right way to eat food in most places. Restaurants do offer spoons and other cutlery but usually those are meant for serving of dessert.

The Holy Cow - The cow is regarded as holy in Hinduism. The animal is worshippedas a maternal figure and caring for cows is considered equal to caring for mother earth.Long (2004) discovered that food serves as an indicator of authentic ethnic experience through its use of local ingredients. This would explain why tourists tend to consume Indian cuisine when they come to India. The same study found that food can be manipulated as a resource for tourism by portraying a desired image or identity of an ethnic community'.

Josiam and Monteiro (2004) investigated the perceptions held by white Americans, South Asians and other ethnic groups towards the food served and service provided in Indian restaurants in the USA. It was found that white Americans and South Asians constituted the majority of the clientele in Indian restaurants. Their paper cited another study (Papadopoulos, 1997) which found that American consumers' interest in spicy and ethnic foods was growing,leading to the conclusion that there was a lot of potential for Indian food to become popular.Sagi and Kreiner (2011) conducted a study to analyse the experience of foreigners who arrived at Dharamsala for spiritual tourism. Their findings can be summarized in the following points:

Cultural tourists (people who specifically travelled to places with the intention of getting an immersive experience of the local culture) sought benefits such as 'self-expression, self-enrichment, recreation…social interaction and a sense of belonging' as well as 'lasting physical products of the activity, including education and learning'.

Pilgrimage has started becoming increasingly popular. The impact of this pilgrimage was such that some of the tourists even accepted Buddhism as their religion and became monks. For many tourists, the main motivation behind traveling to Dharamsala (in Himachal Pradesh) was studying (philosophy or Buddhist religion, among other things). Then came working and wanting to practise their belief. Culture, volunteering, spirituality, yoga, meditation were among the other motivations. Some of the respondents had the initial intention of partying, doing drugs and being on holiday but all of that changed after discovering Buddhism.

Most of the respondents were people who had decided to stay in Dharamsala for an extended period of time. There being a marked difference in the standard of life in an Indian monastery and the West, they were asked whether the absence of certain facilities (like oven, washing machine, fridge, western toilets) made life difficult for them. While most admitted it certainly made life less convenient for them, they were also relieved about living in a non-material environment, citing that they were happierhere.

People had different pathways to Buddhism. But most of the pilgrims were motivated by a desire to engage in more spirituality. They had been deeply dissatisfied with the Western life and the pressures of daily existence. They were able to find in Buddhism a sort of happiness that they wanted from life. People were grateful for spirituality filling in a gap in their lives. They also wanted to influence their friends and family in a more positive way.

Most of the participants saw a visible change in themselves, especially in the things that interested them. There was no longer an interest to do drugs, attend parties or listen to music, marking a renunciation of such material comforts on their side. They also believed their interest in Buddhism would continue, expressing a desire to workin Dharma centres upon going back home.

Conceptualising Indian Life Through Miniaturized Paintings-India has about 5 recognised schools of miniature painting:

1. Pala School - This school can be traced back to the 7th century A.D, under the patronage of the Palas of Bengal. Buddhist texts and scriptures were depicted on 3- inch wide palm leaf manuscripts.
2. Jain School - In the west, Jainism was the subject of miniature paintings that prevailedin the areas of Gujarat, Rajasthan and Malwa from 12th to 16th century A.D.
3. Mughal School - Persian influences soon arrived in the 16th century A.D. under the Mughals. One of the changes was the replacement of palm leaves with paper. Most of the paintings until now had been depictions of deities. The Mughal era weddedPersian style with local Indian art to create intricate detailed works. Palace life and theachievements of the royals were depicted during Akbar's reign. Jehangir's rule brought in a change of refinement and charm, along with the introduction of Europeantechniques like shading and perspectives.
4. The Rajput School - The decreased patronage in Aurangzeb's reign caused many artists skilled in the miniature tradition to shift to other princely courts, such as that of Rajasthan, leading to the development of the Rajput school of miniature painting(17th to 18th Century). These miniatures focused on the love stories of Lord Krishna and the epics of Ramayana and Mahabharata. Another style that

5.emerged under the patronage of the Rajputs was the Pahari school, which merged Mughal and Vaishnavite styles.Deccani Style - was practised in the areas Bijapur, Ahmednagar, Golconda and Hyderabad. It style combined European, Iranian and Turkish influences.

7.Majlis (2006) studied the representation of professional and working women in miniature paintings of Mughals. She mentions a rather unseemly miniature from Akbar's *Hamzanama*, one which depicted women labourers working in the Agra Fort. These women appear to be heavily built and of Indian origin with dark skin. There is another miniature which shows women working during the construction of Fatehpur Sikri. The Persian court-historian Firishta who served the Mughals has provided an account of his examination of women labourers in the 17th century. According to Muglis, women from the lower classes of society found employment as laborers.

There exists another miniature which shows female guards (called urdubegis, who were heavily built like the Amazon women, mostly of Habshi, Tatar, Turk and Kashmiri origin) carrying a ruler inside the Zenana, where male guards weren't allowed to enter. There is also a miniature of female acrobats performing alongside their male counterparts within the court in front of a royal retinue, proving that depiction of women had become an accepted norm in painting. All the miniatures are of course, rich in detail and in most cases the women are just a part of the painting. This permits us to focus on all the particulars depicted and appreciate the skill of the painters. Other aspects present in the Indian life of that age are very much discernible from these paintings.

Analysis of Indian Cultural Heritage in '*A Second Paradise'*-Naveen Patnaik's book on Indian courtly life is a lavish exhibition of exquisite Indian miniatures and pictures that have been created especially for this book by Bannu, a descendant of court painters. The artworks replicate the splendor laden life of the Mughals, a life of silk tents, jewel caskets, marble pools, narcissus fields and love pavilions. The author touches upon Mughal history before transporting readers into a bazaar and leading them into the goings-on at a harem. Sethi (2014) tells us that Patnaik builds an anecdote around each painting that reveals an aspect of Indian life. He mentions the account the author gives about the peshwaz, an outer garment worn by the royal ladies which was made from the finest of muslin. Though this garb was meant to conceal, its result was actually erotic because muslin is transparen. Patnaik's writings add more color to the paintings, describing in detail various features of Mughal Life.

Findings and Critical Studies:-The first section of the literature review discussed three papers. Long (2004) identification that food is viewed as a marker of authentic ethnic experience, there by Sag proving that eating local cuisine is a way of associating with or taking part in local traditions/culture for tourists. Josiam and Monteiro's (2004) study found an increase in interest towards Indian food in the USA. White Americans and South Asians constituted the majority of the clientele. South Asians were reported to influence the decision of other ethnic groups when it came to visiting an Indian restaurant. Sagi and Kreiner's research looked at the factors that propelled spiritual tourism in Dharamsala. Their study supplied direct information on the expanding phenomenon of Western people visiting the East for self- fulfilment, spirituality, study and following their belief. All three papers help us see the manner in which facets of Indian culture are seen by foreigners. Discussion of these papers opened up further questions about the difference between Indian culture and the culture of countries in Europe.

The second section analysed the depiction of working women in miniature paintings of the Mughal era. The paintings of this era represented women as part of public and royal life, especially as laborers, acrobats, dancers and as guards of the zenana. The researcher arrived at the conclusion that miniature paintings from 16th to 18th century characterize the courtly life of the Mughals. The third section reviewed the opinion of Sethi (2014) on Naveen Patnaik's 'A Second Paradise', identifying that the book portrayed royal life from 1590-1947 in its pages replete with many paintings.

Conclusions and Recommendations:-In the course of this study, it was discovered that India has a very rich tradition that fascinates foreigners. Understanding the varied traditions and practices and the way in which they are regarded by foreigners helps form a thorough appreciation of Indian culture in our minds. The life depicted in miniature paintings enabled us to grasp the opulence of life and the styles that were prevalent in the different eras of India. Various influences in painting also point to some political changes. The analysis of Patnaik's literary work made it possible for the researcher to comprehend the respectful and revered but slightly wry approach of the author, making the book a wonderful read. He has provided a thorough description of palace life, from the events that thrust the rulers into godliness to the vibrant celebrations that marked the spectacle of courtly life. His interest in the history and heritage of India justifies his position as a founding member of Indian National Trust for Art and Cultural Heritage. [INTACH]

****

References:

1. Mohammada, M. (2007). The foundations of the composite culture in India. Aakar Books.
2. Shankar, S. (2015). Impact of Heritage Tourism in India: A Case Study. International Journal of Innovative Research in Information Security (IJIRIS) India.
3. Prakash, O. (2005). Cultural history of India. New Age International.
4. Josiam, B. M., & Monteiro, P. A. (2004). Tandoori tastes: perceptions of Indian restaurants in America. International Journal of Contemporary Hospitality Management.
5. Long, L. M. (2004). A Folkloristic perspective on eating and otherness. Culinary tourism, 20-50.
6. Papadopoulos, H. Trendy tastes. Restaurants USA, 17(2), 41-44.
7. Collins-Kreiner, N., & Tueta Sagi, K. (2011). Tourism to India as popular culture: A cultural, educational and religious experience at Dharamsala. South Asian popular culture, 9(02), 131-145.
8. Majlis, N. K. (2006, January). Representation of Professional and Working Women in Mughal Miniature Painting (16 Th-18 Th Century). In Proceedings of the Indian History Congress (Vol. 67, pp. 307-311). Indian History Congress.

Socio-Cultural Differences in Sudha Murty's Novel The Mother I Never Knew

Dr. Ranjana Das Sarkhel
Professor
Department of English, MATS University, Raipur, C.G

Ms. Reecha Sao
Research Scholar
Department of English, MATS University, Raipur, C.G.

Abstract: Sudha Murty is a writer who contributes to Indian English literature, a field that has been enriched by many renowned Indian English novelists such as Kamala Markandaya, Ruth Prawer Jahabvala, Anita Desai, Manju Kapur and Shobhaa De. Through her work, Sudha Murty presents thought-provoking stories that shed light on the ongoing struggles faced by people from all walks of life. She portrays human behavior in a realistic manner and her exceptional storytelling skills allow her to address social challenges that prompt the world to take notice. Sudha Murty's stories revolve around ordinary people and she is renowned for her views on altruism and self-realization. Her latest novel delves into the complexities of being a woman, a mother, and a writer. The novel is a sociological and suspenseful exploration of the theme of maternal abandonment, touching on humanistic values, interpersonal relationships, and the emptiness that comes with being a mother. The book is composed of two novellas that follow the journeys of two men who are in search of their birth mothers. Throughout the novel, Sudha Murty highlights the theme of deception and injustice towards women, making it a central aspect of the book.

Keywords: Human behavior, environment, poverty, rejected, illegitimate, exposed, adoption, hardened, patriarchal, unjustified, sociological and aggravated

Introduction-Indian English literature has a rich and exceptional contribution from women novelists who have focused on various aspects of life and tackled different problems with utmost care. Kamala Markandaya, Ruth Prawer Jahabvala, Anita Desai, Manju Kapur, Shobhaa De, and Sudha Murty are some of the notable writers in today's literary world. They present the reality of society and explore issues related to rights, arrogance, responsibility, and different experiences of existence, as well as the challenges of patriarchal hegemony. Their work is thought-provoking and highlights the importance of ongoing efforts towards social change. Sudha Murty, in particular, writes about the people around her and connects them through her stories. Her work displays compassion for human behavior and her brilliant way of presenting social challenges forces readers to reconsider their perspectives. Her stories deal with the lives of ordinary people and often explore themes of giving and self-realization. Her latest novel, The Mother I Never Knew, portrays her loyalty as a woman, a mother, and a writer, and delves into the conflicts of the inner and outer selves of the characters. The novel brings the social mistakes and impure thoughts of society before our eyes and exposes the indignation against women of the weaker sex by the powerful. The novel is notable for its structural innovations, humanistic approach, interpersonal relationships of the characters, and exploration of the inner emptiness of motherhood. The novel is an attempt to fight against the established forms of patriarchy, and while it is written from a male perspective, the undercurrent speaks to the suffering and injustice done to motherhood. The documentary summarizing the novel highlights the injustice done to two innocent mothers, Bhagava and Nirmala, and empowers women to understand their rights and change the mindset of society.

Socio- cultural Differences in Society -Sudha Murty's novel, A Mother I Didn't Know, comprises of two short stories that explore the journeys of two men. The novel is skillfully crafted, with a rich interplay of uncertainty and surprise, which keeps readers engaged throughout. In the first novella, Bhagirathi (Bhagava) is mistreated by her husband and mother-in-law, leaving her penniless, widowed and her son orphaned. Venkatesh, her son -in-law who works as a bank executive, is unaware of her existence and sets out to uncover his father's past. Sudha Murty delves deep into the characters' minds, revealing their actions, mistakes, and pain in a genuine and honest manner. The novel is well-structured and captivating, leaving readers eagerly anticipating the next development.

Sudha Murty realistically portrays the respect given to mothers as seen through Venkatesh's gesture of bringing fruit to his stepmother Bhagava. The author paints a vivid picture of Bhagava, a lean Brahmin widow donning a torn white sari and a clean-shaven head, who struggles with poverty after being abandoned by her family. Despite being deprived of parental, social, and financial support, Bhagava persevered through her difficult life. She was once a beautiful young woman with light complexion and long black hair, and was educated until the fourth grade. Bhagava worked as a cook in Matunga while living with her maternal uncle Gopal in her Shurupari, where she met and married Setu, a distant relative of her neighbor who was studying in Mumbai. Setu was a young, smart, and handsome man, but his mother asked him to stay in Mumbai to prepare for exams shortly after Bhagava became pregnant. During Bhagava's Seemantham ceremony, her mother-in-law whispered to her that the child she carried did not belong

to Setu, but rather to Hanuma, Gopal's uncle's son.She sabotages her son's married life with her false messages and orders him to leave her for her infidelity. Setsu leaves her and later she learns that her husband died in a train accident. Humanist Shobha De also commented on hypocrisy in relationships: Harmless hypocrisy is okay. Manipulative hypocrisy is not."2 (Human Relations in S.Des Romanen, 197). A woman completely trusts her husband, which makes it very difficult for her to make judgments. A hypocrite, Setu did not tell her that he was alive, nor did he choose to see and care for her. he was encouraged by the dubiousness and relative ambiguity of others' beliefsSociocultural Differences in Society Sudha Marty's objective work, The Mother I Didn't Know, consists of two short stories, examining the quest of two men.

The book is filled with opulent back-and-forth storytelling, creating high expectations for future developments. The interplay of surprise and indecision is the key source of the ongoing story's charisma and vibrancy, showcasing Sudha Marty's cleverness inside and out. In the first novella, Bhagirathi (Bhagava) faces injustice at the hands of her husband and mother-in-law, leaving her impoverished, widowed, and her son orphaned. Venkatesh, her son-in-law and a bank executive, unaware of his stepmother, embarks on a search for his father's past. Sudha Murty delves deep into the characters' minds in both stories, revealing their actions, mistakes, and pain with honesty and sincerity.

Marty realistically portrays respect for mothers by allowing Venkatesh to visit his stepmother Bhagava with fruit. Bhagava is depicted in the foreground as a lean and strong Brahmin widow wearing a torn white sari and with a clean-shaven head, burdened with poverty due to being deprived of parental, social, and financial love by her orphans. Despite being beautiful in her youth with light skin and long black hair, Bhagava only studied up to the 4th grade. She married Setu, a distant relative of her neighbor who worked as a cook in Matunga and studied in Mumbai while living with her maternal uncle Gopal in Shurupari. Bhagava never claimed her rights and her condition was similar to Vilmati's in Manju Kapur's difficult daughters.

She was a victim of circumstance, as women were often seen as each other's foes. She suffered from the hostile actions of others, which left her traumatized and filled with anger. She was subjected to false accusations and her mother-in-law played dirty politics to secure a higher dowry for her son's marriage. Despite her husband being alive, she carried the heavy burden of being a widow. Her husband unjustly abandoned her, despite her being a chaste and pure virgin. In addition, other factors were considered when constructing the bridge, such as its location and design. (Sanderson, RSCO, LLC. P.11). Sudha Marty portrayed Bhagava as a victim of widowhood who faced numerous social taboos and financial constraints. Fortunately, she was saved by Chouda and left the village behind.After being wronged by her husband and in-laws, Bhagava moved to Dharwad where she worked as a maid to support herself. She felt a mixture of emotions - embarrassment, anger, and deep hurt - after discovering her husband's infidelity. With no one to turn to, she felt hopeless and attempted suicide by drowning in the river Krishna. In her final moments, she spoke to the river as a mother figure and pleaded for mercy, stating that she was pure and asking for protection for her unborn child. Sudha Marti's portrayal of Bhagava's life highlights the seriousness of the challenges she faced, including being treated as a family curse and being blamed for her husband's death. It shows that while marriage is meant to be a sacred bond, its breakdown can have devastating consequences.

She was also shunned by others. Believing her husband to be dead, she dedicated herself to caring for her newborn, her mother, and cooking for others. Her hands became rough and calloused, and her body stiff from years of hard work. Her son, Shankar, suffered greatly from his father's neglect during his childhood. Despite the hardships, Bhagava's love for Shankar remained strong, and she supported him in becoming an elementary school teacher. Through his job, Shankar was transferred to many places and eventually married a wonderful woman. However, Bhagava continued to endure a difficult life. Records show that Shankar and his family lived in poverty, with no land of their own, and even his daughter, Mandakini, could only afford to take Mandarin lessons.

Marty contrasts the opulence of the Venkatesh family's house, Anandita, with the hardships endured by Shankar and his mother. Venkatesh enjoys a life of luxury and privilege, while Shankar and Bhagava struggle to make ends meet. The novel reveals that Venkatesh's father, Madhav Rao, is actually Setu Madhav Rao, who changed his name after surviving a train accident. Madhav Rao abandoned his wife and family, but attempted to make amends by sending her a money order, which she did not receive. Setu was very attached to his mother.

The protagonist's husband made several mistakes that had dire consequences. He listened to his mother and abandoned his wife, then remarried Venkatesh's mother. The novel not only portrays the impact of female abandonment but also highlights the importance of self-examination and mistrusting others. Through the novel, the author sheds light on the suffering of women in our country caused by patriarchy and ignorance. After the protagonist's son-in-law Venkatesh searched for her and her son Shankar, he gave her 50 rupees that he had inherited from his father as a form of aid. Venkatesh's daughter, Gauri, is a highly educated and empathetic doctor

who donates her own money to help those in need, including Venkatesh himself. Bhagava's life flourished with the help of Venkatesh and Gauri's generosity, which speaks to her resilience. She embodies a modern woman who is educated, compassionate, and will never betray others. The most prominent feature of the novel is the complexity of its two stories and its theme of injustice against women. The Mother I Never Knew portrays the mental crisis of its characters in greater detail and sheds light on how women's rights are suppressed and neglected by men. The mothers in the novel are oppressed and subjugated by a traditional society that disregards their needs and desires. As Anita Desai, the renowned novelist, once said, "Love must be like a tree, it demands nothing, gives everything, and takes no effort. But unable to follow him, his heart shouting a "big no", fighting the tide, fighting it, he knows what the demands are and how much it costs to meet them. Differences in likes, dislikes, and dispositions are removed as immaterial" (Silas Baruch, 6). Nirmala, a victim, has passed her exam, but her period is now late.

After engaging in a premarital relationship, she found herself pregnant and unmarried. Unaware of the repercussions of her actions, she endured immense suffering. She was filled with shame and anxiety about having a child outside of wedlock. She confided in Dulari, who then told her mother, and eventually the news reached her father. To protect her family's honor, her mother sent her away to her father's farm where she gave birth to her child illegitimately, and later remarried following her father's strict advice. This woman was deeply committed in heart and soul. Another story featured in the novel was about Mukesh, the illegitimate son of his biological mother who had abandoned him. He was shocked to discover the truth that he was an adopted child.The second novella in the book portrays the journey of Mukesh, who was born to Nirmala Kumari, a clueless teenage mother, and was eventually adopted by Rupinder and raised by Sumathi. The author, Sudha Murthy, depicted Nirmala's life as one filled with excessive care and protection from an authoritarian father who wanted her to marry into a powerful family. Despite this, Nirmala fell in love with Anand, a poor college student from another community who was her English teacher. She would bring him food, and one day, he got injured while studying ancient monuments on the outskirts of her village. However, their love story was short-lived as Nirmala became pregnant, and Anand was forced to leave. Mukesh's journey, as an adopted child, is depicted in the novella as he navigates through life with his adoptive mother, Rupinder, and later, his birth mother, Nirmala.The relationship between the teacher and student took a turn when the teacher unknowingly made a physical advance towards Nirmala, leading them to start spending time together. Nirmala, without realizing it, crossed boundaries and engaged in immoral acts which later caused her suffering. Baruch Silas, a gifted writer and orator, stated that Nirmala faced a difficult choice of abandoning her own child by placing it on the temple steps and keeping it a secret. Her lover remained unknown since her pregnancy. Although it was not entirely her fault, Anand must also be held accountable for not considering the consequences of their love.

The book depicts Rupinder, a compassionate Punjabi woman, who becomes close to Nirmala and learns about her pregnancy. Rupinder, who is unable to have children of her own, becomes Nirmala's savior and her maternal love shines through. Married to a hot-headed man named Surinder, Rupinder's love for the baby is portrayed in a heart-warming manner. Nirmala, who gives birth to a healthy baby boy, presents Rupinder with a gold chain and requests her to take care of the baby. Overwhelmed, Rupinder asks for the baby's forgiveness and promises to take care of him. She prays that no other woman has to face the same punishment that Nirmala is enduring for her actions.

One of the most shocking scenes in the novel is when Dulari drops a baby down the steps of a temple, and Rupinder comes to the baby's rescue. The author describes a crowd gathering around the baby, and Rupinder claiming that her own baby had died a month earlier, offering to take care of the abandoned child if no one else claims him. Rupinder takes the baby with her to her husband's family in Jalna, Maharashtra, but they are not pleased about having an orphaned child with birthmarks. Even Rupinder's husband suggests leaving the baby at an orphanage or a gurdwara, showing how people can be selfish and disregard the emotions of others.

Lupinder's strong desire to have a child was not shared by her family, and their lack of care towards her son, Az (Mukesh) Munna, was heartbreaking. The family rejected Munna due to a black spot on his right leg, which was believed to bring bad luck. However, Munna found love and acceptance at Sumathi's house. When Rupinder's family decided to move to Amritsar, they didn't want Munna to come with them, and he was left behind. Despite this, Munna grew up to be a confident, innocent and vulnerable child. When Lupinder became pregnant and gave birth to a boy, the family's fortune changed. Munna brought them joy and wealth, and Sumathi's garment business flourished, leading to the establishment of a new factory in Bangalore. Throughout all these changes, Sumathi cherished the gold chain given to her by Rupinder, as a reminder of the love and sacrifice that went into Munna's upbringing.

Munna was overwhelmed with sadness when he learned that he was adopted by Rupinder. His mind was consumed with the desire to meet his birth mother. Upon

finding her, he discovered that his father was dying of liver cirrhosis, and his mother worked at Gurupleet. He asked her about his adoption and the reason behind it. Rupinder explained that after her marriage, she was sent to her parents' home and struggled to conceive. Her mother-in-law constantly belittled her and made her feel inferior. Eventually, she became pregnant but fell ill and was sent to her parents' home to give birth.

The story concludes with Mukesh's successful search for his birth mother, thanks to his intuition. Sumathi decided to take a picture of Neil and Mukesh as a memento of their love before their departure. Rupinder suggested that Sumathi adopt Mukesh, and she agreed. Lupinder urged them to give Mukesh a good education and raise him to be a good person. Although Rupinder was struggling with a difficult home life, an abusive mother-in-law, an alcoholic husband, and a broken family, she sought out Sumathi for a better future for her son. She expressed her despair at having to give him up, but found solace in knowing that Sumathi and Lupinder were friends. Lupinder offered her water to help ease her pain. Regardless of who the mother is, they always want their children to be loved, cared for, and protected. Rupinder also informed Sumathi that Mukesh was born on Buddha Purnima and asked her to feed the poor on that day to celebrate his birthday.

The novel follows the life journey of Mukesh, also known as Munna. From an early age, he was introduced as Rupinder's son to Sumati's family, and they soon grew to love him as their own. Rupinder and Munna frequently visited Sumati's house, and Sumati and her husband Krishna provided Munna with the care and support he needed. Although they knew he was adopted, they kept it a secret from society and their family, who might have treated him differently. Sumati encouraged and supported Mukesh at every step of his life, and his happiness brought Rupinder great joy.

Munna had the opportunity to let go of his distrust and build his self-esteem, embracing his innocence and vulnerability. After Rupinder told her in-laws that she was pregnant, she gave birth to a boy, Munna, who brought immense joy to the family and led to their increasing prosperity. Sumati's garment business grew rapidly every year, and they built a new factory in Bangalore, where they settled. Sumati cherished the gold chain that Rupinder had given to Munna before parting ways.Munna's revelation that he was adopted left Rupinder feeling sad and distressed. He felt a strong desire to find his birth mother and meet her. After some searching, he discovered that his father Surinder was suffering from cirrhosis of the liver and his mother worked at Gurupreet. He asked her persistently why she had given him up for adoption. Rupinder explained that after her marriage, she was unable to conceive and was often ridiculed by her mother-in-law. She eventually became pregnant but was told by her mother-in-law to return to her parents' home after giving birth. The story comes to a close when Mukesh, using his clever intuition, is able to locate his birth mother.

Socio-Cultural Theory-John Bowlby, a psychiatrist who worked at a child consultation center in London, proposed attachment theory in his seminal work published in 1958. Through his work with emotionally disturbed children, he gained insights into the psychology of children. Bowlby's attachment theory explains how early separation between mother and child can affect children emotionally.

The storyline reveals how the protagonist's birth parents showed no concern for their son's psychological and emotional well-being as a young child. As the plot unfolds, it is disclosed that the protagonist was twice handed over to Sumathi and Rao Saheb by his biological mother and his parents who kept him for two years. He suffered merciless abuse at a tender age and was easily abandoned by his parents. His heart shatters when he discovers that he was not born out of wedlock and that his parents did not welcome his arrival into the world. As the story progresses, Sumathi shares her past and narrates to Mukesh how she and her husband obtained custody of Mukesh from his biological parents. Sumathi explains that Mukesh's relatively affluent birthplace viewed him as a misfortune for her family and business, except for his birth mother.

Over time, the two families become neighbors and develop a close bond. Mukesh's biological mother, Rupinder, becomes friends with Sumathi and her children, Neil and Munna. However, Rupinder soon realizes that her mother-in-law and husband are abusive towards her and view her son as a bad omen for their family due to a birthmark on his right leg. To escape their toxic environment, Rupinder's family decides to move to Amritsar and start a new business. Unfortunately, Rupinder's mother-in-law and husband insist that she either give up Munna to them or abandon him in an orphanage. Her husband stands by his mother's side, leaving Rupinder to face the difficult decision of parting with her son.Lupinder finds herself in a state of distress and confusion, unable to make a decision about what to do with her son.The attachment theory perspective highlights the emotional neglect that Munna suffered from both his biological parents and Rupinder's husband and mother-in-law. Initially, Mukesh's biological father showed no interest in his son, while Rupinder struggled to stand up for her son against the abusive behavior of her husband and in-laws. Despite her love for Munna, Rupinder was unable to provide him with the emotional support he

needed. In desperation, she turned to Sumathi for help, and after a joint decision, Sumathi and her husband decided to adopt Munna.

Conclusion-

The neglect of aging parents by adolescents is a prominent issue in our society, highlighting the importance of attachment and the need to nurture it. In literature, children often exhibit attachment behavior towards their parents, even if they were abandoned as a child, as seen in the protagonist Mukesh's search for his birth parents. The story also showcases socio-cultural differences and how it impacts the behavior towards parents. Despite his situation, Mukesh remains affectionate and caring towards his parents and even extends his care to his girlfriend's mother. This behavior is rare, and it emphasizes the need for attachment in our relationships. When Mukesh finally meets his birth mother Sumathi, he keeps it a secret with Neil and Vasanti. On the other hand, Rupinder and Nirmala's situations show the impact of socio-cultural differences on attachment. Attachment theory plays a crucial role in understanding and nurturing healthy relationships.

****

Refrences-

1. Mother I Never Knew. Indian Penguin, 2014.

Borua Maitrei. In-Truth-Sudha Murty-1430690.Siddiqui, J.R. &Parab, V.V.2015. Relationships In The Novels Of Shobha De. Chennai: Conceptual Press. , P.197.

2.Murty, Sudha.2014.The Mother I Never Knew.Gurgaon: Penguin Books.P.77

3.Sanderson, D. Dwight. 2013. Rural Sociology And Social Organization. LLC: Literature License

P.11

4.Prajapati, R.A. & Dr. Chaturvedi, Loopesh. 2015. Indian English Novelist:

5. A Critical Response. Allahabad: Takhtotaaz Publishers.P.77.

6.Silas, Bulk. The Irony Of Love, Premarital And Extramarital Affairs. 2010 Second Edition, 2010.

6.Thomas, RM2009.Sex and the American Teenager,seeing through the Myths and confronting the Issues. USA: Rowman and Littlefield Education.p.134.

Role of NGO for women in Iraq: Past and Present

Rajani Bala
Assistant Professor)
Department of Political Science
Shyama Prasad Mukherji College University of Delhi

INTRODUCTION Democracy in Iraq is a nascent development. However, with the adoption of democracy, newer forms of complications too are being visible, such as ethnic sectarian violence, displacement, lawlessness, collapsed infrastructure, and etcetera. The question of importance here is how have these adverse developments affected women in Iraq? It is generally accepted that democracy has three essential dimensions to it – Liberty, Equality and Fraternity. On the other hand however, when a democratic constitution was adopted in Iraq none of the essential dimensions of democracy were visible, especially when it concerns women. This is evident from the fact that the Iraqi constitution seeks to address women issues by means of Islamic Laws (Personal Status Law) which in the w subjugate estern world and also some oriental world, is commonly believed to subjugate women's rights. The present constitution allows men to practice polygamy and simultaneously also undermines various essential rights to women that are otherwise essential for her all-round development.

Thus, it is time and again visible that many national and international NGO's are battling to achieve women's rights in Iraq, which has basically been characterized by struggle for rights, political freedom and democracy. However, here they have often been confronted with the impediments of sectarianism, regionalism and the problems posed by unending wars. Nonetheless, there has been positive developments visible after the fall of Saddam Hussein, as for example, there has been a notable growth in the number of nongovernmental organizations (NGOs) and women's rights organisations that are determined to get involved and participate in political and women empowerment related issues in Iraq. In fact, women's organizations in Iraq have installed themselves as key levers that have been seeking to transform the societal habits, which have been mutilated against women as a result of numerous draconian issues that have crept up in the country.

HISTORICAL OVERVIEW-Iraqi political history has in fact experienced numerous ideological transformations. Mandate Rule (1918-1932), Monarchical Rule (1932-1956), Military Rule (1956-1968), Bath Regime (1968-2003) and so on so forth (Khalil, Samir al, 1989). Among all these political and ideological transformations, women's rights have been affected the most. Thus, it has been evident that numerous women organizations have from time to time organized various movements that concerns women's rights. Iraq has been no exception. Time again, movements concerning issues such as, empowerment of women, asserting women rights and injustice meted out to women have been organised in Iraq. Whenever there is any discrimination on the basis of caste, language and gender, or whenever a group is devoid of equal opportunities or equal rights in the public domain, it is then that attempts are made for the empowerment of that concerned group. Such discriminations are visible throughout the globe. Thus, various NGOs are working towards ending such discriminations.

When one considers the historical overview of Iraq, it is then that the present day conditions, rights and empowermental aspects of women in Iraq can be understood better. With the introduction of a new political ideology that is, democracy in Iraq, it has been evident that there has been considerable change in the political, economic and social structures within Iraq. This has simultaneously also led to changes in the status of women in Iraq. After the fall of Saddam Hussein's regime in April 2003 many women supported the process of transition and became active in political parties and coalitions. A wide range of groups were also formed which pursued women's rights agendas and, in many cases, included a call for peace and reconciliation and charity activities for women. However, Women's rights whatever the direction can be of major or minor concern (Tahir, 2010).in the year 2003, when the United States of America invaded Iraq along with the NATO (North Atlantic Treaty Organization) forces, various instances of sectarian and ethnic violence have become a regular phenomenon in Iraq. Consequently, the war has had an adverse effect on the conditions of women in the war torn country, and this fact has come to the notice of the world, with the help of various women organizations that have been active in Iraq. With the overthrow of Saddam's regime, democracy has been introduced in Iraq, with the whole world keenly watching as to what would be the nature of democracy here. As to whether or not, it would incorporate the provisions of liberty, equality and justice for all within the country. It has been evident that the present democratic constitution provides for 25% reservation for Iraqi women in their Parliament. This has been a welcome step. However, simultaneous to women political empowerment, the democratic constitution of Iraq also provides for the provision that allows Iraqi men to practice polygamy. This particular provision has been an

issue of constant criticism by the women's group in Iraq. The discrimination meted out to women is primarily because of the whole notion of gender. To do away with such discrimination the United Nations has mentioned about women right in its Preamble, which reads as follows "faith in fundamental human rights, in the dignity of the human person, in the equal rights of men and women and of Nations large and small". Thus, so as to address this issue the United Nations formally launched The Commission on the Status of Women (CSW) on 21st June 1946. The Commission has hence forth addressed several international women organizations and the Non-Governmental Organizations (NGOs) with regard to gender discrimination. It was from here on that the issue of women discrimination received world recognition and the role of such organisation has increased multi-fold. A fact here to note is that such world body that concerned women rights were already prevalent. However, the initiation of such an international Commission has diversified its role and importance. The year 1923 saw the establishment of the first women organization in Iraq, which was named 'Awakening Club'. The members of this club were primarily the educated and the secular Muslim women (Ali and Pratt, 2009).

After US invasion of Iraq in 2003 numerous NGOs have been established in the country. They are working for women empowerment by means of various initiatives. If one is to consider the history of NGOs in Iraq, a shocking revelation is that after the establishment of the first NGO in 1952, only 14 more NGOs were established until the year 2000. However, there was a sudden increase in the number of internationally funded NGOs in Iraq after the US invasion. From 2003 to 2005, 146 NGOs were established, and from 2006 to 2009, 96 NGOs were established in Iraq. However, now again there is a significant decrease in the number of NGOs being established, as in the year 2010 only 6 NGOs were established, and in the first half of 2011, only 4 NGOs were established. The fact now being that USA is slowly and gradually minimizing its direct presence in the country. Nonetheless, their numbers still remain considerable.

CONDITION OF WOMEN IN THE WAR TORN COUNTRY-Iraq today faces multiple challenges as it emerges from a long period of totalitarian rule. There is a need and an understanding in Iraq that the military, economy, security services, and bureaucracy requires a robust revamp, also while trying to meet justice for the victims of human rights abuses in the country.

Women and children are the ones most affected by the present upheaval in Iraq. According to Vanessa Thevathasan, women in Iraq are treated as a symbolic property to meet the sexual demands of the Islamic State's (ISIS) extremist ideology and are thus forcefully married off to the ISIS militants. There have been demands all across, that the international community must immediately take action in coordination with local women organizations, so as to protect the rights of these women in Iraq.

The Obama administration has now finally authorized airstrikes against the ISIS. However, such limited response has failed to adequately recognize violence being faced by several minority groups like the 'Yazidi's' in Iraq. In this regard Vain Dakhil, the Iraqi Kurdish MP belonging to the Yazidi faith has emotionally appealed for the protection of the Yazidi's by the international community, after it was witnessed that over 500 women and children were buried alive in graves. Nonetheless, the international community has only been providing fleeting references to such hienious crimes being committed against women and children in Iraq.As a consequence, it has been evident that thousands of women and children are fleeing the ISIS predominant areas and are mostly seeking refuge in the Sinjar Mountains. Many of these fleeing women are sick or pregnant, or young mothers with small children, some of who are in dire need of medical care and assistance. There are reports that many of these women have been fleeing their homes and are thus without food and water for weeks. In one of its reports UNICEF has claimed that at least 56 children have lost their lives as a 'direct consequence of violence, displacement and dehydration'. Similarly, Iraqi Minister for Human Rights Affairs, Mohammed Shia al-Sudani, has claimed that the ISIS fighters have taken into hostage at least 300 Yazidi women and are kept captive inside one of the police station in the Sinjar Mountains. Latest reports now confirm that these women have now been shifted and held captive in a school, cinema and a sports center, and are now segregated according to age and beauty, with the younger and the prettier girls being offered marriage with the ISIS fighters, if they agree to convert to Islam. Those resisting are most probably being beaten or killed. These exercises by the ISIS forces are being actually considered as ways to legitimize wide -spread rape and exploitation of women in Iraq.

On the whole, reports estimate that around 1500 women have been captured and over 3000 of them are missing across Iraq, especially after the Sinjar Mountains have fallen to the ISIS fighters. Unofficial claims predict that the numbers are in fact much higher. According to the Sinjar Crisis Group, an NGO founded by the Yazidi diaspora in Washington, more than 1000 women have been reportedly captured by the ISIS militants, with hundreds more being captured every week. The group additionally argues that many of the captured women are being trafficked to Syria as slaves and sex workers.

Thus and so, it is being noticed in Iraq that local women organizations are taking things in their own hand and are actively organizing campaigns so as to protect women and children, as they seem to have lost confidence on governmental and international efforts in this regard. For example MADRE, which is an international women's human rights organization, along with its sister group the Organization of Women's Freedom in Iraq (OWFI) are mobilizing emergency responses, such as building shelters for women and are also making efforts to ensure that safe escape routes for women can be established within ISIS territories. The group is also providing psychological support to the aggrieved women and are also providing gender focused humanitarian aid in the cities and towns within Iraq. Most essentially, they are also engaging themselves in providing protection to human rights activists within Iraq.

NGOs AND INGOs WORKING FOR WOMEN EMPOWERMENT IN IRAQ-With the coming of the US led coalition forces in Iraq in the year 2003, promises were made not just to replace the totalitarian regime of Saddam Hussein, but also to improve the women's right situation in Iraq. Thus and so, a Security Council Resolution Number 1483 was adopted which aimed at establishing,Rule of law that affords equal rights and justice to all Iraqi citizens without regard to ethnicity, religion, or gender.Reality, however presents a different picture, the most compelling obstacle being the popular mind-set of the Iraqi community, which has been gendered from top to bottom. Without expecting much from the society itself, the best approach towards empowering women of Iraq therefore has been the top-down approach, where in the government initiates and supports a progressive women's agenda. In support of the governmental initiatives the NGOs and INGOs have come to the fore and are working hard with various women groups already functional in Iraq. For example, a Germany based NGO named WADI has set up few branches in northern Iraq. Likewise a local women's organization called Khanzad works in close collaboration with a German based NGO called HAUKARIeV. Similarly, Norway based NGO named Norwegian People's aid has initiated various projects, with an aim to empower women in Iraq. Also an NGO named Save the Children International has been doing extensive work for the Iraqi women throughout the country. The Kurdish diaspora too have initiated a NGO called the Kurdish Women Against Honor Killing in the year 2000, so as to help the situation of women back home. (Brown, Lucy and David Romano, 2006**).** Thus, one sees a sudden rise in the number of NGOs and INGOs functional in Iraq today. Considering this sudden rise in the number of NGOs in Iraq since the year 2003, an autonomous body called the NGO Coordination Committee for Iraq (NCCI) was setup by a network of about 80 international NGOs and 200 Iraqi NGOs in Baghdad immediately after the downfall of Saddam Hussein's regime. The primary objective of the body has been to help NGOs to assess and meet the needs of the Iraqi population. NCCI essentially provides crucial information to the NGOs functional in Iraq and simultaneously also facilitates coordination of activity among them. The NCCI members are supposed to comply with a certain Code of Conduct for the International Red Cross and Red Crescent Movement. From a base at Jordon, Oxfam too supports partner organisations functioal in Iraq. The nature of its support includes; the provision of assistance to internally displaced peoples especially in central and southern Iraq,delivery of emergency medical supplies to the medical clinics in conflict areas,reconciliation of conflicts between the Palestinian refugees and the Iraqi community.Oxfam additionally works with other international NGOs for the purpose of capacity building of six NGOs in Iraq, who are involved in project managements, good governance, peace building and conflict resolutions. The reason for Oxfam's indirect presence in Iraq has been security concerns. Thus and so not a single Oxfam staff is directly present in the Iraqi soil, especially after 2003. (Génot, Cécile, 2010).

Similarly, there are some other eminent NGOs that have been playing a progressive role towards empowering women in Iraq. For Example, in the year 2004, a voluntary and an independent NGO named Women Empowerment Organization was established in Erbil, Iraq. Its primary objective has been to consolidate women's role and capabilities within the Iraqi community by augmenting their social, political and economic participation. From time to time the Organization conducts several training programmes, workshops, conferences and seminars that relate to women's rights and empowerment issues. Simultaneously, it also promotes issues concerning human rights, gender equality, economic empowerment and political participation of the Iraqi community. The NGO is also working towards eliminating all forms of discrimination against women, in coordination with the UN sponsored Convention on the Elimination of All Forms of Discrimination against Women, which was originally adopted by the UN General Assembly in the year 1979. In most instances the issues discussed at Women Empowerment Organization meetings, concern those activities that are associated with upholding and protecting women rights mainly in relation to local laws and pending legislations in the Iraqi Parliament. In its pursuit for women empowerment, the NGO organises various awareness campaigns and provides assistance to decision makers, so as to enable them to meet the global standards that have been established

through international conventions and treaties. Additionally, the Organization encourages women and youth participation in the rebuilding and developmental processes in Iraq. In the words of one of the employees of the Organization they also support the trainees and participants with job counselling so as to enable them to be economically self sufficient and ultimately non-dependent on others.The Women Empowerment Organization is also recognised as a Small Business Development Center, and is supported by the United States Agency for International Development (USAID) sponsored projects titled IZDHAR and TIZARA. Thus, it has earned a unique status in the Iraqi society, as it has also fostered a healthy business environment in the region. In this regard the NGO had organised a Conference titled, 'Economic Empowerment of Iraqi Women and Youths', in the year 2013. Other international and national level NGOs too have contributed towards the successful completion of the Conference.

The Organization of Women Freedom in Iraq is one of the other NGO that was established in the year 2003, and today it had transformed itself into a true pioneer of national women's organization that has dedicated itself to rebuilding Iraq on the grounds of political and human rights for all. The uniqueness of the Organization lies in the fact that it has introduced innovative peacebuilding and women empowerment strategies throughout Iraq. Since its very inception the Organization has sought to fight against the rising instances of violence against women in Iraq. It has in fact been noted that the instances of violence against women has risen since the US invasion of Iraq in the year 2003.

The NGO has been making efforts towards increasing women participation in politics, both at the local and the national level. It additionally has been seeking to enhance governmental accountability by means of better communication and representation for women. The Organization has also indulged itself into demonstrations and protests against the US nominated reactionary clerics, who have been attempting to undermine women rights in Iraq, and has thus been demanding the inclusion of progressive women in Iraqi politics.Thus and so it has been evident that Yanar Mohammed, the founder of the Organization of Women Freedom in Iraq has been hence forth receiving threats to life by the fundamentalist elements within the society. However, she remains unfazed by such threats and thus continues to fight openly against the dual forces of US occupation and Islamic fundamentalism. At the same time she has been encouraging and empowering other women to do the same. To reiterate her words,

Either we organize and demand our social and political freedoms or we give way to a theocracy and the institutionalized, legalised oppression of women in Iraq.

1.

The challenges ahead of the Organization is a mammoth one, despite this fact the Organization's women are hopeful and their founding statement declares,There is a huge emancipator and secular force in this society that aims at achieving freedom and a better life for women... women in Iraq deserve another kind of life, one that is full of freedom, equality and prosperity.

CONCLUSION -With all said, one must however conclude that, despite the best efforts of the NGOs and INGOs in Iraq, the situation of women continues to remain grim and the failure of these organizations in achieving anything substantive, compels one to ponder that the time seems right to vigorously enforce humanitarian pledges in Iraq, such as, the one that has been adopted during the Global Summit to End Sexual Violence in Conflict, 2014. Additionally, the various women's organizations that are monitoring the situation on the ground, must be provided substantial support by all, be it the national or the international community. The ongoing conflict in Iraq has in fact also provided an understanding of the effectiveness and shortcomings of the work, which the NGOs are playing for the safeguard and empowerment of women in Iraq. Despite all said, a point here to note is that without these NGOs and INGOs functional in Iraq, women here would be left vulnerable to untold horror of ISIS, sectarianism, regionalism and an unending war.

****

REFERENCE:

1. Ali Nadje Al (2009), *What Kind of Liberation? Women and Occupation of Iraq,* London:the University of California Press.
2. Brown, Lucy and David Romano (2006), "Women in Post-Saddam Iraq: One Step Forward or Two Steps Back?" http://www.mcgill.ca/icames/files/icames/womeninIraq.pdf Accessed on 6th November 2014.
3. Génot, Cécile, "International NGOs in Iraq: Actors or Witnesses in the Evolution of the Iraqi NGO Sector?" (Draft 2 – December 2010) http://southsudanngoforum.org/wp content/uploads/2011/05/NCCI-Survey-INGOs-Iraqi-NGOs-Draft-2.pdf.
4. Iraq: The Organization of Women's Freedom in Iraq
5. http://www.madre.org/index/meet-madre-1/our-partners-6/iraq-the-organization-of-womens-freedom-in-iraq-37.html. Accessed on 9th November 2014.
6. Joachim, Jutta (2003), "Framing Issues and Seizing Opportunities: The UN, NGOs, and Women's Rights",International Studies Quarterly, Vol. 47, No. 2 (Jun., 2003), pp. 247-274.
7. Khalil, Samir al (1989), Republic of Fear: The Inside Story of Saddam's Iraq. Berkeley: University of California Press.
8. Rising to the humanitarian challenge in Iraq. file:///C:/Users/Rajnibala/Desktop/Rising%20to%20the%20humanitarian%20challenge%20in%20Iraq.pdf. Accessed on 21 October 2014.
9. Short History of the Commission on the Status of Women http://www.unwomen.org/en/csw accessed on 1stNovember 2014.
10. Tahir, Andrea Fischer (2010), "Competition, cooperation and resistance: women in the political field in Iraq", *International Affairs,* 86 (6): 1381-1394
11. Tom Coipuram, Jr. *Iraq: United Nations and Humanitarian Aid Organizations*, CRS Report for Congress Accessed on 21 October 2014.
12. The vathasan, Vanessa (2014) First Responders: Women's Organizations Fighting Against Gender-Based Violence in Iraq http://www.huffingtonpost.com/vanessa-thevathasan/first-responderswomens-or_b_5919618.html Posted: 10/03/2014 10:45 am EDT Updated: 10/03/2014 10:5.

Transgressions, Translocations and Spatiotemporal convergences in Bharati Mukherjee's The Holder of The World

Dr. Satya Prakash Prasad
Assistant Professor
Department of Applied Sciences & Humanities
Jamia Millia Islamia New Delhi-110025.

The literary works of Bharati Mukherjee, an Indian author with exceptional diasporic sensibilities, are replete with native cultural dynamics that are intricately interwoven with the exuberance of her adopted country, i.e. the United States. In her novels and short stories, Mukherjee consistently employs Indian frameworks that are deftly seasoned with American convergences. Mukherjee becomes an indispensable connection between disparate realms. The central focus and thematic axis of her fiction revolves around her female protagonists. After the publication of her first three novels by 1991, Bharati Mukherjee had successfully carved out a niche for herself among the leading American authors. Her early novels, which deal with expatriation and exile from a south Asian perspective, remain disconnected from the American literary mainstream. She desires that the American reading public recognise her as a "mainstream American author." It was necessary for her to "redefine the nature of American and what makes an American" in order to assert her allegiance to the adopted nation. In her essay, A Four-Hundred-Year-Old Woman, she reflects on her life. Mukherjee outlines her literary agenda, stating, "As a writer, my literary agenda begins with recognising how America has changed me. It will not end until I demonstrate how I (and hundreds of thousands of others like me) transformed America" (25).

The Holder of the World (1993), Mukherjee's fourth novel, can be seen as her endeavour to communicate with her American mainstream readers. It describes the rebellion, transformation, and assertion of a woman's identity. The author asserts in an interview with Kumar that the novel is a "post-modern historical novel" (6). The title 'The Holder of the World' is the literal translation of the Urdu term Alamgir, which was also the name of the final Mughal emperor, Aurangzeb. It is a saga of dislocations and transformations brought about by Hannah Easton's exploits in traversing cultures: late 17th-century Puritan America and contemporaneous Mughal Indian cultures. In the novel, "we learn how Hannah transforms into multiple selves, which she does with a spirit of spiritual aristocracy that is unheard of among Mukherjee's other protagonists. Sumati Jha and Pashupati Jha correctly remark in this regard, "She is both a thinker and a doer" (9) in contrast to Dimple Das Gupta and Jasmine, who are primarily irresponsible doers. Hannah, like Jasmine, adopts various names and identities: docile and sheltered daughter in the Fitches household, nonconformist as Gabriel's wife, Mukta for Bhagmati, White bibi for Raja Jadav Singh, and as valuable as a pearl for the Indian sovereign. Hema Nair opines, "Hannah is a stunning creation, a bold mind seeking identity in a strange environment, a timeless creature attempting to survive in a rigid, inexorably defined society" (106). In the novel, Mukherjee abandons the Victorian model of linear narration and improvises her narrative technique by incorporating the new dimension of virtual reality and creating a frame. In the novel, Mukherjee abandons the Victorian paradigm of linear narration and invents a frame narrator by incorporating the new dimension of virtual reality. Uma Parmeswaran minutely observes the changes in narrative technique:In reconstructing a piece of Raj History, Mukherjee joins other novelists from her native India, such as Manohar Malgonkar, Kamla Markandya, and more recently, Gita Mehta. She adds another dimension to linear narrativization by using the concept of virtual reality…(637).The postmodernist motif of juxtaposing the past with the present and vice versa is exemplified in Mukherjee's debut postmodern novel. The novel is set in two distinct time periods, the seventeenth and twentieth centuries, and its story of a modern asset hunter, "a searcher after origin" (HOW 9), intersects Puritan New England, present-day America, Britain, and India (past). Beigh Masters, the story's narrator, is a contemporary asset researcher who is captivated by researching antiquities, paintings, and historical documents. She resides in Massachusetts with her Indian boyfriend Venn Iyer, a computer scientist who is working on an information matrix to recreate the past through mass ingestion in the virtual reality programme 'X-2989'. She, like her husband, believes that "nothing is ever lost, but sometimes continents and centuries get in the way" (HoW 5) and that "with sufficient passion and intelligence, we can break down the boundaries of time and geography" (HoW 11). Both she and her Indian companion cope with the past, claiming that history is a "huge savings account" (HoW 6). "I live in three time zones simultaneously, and I don't mean Eastern, Central, and Pacific," Beigh Masters, the novel's narrator and the author's conduit, alludes at the novel's spatiotemporal interconnectedness at the beginning of the narrative. I refer to the past, present, and future" (HoW 5).Beigh Masters in one of her endeavours to locate the perfect diamond in the world, 'The Emperor's Tear' which belonged to the last of the Mughal kings, Aurangzeb gets obsessed with the life of one Hannah Easton

who lived in Salem in 17th century. Masters' obsession with Hannah's life is even surpassed by her desire to trace the Emperor's Tear as she herself confesses, "It isn't the gem that interest me. It's the inscription and provenance. Anything having to do with India gets my attention. Anything about the Salem Bibi, precious as pearl feeds me" (HoW 5). The charm of Hannah/Salem bibi's exotic photographic records in a maritime museum in Massachusetts supply the vital energy to Beigh Masters to undertake "a little more complicated project" (HoW 7) of reconstructing the life of the Salem Bibi, "the white wife from Salem" (HoW 13). In Beigh Masters' endeavor Salem Bibi herself becomes her "co-dreamer". She goes on to strike a genealogical relation with 17the century Salem girl, Hannah Easton who later becomes the 'Salem bibi'. Beigh Masters herself claims that "the Salem Bibi is part of the tissue of my life" (HoW 21). The invisible presence of Salem bibi goads her to re-live the experiences that she in a puritan American and exotic Mughal age had undergone.The connectedness of Beigh Masters with Salem bibi is not anything borne out of professional quest but a genuine feminist desire to search for the roots and self. Salem bibi is her predecessor and had the similar desire to rebel from the confinements of geography, Puritanism and patriarchy. This is evident when she claims that she knows "her like a doctor and a lawyer, like a mother and a daughter" (HoW19). She feels closeness with both Hannah and her mother, Rebecca because they all transgressed the forbidden territories of race, gender and class. Rebecca and Hannah broke the "love laws" in 17th century but Beigh Masters does it in 20th century by marrying an Indian lover after being in relation with a number of men. She traces the imprints of Hannah's lived experience not with a curiosity of a historian but with a finer sensibility of feminist archivist to reconstruct the reality. Laxmi Parasuram rightly observes, "As the feminist historians today have increasingly come to realize. The truth about a woman's life does not lie in history books, but in the living experience she herself has left behind" (HoW 198).

We are slowly taken through the amazing narrative of Hannah Easton's life by the narrator, Beigh Masters. Hannah, a New Englander, born in Brookfield, Massachusetts in 1670 to Rebecca and Edward Easton. Her mother Rebecca was married at 15 to Edward Easton who was nearly triple to her age. By seventeen, Rebecca had two pregnancies, the second, a daughter, Hannah survived. Hannah's father died of a bee sting when she was hardly one year old. Hannah throughout her life lived with one constantly haunting memory of the night when her mother deserted her. Rebecca was widowed at a very young age of 22 and failed to restrain her passion in the orthodox puritan society. She took a bold step of transgression, escaping "her prison, against the prevailing odds that would have branded her" by eloping with her American-Indian lover. Hannah, though "willed herself not to remember" that night yet the memory does not fade away from her life. She chose to remain silent about the incident throughout her life "to sustain her mother in ultimate lie, the ultimate unnatural crime of puritan life".

Hannah undoubtedly carries the memory of her mother's elopement but she keeps her love and secret admiration towards her mother unaffected. Bharati Mukherjee observes, "Hannah Easton, whatever the name she carried in Massachusetts, in England, in India or even into history to this very day, loved her mother more profoundly than any daughter has ever loved her mother (HoW 30). Mukherjee makes a pertinent comparison of women's experience transcending time and geography. She compares the circumstances of orthodox puritan society of 17th century America with those of modern, liberal 20th Century America and closed and secured society of India. The transgression of Rebecca is undreamt of in a 17th century puritan society but with the advent of women Lib movement in the west the choice making capability has certainly been increased in 20th century American society.

Hannah, "the somber orphan" is adopted by the Fitch couple, Robert and Susannah. She is brought to Salem by her step family. The Fitches take the responsibility to take care of her with love and affection. She grows up in Fitches household inheriting the traits of her step mother. Like Susannah, Hannah discovers in herself an obsessive love of needle work and soon she becomes adept in it. As a result, she becomes "a great topic of speculation" (HoW 53) in Salem. With her fine needlework, she is able to create a charming impression for her among the inhabitants of Salem. Special treatment is rendered to her whenever she visits anywhere in the locality. Moreover, her parents also become known to people because of her incredible handiwork, "…families that would not have admitted her step-parents to their parlors insisted on showing her inside, offering her cakes and tiny tokens of additional payment (HoW 42). It is however, important to note that her absorption in needle work is a willful diversion from the memory of her mother's sin that she witnessed. The association of love and hatred with this memory has a profound effect on her mental constitution. She seeks refuge in her acquired profession as an embroiderer in order to negotiate the escalating conflict. Hannah keeping her introvert nature intact learns "all the conventional wisdom and housekeeping tips" from her step mother (HoW 47). Susannah discharges her motherly duty towards Hannah by passing on to her all that is required to be "an agreeable bride and efficient helpmate". She even trains her how to nurse a wound- "the sewing and healing of scalped

heads" (HoW 48). When Hannah attains her "fifteen, and by most account, pert and presentable" she gets a marriage proposal from Solomon Pynchon. The proposal is politely refused by her step father, Robert Fitch despite the fact that Solomon's father assurance of allocating a handsome sum for the establishment of the couple. The narrator takes an oblique view on this incident:

"Incestuous, obviously," my cynical self, my well-trained feminist self, reading these notes, has told me. "The stepfather and stepbrother wanted [Hannah] to themselves. They needed the money she brought in. she was an old maid of twenty, and we know she was a damned handsome woman. There must have been men beating down the door, and the old coot must have spread the rumors of her madness from Marblehead to Barnstable (HoW 60).

Filial love and affection shown towards Hannah in the Fitches household is no better than a trap for her. Her step -parents choose to impose restrictions on her:

They hid her wild embroidery; they barred entreaties; they monitored every visitor. Only the oldest friends, the Mannings were allowed access…Hannah remained indoors, fed the news by her chair-bound brother, sung to and prayed over by her uncomprehending mother and father (HoW 61)Clearly enough, the girl gets the blunt axe of the patriarchal conventions that are molded to suit the vested interest of the household. Even after reaching twenty-one, Hannah's expectations of being married is dim as "[t]he bareness of her future had to do with genealogy and poverty"(HoW 61).

Mukherjee introduces the character of Hester Manning as a foil to highlight the docility of Hannah. Hester Manning is her close friend who entrusts "herself to marriage for deliverance" (51). Beigh Master finds her to be "an ideal companion for Hannah, whose own sense of special mission in life [is] firmly set though rarely articulated" (HoW 51-52). In contrast to Hannah's introvert nature, Hester is given to imagination and fancy. She imagines herself enacting "any situation a book, or an anecdote, even a whimsical suggestion presented to her" (51). Her track of thinking is different from the popular notion of the age. She feels that "not all the women were abducted were enslaved or scalped or mercifully scarified to the heathen deities". This "special theory" of her about the heathens is deviant from the dominant views of puritan society of which she is the part. She can "fancy herself to be abducted by heathens". The narrator notes the contrast in their personality:Anyone looking at these two fifteen-year old maidens in the summer of 1685 would have thought them destined for opposite fates: Hannah to linger in Salem, Hester to reposition the stars (HoW 52).

She has the capacity to insinuate in Hannah a sense of lurking freedom from the sheltered household. "The wild improbability of Hester's fancy" cajoles Hannah to look at the incident of her mother's elopement in a new light (HoW 52). She does not take offence when an incident of similar nature is presented before her in the passage reading session by Hester. She rather acknowledges the "life-loving" spirit of her mother (HoW 54). Hester perfectly fills the absence of Rebecca in Hannah's life but the companionship between them is short-lived. Hester Manning dies of drowning under mysterious circumstances. After the death of Hester, Hannah is courted by Gabriel Legge, Hester's lover. Gabriel is given to knitting fancy tales of sea voyages and his adventures particularly related to India. Hannah despite her disbelief in him and his tales gives him her nod to proceed for the wedding negotiation through her father. Gabriel and Hannah are wedded after the negotiation is done and dowry is set. Beigh Masters is puzzled to understand the decision of Hannah to marry Gabriel and she poses some startling questions before the readers:

WHY WOULD a self-possessed, intelligent, desirable woman like Hannah Easton suddenly marry a man she recognized as inappropriate and untrustworthy? Why would she accept Hester Manning's castoff, or betrayer? (HoW 69)Indeed the decision of Hannah can be seen as a response to the unconscious albeit constant goading of her mother's persona; "A is for Act, my daughter… "B is for Boldness"… "I is for Independence" (HoW 54). She wants an escape from the over-protected household of the Fitches. Her Passion is "more to leave that place, Salem and the boys around the forge, and her father than to settle in another place with him [Gabriel] (HoW 68-69). In 1692, Hannah with Gabriel left Salem for England and this marks her second translocation depicted in the novel after the elopement of Hannah's mother with her Indian lover. Gabriel's frequent sea voyages make her experience the sense of freedom which was certainly denied to her in the Fitches' household. She realizes "the crude arithmetic of survival: man out the gate, worth the wait; man in the house, mend your blouse" (76). She considers herself 'a contended wife' in England. The news of Gabriel's death comes to her as a shock. She is forced by the circumstances to confront her widowhood boldly at a very young age. She develops her special qualities of treating the patients with her surgical dexterity and becomes "a woman blessed with healing power" (HoW 83):

In one of her consultations, she is chanced to meet Hubert, a man of her age who is not disturbed by her widowhood. He sees her "only as a young woman of vigorous mind and spirit" (86). Though Gabriel has left her sufficient money to indulge in her free-will yet she needs someone to be emotionally supporting her. One Hubert appears to be the one who can fill the vacuum in Hannah's life. Amazingly, Gabriel resurfaces from

nowhere in late April of 1694 to give a halt to Hannah's "alternate prospects" of life as a widowed Cambridge governess or as the wife of a placid introvert individual like Hubert. Gabriel keeps his eighteen month's absence and the news of his death as a mystery from her. Venn says of his willful absence as a part of test that is put to confirm the fidelity of Hannah as well as to know if she was prized or not. Gabriel is able to reclaim his rights on her. He decides to head for the Coromandel Coast of India along with Hannah.

Part II of the novel deals with Hannah's experiences in India. Gabriel now works for the honorable East India Company. In India Hannah is introduced to many concealed facets of her husband. She is able to draw clear distinctions between facts and fiction in Gabriel's incredible tales of adventure. On the basis of documentary evidence, Beigh Masters, the narrator shades light on Gabriel's infidelity. Contrary to her husband's deception Hannah remains faithful to her husband. Unlike other fellow white-women, she does not believe in a desperate life.Hannah arrived in India with a hope to experiencing a certain degree of independence associated with the native wilderness of the Coromandel Coast but she was pretty confined to the Company's enclave. This confinement is not quite different from what she has experienced in either puritan Brookfield or Conservative Steepny. Fakrul Alam, in his book, perceptively comments on her situation: She finds herself confined to the petty and hierarchal world of East India Company officials and their wives. Just as the New England puritans had separated themselves off from the American Indians, the English in India seemed to have fenced themselves off from the natives of India… Unfortunately for her, English officialdom keep reining her in and curbing her instincts to go native (HoW 126)Hannah is however, guided by the rebellious spirit of her mother. She looks for the opportunity to transform herself so that she may be able to relish her joy of entering the world of the natives. At Company's enclave she is neglected by Gabriel. He is driven by his own obsessions of amassing wealth and by wanderlust. He hardly gives her time to placate her emotions. His obsessions eventually turn him a pirate and he desserts Hannah for his Indian bibi. Hannah's sexual awakening is facilitated by her servant Bhagmati who is the only companion of her in the Company's enclave. Bhagmati serves her as a link to establish familiarity and connectedness with the natives. Bhagmati like Hannah is the victim of male subjugation. She was raped by the river pirates and abandoned by her family because she has brought shame to the family. "She had run from her family, from her village, from all the familiar taboos and traditions". She took "hundred shameful ways" to stave off starvation. Like Rebecca Easton she too crossed the cultural inhibitions and became a mistress of a Company Factor, Henery Hedges. After the death of Hedges, she preferred to keep his shrine alive by being a servant in Company enclave at the Coromandel Coast. Her life is an extraordinary tale of her fortitude and life affirming spirit in which a 'Bindu Bhasini' is transformed into 'Bhagmati'. She did not bow down to the pressure of cultural taboos. Nalini Iyer observes the grains of close sisterhood between Hannah and Bhagmati: The similarity between Bhagmati's experience as victim turned survivor with that of Hannah's suggests that one's identity is not completely circumscribed by one's racial or ethnic origin, and it is tempting to read the growing friendship between the women as a paen to universal sisterhood (HoW 37).

Mukherjee through the portrayal of Bhagmati and Hannah's relationship seems to be suggesting how the transaction between two culturally distinct individuals crosses the geographical and racial boundaries strikes at spatiotemporal connectedness. The writer is able to forge a unique interrelation between the frame narrator, Beigh masters, Rebecca Easton, Hannah, Hester and Bhagmati blurring the confinement of time and space. The experiences of these characters may be varied and unique but they are brought to a n intersectionality under the convergences of their individual acts of transgression against their dominant social and sexual codes. In a strange turn of the situation Gabriel along with his men is entrapped in cyclone. They are attacked by Nawab's men penalizing them for their piracy. Hannah watches the brutal mass murder from her Balcony of her Company's enclave. Seeing the furious mob led by Nawab's men stoning the enclave, Bhagmati forces her to leave the place immediately and takes her down the hill to a "shaky settlement of washer men in Black Town" (HOW 204). Hannah and Bhagmati are rescued from the heavy cyclone by a Hindu Raja, Jadav Singh. Now Hannah is in Raja's custody in Panpur Palace. At Jadav Singh's Palace she receives a regal care by an army of servant women and the royal retinue. It is here, she experiences a full confluence with the native which leads her to the realization of her mother's dream of sexual awakening. She lets herself to be immersed in the native world emulating the act of her mother. The emergent transformation of her persona and identity calls for abdication of her old identity, "Her own mother, she realized suddenly, must have taken a Nipmuc name. A new name for a new incarnation. Rebecca Easton was dead. Hannah Easton Fitch Legge was dying" (222). Raja is too enchanted by her beauty and keeps sending her "odd occasional gifts". The intimacy between them grows in no time. She feels that no other woman except her mother would understand the feelings of her. To her, Raja is a promising man who is capable to honour her emotions and reciprocate her feelings with equal intensity of love. These emotions are new to her. She has been a victim of emotional void throughout her life so far. The marriage with Gabriel was an utter failure and she was forced to lead a tormented life. Now her passion is to become one with Raja, crossing the cultural inhibitions:In Panpur fort, She

comes to understand "the aggressive satiety of total fulfillment". The new dawn in her life as 'Salem bibi' fills her with exuberance unimagined in her past life spent with her step-parents or with Gabriel. Though she was not raised in a world of 'savagery', not on the scale of India, the vast inequalities as well as the injustice and superstitions of India, seem to her unnatural and unbearable yet it is here in India she experiences her own passionate nature for the first time, "….the first hint that a world beyond duty and patience and wifely service was possible, than desirable, then irresistible" (HoW 236). She wants to seize these moments of passion forever in heart and soul but the fact that Raja Jadav Singh was at war with the Mughal Nawab, Aurengzeb makes it difficult for her to linger her passionate encounters with the Raja. The hostile Nawab's soldier cordons off the Panpur fort which leaves no choice for the Raja but to slip off from the fort along with Hannah and Bhagmati in a disguise. Unfortunately, they are intercepted by Morad Farah and Nawab's Men in an ambush. The Raja is seriously wounded in the battle with the Nawab's men. In the battle, Hannah and Bhagmati exhibit exemplary valor and courage. Hannah succeeds in killing the General, Morad Farah and with the help of Bhagmati is able to bring the wounded body of her "warrior-lover" to Devgad. In Devgad she gets the first chastisement of a conservative Indian society where a woman is blamed for every wrong thing that occurs in a family. The general tendency of orthodox Indian mentality regarding woman is unfolded in the form of Queen Mother's reaction towards Hannah. Instead of hailing Hannah for her bravery, mother blames for polluting the Raja, accuses her of bringing him bad luck and holds her responsible for son's injuries. No amount of persuasion by Bhagmati changes her perception about the 'firangi' woman. The Queen goes to the extent of spiting on Hannah. She further alleges her, "[T]his woman has taken his manhood. He has become a woman, so let him die in a woman's Palace" Hannah's transformation as Salem bibi, guided by the rebellion spirit of her mother speaks volumes of her life asserting attributes. Now, she is not Hannah Easton nor Hannah Easton Fitch not even Hannah Easton Fitch Legge but Salem bibi of Raja Jadav Singh. She is all set to subvert the patriarchal ideology upside down. She resists the racial as well as gender discrimination boldly. Raja's mother tries to corner Hannah by rebuking her of her failure to come to the terms with 'wifely duty'; "A wife's duty is to walk through fire to please her husband". Hannah retorts, "I am neither wife nor queen… A bibi had the right, the duty. To live for love" (HoW 254). Undaunted by all the abuses and accusations of Queen Mother, Hannah displays her extraordinary surgical skills to snatch the life of Raja from the jaws of death. The wounds of Raja are healed but he is left with a limped right arm. The disability to perform his duty as a Raja is painful to him and he wishes to die. It is the point where Hannah proposes to him her wish to marry him. She does not want to lose him simply because it is his presence which fills her life with happiness and contentment and the result of their unabated love is being nurtured in her womb. She pleads to dissuade him from the war against the Mughal Nawab. Although her requests to end the war fall into the deaf ears of the old Nawab, she finds peace within. She showcases extreme bravery by purloining the diamond, Emperor's Tear and manages to escape along with Bhagmati from the captivity of the Nawab. While escaping she hands over the diamond to Bhagmati who thrusts it her dyeing womb. The world famous diamond is eventually found by the narrator, Beigh Masters in a cyber-spatial world when Venn Iyer takes her through this digitally formed space. The war ensues between the Raja and The Nawab despite her efforts to avert it. The Raja is killed and Hannah is handed back to the English zone. Hannah in her quest of a free and liberated self does not stay in India. After the death of the Raja she along with her daughter from him takes her return passage to America where she finds her real mother, Rebecca with six half-Nipmuc children. She remains there till her death under the care of these children. Her claim is resounding of her life affirming will when she asserts, "We are Americans to freedom born! (HoW 285)." This claim gives her enough sustenance to survive in a society which is hesitant to approve her as an individual.

Hema Nair rightly remarks, "Hannah is a stunning creation, a bold mind striving for identity in strange surroundings a timeless creature trying to survive in a rigid, inexorably defined society" (197). In 18th-century American puritan society, Hannah Easton in The Holder of the World experiences the stereotypical othering of a woman, comparable to the situation of contemporary American Indians. Her efforts on Indian soil have given her the agency to challenge the patriarchal codes of the American Puritan society. She commits daring transgressions, defying her American identity to become the Salem bibi and eventually allowing herself to be Raja Jadav Singh's companion. She rejects the cultural, linguistic, religious, and moral determinants and demonstrates a high degree of adaptability on Indian soil. She courageously opposes both racial and gender discrimination.

Work Cited

1. Alam, Fakrul. *Bharati Mukherjee*. New York : Tywane Publishers,1996.
2. Jha, Sumati and Pashupati Jha. "Mind and Movement Metamorphosis of women in Bharati Mukherjee" in *The Post Colonial Space*. Ed. Nandini Sahu. Delhi: Atlantic. 2007.
3. Kumar, N. P. Krishna. "Interview with Bharati Mukherjee", Indian Express Sept. 13. 1992.
4. Mukherjee, Bharati."*A Four-Hundred-Year-Old Woman*." In *Critical Fictions: The Politics of Imaginative Writing*. Ed. Philomena Mariani. Seattle: Bay, 1991
5. --- *The Holder of The World*. New York: Fawcett Columbine Books, 1993.
6. Nair, Hema. "A puritan in a Mughal Court". *The Toronto Review*. 12.2, Winter-Spring 1994.
7. Parameswaram, Uma. "A Review of The Holder of the World". *World Literature Today*. 68. 3.,1994

Property Rights of Muslim Women in India

Dr. Parag Agarwal
Associate Professor
Department of law, Monad University
Hapur, Utta Pradesh.

Sapna Chopra
Research Scholar
Department of law, Monad University
Hapur, Utta Pradesh

Abstract-*The Quran is a key source of Islamic law and is regarded as the holy revelation. In all domains, equality between men and women is demonstrated in its founding ideals. However, because women only inherit half as much as their male counterparts do (a son, for example, inherits a portion that is similar to that of two daughters), it has been challenged on the grounds that it assures unequal inheritance shares of property. Muslim women are expected to get half of what their brothers would get, but in reality, they typically don't get that. Practically, gender inequality still affects women. One could argue that because the Quran is interpreted to fit the needs of the male members, women are given a lower status. Maintenance offsets the limitations on inheritance rights for women. This demonstrates the idea of reliance, as the Muslim social system, which is fundamentally based on male domination, is seen as reducing women's access to property rights. Even though women in other societies may not have the same degree of property rights as males do under Islamic law, they may have some. Women's rights are frequently compromised by a number of elements, including traditional legislation, religion, gender ideals, and patrilineal systems of succession.*

Key words: *Traditional legislation, Religion, Gender ideals, and Patrilineal systems of succession.*

1.1 INTRODUCTION-The Arabian Sea was used by the Arabs as a commercial route, and some of the traders settled at the Malabar Coast in the ninth century, bringing Islam to India. Around the twelfth or thirteenth century, Sultans of Afghan and Turkish dynasties arrived in India and began imposing Shariat law. They merged with Hindus and took on their traditions and culture, including the caste system and joint family ownership. Three stages in the evolution of Islamic law in India can be distinguished. first, establish the length of Islamic law. Second, from the imperial era, and lastly, from the time that was considered to be the start of the independent period.

Muslim law appears to be superior to Hindu and Christian law in granting women property rights throughout the period of independence. The majority of Islamic tradition remained patriarchal and forbade women's scholarly advancement, especially in the field of religious thought. The domain of succession in the pre-Islamic world later saw significant revisions under Islamic law: women were given the right to inherit property with absolute power, and the Quran also specifies particular shares of property rights. Islamic law accords equal rights to men and women and is more tolerant of women's inheritance rights. But in Islam, women are unaware of their rights. Because of the fictitious social standards and traditions that were not genuinely imposed by Islam, they have been seen as subordinate. Islamic inheritance laws are misinterpreted worldwide, despite the fact that they were among the most ideal in their early periods.However, there are some specific statute provisions of Muslim Personal law, namely the Dissolution of Muslim Marriages Act, 1939 and the Muslim Women (Protection of Rights on Divorce) Act, 1986 in India, which gives Muslim women absolute property rights. Indian Muslims are governed by the uncodified Quaranic principles of inheritance rights.

Prior to the introduction of Sharia law in 1937, Muslims in India were subject to broad customary inheritance laws that were incredibly unjust and restored personal law by giving preference to customs and practises. Before this Act, Muslims followed previous traditions from the ancient Persians, who considered women as inferior and as though they were second-class citizens by imposing purdha and other socially harmful customs. In fact, one of the fundamental defences of Sharia law is that it would grant women the same rights to property as men, which were frequently withheld from them under the parameters established by their norms, conventions, and religious foundation. Sharia law acknowledges the right of a female heir, such as a widow or daughter, and draws no discrimination between moveable and immovable property. In actuality, unlike the previous Hindu Law, these rights have always been established for absolute inheritance. Mahr is a sum of money or other property given to a woman by her husband at the time of marriage, and she has complete control over it. Mahr is something that the Quran approves of for married women. Its purpose is to safeguard the wife against the husband's arbitrary use of the right to divorce.

1.2 STATUS AND VOICE OF MUSLIM WOMEN-The Supreme Court's ruling in the Shah Bano case marked a turning point in the history of Muslim women's rights under the Divorce Act. This case contested Muslim women's discriminatory rights. It provided some respite from male-dominated culture. Shah Bano's spouse filed for divorce, and Bano sought maintenance in the case of Mohammad Ahmad Khan v. Shah Bano. Since the judgement is a component of criminal law that is applicable to all citizens, it was rendered without reference to Muslim personal law. However, the husband refused to pay, claiming that there

was no such need to support once the wife got a divorce under Muslim personal law. The court dismissed the husband's claim, and he was merely required to support his divorced wife for the duration of iddat (the three months following talaq). The court further ruled that divorced women who are unable to support themselves may seek relief under Central Government Act 125 of 1973's Code of Criminal Procedure. Shah Bano further contended that her divorced husband was obligated to support her until her subsequent marriage. Even the Quran demonstrates that Muslim husbands have a duty to treat their divorced spouses fairly.

The Court's decision benefitted Muslim women, and several Muslim organisations challenged it by claiming that it violated their own personal laws. Women urged that the government enact a universal civil code that would apply to followers of all religions. Although Article 44 of the Indian Constitution made this promise long ago, it was not fully enforced for women. In an effort to calm the situation and fuel an intense discussion among Muslim fundamentalists, this It has been alleged that the Muslim Women (Protection of Rights on Divorce) Bill, 1986, was only intended to protect Muslim women in name and was really just a patriarchal plot against women. This Act was against the ruling and blatantly discriminated against Muslim women because they were unable to pursue their legal rights under the Criminal Code.

Such legislation, meanwhile, also "brought concerns among the religious and political leaders in perpetuating gender discrimination against women in the name of religion" Furthermore, according to Parashar, the construction of cultural identity is heavily influenced by the private realm and frequently disadvantages women. It's important to deconstruct such gender-biased social constructs. The Supreme Court stated that Article 44 of the Constitution, which calls for a unified civil code, "has so far remained a dead letter" in this particular case. On the other side, any meddling with personal laws led to meddling with their religious components. It has been established that all personal laws are founded on religion and blatantly support the patriarchal system.The sole case in which Muslim divorced women received some relief about maintenance was Danial Latifi v. Union of India. By including maintenance rules for divorced women, this case could be considered as a step towards gender equality. However, the Court also stated that Indian society was dominated by men on both an economic and political level. Additionally, it puts women in a dependent position. Although this case sought to attack the very foundation of patriarchy, Indian courts are thought to be crippled by cultural sensitivity.

1.3 MUSLIM LAW OF SUCCESSION-The Muslim law of succession is likewise subject to the Indian policy of not interfering with Muslim personal law in India. According to section 2 of the Muslim Personal Law (Shariat) Application Act, Muslim personal law is applicable in all instances involving intestate succession, special property of females, such as personal property inherited or acquired under contract or gift, or any other personal law provision, marriage, dissolution of marriage, including talaq, ila, zihar, lian, khula, and mubara'at, maintenance, dower, guardianship, gifts, trusts and trust properties,This clause makes it clear that the transfer of a Muslim's property must be governed by traditional Islamic law. The Act is just a proclamation of the application of Muslim personal law in specific matters and where the parties in those matters are Muslims; it does not contain any substantive provisions of Muslim law on any subject.

1.4 WHO IS A MUSLIM?-The Muslim law of succession and Muslim personal law are applicable where "the parties are Muslims." The Muslim Personal Law (Shariat) Application Act and all other Indian laws do not define "Muslim" in any way. A Muslim is defined as "a person who claims to be a Muslim and does not claim to be the follower of any of the known religions other than Islam, or is a minor child of such a person", according to Mahmood. A person who converts to Islam after being born a Muslim and students at Muslim institutions are included in this description. A Muslim, according to Diwan, is someone who accepts that Mohammed is the prophet of the one true God. A child's religion is based on the faith of the father. It doesn't matter what the mother's faith is.

The plural form of "parties" gives the notion that for Muslim personal law to apply, both parties to a dispute must be Muslims. Two interpretations of the word "parties" are put forth by Mahmood. First off, the word can be used as a synonym for the word "cases," he claims. In other words, it refers to situations when at least one party is a Muslim. Second, he contends that it might imply that only situations in which both parties are Muslims are covered by Muslim personal law. He emphasises that there are issues with such a perspective. For instance, "women married under Muslim law" and not just "Muslim women" are covered by the Dissolution of Muslim Marriages Act. Therefore, a woman who has converted to a different religion is eligible to file for divorce under this Act.There is no justification, in Kader's opinion, for why this circumstance should still exist now. He emphasises how women have advanced to have an equal status to males. They engage in every aspect of human endeavour and possess equal qualifications or abilities. He makes reference to articles 14 and 15 of the Indian Constitution, which forbid sex-based discrimination by the state and guarantee women equality before the law and equal protection under the law, respectively, and claims that discriminating against women in inheritance matters is out of date in the modern era.Anderson disagrees with the claim that the double share provision for men constitutes sex discrimination in violation of articles 14 and 15 of the

Indian Constitution. He makes the argument that the male is responsible for supporting his wife and children, and a larger part should be given to the male to enable him to complete his responsibilities. When viewed in this light, the rule does not discriminate solely on the basis of sex but also on other reasons and does not go against the Indian Constitution. The criticism levelled against Anderson's argument is similar to that levelled against it in the South African case of Mthembu v. Letsela. Even in India, where women are gaining more and more social and economic independence and the traditional family unit is eroding, it is debatable if this point of view will remain true in the modern world.

1.5 REFORM OF MUSLIM PERSONAL LAW IN INDIA-Any efforts by the courts or the legislature to change Muslim personal law in India have thus far encountered opposition. In order to properly recognise women's rights in India, Kader contends that legislative action is essential for reforming Muslim personal law. The codification of personal laws, the creation of a universal Uniform Civil Code, or the creation of an optional Uniform Civil Code are the three choices he explores. Although he concedes that certain Muslim scholars are open to reform, he contends that the majority of them oppose any alteration or revision of Muslim personal law. He emphasises that according to these scholars, Muslim personal law is unchangeable because of its religious nature. But in his view, the Shari'a is divided into two parts: the religious and the secular. The five fundamental tenets of Islam—Kalima, Namaz, Ramajdan, Zakkadh, and Hajj—make up the religious component. These ideas are eternal spiritual ideas. The secular component, on the other hand, covers things like the law of crimes, the law of evidence, the law of contracts, the law of succession, the law of marriage, and so on. These are secular activities connected to religious practise that are also subject to change.Ratnaparkhi makes reference to the claim made by some Muslim academics that their law and religion are so intertwined that any modification to Muslim personal law must necessarily result in a modification to their religion. He then makes compelling arguments to refute this claim. He cites the opinion of Fyzee, a renowned Muslim scholar, regarding the distinction between law and religion and quotes it with approval:He makes the point that while religion is immutable, laws must adapt to new situations. Therefore, Muslim personal law must be formed when it conflicts with contemporary legislation. Even the Quran, he claims, "calls on man to follow the principles of justice and equity." He then makes reference to the Quran.According to Ghouse, changing Muslim personal law would not infringe on Muslims' right to practise their religion or their cultural traditions. He acknowledges that the Quran and the Sunna are the cornerstones of Islamic law, but he also makes the point that these two texts also govern social and secular relationships. Marriage, divorce, inheritance, and other aspects of personal status are social or secular activities surrounding religion because article 25(2) of the Indian Constitution grants the state the authority to create or enact laws governing such matters. This is true despite the fact that Muslim law is the source of the laws governing marriage, divorce, and inheritance. Regarding the subjects covered by Islamic law, the state is legally permitted to conduct social welfare and reform measures. In India, the Constitution of the nation rather than its divine origin gave the Muslim law binding authority.

A compromise between those who think that Muslim law is sacred and cannot be changed and others who think that any law can and must change to adapt to changing circumstances, according to Derrett, looks exceedingly unlikely. Derrett72 analyses the numerous obstacles to Muslim law reform. He makes reference to international jurisdictions that permit an injured party (a person who is the subject of a religious law) to file a claim for damages if the norms of such a personal law cause them harm. He takes French law as an illustration, which under certain conditions permits a Jewish wife to sue her husband for damages if he refuses to divorce her. The likelihood of such a claim would stop antisocial behaviour or the abuse of personal laws, as he puts it. Although Muslims, Jews, Hindus, and followers of other religions cannot make such a claim in India, he believes that such reform will open the way for a future uniform civil code.According to Akbarabadi, a different author, Muslim law is amendable and modifiable "by its very nature and structure." He stresses that Muslim law has always been able to modify to meet the evolving demands of society and that Ulama should consider areas in need of reform and offer recommendations.

1.6 CONCLUSION-The Islamic law of succession has mostly remained unchanged over time, in contrast to the Hindu law of succession. In contemporary India, the "half rule," which applied to women under the traditional Islamic law of inheritance, is still in effect. Some Indian Muslims oppose moves by the judiciary and legislature to create Muslim law. The 'half rule' that favours Muslim men in terms of inheritance appears to discriminate against Muslim women.Muslims are generally opposed to any advancement that would undermine the sanctity of their law, though, as they believe it to be divine. The Muslim law of succession is, in the words of Schacht, "in the conscience of Muslims, more closely connected with religion than other legal matters, and therefore generally governed by Islamic law." Most authors who advocate for changing Muslim personal law concur that only the legislature can bring about such reforms. According to authors like Jain, many other Muslim nations

have altered Islamic law in contrast to India in order to meet the evolving requirements of the Muslim population. Since there is a Muslim minority in India, the opposition to any reform of Islamic law is an odd occurrence.

It is said that Islam emancipated women, as Mahmood mentioned in his earlier writings. The personal law of Islam granted women the freedom to acquire and dispose of property, inherit property, choose their spouses freely, and file for divorce. Now that Islam has lived for more than thirteen centuries, there has been advancement made worldwide in the areas of women's rights and gender equality. And to varied degrees, a significant chunk of the Muslim world has also joined this upward trend. So why are Muslims in India falling behind?

****

Bibliography

1.Derret, J. Dancan. M. , A Critique of Modern Hindu Law, N. M. Tripathi Pvt. Ltd, Bombay (1970), p. 193

2. Ibid, p. 194

3. Jana Matson Everett, Women and Social change in India, Heritage Publishers, New Delhi (1978), p. 142

4. Jain, P.C., Heritable Rights of Hindu female: General survey, Journal of legal Studies, University ofRajasthan. Vol. 28 (1997-98), p. 3

5. Regarding the definition of sulka various authors defined it differently some hold the view that it meansthe bride price or gratuity on the payment of which girl is given in the marriage. Some says it means the price of household items like utensils, furniture etc. given to the bride so that she can set up her matrimonial home. Others say that it is a kind of special presents given to the bride to persuade her to go to bridegroom's house

6. Kane, P.V., History of Dharamshatra; Ancient and Medieval Religious and Civil Law (1946), vol. III. p.823

7. Azmi, S.S., Dr. Ambedkar as pioneer for the uplifiment of status of women in B.R Ambedkar on federalism, Ethnicity and gender justice, edited by Nazeer H.Khan, Deep and Deep Publications, New Delhi (2007), p. 192.

8. Gautama, Ch. XIX

9.Prof. Khan, H Nazeer, Ambedkar on Gender Equality: Myth and Reality, Deep and Deep Publications.New Delhi (2007), p. 173

10. Raj Kumar, Women and Nation (Encyclopedia of Woman and Development Series), Anmol PublicationsPvt. Ltd., New Delhi (2000), p. 156-157

Dalit Feminist Standpoint in ShyamalaGogu'sFather may be an Elephant and Mother only a Small Basket, But…

Vikaskumar Revabhai Solanki
Research Scholar
Department of English and Foreign Languages
Indira Gandhi National Tribal University
Amarkantak, M.P.

Dr. Santosh Kumar Sonker
Assistant Professor
Department of English and Foreign Languages
Indira Gandhi National Tribal University,
Amarkantak, M.P.

Abstract -This paper analyses the various feminist issues and the need for social change against stereotypical caste-based notions from the standpoint of Dalit women. Feminists from the mainstream in India have neglected caste issues while dealing with the problem of gender in social arena. Dalit feminist writers and intellectuals are raising a new voice of resistance in bringing equality, freedom and identity against social discrimination. The indignities, tortures and inhuman treatment of women hailing from socially created low castes have been highlighted by Dalit feminists and writers. In the Indian society, women from low castes have to suffer multidimensional problems because of caste and gender.

Shyamala Gogu, a Dalit activist, has presented core issues from the Dalit feminist standpoint in her short story collection titled *Father may be an Elephant and Mother only a Small Basket, but…* The collection displays how new spaces of caste dynamism developed by Dalit feminist have given a new structure for social assertion in the contemporary scenario. The author attempts to explain core objectives from her real-life unpleasant experiences at a very early stage of childhood to show how caste has been a hurdle in disintegrating Indian society.

Key Words: feminism, caste, gender, patriarchy.

Introduction-Shyamala Gogu is a prominent feminist writer in Telugu who has made significant contributions to Dalit literature. Describing her experiences of being Dalit, she states: "I never realized that there was any discrimination as a kid. It was after growing up that I discovered it. We had a Madiga area to the east of the village where we all lived, away from the upper castes" (B. Nitin N Pg.). The writer, with her subjective self-experience, highlights that only a Dalit writer can justify true pain and suffering of the most victimized Dalit women in the literary presentations. She significantly explains the purpose of this work, which certainly brings forward contemporary Dalit issues, especially the problems of women in a male-dominated patriarchal society. "We demonstrated gross inequalities in women's access to health care systems or to 'development', and examined patriarchal ideologies as they worked across a wide range of institutions" (Arya 41).

Shyamala Gogu shakes the feminist roots at the edge of mainstream literature through her distinctive style and critiques caste and patriarchy and lived experiences of marginalized Dalit women in literary form. The emergence of a loud voice in the form of stories to draw attention towards the voice of Dalit women's literature against the negligence of the experiences of oppressed women for thousands of years is a challenge to the mainstream feminist perspective. Mary E. John criticises mainstream feminist Nivedita Menon's blunt rejection of the application of intersectionality in India, demanding engagement with the concept, since it is 'an excellent candidate' to help us to achieve our feminist ends. (Arya 171)Dalit feminists emancipate their voices contrary to mainstream feminists who have ignored the struggles faced by Dalit women, the treatment of otherness and casteist oppression. Dalit feminist literature serves the purpose of establishing social consciousness by emphasizing issues intersecting with caste as a deterrent to societal upheaval. A UN report presented by Crenshaw at WCAR in 2001 interpreted the intersectional perspective as:

> Intersectionality is what occurs when a woman from a minority group... tries to navigate the main crossing in the city. . . . The main highway is 'racism road'. One cross street can be Colonialism, then Patriarchy Street. . . . She has to deal not only with one form of oppression but with all forms, those named as road signs, which link together to make a double, a triple, multiple, a many layered blanket of oppression. (Arya 35)

Gender-based oppression perpetuated in society acknowledges the interconnected nature of everyday life and the social impact such practices have on women's psyches. Shyamala Gogu's *Father may be an Elephant and Mother only a Small Basket, but…*, a short story collection, interweaves Dalit and feminist theories through an intersectional analysis of existing caste, gender, and class-based perspectives on Dalit feminist thought. Analyzing the portrayal of women's situation in the family as well in the society, the author highlights the importance of literary creation and cultivation of a sense of self-representation in social correction. While focusing on various issues related to Dalit women, including caste and gender, sexual violence, lack of access to education and fundamental human rights, the concept of the caste system has been attacked by the author in her collection of short stories. What the author has tried to

depict is similar to the opinion of Aloysius et al.:

Aloysius et al. argue that Dalit women are most prone to violence from the caste-class-gender axis through untouchability, labour control, gender control and control on Dalit women's sexuality, which defines their everyday hierarchical relationships with dominant caste men and women, as well as with Dalit men. (Arya 171)

For centuries, patriarchal domination worldwide has kept women under males in the society. However, when we focus on Indian society, where caste-based issues significantly prevail and divide society, castes have doubled the oppression of women.

The first story, "Father may be an Elephant and Mother only a Small Basket, but…" which constitutes the title of Shyamala Gogu's collection aptly encapsulates the Dalit view expressed by the above lines. The title of the story itself is symbolic of patriarchal domination. The Father has been represented as an elephant and the mother as a basket which can be ruined by the elephant. In this story, Gogu Shyamala, who fights against physical abuse and considers women as equals, identifies herself with her male counterparts. The father, who disappears from his home due to false criminal charges of stealing imposed on him leveled by the Patel at whose fields he was working, one day he suddenly appears which brings joy on the faces of all the family members. The sudden arrival of a prominent family member was the happiest moment for all. They welcomed him. But this joy soon turns into gloom because the husband has developed a habit of drinking which completely changes his behaviour towards his family member. One day, he asks for some money from his wife and when she denies to give money because she has no money, he hits her hard with a punch the moment she completes her sentence and continues beating her as she is a cattle. Meanwhile, his mother appears and abuses him:

Not even three days since you came back and you have started beating her up, you asshole. You have fallen like Yama on her! How much will you beat her? Look at the injuries all over her body. You have made her helpless! How do you think she will work? If you have the balls go show this anger to the people who called you a thief. When you left us to wander around the country, she looked after your children and me. Anyone else would have left us to our fate. She starved her own stomach to fill ours. She kept all those who cast their eyes on her at a distance and looked after this house, you jackass. (Gogu 25)

When some relatives from a neighboring village comes to pick up his mother with the news that their elder daughter has given premature birth to a child, the grandmother Sangavva turns to her son and scolds him for his misbehavior. She says:

What will you do now, you shameless idiot? I gave birth to a good-for-nothing fellow. You have broken her back. Now, who will wash your daughter's stained clothes? The tradition is that the mother should help at the first delivery. What shall I do now? "She cried, with her hand on her head. (*Gogu* 25)

In this story, Shyamala Gogu reveals the patriarchal treatment of women in the house. Their subjugation in the society because of their caste has not been dealt upon by the writer. "Tataki Wins Again" is another story in this collection by Shyamala Gogu. It depicts the ill treatment of a young Madiga girl named Balamma. When she is only 13 years old, she is mistreated by the upper caste. At this very tender age, she goes to work in the farm of an upper caste. Though she is very young but she has an immense strength and courage. Seeing her courage, her father proudly appreciates her: "My father was like that too. When he died, his soul came into Balamma" (*Gogu* 97). Like an ordinary man, she gets up early in the morning to fetch water to irrigate fields and also does many chores there. She is well aware that if she is late for the fieldwork, she may face a water shortage, an essential requirement for crops in the field. One day early in the morning, when Balamma is watering her field, the flow of water is interrupted by an older man who is watering the field near her area. Balamma quickly begins to patch with her spade and strikes like lightning against the mud in resistance. She pushes the old man with her elbow so powerfully that he falls onto the bund. She says: "I have two more plots to water, they will fill in no time. . . . "Don't you dare come near till then. You can divert the flow after I'm done" (Gogu 88).

When Karnam, the master of the farm in which older man was working, comes to know that a young Madiga girl named Balamma, whose farm is next to his, is the only responsible person for his field being dry, he flares into anger. Next day he instructs the older man not to go to the field for work. Instead, he himself goes to the field. In anger, Karnam roars at the girl: "You really have a swollen head. You water the fields before my men, do you?" (Gogu 98). He slaps on her cheek and throws her away. Furthermore, he starts to follow her and turns to grab her hand and pull towards him. When she sees Karnam's face, she realizes it is Karnam, the high-caste owner of the neighbouring peanut farm and feels a rush of fear. She is surprised that the one who never touches a Madiga, why is he dragging her? Besides, he abuses her in bad words:Tataki! You bloody witch! You are a small girl, are you? What makes you come here like a man and water the groundnut fields? In our houses, girls like you don't step into the field. You *malas* and *madigas* don't even know that girls have to be kept at home! You are a small girl, are you? (Gogu *97*)

For upper castes, a young girl from a so-called lower caste is vulnerable and an easy target for harassment. Balamma pleads to let her go realizing that this wizened Karnam has come here intending to do something terrible but it falls lame. To save herself, she aims at Karnam and kicks him as hard as she can in the groin with both legs. Karnam screams in pain crying that he is almost dead. After this event, the Mala and the Madiga women of the village proudly applaud the strength and strong will of the young Madiga girl and with a smile, recall the fiasco of an old coiled Karnam who tried to mistreat her with the ill will. This event draws the attention of every villager through their palus as they share the news: "The landlord wanted to catch our Balamani. She kicked him in the groin!" (Gogu 98).

This story by Shyamala Gogu intensely highlights oppression of Dalit woman in the outside world because of being low in the caste ladder. It is very pertinent to mention that the Marxist ideology which posits that: "women are twice discriminated against in any class society" is not applicable to Dalit women because they are one fold more troubled than twice discrimination. Vrinda Nabar has appropriately observed: "In India the discrimination against them (women) would be by and large three fold: sex based (stri-jati), caste-based (jati) and class-based. To be Caste as Woman in India is to live out this triple-layered existence" (Pandey 2).

"Raw Wounds" is a powerful and thought-provoking short story in which Shyamala Gogu uses vivid imageries and dialogue to expose deep-seated prejudices and injustices in Indian society. Through the eyes of a young girl, the story exposes the prevailing social reality of caste-based discrimination and gender inequality by questioning the face of caste classification. The story is set in a small village where people are divided into different castes. The protagonist, a brave father named Balappa, belongs to the Madiga caste, which is considered at the bottom of the social hierarchy. Despite the odds, the father is determined to educate his daughter and sends her to school. However, this decision is met with resistance and hostility from upper caste landlords and village elders who see education as a threat to their power and control and impose the *Jogini* system on their daughters against their wills. The father requests hostel authorities to take her admission revealing the situation:

1. The patel will take her as his woman in the name of god, with the approval of all the upper castes and the priest in the village. She will then be available to every man in the village in god's name! I brought her here without the knowledge of the elders as soon as I heard of the decision. They had heard that I was going to put this girl in the hostel for her studies. They summoned me. (Gogu 141)A father tries to prevent his daughter from becoming a *Jogini* through which a young woman from a low-caste in India, who is devoted to a local deity, is forced into prostitution to serve high-caste men. The father admits his daughter to the hostel to study against decision of the upper caste villagers to dedicate the daughter as a *Jogini*. The father resists this decision:We have brought up these children skipping a meal every day. We are sending them to study so that they will not be bound to our slavery. How can I give my daughter as a *Jogini* after having watched her grow under my own eyes? My stomach burns. I feel more dead than alive. (Gogu 143)

The story delves deep on the issue of gender inequality, a pervasive problem in Indian society. Although her father decides to educate her, Syamamma's prospects are limited by the fact that she is a low caste girl. The villagers see her education as a waste of time and money. The landlady suggests that she would be better if she became part of the *Jogini* system, a religious prostitute. This attitude reflects the male chauvinistic and casteist view of the upper castes towards Dalit girls in Indian society.

In conclusion, the concept of caste and feminist theories intersect in analyzing the intersection of race, gender and class in the creation of feminist Dalit literary frameworks. The views of the Dalit feminists that Dalit women are thrice subjugated are well established through stories interpreted in this paper. Shyamala Gogu, thus, emphasizes the need for self-representation and introspection in challenging the intersectional factors of society with the notion of feminism and caste. Keeping in mind the oppression experienced by Dalit women, the author highlights the intersectionality of caste by including a critical perspective of women empowerment in Dalit literature and incorporating the challenges of otherness faced by marginalized communities.

****

Work cited

1.Arya, Sunaina, and Aakash Singh Rathore, eds. *Dalit feminist theory: A reader*. Taylor & Francis, 2019.
2.B, Nitin. "For Gogu Shyamala, being Dalit and woman is survival, beyond victimhood and
3.outside of it." The News Minute, 09 April 2016,
4.Pandey, Sanjay, et al. "Feminism: Issues and Perspectives." *The Achievers Journal*, vol. 1, no. 1. Accessed 29 June 2023.
5.Shyamala, Gogu. *Father Maybe an Elephant and Mother Only a Small Basket, But*. Navayana
6.Publishing, 2012.

Fifth Schedule and Tribal Self Governance: A Critical analysis of New PESA Rules, 2022 of Madhya Pradesh

Mohan
Doctoral Fellow
Department of Tribal Studies
IGN Tribal University, Amarkantak (M.P.)

Abstract: - Article 40 of the Constitution of India requires the State to develop villages as an autonomous unit of governance. According to this expectation of the constitution, in 1992, by the 73rd amendment of the constitution, village-level democracy or Panchayati Raj Act was implemented in India. Which empowered the gram sabha, the lowest unit of local self-government, to take important decisions. According to Article 243 (e) of Part 9 of the Constitution, which provides for Panchayats, these provisions will not apply to Scheduled Areas and Tribal Areas mentioned in 244 (1) and 244 (2) of the Constitution. The 10.45 crore tribal population living in India has its own separate lifestyle and self-governance system. Keeping this self-governance system in mind, the Bhuria Committee suggested a new structure of Panchayats for tribal areas, which came to be known as the PESA Act. The word PESA stands for The Provisions of the Panchayats (Extension to the Scheduled Areas) Act, 1996. The Panchayat Provisions (Extension to the Scheduled Areas) Act 1996 (PESA) came into force on 24 December 1996 in all the 10 states having scheduled areas in the country after the assent of the President.

In the state of Madhya Pradesh, 0.68 lakh square kilometers of the fifth schedule area and the PESA Act is applicable there. After 25 years, on November 15, 2022, the state government implemented the newly created PESA rules 2022 in the state on Birsa Munda Jayanti. The purpose of the presented research paper is to critically analyze the PESA Rules 2022 of Madhya Pradesh. To what extent tribal customs, practices, self-governance institutions will be recognized by these new PESA rules, a critical description of this has been done in the presented research paper. Secondary data has been used in the above research article, and these data have been taken from Madhya Pradesh Panchayati Raj Department, many research papers, magazines, newspapers.

Key words: Scheduled Tribe, Scheduled Area, PESA Act, Gram Sabha, Customary Law.

"Indigenous peoples around the world have sought recognition of their identity, their ways of life and their rights to traditional lands, territories and natural resources; Yet throughout history, their rights have been violated. Indigenous peoples today are arguably among the most disadvantaged and vulnerable groups of people in the world. (Indigenous, 2006). According to the 2011 census, India has 8.6% or 10.45 crore tribal population of the entire country's population, which is the country with the largest tribal population in the world. The Constitution of India uses the term "Scheduled Tribes" for tribal communities, which is an expression of an administrative identity rather than a social, cultural identity. There are more than 705 communities listed as Scheduled Tribes in the Constitution of India.Some communities have been called Scheduled Tribe communities in the Constitution because these communities have been listed in the Schedules of the Constitution. Article 366 (25) of the Constitution of India defines Scheduled Tribes as "such tribes or tribal communities or parts or groups of such tribes or tribal communities as are deemed to be Scheduled Tribes for the purposes of this Constitution under Article 342". is understood" (Upadhyay, 2016). Declaration of Scheduled Tribes by the President under Article 342 of the Constitution "(1) The President may, with respect to any State or Union Territory, and where it is a State, after consultation with the Governor, by public notification, declare Scheduled Tribes communities or tribes or parts or groups of tribal communities which shall for the purposes of this Constitution be deemed to be Scheduled Tribes in relation to that State or Union territory, as the case may be. (2) Parliament may by law include or exclude from the list of Scheduled Tribes specified in the notification issued under clause (1)." (Upadhyay, 2016, pp. 202-202). The criteria for inclusion of a community in the list of Scheduled Tribes is nowhere mentioned in the Constitution, but the criteria to be followed for inclusion of a community in the list of Scheduled Tribes include primitive characteristics, distinctive culture, geographical isolation, Large-scale contact with other outside communities is marked by shyness and backwardness, which are now well-established norms.

Fifth Schedule: - The tribal community of India has been continuously struggling to protect its self-governance system, culture, customs, traditions and its resources from outsiders. The tribal community had its own system of governance, the basis of which was their collectivity. In this collective system, all the people of the society were equal, no member had any special privileges, as a result, there was no system like collecting 'tax' and 'lagan' in the tribal community. When the British established their system of governance in India and tried to interfere in the social system of these tribal communities, collect taxes, exploit the resources of the forest, then these tribal communities rebelled on a large

scale against those colonial rulers. To pacify these rebellions, the British in India introduced two types of administrative system for tribal areas and for general areas by "Scheduled Districts Act 1874" for tribal populated areas. Later the Scheduled District was divided into Excluded Area and Partially Excluded Area. After independence, in order to protect the interests of these tribes, the partially excluded area was included in the fifth schedule and the excluded area was included in the sixth schedule. Fifth Schedule "Scheduled Areas" under Article 244(1) of the Constitution has been defined as such areas which the President by order declares to be Scheduled Areas. The Fifth Schedule of the Constitution or 'Scheduled Areas' (mentioned in Article 244(1)) of the country is located in 10 states of Himachal Pradesh, Rajasthan, Gujarat, Madhya Pradesh, Chhattisgarh, Jharkhand, Odisha, Maharashtra, Andhra Pradesh, Telangana.

Tribal Self Governance: - To promote local self-governance and democracy at the village level in India, the three-tier Panchayati Raj system was implemented by the 73rd Constitutional Amendment in 1992. Under Section 243 (m) of the Panchayati Raj Act, the Act did not extend to the Scheduled Areas, as the system of self-governance of the tribal community was different from that of the general areas. In 1995, a committee was formed under the chairmanship of Dilip Singh Bhuria to promote the democratic system up to the scheduled areas and to suggest a system conducive to the self-governance system of the tribes. The Bhuria Committee recommended PESA for Panchayats of Scheduled Areas and MESA for urban or municipal areas of Scheduled Areas. The recommendations of Bhuria Committee's PESA for Panchayats got the form of Act in December, 1996, but the proposed MESA for urban bodies could not get the form of Act till date. Tribal self-governance bodies, gram sabhas, customary practices have been recognized in the PESA Act. In the Central Act of PESA, it was arranged that if within one year of the passing of this law, that is, till 1997, whichever scheduled area state does not make rules for its implementation, then the Central Act itself will be considered applicable. From the point of view of implementing PESA, Madhya Pradesh became the first state in the country to amend the existing relevant laws of its state in accordance with the provisions of the PESA Act. Taking prompt action as per the provisions made in the PESA Act, 1996 by the Government of Madhya Pradesh, keeping in view the special conditions of the Scheduled Tribes and Scheduled Areas, with the approval of the Tribal Advisory Council, the following five laws "1. Madhya Pradesh Land Revenue Code, 2. Madhya Pradesh Excise Act, 3. Madhya Pradesh Panchayati Raj Act, 4. Madhya Pradesh Gram Nyayalaya, 5. Madhya Pradesh Moneylending Act were amended. Out of these five laws, the first three laws namely Madhya Pradesh Land Revenue Code, Madhya Pradesh Excise Act and Madhya Pradesh Panchayati Raj Act respectively have been passed with necessary amendments, while the remaining two laws are still under process. Apart from legal amendments, Madhya Pradesh did not frame rules for PESA Act for scheduled areas of its state for 25 years. On 15th November 2022, the birth anniversary of tribal revolutionary Dharti Aba Birsa Munda, which the government celebrates every year as Tribal Pride Day, in the presence of His Excellency President Draupadi Murmu, the state government of Madhya Pradesh in Shahdol district passed the 'Madhya Pradesh Panchayat By-laws (Scheduled Areas) Extension) Rules, 2022' (Kumar, 2023). Madhya Pradesh became the 9th state to frame PESA rules, Chhattisgarh state has already framed PESA rules, while Jharkhand state is yet to frame PESA rules. A large part of India's tribal population resides in Madhya Pradesh, and there is also a large area of the Scheduled Area, so the PESA rules will definitely have a positive impact on the lives of the tribals here. The total geographical area of Madhya Pradesh is 3.08 lakh sq.km. m. Out of which 0.68 lakh sq. kms. m. Scheduled area is declared, which is spread over 20 districts (6 full and 14 partial) of the state. The total population of the state is 726.27 lakhs, in which the Scheduled Tribe population is 153.17 lakhs (21.09 percent). The total number of scheduled areas of the state is 129.08 lakh, of which 76.52 lakh (59.28 percent) belong to the scheduled tribes.

Madhya Pradesh PESA Rules, 2022: - The tribal community has been considering JAL, JANGAL and JAMIN as an integral part of their life and culture, and according to that the tribes have traditional rules, laws, customs and institutions. With the new PESA rule 2022 of Madhya Pradesh, the gram sabhas of the scheduled areas and the tribes there will get the following rights: - Gram Sabha's right to land and its management.Right to manage water resources.

For minor minerals which are specified in Schedule-I and Schedule-II under Rule 18 of the Madhya Pradesh Minor Mineral Rules, 1996, it will be mandatory to obtain the recommendation of the Gram Sabha. Priority will be given to cooperative societies of Scheduled Tribes, women and men of Scheduled Tribes in the extraction of some minerals in the Scheduled Area.Gram Sabha will be able to prohibit intoxicants and regulate their sale.Rights related to minor forest produce in the forest.Gram Sabha's control over markets and fairs.
Control over moneylending and money lending in PESA areas.Critical analysis of the new PESA rules: - As soon as the new PESA rules became public in Madhya Pradesh, social organizations and political representatives of the tribal community have started criticizing

them from all sides. First of all, according to paragraph 1 (2) of chapter 1 of PESA, these rules will apply to the scheduled areas of Madhya Pradesh, the criticism is that out of 153.17 lakh tribal population of Madhya Pradesh, only 76.52 lakh tribal population resides in the scheduled area. , If there is PESA rule for the tribal population of the Scheduled Area, then how will the rights, culture, customs of a large tribal population living outside of schedule areas will be protected, the MLA from Pandhana Assembly asked some similar questions in the Legislative Assembly. Apart from this, these rules will be applicable only at the Gram Sabha level, nothing has been clarified about the levels above that, and there is no provision of punishment on any officer, employee for non-implementation of the decisions duly taken by the Gram Sabha. is | According to the PESA rules, the members of the Gram Sabha will be made up of people included in the voter list, but in the tribal community, according to tradition, village children and minor youths and women also participate in the traditional Gram Sabha and keep their side in the decisions, so the Gram Sabha There should have been an institution built according to tradition. According to PESA rules, the Secretary of the Gram Panchayat will also be the ex-officio Secretary of the Gram Sabha, and he will also be responsible for maintaining the records of all proceedings of the Gram Sabha.

In order to make the Gram Sabha more efficient, it was necessary that a separate government employee should be appointed for the Gram Sabha, who would be completely responsible to the Gram Sabha, since the Secretary of the Gram Panchayat has other functions related to the Panchayat. He will lack extra time to cooperate in the work of in relation to land acquisition, rehabilitation, return of land and community resources, after two meetings of the Gram Sabha, not making quorum necessary in the third meeting is a decision to weaken the power of the Gram Sabha. The Gram Panchayat will implement or get the recommendations of the Gram Sabha implemented, but no procedure has been given as to what will happen in case of non-implementation. Any decision of the Gram Sabha can be changed by the district level committee, no separate framework has been created for that and the provisions of Madhya Pradesh Panchayat Raj and Gram Swaraj Act have been used. The powers of the Gram Sabha have not been adapted to the spirit of the PESA Act. Tribes have unwritten customary traditions, there is no provision in the rules to write down tribal traditions and customs and there is no mention of written tribal personal laws already in 1992. There is lack of independent fund for Gram Sabha in the rules of Madhya Pradesh PESA, in this case Gram Sabha will remain dependent on Gram Panchayats for finance and will not be in a position to take independent decisions. Except for serious cases in the local police station, there should have been a system of informing the Peace and Disputes Redressal Committee of the Gram Sabha before the FIR was registered by the police so that cases of less serious nature could be settled at the village level itself in accordance with tribal customs, practices. It would have happened according to the law, but after registering the case, there is no logic to inform the Peace and Disputes Redressal Committee. Jurisdiction of the Gram Sabha has been limited by words like 'the Gram Sabha shall not pass any resolution against the laws in force for the time being' and 'will not cause any kind of prohibition or hindrance in the lawful activities of the Government Authority', the above words Instead, the ambiguity could have been removed by writing the words that the Gram Sabha shall not pass any resolution against the Constitution. In case of illegal occupation of tribal land and the procedure to get it back has not been clearly defined. The word 'prior consent shall be obtained' of the Gram Sabha in land acquisition is ambiguous in itself, instead of the above word 'it shall be necessary to obtain prior consent', the Gram Sabha would have gained power in real sense.

Gram Sabha will return the land in case of illegal encroachment on the land of primitive tribe by others by fraud, no additional resources have been provided to Gram Sabha to remove the above-mentioned illegal encroachment. In Chapter 6, it will be mandatory to obtain the recommendation of the Gram Sabha before allotment for the mining and mining of minerals. The word itself is unclear, instead of the above word 'consent will be necessary', the Gram Sabha would have gained power. Mahue, Char, Harad, Baheda, Bel used by tribal people in Madhya Pradesh have not been explicitly included in minor forest produce. According to tribal traditions, no arrangement has been made to use other material from the forest for worshiping their gods and goddesses. No power has been given in the PESA rules to cancel the license or impose penalty on the Gram Sabha for violation of the rules of the Madhya Pradesh Scheduled Tribes Moneylender Regulation, 1972 or in case of complaint against the moneylender. The state government will be able to take the final decision on any question related to the interpretation of the provisions of PESA rules, for this no provision has been made for any independent body or tribal advisory council mentioned in the constitution for scheduled areas.

Conclusion: Implementation of PESA Rules 2022 after 25 years of PESA Act, 1996 to promote self-governance of tribes in Scheduled Areas in Madhya Pradesh is certainly a commendable step by Madhya Pradesh Government (Delhi, 2022). A large tribal population of Madhya Pradesh will be benefited by this, and will be able to ensure their direct participation in the democratic process.

The shortcomings of Madhya Pradesh PESA Rules, 2022 should be amended in future to suit the basic spirit of PESA. The customary code of the tribes here in Madhya Pradesh was compiled in 1992 by the Department of Law and Legislative Affairs, Government of Madhya Pradesh under the chairmanship of Justice Faizanuddin of the Madhya Pradesh High Court. Those customary codes should be included in the new PESA rules and the Scheduled Tribes should be given the right of self-governance accordingly. Compilation of tribal customary laws should also be done through Gram Sabhas, so that they can be written down and protected. For Gram Sabhas to work independently, a permanent Gram Sabha Fund should be set up in Madhya Pradesh, like the Gram Sabhas in the Scheduled Areas of Maharashtra, and for this a separate provision should be made in the state budget, so that the Gram Sabhas can fulfill their functions and do not depend financially on other institutions for the works. In order to implement PESA rules on the ground, these PESA rules should be included in the training programs of Central and State administrative officers and they should be given training on tribal customs, practices, traditional institutions before being posted in scheduled areas, so that these officers Be able to work sensitively towards the tribal community. It will be necessary to amend the rules, laws, Acts inconsistent with the PESA rules in a time bound manner so that the PESA rules are implemented without any hindrance. Information about the new PESA rules should be provided to the tribal community through workshops and publicity by the government level and also through gram sabhas, so that the implementation of PESA rules can be facilitated and the public can cooperate.

****

Reference

1. Delhi, P. (2022 , november 17). *PIB Delhi*. Retrieved from Ministry of Panchayati Raj: https://pib.gov.in/PressReleasePage.aspx?PRID=1876869#:~:text=PESA%20is%20an%20Act%20to,article%20244%20of%20the%20Constitution.
2. Indigenous, U. N. (2006, 10). *Indigenous peoples*. Retrieved 12 29, 2022, from https://globalnaps.org/: https://globalnaps.org/issue/indigenous-peoples/#:~:text=Indigenous%20peoples%20have%20sought%20recognition%20of%20their%20identities%2C,and%20vulnerable%20groups%20of%20people%20in%20the%20world.
3. Justice, M. o. (2023, 01 06). *The Scheduled Areas (States of Chhattisgarh, Jharkhand and Madhya Pradesh) Order, 2003*. Retrieved from Bare Acts Live: http://www.bareactslive.com/ACA/ACT2638.HTM
4. Siddique, I. (2022, november 16). *The Indian Express*. Retrieved from PESA Act will curb conversions, marriages for tribal land: Shivraj Singh Chouhan: https://indianexpress.com/article/cities/bhopal/pesa-act-will-curb-conversions-marriages-for-tribal-land-shivraj-singh-chouhan-8270460/
5. Upadhyay, D. J. (2016). *The Constitition of India.* Allahbad: Central Law Agency.
6. कुमार, म. (2023 , 01 13). *MP Pesa Act: एमपी में पेसा एक्ट लागू होने के बाद आदिवासियों की ताकत बढ़ जाएगी? जानें क्या है यह*. Retrieved from NBT नवभारत टाइम्स हिन्दी, भोपाल : https://navbharattimes.indiatimes.com/state/madhya-pradesh/bhopal/pesa-act-in-mp-tribals-power-increase-after-implementation-of-this-act/articleshow/95503405.cms

Dermatoglyphics of the Kom Tribe of Manipur

Ksh.Sunita Devi
Asst.Prof., Department of Anthropology,Thambal Marik College,Oinam

L. ROMEO SINGH
Deptt. of Anth.
Moreh College, Manipur

Abstract:- The present study has attempted to study the finger and palmer dermatoglyphics from among the Kom, one of the 33 Scheduled Tribes of Manipur. A total of 213 Kom individuals have been considered for the study. In finger patterns, they have the higher frequencies of whorl patterns on both hands with compare to other pattern types and the highest frequency of it has been recorded on the IVth digits. In the distribution of finger ball patterns, no bimanual and bisexual differences have been observed. The males (14.02) have shown higher mean ridge counts of the finger patterns than the females (13.28). In the main-line terminations of A, B, C and D, the most frequent ending positions have been recorded at 3, 5, and 7 each with 54.%, 35.33%, 42.31% and 45.45% respectively. 43.66% of them show the 'atd' angle within the range of 40^0- 44^0. In the distribution of three main-line-formulae i.e. 11.9.7, 9.7.5 and 7.5.5 among the males and females, the highest incidence have been observed in the formula 7.5.5 in both the sexes, although the formula 9.7.5 also found comparatively in high frequencies. The mean palmer main-line index of male and female shows 6.32 and 6.79 respectively with a difference of 0.47. When compared statistically the frequencies of Furuhata's ($\chi^2_{(1)}=1.88$) and Dankmeijer's indices ($\chi^2_{(1)}=0.90$) no bisexual variations are observed.

INTRODUCTION-

The Kom tribe is one of the 33 Scheduled tribes of Manipur. At present they are distributed in 59 villages in the 4 districts of Manipur. Viz, 1) 7 villages in the Chandel sub-division of Chandel district, 2) 29 villages at the Churachandpur sub-division of Churachandpur district, 3) 1 village at Imphal East district and 4) 22 villages in the East and West Sadar Hills sub-divisions of Senapati district. Clan exogamy is not the strict rule as revealed by the genealogical studies. Hunting of wild animals is convenient in the foothills and cropping is also possible to vast lands-

MATERIAL AND METHODS-Material consists of bilateral inked impressions of fingerballs and palms of 213 Koms (M=111, F=102) were collected from four different districts of Manipur. Methods described by Cummins and Midlo (1961) were strictly followed in analyzing the data. Three indices namely arch-whorl (Dankmeijer-1938), whorl-loop (Furuhata-1927) and index-pattern intensity (Cummins and Steggerda-1935) were calculated. Maximum atd angle was determined following Penrose (1954). Bilateral and intergroup variation have been determined with $\chi 2$ and students t-test.

RESULTS AND DISCUSSION-Finger Patterns -The percentage distribution of finger patterns of the males and females are shown in Table 1. The most common pattern type in the Kom tribe is whorl with 52.34% among males and 51.57% among the females. It is followed by the ulnar loop (male 43.60%, female 45.49%), while the radial loop (male 2.70%, female 0.88%) and arches (male 1.35%, female 2.06%) are both infrequent. In the digit wise patterns distribution the whorl type occurring in highest frequencies in digit IV being male 76.58%; female 73.53 on the right and male 63.06%, female 69.61 on the left hand. At least 60% and above frequencies of whorl have also been observed on digit 1 of both the sexes. The loop pattern (UL) is also observed in highest frequencies on digit V of both the males (R-60.36%, L-71.17%) and the females (R-67.65%, L-65.69%).

TABLE 1

Distribution of percentage frequencies of Galton type of Finger pattern and Mean ridge counts of male and female individuals

Digit	Male(100)					Female(100)				
	Patterns				Ridge counts	Patterns				Ridge counts
	Whorl	Loop		Arch	Mean±S.E	Whorl	Loop		Arch	Mean±S.E
		Ulnar	Radial				Ulnar	Radial		
R1	67.57	30.63	0.9	0.90	17.32± 0.5	66.67	28.43	0.98	3.92	15.58± 0.59
R2	54.05	34.23	9.01	2.70	12.95± 0.5	58.82	36.27	1.96	2.94	12.54± 0.57
R3	43.24	55.86	0.90	-	12.00 -	31.37	65.69	-	2.94	13.08± 0.5
R4	76.58	22.52	0.90	-	16.01 -	73.53	24.51	0.98	0.98	14.92± 0.56
R5	38.74	60.36	0.90	-	11.68± 0.42	31.37	67.65	0.98	-	11.36± 0.49
TR	56.04	40.72	2.52	0.72	13.99± 0.28	51.18	45.88	0.98	1.96	13.50± 0.54
L1	61.26	36.94	-	1.80	15.69± 0.52	60.78	35.29	0.98	-	13.86± 0.59
L2	47.75	35.14	10.81	6.31	12.54± 0.51	52.94	40.20	2.94	2.94	12.69± 0.56
L3	44.14	53.15	1.80	0.90	13.94± 0.42	43.14	54.90	-	3.92	13.18± 0.52
L4	63.06	36.04	-	0.90	15.69± 0.41	69.61	29.41	-	1.96	14.65± 0.55
L5	27.03	71.17	1.80	-	12.36± 0.40	33.33	65.69	0.09	0.98	10.97± 0.51
TL	48.65	46.49	2.88	1.98	14.04± 0.45	51.96	45.10	0.78	2.16	13.07± 0.55
TR+TL	52.34	43.60	2.70	1.35	14.02± 0.37	51.57	45.49	0.88	2.06	13.28± 0.54

't' Value (Ridge counts) = 1.1209 : Not significant

The sexual dimorphism in the manifestation of the finger print patterns is not very distinct ($\chi 2(2)= 1.438$, Table 2). In the bimanual among the males and females no significant differences have been observed. When compared the males with the females, it shows a negligible diminution in whorls and elevation in total frequency of loops.

TABLE 2

Distribution of Chi-square values for bimanual and bisexual comparison in respect of finger pattern frequencies

Comparison	Sex	χ^{2--}	P in 2 d.f.	Inference at 0.05 level
Bimanual	Male	1.515	0.05<P<0.01	Not Significant
	Female	0.430	0.99>P	Not significant
Bisexual	M x F	1.438	0.50<P<0.30	Not significant

Cummins' pattern intensity index (PII) does not show much variation between the two sexes with the mean values of 15.05 in the males and 14.94 in the females. With the 't'–value of 0.24, no bisexual differences have been observed (Table 3).

TABLE 3

Pattern intensity index (P.I.I.)

Sex	$\bar{X}$ + S.E	S.D. + S.E.	't'-value
Male	15.05+0.32	3.34+0.22	0.236
Female	14.94+0.34	3.40+0.24	
M + F	15.00+0.23	3.37+0.16	

Finger Ridge Count-

The mean ridge count for individual digits of two sexes are given in Table 1. As expected, the highest count occurs on digit I and IV and the lowest count occurs on digit V in both hands. The frequencies for digit I are different in respect of hands and the sexes, being higher on the right side and by the males. The mean ridge count is 14.02 among the males and 13.28 among the females. No bisexual difference has been observed in TRC (t-value =1.12).Main lines on palmFrom the frequency distribution of main-line terminations it has been observed that main-line A terminates most frequently at ending 3 with 48.2% among the males and 59.8% among the females (Table 4). The B-line (Table 4) terminates most frequently at position 5 in both the males (29.96%) and females (40.69%).The C-line terminates at ending 7 with 40.99% among the males and 43.63% among the females (Table 4).Even in line-D the most frequent ending position has been recorded at 7 with 47.75% and 43.14% for the males and females respectively (Table 4). In this, the left hand shows higher frequencies than the right hand.

TABLE 4

Distribution of percentage frequencies of palmer-Main-line endings of male and female individuals

Main lines	Main- line endings	Male			Female		
		Right (R)	Left (L)	R+L	Right (R)	Left (L)	R+L
A	2	1.80	37.84	19.82	3.92	14.71	9.31
	3	45.05	51.35	48.20	52.94	66.67	59.8
	4	27.93	8.11	18.02	6.86	2.94	4.9
	5'	23.42	2.7	13.08	35.29	15.69	25.49
	5"	0.90	-	0.45	0.98	-	0.49
	8	0.90	-	0.45	-	-	-
B	3	-	9.01	4.50	-	-	-
	4	28.83	12.61	20.72	-	-	-
	5'	0.90	59.46	30.18	36.27	52.94	44.61
	5"	46.85	12.61	29.73	43.14	30.39	36.76
	7	19.82	6.31	13.06	18.63	13.73	16.18
	8	3.60	-	1.80			
	9	-	-	-	1.96	-	0.98
	X	-	-	-	-	0.98	0.49
	0	-	-	-	-	1.96	0.98
C	4	-	1.80	0.18	-	-	-
	5'	1.80	26.13	13.96	2.94	13.73	8.33
	5"	32.43	29.73	31.08	30.39	36.27	33.33
	7	47.75	34.23	40.99	48.04	39.22	43.63
	9	17.12	6.31	11.71	16.67	10.78	13.73
	11	0.90	-	0.45	0.98	-	0.49
	0	-	1.80	0.90	0.98	-	0.49
D	5'	-	-	-	0.98	1.96	1.47
	7	35.14	60.36	47.75	34.31	51.96	43.14
	9	43.24	34.23	38.74	46.08	32.35	39.22
	11	21.62	5.41	13.51	18.63	13.73	16.18
	X	-	-	-	-	0.98	0.49

X = deviation of triradius from the Normal position
0 = reduced or absence of triradius

The frequency distribution of three principal main-line formulae (Table 5) has revealed that the frequency for 7.5.5 formula shows the highest frequency in the population with 37.79%, where in the females (40.69%) exceeds the males (35.14%). Formula 9.7.5 occurs in the next highest frequencies in both the males (32.88%) and the females (34.80%). It shows a preponderance order of 7.5.5 > 9.7.5 >11.9.7. The bimanual chi-square comparison shows no significant difference ($\chi^2_{(3)}$=6.39). The mean palmer main-line index of male and female shows 6.32 and 6.79 respectively with a difference of 0.47 (Table 6).

TABLE 5

Distribution of percentage frequencies of Wilder's Main-line formulae

Main-line for-	Male			Female			Total
mulae	R	L	R+L	R	L	R+L	M+F
11.9.7	11.71	2.7	7.21	11.76	6.86	9.31	8.82
9.7.5	36.94	28.83	32.88	40.2	29.41	34.80	33.8
7.5.5	33.33	36.94	35.14	33.33	48.04	40.69	37.79
Others	18.02	31.53	24.77	14.71	15.69	15.20	20.19

χ^2 = 6.389 : Not significant

TABLE 6

Distribution of Mean of Palmer main line index
(M = 111. F = 102)

Side	Male				Female				M-F
	$\overline{X}$	S.E.	S.D.	S.E	$\overline{X}$	S.E.	S.D.	S.E.	
R	7.33	± 0.2	2.07	± 0.14	7.09	± 0.19	1.95	± 0.14	0.24
L	5.62	± 0.14	1.49	± 0.1	6.15	± 0.19	1.89	± 0.13	-0.53
R+L	6.32	± 0.16	1.65	± 0.43	6.79	± 0.18	1.78	± 0.12	-0.47

Axial triradii (atd *L*) on palm

The frequencies of axial triradii at different levels and at various combinations are given in Table 7.In the distribution of '*atd*' angle among the Koms, it has been observed that majority of the Koms show the angle within the range of 40^0- 44^0 with 43.66% (male 42.79%, female 44.61%). The next highest frequencies are observed within the range of 35^0-39^0 angles with 21.36%. The mean *atd* angle is observed to be 43.26^0 among the males and 42.59^0 among the females. When compared statistically, no bisexual variations have been observed (t-values = 0.86, d.f=1).

TABLE 7

Distribution of percentage frequencies of '*atd*' angle and Mean '*atd*' angle for both palms of male and female individuals (M=111, F=102)

atd angle	Male (M)					Female (F)					M + F
	Right (R)		Left (L)		R+L	*Right (R)*		Left (L)		R+L	
	f (p.c.)	$\overline{X}$ in degree	*f* (p.c.)	$\overline{X}$ in degree		*f* (p.c.)	$\overline{X}$ in degree	*f* (p.c.)	$\overline{X}$ in degree		
30^0- 39^0	20.72	43.71± 0.61	26.13	43.35± 0.62	23.42	32.35	42.69± 0.61	21.57	43.13± 0.58	26.96	25.12
40^0- 49^0	64.87		60.36		62.61	54.91		64.82		59.81	61.27
50^0- 59^0	11.71		10.81		11.26	9.53		11.36		10.78	11.04
60^0- 69^0	2.70		2.70		2.70	2.94		1.96		2.45	2.58
Total	100.00		100.00		100.00	100.00		100.00		100.00	100.00

't'-value = 0.8612 : Not significant (d.f. = 1)

Indices-Distribution of mean Index values for Furuhatas' and Dankmeijers' indices are given in Table 8. In Furuhatas' index, the two sexes by having 113.04 among the male and 114.16 among the females do not show much bisexual difference. However, bimanually the right hand (129.58) show much higher frequencies than the left hand (98.54). In the case of Dankmeijers' index, the Koms have a total index value of 3.32, although in this, the females have higher index value (4.14) than the males (2.58). When compared statistically (Table 8), no bisexual variations have however been observed in both Furuhatas' index ($\chi^2_{(1)}$=1.88) and Dankmeijers' index ($\chi^2_{(1)}$=0.90).

TABLE 8

Index values of Furuhata's and Dankmeijer's
(M = 111. F = 102)

Indices	*Sex*	*Right*	*Left*	*Total*	*Population*	*MxF* (χ^2)
Furuhata's Index (WLI)	Male	129.58	98.54	113.04	113.57	1.88
	Female	115.09	113.25	114.16		
Dankmeijer's Index (AWI)	Male	1.29	4.07	2.58	3.32	0.90
	Female	4.12	4.15	4.14		

References

1.CUMMINS, HAROLD AND CHARLES MIDLO, 1961: *Finger Prints, Palm and Soles: An Introduction to Dermatoglyphics.* Dover Publication, New York

2.DANKMEIJER, J., 1938. *Amer. J. Phy. Anthrop*. Cited in Loesch, 1983.

2.FARUHATA,T., 1927. *Jap. Med. World*. Cited in Loesch 1983.

3.GALTON, F., 1892. *Finger Print Directories*. London, Macmillan and Co.

1.HOLT, S.B. 1968. *The Genetics of Dermal Ridges*. Charles C. Thomas, Springfield, Illinois, USA.

2.PENROSE, L.S. 1954. Finger-prints, palms and chromosomes. *Nature*, Lond., 197: 933-938.

7.WILDER, H.H. 1902. Palms and Soles. *Amer. J. Anat.,* 1: 423.

8.CUMMINS H AND STEGGERDA, M. 1935. Finger prints in a Dutch family series. *Amer. J. Phys. Anthrop. 20:19*.

Emergence of Green Industries as tool for sustainable development

Dr. Renu Sinha
Head of the Department, Hindi
Nirmala College, Doranda,
Ranchi, Jharkhand – 834002

The emergence of green industries as a tool for sustainable development in India post-COVID-19 is a pressing issue that needs to be addressed urgently. The pandemic has forced us to adapt and change our behaviours rapidly, especially in carbon-intensive sectors such as transport and mobility. Consumption patterns are also changing, with the focus on buying locally and reducing the carbon footprint of numerous products. The recovery process in the aftermath of COVID-19 will determine how successful we are in keeping climate conversations and ambitions on track.

Most countries in the Global North are looking at a 'green recovery,' building back better with renewable energy, clean technology, and clean innovations in infrastructure and transport. It is important to take actions that build a society more adept at managing similar crises in the future. Green industries can expect a boost in their development, not only due to government support measures, but also to new investments, including a redistribution of funds from traditional carbon-intensive sectors to the "greener" ones.

To combat the devastating economic fallout from COVID-19, it is imperative to introduce green stimulus policies, which tend to have a large return on investment, can be enacted quickly, and also have positive impacts on the climate and the wider environment. Studies suggest that investing in renewable energy projects, such as the development of wind and solar farms, as being among the most effective forms of economic recovery spending, as clean energy installation is often labour-intensive, creating twice as many jobs compared to fossil fuel investments.

Other stimulus areas that score high include spending on energy efficiency retrofits, clean research and development (R&D), carbon capture and storage (CCS), natural capital investment for ecosystem regeneration, and investment in education and training to address unemployment resulting from COVID-19 and decarbonization.

Governments can use the current situation to step up their climate ambitions and launch sustainable stimulus packages focused on clean energy technologies. Our focus going ahead should also be to prepare for the next biggest challenge, the scarcity of water. There is a need for more research to be conducted and policy to be framed and implemented by think tanks like The Energy and Resources Institute (TERI), Council on Energy, Environment and Water (CEEW), Centre for science and environment (CSE), while detailed data analytics need to be showcased by energy agencies like the IEA.

As per WHO, a healthy city is one that is continually creating and improving those physical and social environments and expanding those community resources which enable people to mutually support each other in performing all the functions of life and developing to their maximum potential. Such a wide overhaul of our lifestyle will require action and deliberation at all tiers of the government, industry, and academia. This change will also depend on individual action and responsibility.

COVID-19 is not the last of viral infections that the world might see, and with the right foresight and effective action, we can ensure that we are better prepared for the uncertain future. Hence, it is imperative that we not only make sure to prioritize our social, economic, and environmental concerns while fighting the pandemic but also ensure that sustainability post COVID-19 encompasses healthy living for all.

****

Twenty First Century Educational Sphere

Prof. Dr. Bimal Mandal.
Associate Professor of Serampore Girls' College, Hooghly.
(Under Calcutta University)West-Bengal, India.

Abstract: Educational mode of learning has been going parallel with the advancement of modern technology through a revolutionary change in each and every section of teaching learning process of our life being taken as a token to play the role in the Digital platform of educational system not only limited in Nationalistic arena but spread in the inter -connected zone of International Institution also.

Key-words: Submerged; deeply affected by the globalization, NPC; ICT, cognitive distortion, pedagogical environment, flexibility and movability, traditional and digital pedagogy, reciprocal relationship, student-centred paradigm, constructivist.

Introduction: Ultra-modern digitalization over the world has grasped the spontaneity and traditional mode of teaching-learning process of the educational system in the mind of present generation now a days. Having been enlarged with the spirit of affluent technique and submerged concentration in the virtually systematic process of cultural forum. To us this mode of learning will have been a great part of opening a new era while we are facing a lot of problems in our daily life of educational system in non-virtual mode of learning. We are very competitive not only in the modern age but since the evolution of human brain. Modern science and Information technology give us the key factors to open the gate of learning fast by virtual or by using the advantages of human discovery. For these purposes NPC provides ICT in our school educational system of India. ICT will also include processes for digitization and management of content, development and deployment of platforms and processes for capacity development and creation of forums for interaction and exchanges.

It is, nevertheless, to say onwards from the point of view of globalization that the trial of human beings over the scientific progress as well as over the thoughts of changing world have now been authentically vibrated in our minds also. In the educational system of our life, we as a student or teacher can never be escaped from this shade. Rather as an advanced mind of higher thoughts we should adopt these qualities for all perspectives on the way to our educational success. To say about its aims and objectives we should remind its valuable sides.

1. Flexibility and movability obtain an internal spirit of teaching learning process in the forum of virtual education.
2. Education on urgency basis can be expected to go ford ward through the medium of modern technology.
3. At a time both the teaching and learning sectors can be felicitated by using virtual technique of modern education.

4.Social improvement by the side of individual progress with the help of ICT must be seen in the base point of digitalization.
5.Instead of printing section members can use online file or programmes by utilising the modern technology.
6.Coming out of the traditional thoughts students must take the advantages of global network system to solve and improve the theoretical as well as practical knowledge of common factors.
7.International and National institution come together under the same shade of virtual service, as we have been connected with the service of distance education by sitting at home.
8.Advancement of technology and online platform connect the different parts of the world at one moment by conferencing of open educational space.
9.Universities can evaluate the students in connection with their assessment at one time by sending and receiving the documentary file by having the modern technology.

The studies in foreign country and its review says that there is a relationship between high academic performance and the use of digital technologies which focuses on- Expanding boundaries of self – directed learning, developing leadership in the 'pedagogical environment', creating conditions for the formation of individual educational trajectories of students, modernizing tools for assessing student's knowledge, and also differentiating forms and methods of teachings. But the possible destructive consequences of virtual education can attract ousting experienced teacher with insufficient digital competence from the educational space; information overload, an increase and cognitive distortion, a decrease in the effectiveness of training regarding the formation of intrapersonal communication skill of students, the deepening of digital divide; the formalization and dehumanization of education. Compensators of educational space digitalization dysfunctions are distinguished; improving the teacher training and motivating system, digital content quality control, taking into the account of regional specifics of educational system, a combination of 'traditional and digital pedagogy', group collaboration and digital trust.

Digital platform is necessary but at the same time insufficient condition for improving quality of educational work and morale building activities.

THE IMPORTANCE OF SCHOOL CULTURE ON ICT USE-Focusing on the importance of school culture for ICT integration, Pelgrum and Law (2009) indicated that effective ICT integration depends on the perceptions and vision of school leaders rather than teachers' ICT skills. School culture has a mediating role that influences teachers' actions, beliefs, and attitudes (Chai, Hong and Teo 2009). Therefore, in addition to the external and internal variables mentioned previously, school culture also plays an important role in successful technology integration.However, as the school culture became more positive, the teachers' ICT usage level increased. Ward and Parr (2010) stated

that teachers need to feel confident in their ability to facilitate student learning with technology in order to integrate technology into their classrooms. To achieve this goal, more professional development is required with a focus on increasing teachers' skills so that they are able to overcome apprehensions associated with using technology. Further, new teaching approaches and technical support should be offered by schools to allow them to retain control while facilitating learning with computers. Overall, implementing effective teaching with technology integration requires changes in teachers' knowledge, beliefs, and school culture (Ertmer and Otternbreit-Leftwich 2010).

More specifically, Chen (2008) has shown that there is no resonance between teachers' beliefs and their actual practice while integrating technology in the classroom. While most of the previous studies focused more on the influence of teachers' attitudes and beliefs on actual practice (Chai, Koh and Tsai 2010; Palak and Walls 2009; Sang et al. 2010; Serhan 2009), it has been rare for any study to investigate the 'reciprocal relationship' between teachers' attitudes and beliefs and their practice. Another area to explore could be whether the relationship differs between preservice teachers and in-service teachers. What are their views about their beliefs and their actual practice of ICT integration? Comparative studies would be particularly applicable in examining this perspective. Additionally, few previous studies have examined the challenges or barriers to ICT integration from students, teachers, and administrative perspectives with involvement of specific teaching strategies and activities.

TEACHER ATTITUDES, PERCEPTIONS, AND CONFIDENCE IN ICT USE-Palak and Walls (2009) conducted a mixed study to investigate whether teachers who frequently integrate technology and work at technology-rich schools shift their beliefs and practices toward a "student-centered paradigm". The results showed that their practices did not change; neither student-centered nor teacher-centered beliefs are powerful predictors of practices. However, teachers' attitudes toward technology significantly predict teacher and student technology use, as well as the use of a variety of instructional strategies. In addition to the influence of teacher attitudes, Sang et al. (2010) further indicated that pre-service teachers with highly constructivist teaching beliefs have stronger intentions to integrate technology into their future teaching practices. However, the influence of these variables may change after participation in technology preparation courses or programs. Abbott and Faris (2000) examined pre-service teachers' attitudes toward the use of computers before and after a semes ter-long technology literacy course. The results showed that positive attitudes toward computers increased after the course because of the instructional approaches, meaningful assignments requiring technology, and supportive faculty. The authors also noted that small groups and collaborative learning are the most appropriate when introducing new hardware and software because more advanced andexperienced teachers can assist those who need more technology learning support.

FACTORS INFLUENCING THE USE OF ICT-A variety of external factors have been identified that influence the progression or effectiveness of technology integration in schools. These include technology availability, accessibility of ICT equipment, time to plan for instruction, technical and administrative support, school curriculum, school climate and culture, faculty teaching load and management routine, and pressure to prepare students for national entrance exams (Al-Ruz and Khasawneh 2011; Lin, Wang and Lin 2012; Tezci 2011a). Among these external factors, the most common are lack of access to computers and software, insufficient time for course planning, and inadequate technical and administrative support.

Several internal factors also influence technology integration outcomes (Sang et al. 2011). Internal factors related to teachers include: understanding of ICT use; beliefs, which may conflict with the application of ICT; attitudes toward technology integration; perceptions, including intention or motivation to use ICT; self-confidence and knowledge; technology skills; readiness to use ICT; and technology self-efficacy.

Even though technology can foster interactive, self-directed learning and higher order thinking, technology integration is not the most effective way to improve learning. Through a combination of 'constructivist' learning and technology, learners will be assisted in an active learning process and encouraged to organize information by making internal cognitive connections. ICT, therefore, will not in itself prove effective in the classroom without teachers who possess knowledge of both the technology and how to use it to meet educational goals. Afterall globalisation makes the human beings to go faster and moving with self-supportive while technology proves us to be enchanted with digital educational system of mood. This critical review discusses the current situations, barriers to, and solutions for ICT integration in the classroom. Further, the possible gaps in the existing literature are shown above in order to provide lucid directions for future research into ICT use.

****

REFERENCES:

1. Al-ruz, J. A. and Khasawneh, S., 2011. Jordanian preservice teachers' and technology integration: A human resource development approach, Educational Technology and Society.
2. Tezci, a. Factors that influence preservice teachers' ICT usage in
3. education. European Journal of Teacher Education.
4. Sang, G., Valcke, M., Braak, J., Tondeur, J. and Zhu, C., 2011. Predicting ICT integration into classroom teaching in Chinese primary schools: Exploring the complex interplay of teacher-related variables, Journal of Computer Assisted Learning.
5. Ertmer, P. A. and Otternbreit-Leftwich, A. T., 2010. Teacher technology change: How knowledge, confidence, beliefs, and culture intersect, Journal of Research on Technology in Education.

Interpretation of the word 'Sutra'In Gita Mehta's A 'River Sutra'

Dr. Ranjana Das Sarkhel
Professor
English Department, MATS University
Raipur, Chhattisgarh

Bhagatram Seth
Research Scholar
English Department, MATS University
Raipur, Chhattisgarh

Abstract-Gita Mehta is a remarkably recognised and researched author of Modern Indian English writing which makes it difficult for scholars to analyse her works through a single lens of interpretation. Her books primarily highlight Indian originality and indigenous culture. Her writings address subjects and problems that are reflective of India's sociopolitical, economic, and religious realities. Gita Mehta's writings are insightful analyses of the concepts, individuals, historical events, and personalities that have influenced what has shaped modern India. This paper thus investigates how her book, *A River Sutra,* has portrayed the river Narmada as an enduring centre of Indian spirituality, with pilgrims and holy men flocking to its banks in search of enlightenment. It is an investigation of the cultural identity's essence through which the history of India might be seen. This review paper further analyses the existing body of literature on Gita Mehta's *A River Sutra* and interprets the word 'Sutra' and the critical importance it provides to the pre-existing scholarship.

Keywords: *sociopolitical, economic, religious realities, modern India, Indian spirituality, cultural identity, enlightenment*

Introduction:-Gita Mehta's functioning as a writer is attributed to her experiments with the diversity of the Indian subcontinent and her literary explorations in a work like *A River Sutra* (1993), with such a diversity based on and around an important embodiment of the Narmada river are what play an important geographical directive in connecting the two timelines that set up the essence of the story and the deep rootedness of the Indian flavour of oriental livelihood. The novel is more like an anthology of six different tales, six different narratives, bound together by a single narrator, forming a 'Sutra', based on the commonality of the river, Narmada. Thus, Mehta's identity as a writer is often fluxed between a subjective distant authorship and a close knitting with the narratorial voice that has a universal impact on the six stories that make up the 'Sutra'. Based around the mid to end 20th century, the novel very efficiently translates the post-colonial modern dilemma of existence that runs thick through the elderly generation inhabiting the country, the generation that has seen unspeakable changes happening to and in the country, overnight. Mehta's careful decision to protagonise a retired bureaucrat, who is almost on a spree to interact and expand his social boundary through interactions of different kind which generally include travellers and multi-cultural residents. An important gesture of Mehta's that she explores with is her deliberate obliviousness towards incorporating a mode of didactism or the delivery of a significant message through her narrative which allows her narrative to take shape automatically "without the notion of a motif" (Thapa, 10) that has to be implanted on the reader's mind. *A River Sutra* is a promising example of such a technique where the different stories that take shape through the protagonist's interactions are distributed in the form of blurry vignettes that, in totality, form a series and make up the narrative, impregnated with themes of love, lust, desires, the human heart and mind, something as sensitive as religion, all held upon the string of the "geographical essence" (Patil, 72) of the Narmada river. The 'Sutra' becomes a microcosmic entity that is harboured within a macrocosmic cosmology of unity—something that the Indian geography and sentiment is known for (Joshi, 2021). The binding river seems to bind, in unity, the different religious and temporal diversities in the narrative, the river becomes a 'sutradhar', an actor in itself, "The happening of all the stories is the holy bank of river Narmada. People from different religions and background come on the banks of Narmada in search of solace and peace and all of them achieve it in the manner they want." (Chandorkar, 99)

To understand the essence of 'Sutra' in Mehta's intentions with her novel, the reader must be acquainted with the importance of ethos in Indian tradition and culture, which cannot be identified singularly either. This 'sutra' helps in bringing a cultural unity in the haphazard diversity of the country (Ram, 2008). This 'sutra' additionally facilitates the identification of Mehta as a loyalist who has done a commendable task by culturing and cultivating the very ethos-centric culture she has been brought up in, making her a speculator of the legacy of Indian English literature as a discourse and not merely a form, making the novel "an important attempt by a thoroughly modern Indian to make her reckoning with the Hindu culture from which she emerged." (Rushdie, x)

Literature Review:-Mehta's work has been varied across timelines and various geo-political thematics. Based on the core indigeneous priorities of the Indian subcontinent, there are certain domains of distinction under which a novel like *A River Sutra* can be analysed and the previous history of research on these domains over the last ten years have posited a remarkable opportunity for Indian English fiction to take up a standardised prominence or recognition in the reception of World Literature in general.

Ecofeminism and Feminine Principles:-Tangellamudi

(2015) has separately taken into consideration, 'The Courtesan's Story' and has tried to analyse the chapter from an ecofeinist perspective, giving the narrative a genuine socio-political importance with the matter of globalisation and geo-political environmental crisis in mind. She points out the legacy of the incorporation of feminist principles into the wider narrative of the environment, "a lot of ecofeminists took up the mantle of environmental protection because they saw how its degradation was so closely linked to their own. For ecofeminists, there seems to be a connection between unoppressed women and unabused nature." (Tangellamudi, 180) She furthers her point of view to people in general and not merely nature's association with women. The essay encapsulates the nurturing contribution of the Narmada river that allows the courtesan and her daughter to seek refuge there (Shelton, 2019), along with the various opinions of the daughter regarding the forest and its close association with Rahul Singh, "One unearths that it was Rahul Singh's endearing relationship with nature which instilled spiritual virtues in him. Nature knows no gender. It gives an open invitation to everyone to care." (Tangellamudi, 183)

Poongodi (2021) has rightly pointed out the exclusivity in Mehta's indigeneity with Indian writing, where the focus is no more on the unnecessary contest between the East and the West but is rather more deeply rooted within the cultural variations of the country, which allows the facilitation of multiple narratives, and in turn, speaks about the variety in cultural perceptions of the characters involved in the six narratives. The attitudes of the women in these stories might be dependent on what they have been through in their lives, but are collectively tied to their way of seeking harmony and happiness in nature. The essay centers around the literary and philosophical inclusivity of ecofeminism as a prominent discourse and posits its argument regarding Mehta's play with mythology and its optimum amount of application through all the six stories, keeping Narmada as the essential sutra, be it in the courtesan's story where the water is used as a purging device or its spiritual quality as reinforced in the revelation that comes "with the exposure that Professor Shankar, certainly, is Naga Baba, and the river minstrel is Uma, the girl he fostered." (Poongodi, 121)Rao (2022) looks at Mehta's cultural perceptive in politically stimulating perceptions in works like *Raj* (1989) from the aspect of the intrinsic psyche of women, where she is othered, in a society like India's. His work looks at the conflict that exists when one tries to imagine the current predicaments of Indian women despite the country's mythological architecture, "The culture that created a Sita and a Savtri has denied the rights of existence to woman save as daughter, sister, wife, mother etc. She is yet to achieve individuation and an authentic self identity." (Rao, 157) Rao also considers Mehta's groundedness with the Indian political envelope that surrounds the plot of the novel, where he studies her experiments with inter and intra feminine relationships pre and post-colonial India. This essay thus fixates on Mehta's preoccupation with different kinds of feminine existence in the political outreach of the Indian society.

Professor M. K. Ray (2000) evaluates the extent of fidelity that occurs when it comes to Indian literature's association with a Western canon of criticism, but the uncanny relevance of the theory in the broader Indian English literary circumstance. Mehta deliberately describes Narmada as an embodiment of beauty, more so, in the form of a beautiful woman who is equally appealing and motherly. The youth of the river which is the necessary 'sutra' of commonality is described in refreshing words by the narrator which creates a significant ecofeminist principle in the narrative, "I watched the water sparkling and disappearing like the anklets encircling a woman's foot, and thought of the Ascetic watching the dancing woman formed by the rivulets from his own penance." (Mehta, 96)

Moreover, Nalini (2022) observes the extraordinariness in Mehta's writing and hesitates to call her just a feminist writer, taking into consideration her socio-political reach and the cultural impact of her work. Her women characters are not outwardly rebellious, they do seek pleasure from a domestic setup but are aware of their impact on the society. She notices how there is a deliberate symbolic initiation between her use of myth and science, which she focuses through the poetic quality that Mehta has ascribed to the river, "Through her insistence on the poetry of the Narmada, she tells that positivistic language is incomplete and feeling carries meaning when reason guides the imagination." (Nalini, 134) Given the religious association of Narmada being the daughter of Lord Shiva, there is, by default, a presumption of the dual character of creation and destruction that is ascribed to the river, giving the feminine identity, a connotation of the same, even for a virgin, who is on a run to tempt the ascetics, lustfully, with her grace and dangerous beauty "Her inventive variations so amused Shiva that he named her Narmada. She is a symbol of desire and fulfillment and in between there is a whole spectrum of different moods of a woman in relationships." (Nalini, 134) Thus, Nalini's essay is merely not a standardised feminine framework which rationalises the feminine power of the river as a woman, but gives it a character, that is not significantly completely pleasant.

Mythological Interpretations: Govinthasamy, Sivakumar, and Anand (2022) have vividly analysed the multicultural ethos and the indigenous sensitivity of Mehta's *A River Sutra* from the discursive analysis of

mythology and how it can bring about an impact on the narrative, not merely symbolically but also through a thorough analysis of the socio-cultural existence of a third world country citizen, they agree that "*A River Sutra* is a jumble of concepts that serves as a foundation for comprehending the cultural features of several groups that are autonomous but interdependent, similar but unique, and appear to be linked by the Narmada. The novelist has provided a good portrayal of Indian cultural values, music, and art forms through exploring the Narmada mythology." (Govinthasamy *et al.*, 10165)Sankaran (2012) tries to mythologise the content of the novel through the necessary question of the 'sutra' or the beading process that accumulates and singularises all the six tales and forms a cluster which is varied in its thematic delivery but confirms a mythological unity, giving the narrative, surrounding the river, a gendered outcome. Despite the narrator being a male, the overpowering aesthetics of the tales, "It is noteworthy that this is accomplished despite the all-male coterie of characters who stud the frame narrative." (Sankaran, Abstract) But what catches one's attention in Sankaran's article is its affinity for the various mythological diagnosis of serpents and of the typical Hindu mysticism that forms the criterion for an indigenous identity.

Panda (2021) goes back into the depths of Mehta's nurturing of religiousness in *A River Sutra,* where he analyses the urgency with which Mehta binds the religious multiplicity along the common string or under a wide canopy of ancient Indian hermeneutics of spirituality and humanity, which had shown a successful existence even before the pragmatics of a diversifying religious practice came into being. The easiest way to do this is through an element of marking which can show the existence of a continuity and for this narrative (Bhatnagar 2022), it is the river, "River Narmada is not seen mere a river but is presented as an enigmatic figure who has witnessed the history of the Aryan invasion of India and how Narmada have been taking away the sin of the people for centuries and purges the mind from earthly thoughts. Narmada is the symbol of history, myth and the cultural memory." (Panda, 83)Renuga (2018) explores the silence with which Mehta explores the ancient Indian heritage in *A River Sutra* throughout the six tales, which are narrated over six different circumstances and have gradually exposed the multiplicity in the country's cultural architecture. The definition of culture in her essay is holistic and includes not merely a notion of identification but also every form of intellectual and perceptive construction of human existence, going by the way anthropologist, Edward B. Tylor's definition of culture as "that complex whole which includes knowledge, belief, art, morals, law, custom and any other capabilities and habits acquired by man as a member of society." (Tylor, qtd. in Burnett, 2010) Renuga also emphasises on Mehta's expertise of taking into consideration the various forms of art in the work too, which promotes her motif of inclusivity and aculturation of the various cultural richness in the tales along with the foundational religious differences between the Hindu narrator and his Muslim friend, who seem to share with each other, their beliefs and are harmoniously co-existing under the same cultural canopy. They seem to complement each other, "They seem to the perfect example of Indian culture. Their customs are different, yet they unite in souls. Tariq Mia tries to clarify the doubts of the narrator when he is disturbed by the gloomy thought about dead ascetics." (Renuga, 162)

Ecocriticism and Cultural Harmony:-DİNÇ (2021) makes sure in his essay about the predominance of postcoloniality in Mehta's *A River Sutra* which allows Mehta to not merely explore the themes of the tales from an environmental reactionary but also allows her to incorporate a cultural diagnosis of the xontext of the work, something that DİNÇ calls the "eco-spiritual" which Mehta has profusely experimented with, through her thorough nurturing of Hinduism as a consistent entity of remembrance of divinity and resolution, "Hinduism calls for the human being's responsibility to the universe by defining his place and role in the holistic perception of the universe." (DİNÇ, 380) To strengthen his argument on how spiritually consistent Mehta is, he centers his argument around the transformational 'dharma' of Narmada, which might just be a geographical orientation in the novel but carries unfathomable significance in binding the cultural flavour of the work with the eco-critical theory of deciphering the authorial intentions, "... there is always a flow of pilgrims passing through its banks. Although the narrator came to this place to meditate and forget all worldly ties and issue.

Moreover, Jha (2015) performs an ecocritical reading of Indian English novels in general and goes by Arnold's definition of the term as 'a scholarly site that engenders fertile cross-disciplinary and cross-cultural analysis' to describe what any form of environmentally centred feminist writing can do the Modern oriental literary discipline, more so when it is as fundamentally expressive as something that Gita Mehta would formulate, who, according to the layered timeline suggested by Jha, is placed in a dislocated consciousness where her narrative is irrespective of any social and political biasedness against the systemic notion of ecocriticism in general where "the prevailing conception of nature is informed by a racial and class bias with no space for 'people' who are an integral part of the landscape and environment." (Jha, 39)

Pattanayak (2020) takes the perception a step further and tries to look at Mehta's work from a cultural angle of literary aesthetics. He narrates the various usage and forms of the river through the aspect of the Indian note of 'rasa-dhvani' and tries to look at Narmada from the myriad intensive emotional designations. He breaks the semantics of the term 'Narmada' loosely translating it into 'a whore'

--- an entity or an individual that knows no bounds and is free -flowing, deciding its own course. She is corrupted yet she is holy, and is a source of relief and hope, "The fiction *A River Sutra* throws light upon a formula that if a man establishes close rapport with the river that symbolizes the eternal flow, freedom and flexibility in movement he will be liberated from sorrows and sufferings that characterize the life of an ordinary mortal." (Pattanayak, 225)

Spiritual Synthesis:-Bhadury and Mishra (2021) enunciate on a spiritual cleansing that Mehta provides the genre of Indian English Fiction with, which also happens by binding the multifarious components of religiosity across the cultures within the country, through a spiritually as well as religiously significant element of its geography, the river— "Though the novel creates many India, it is the perennial India that holds the interest of the author as well as the readers. The Narmada stands for the culture of oneness and the theme of the novel is integration of various religions and philosophies with the geography of the river." (Bhadury and Mishra, 124) The stories also combine various religious narratives under the mechanism of story-telling, where an experiential narrative of a Jain monk is re-analysed through a starkly contrasting Islamic evaluation since the audience of the story is a Muslim friend of the narrator's (Pandey 2019).

Gautam (2007) has tried to look at the cultural diversity in the six tales from the point of view of something that is beyond the materiality and liminality of religion, or even the professional gateway of the characters involved like that of the courtesan, the diamond merchant, the Muslim clerks, and the music teacher to name a few, who, regardless of the diversity in their beliefs and ritualistic practices, are all unified by the spiritual purgation of the holy river, "Indians have a belief in the myth that a single sight of this holy river would free mankind from the burden of the recycle of life and death." (Gautam, 1) As evident from Matilal's dialogue, "Life must be a never-ceasing flow of spirit" (Mehta, 169), it is only natural to believe in Gautam's spiritual genesis that Mehta is believed to perform in the tales, where more than the identity of faith and religion in a human being, what takes precision is the acts and deeds one performs in their limited lifetime. Gautam also believes in the anonymity of the narrator which might carry a separate significance— his identity is intact irrespective of his name and religion, his impression that is allowed on the readers is solely based on the types of people he comes across and the stories he encounters, "Mehta weaves a number of accounts around the narrator's experience to form a tapestry of life, spiritualism and relationship." (Gautam, 11)

Babu and Rao (2012) very diligently observe how Mehta's decision to explore the various cultural diversity in *A River Sutra* carries significance which is more than just about the need to interpret and deliver the sentiments of Modern India in its truest sense and has a lot to do with how it can be studied that modernity in India still contains intensive spiritual regards which have been with generations, through their derivation from the religiosity of myths in the Hindu culture, with prominent themes of love, death and the Narmada river. Their essay makes it clear that the sink and source of every spiritual satiation in the novel can be owed to the river:It keeps suppressed souls peacefully. The characters purify their body as well as soul by drowning in the river. The writer might want to say Narmada River indicates India and its culture in which the people survive with so many hurdles. She used it as a character in this novel. The Narmada River purifies the soul of people who are swindled and deceived by cunning human nature and materialistic love. (Babu and Rao, 536)Toor (2016) observes the spiritual emphasis of *A River Sutra* from a profusely humanistic approach and observes the power of human-to-human interactions and the way bonds among and within the human society can bring about changes which can curb any socio-political and unnecessary religious demarcations. Toor also notes how any kind of non-humanist actions can lead one to seek forgiveness, solace, and a form of salvation back at the river, "Unfortunately, Imrat's murder leads him towards a path of guiltridden madness and he comes on the banks of the river Narmada, seeking solace." (Toor, 37) Toor also observes the noteworthy impact of Calcutta on the young executive or the humanity associated with loving someone as observed in Master Mohan's case, "Perhaps he could not exist without loving someone as he had loved the blind child." (Mehta, 91) Toor additionally notices the opportunity of rebirth and hope that exists through the presence of the Narmada river, which promises to purify the souls of whoever it touches and gives them an opportunity to live and relive, where he observes the child's act of drowning as a form of purgation that was necessary "This treatment hints at a suggestion that the enlightenment has all the pain of death and rebirth." (Toor, 40)Thus, the series of review performed on the available scholarships on Gita Mehta and her writings initiate quite a lot of controversial literary parameters which can lead to resourceful narratives of interpretation for future research.

Research Gap:-From what has been deduced from the scholarships and research performed on Mehta or broadly, the Indian English Writing cosmology, there has been a presumptuous note of Indian indegenieity and fidelity that has been kept in mind before deducing her work, alongside a perpetual comparison with prominent 'modern' Indian English writers of the canon like Chitra Banerjee Divakaruni, Salman Rushdie, or Amitav Ghosh. Secondly, there seems to be a gradual inclination of scholars towards taking into a cluster, Mehta's works as a discourse before performing a research on her writing style and literary priorities. There has been a constant need to validate Mehta as a part of the canon which restricts one from looking at her work with a different eye of perception. While discovering the dignity and weight

of 'sutra' as a concept in Mehta's idea of what she would have idealised the actual word, 'sutra' to be, it thus is impenetrable to decide. The literature review makes it apparent that there is more than a singular angle from which the common binding can be established, all of which form prominent thematic expressions in the six tales.

Conclusion:-Gita Mehta's literary contribution in the entire realm of World Literature as a discipline has hence been multidirectional. Starting from something as interdisciplinary as mythical and spiritual intimations in literature to something as niche as the fixation of an entire plot around a river, Mehta's explorations in *A River Sutra* seem to be encompassing quite an expansive state of critical thought. Reading such a range from the angle of the Western post-structuralist throught process, it becomes quite difficult to analyse the voice of a rebellious woman writer, laid over a retired male beaurocrat who is the narrator, giving the whole narrative an authoritative voice of dualism that is shared between Mehta as a writer and Mehta as a spiritual informer, the latter of which is expressed through her narrator's association with the six scattered interactions of very different kinds, "Gita Mehta through her conscious portrayal of relationships has tried to bridge the gap not only between man and woman, but also between mysticism and intellectualism." (Manimekalai, 227) To study, rather scritinise, the details of a 'sutra' in it, the scattered tales of it must be held through a strong purpose of radiating a singular essence of identifying the spiritual form of India, within its overwhelming materialisation of the multicultural ethos that it sustains within it: "Gita Mehta occupies a unique position as a writer who elucidates uniquely Indian experience in a clear and intelligent voice. The etymological perception of the word 'sutra' in Indian literary culture and tradition has quite a lot to imply through the process of binding or as a medium for binding different fragments of thought or literary chapters which can, hence, give rise to the need for a common line of thought and in *A River Sutra,* that role has been played by the river Narmada, which does not only acts as a binding medium but also gives the entire novel the necessary relevance of mythology and spiritual sanctity, along with the hope of purgation needed at some point in each of the sories. Thus, the cultural nurturing with the word, 'sutra' happens through a gradual spiritual awakening in each of the tales and this makes the whole idea of the 'sutra' a spiritual one. There is a strong metaphysics about this sutra, which unavoidably occurs due to the very placement of the tales on and around the holiest river of the country, one comes across unapologetically materialistic dimensions of life through a spiritually dense setting, exemplifying Mehta's focus around the Indian sensibility and the subsistence of human sensibility and thoughts that are automatically associated with the Indian sense of faith and religious practices among the ruckus of which, the narrator is a medium of portrayal and delivery, "This narrator, the Bureaucrat, is like a screen which exhibits his encounters with the people on the blanks of the river, the Narmada."

Thus, Mehta's explorations with the terminology and the concept of 'sutra' in *A River Sutra* is not necessarily a unidirectional, tangible element of response which creates a sense of unity and binding among the six tales but rather, is an emotionally intertwined sensae of a normative,a rule, a thread that holds the entire mechanism of Indianness together.

****

Works Cited

1. Thapa, Amar Bahadur. *Significance of Myth Gita Mehta's A River Sutra*. Diss. Central Department of English Kirtipur, Kathmandu, 2015.
2. Chandorkar, Swati. "Multicultural Ethos in Gita Mehta's A River Sutra." *International Journal Of EnglishLiterature, Language & Skills* 7.4 (2019): 99-102.
3. Ram, Uma. "The River as Sutra–The Art and Craft of Storytelling in Gita Mehta's A River Sutra. *Glimpses of Post–Independence Indian English Novel.* Ed. Chandra Mauli, T. Sai and G.A. Ghanshyam. Dehli: Authors Press, 2008.
4. Rushdie, Salman. "Introduction." *The Vintage Book of Indian Writing: 1947-1997*. Ed. Elizabeth West. Vintage, 1997, pp.ix- xxiii.
5. Sankaran, Chitra. "Women, rivers, and serpents: Reifying the primordial link in Gita Mehta's A River Sutra." *The Journal of Commonwealth Literature* 47.3 (2012): 429-446.
6. Govinthasamy, D., M. V. Sivakumar, and J. Arul Anand. "An assessment of mythology in Gita Mehta's A River Sutra." *International Journal of Health Sciences* 6.3 (2022): 10164-10169. https://doi.org/10.53730/ijhs.v6nS3.9376
7. Panda, Prasenjit. "Searching for 'Essence' in the Metafictional World of Gita Mehta: A Phenomenological Reading of A River Sutra." *Teresian Journal of English Studies* 13.2 (2021): 82-89.
8. Poongodi, O. T. "Cultural Ecological Attitudes in Gita Mehta's A River Sutra." *The Creative launcher* 6.4 (2021): 118-124.
9. Bhatnagar, Mamta. "Spiritual Upliftment Through Indian Classical Music: An Analysis of Gita Mehta's A River Sutra." *Telematique* (2022): 7378-7383.
10. Bhadury, Prakash, and Aparna Mishra. "Contemporary India in its Socio-Political Paradigm: A Study of Gita Mehta's Select Works." *Middle East Journal of Applied Science & Technology* 4.2 (2021): 121-128.
11. Mehta, Gita. *River Sutra*. London, Vintage, 2007.
12. Pandey, Sarita. "Reifying Feminine Principles of River: An Ecofeminist Reading of Geeta Mehta's A River Sutra." *Language in India* 19.3 (2019).
13. Tangellamudi, Anitha. "NATURE AND WOMEN: ECOFEMINIST READING OF "THE COURTESAN'S STORY" IN GITA MEHTA'S A RIVER SUTRA." *Research Journal of English Language and Literature (RJELAL)* 3.2 (2015): 180-184
14. Patil, Sangita. *Ecofeminism and the Indian Novel*. Routledge, 2019.
15. Jha, Shivani. *Ecocritical Readings Rethinking Nature and Environment*. Partridge Publishing, 2015.
16. Shelton, Allison Elizabeth Nowak. *Reading Environmental Relations In Contemporary Indian Fiction In English*. Diss. University of Colorado, 2019.
17. Joshi, A. *An Ecocritical Analysis: Selected Fictions of Dhruv Bhatt and Margaret Atwood*. Thesis. Gujarat Technological University, 2021.
18. Burnett, Edward. *Primitive Culture : Researches into the Development of Mythology, Philosophy, Religion, Art, and Custom.* Cambridge, Cambridge University Press, 2010.
19. Renuga, P. M. S. "Gita Mehta's A River Sutra: A Silent Symphony of Indian Culture and Heritage." *Language in India* 18.10 (2018): 161-164.
20. Rao, T. Eswar. "Assertion of Feminine Psyche in Gita Mehta's Raj." *INDIA UNRAVELLED* (2022): 157-167.
21. DİNÇ, Derya BİDERCİ. "Culture, Religion, and Nature in A River Sutra by Gita Mehta." *Bilecik Şeyh Edebali Üniversitesi Sosyal Bilimler Dergisi* 6.2 (2021): 377-390.
22. Pattanayak, Kalikinkar. "Revisiting Masterpieces of Literature Through Indian Aesthetics: A Myth Of Devotion, a river sutra & NAVEEN PATNAIK." *Drishti: the Sight* (2020): 221-225.
23. Gautam, Savita. *Unity in Diversity in a River Sutra*. Diss. Department of English, 2007.
24. Babu, A. Ramesh, and Rao, J. Sudhakar. "Narmada River: An Abstergent Refuge for Corrupted and Distraught Souls in Gita Mehta's A River Sutra." *Language in India* 12 (2012)
25. Toor, Ashoo. "Treatment of Philosophy, Spirituality and Desire in Gita Mehta's A River Sutra." *Editorial Advisory Board: Dr. Gurupdesh Singh* (2016): 35-43.
26. Nalini, S. "FEMINIST PERSPECTIVES IN GITA MEHTA'S A RIVER SUTRA AND RAJ." *Research Scholar:An International Refereed e-Journal of Literary Explorations* 10.2 (2022): 133-138.
27. Manimekalai, G. "Man's Eternal Quest for Significance in Gita Mehta's A River Sutra and Raj." *Language in India* 17.12 (2017): 219-236.

Kautaliys's:Saptanga Theory of State and Importance of Rajamandala Theory In India's Foreign Policy in the 21th Century

S.K.Abdul Amanullah
(Ph.D,Research Scholar,Department of Political Science,RKDFUniversity, Ranchi Jharkhand)

Abstract :-Kautilya also known as Chanakya or Vishnugupta was a statesman and philosopher India has ever produced is famous for his epic writing title as "Arthashastra". Though the meaning of Arthashastra is related to gaining of wealth but the primary focus of this book is on statecraft diplomacy and strategy in maintaining relation with other states. Arthashastra is purely dedicated to national security issues and regarded as a handbook to run an empire by following all the advices of Kautilya written in Arthashastra Chandragupta Maurya was able to defeat the large Nanda Empire and established a stable kingdom of his own by following this. National security is the prime theme of Arthashastra systematically classified as Saptanga theory and the Mandala theory. The Mandala theory is at the core of Kautilya's conceptualization of state affairs primarily deals with security of the states which has practical relevance in current international relations today. The theory and principles of Rajamandala (the circle of kingdom) is followed not only by India but by other countries of the world in maintaining their foreign policy even in 21st century.

Key Words: Mandala, Foreign Policy, Arthashastra, Saptang Theory

INTRODUCTION:-Kautilya, ancient Indian political thinker was a multi-dimensional personality whose famous work, Arthashastra, is studied across disciplines like political science, international relations, diplomacy, security studies, economics, management and public administration. He is considered as one of the finest ministers and politicians in India. His views on politics and state continue to resonate in contemporary India; however, it is widely believed that his works have not received enough attention not only in India, but outside India as well. The science of statecraft had been developing in India even before Kautilya and he did not take credit of being a pioneer in this field. He had compiled famous works and theories before him and gave his own views on them covering various areas like politics, economy and diplomacy. There were at least four distinct schools and thirteen individual teachers of Arthashastra before Kautilya. However, it is very likely that Kautilya's masterpiece superseded them which made them redundant leading to their disappearance. It is, therefore, necessary that Kautilya's work is studied to analyze its resilience through centuries in order to understand its contemporary importance for India. Kautilya's Mandala theory is the basic of his foreign policy which are even followed by Indian foreign policy maker now a day. Mandala theory written by Kautilya is a theory of world conquest. In contemporary international relations, India is regarded as an imprgeing power because of her fast economic development, wide cultural influence and strong military standings India's stance in international relations is very farm due to her strong foreign policy also. Which has its origin in Kautilya's Arthashastra.Till date Rajamandala theory of Kautilya as written in Arthashastra has strong relevance in India's foreign policy in 21st century. Kautilya's foreign policy is not only based on preservation of state and maintainance of friendly relationship with other states only rather it is on expansion of state as well. According to him every state has an aim of conquering the whole world and this can be happened if the state will follow certain policies of her own. In eye on this he propounded the theory of Rajamandala or circle of the states along with six fold policies.

KAUTILYA: HIS WORK AND HIS TIMES :

There is no clear consensus about Kautilya's(350-275 B.C.)life and the times in which he lived. He is also known by the name Chanakya, based on his father's name Rishi (Sage) Chanak, who was a Brahmin. Another name given to Kautilya is Vishnugupta since he is believed to be a follower of Lord Vishnu. The name, Kautilya, comes from his 'kutil' gotra, which means shrewd and cunning. He lived at the turn of the fourth to third century BC and thus, was a near contemporary of Aristotle and Alexander the Great. The place of his birth is also disputed as according to different sources, Kautilya was born in Takshashila, Gola district in South India or Patliputra in Magadha. Kautilya played the central role in establishment of the Maurya Empire under Chandra Gupta (321-297 BCE) – the first panIndian state extending over most of the Indian subcontinent. Chandra Gupta was a student of Kautilya who overthrew the Nanda dynasty on the wise counsel of his guru, Chanakya who became Prime Minister in his court. His book, Arthashastra, has 15 parts (or books), 180 divisions, 150 chapters and approximately 6,000 verses or shlokas.

KAUTILYA:- SAPTANGA THEORY OF STATE:

The word "Saptang" indicates seven limbs, constituents or elements. Together, they constitute the State as an organism, "like a chariot composed of seven parts fitted and subservient to one another". To an extent; the Saptanga theory of State finds elaboration in the Ancient

Greek Political Philosophy. For instance: while comparing the State with the human body, Plato had argued that just as a cut in the finger causes pain in the body, similarly injury of one organ creates problems for the other organs of the body politic. Seven Angas, Prakritis, or elements were enumerated and elucidated by Kautilya for describing "the nature of the State" in its totality. As laid down in the first chapter of Arthashastra's Sixth Book, entitled Mandala Yonih, these are:

1 Swami or the King : The ruler is equivalent to the head in a human body. Kautilya did not believe in divine origin of kinsgship. He believed it to be a human institution. An ideal king, according to Kautilya is one who has the highest qualities of leadership, intellect, energy and personal attributes. The leadership qualities a king should have in order to attract followers include birth in a noble family, truthful, prowess, intellect, righteous, disciplines, enthusiastic, being stronger than neighbouring kings and having ministers of high quality.

2 Amatya or the Minister: Amatya represents eyes of the state. Kautilya argued that the minister with the highest rank should be born in a high family and should be a native of the state. He should be under the control of the king. Further, he must be trained in all the arts and should be far sighted. He should be firmly loyal and endure adversaries through qualities like boldness, bravery, intelligence and should be energetic. The council of ministers is needed to provide stable and systematic administration. Highest grade appointments were given to ministers who had all the requisite qualities.

3 Janpada or the People: Janpada represents the legs of the state and includes both, territory and population of the state. The people should be prosperous while the territory should have fertile lands, mines, forests and water bodies etc. The demographic and economic base of the Kautilyan state is the rural population. Vast majority of the population lives in the countryside engaged in agriculture and crafts. Small farmers from shudra caste are the main agriculturalists in Kautilya's state who have their own land or are tenants. Under land reclamation policy, Kautilya favours allotment of land to shudra peasants for cultivation. More land under cultivation would increase state's economic capacity. Forests are located in the countryside which has economic and strategic significance. Forests provide timber, charcoal, dyes, medicines and bamboo leaves etc.

4 Durga or the Fort :Durga represents the arms of a state. Security of treasury and army would depend on fortification of the state. Kautilya says that on the frontiers of the country, every quarter will have a fort well equipped to defend against the enemies. In total, four forts shall be constructed in places that are naturally suited for defence. A land fort is the easiest to capture while a river fort is more difficult. A fort situated on a mountain is most difficult to capture. Kautilya has detailed many types of forts in Arthashastra. Audak fort is surrounded by water body. Parvat fort is built amidst high mountains. These forts play an important part while defending against an external attack. Dhanvan fort is surrounded by desert. Van fort is situated amidst dense forest. Kautilya further says that the capital should be built at the centre of the kingdom and it should be divided in four districts, one for each caste.

5. Kosha or Treasury: Kosha is considered as the mouth of the state. Kautilya opined that the wealth of the state shall be acquired lawfully, either by inheritance or by king's own efforts consisting of gold, gems and silver. The wealth should be enough to allow the country to withstand a calamity, even if the calamity is of longer duration in which there is no income generated. Treasury is located in the fortified capital which is used to finance the army, the royal court and the state apparatus. Good financial resources can improve the poor status of armed forces, but a powerful army cannot survive without money. The main tax of Kautilyan state is the tax in kind, one-sixth of agricultural production output goes to the state. Kautilya also recommends special levies to be charged on alcohol, gambling, road tolls, sale of jewellery, commercial sexual services etc. He also cautioned that excessive taxation is economically and politically counterproductive which would lower economic output and pauperise the people.

6 Danda or Sena or Coercive Power of State (Armed Forces, Secret Service and Police): Sena is equivalent to brain in a human body. The soldiers should be strong, obedient, not averse to long expeditions, with powers of endurance, skill in handling all weapons and experience of many battles. They should keep their wives and sons contented. They should have no interest other than that of the king and should share his prosperity and adversity. A strong army is required to ward off internal and external threats to a country. Kautilya has described six types of army.

7 Mitra or Ally/Friend : A mitra represents ears of a state. According to Kautilya, an ideal ally is one who is a friend of the family for a long time, constant and powerful in support, amenable to control, shares a common interest, can mobilise his army quickly and is not someone who would double cross his friends. Kautilya says that the king should focus on strengthening first six elements of the state.

Theory of Rajamandala i.e Circle of States:

Mandala is a Sanskrit word which means circle. Indians have ascribed pictorial characteristics to the universe representing it in essential form. Mandala projects the world in terms of geometry. Kautilya used the shape of mandala to develop a political geometry that accounts for different political realities. In the seventh book of Arthashastra, he described international relations as a mandala system. During Kautilya time the Indian subcontinent was divided in too many Janpada's or small states. All the Janapada's were not so big in size but they had very hostile relationship between them. Janapada's or states were busy in war with one another. In this critical juncture the duty of the king was not only to protect his state but also deal with hostile king of the neighbouring states and had

a thought in mind for expansion of his own state. Rajamandala theory was the plan or the blue print by following which a king can be successful in his world conquest. The basic thought behind Kautilya's Rajamandala theory is that, your neighbour is your enemy and your neighbour's neighbor is your friend. According to Kautilya every sovereign state/ruler is surrounded by many similar sovereign states. Though all the adjourning states might have friendly appearance but they are not true friends and cannot be trusted. In this regards Mandala theory explains that if a state is at the middle of the centre her immediate circle will be her enemy, the next circle to the immediate circle will be the friend and this will continue in the same manner.The main objectives behind introduction of Mandala theory were only to maintain relationship among independent states. Kautilya named this theory "Mandala Sidhanta" because this theory advocate about working of states as a Mandala or Group. The Mandala concept is one in which there are circles of friends and adversaries with the king at the central point and his states. In Mandala theory Kautilya advocated about 12 types of king's states these are like2. In Mandala Sidhant there is mention about fold policy to interact with neighbours which are Co-Existence, Neutrality, Alliance, Double Policy, March and War to achieve this king can apply five tactics such as conciliation Gift/Bribary, Dissention, Decide and Pretence and Open attack.

Sadaguna Principles: Kautilya's king can attain success in mandala system operating under system of matsya nyaya only by following 6 methods of foreign policy. (Soumak Set 2015, 712)

1. Sandhi (peace) any inferior nation can make peace with its stronger counterpart. Sandhi signifies treaty or agreement based on the perception that advantage can be derived from peace or war equally. In this situation one should prefer peace than war as war is a gamble and can cause unbearable losses. Peace is considered as temporary and a part of broader policy of lulling the enemy into complacency. The emerging alliances in the post cold war period is evident of this.

2. Samshraya (seeking alliance or shelter): whoever is devoid of necessary strength to defend himself shall seek the protection of another through alliance. Pakistan has been following the policy of alliance with the US and China in order to deal with India.

3. Davidhibhava(double policy):whoever thinks that help is necessary to work out an end shall make peace with strong king and wage war with weak king. It can be interpreted as a policy to have peace with neighbor in order to peruse hostility towards the third party. In this scheme, peace with neighbor is temporary and conflict with it is inevitable. it is a policy of diplomatically inducing confidence in enemies and behaving aggressively in secret. The USSR adopted this policy during the period of detente. One the one hand USSR had entered in detente with US on the other hand it was trying to expand its influence in different parts of the world.

4. Vigraha (War): whoever is confident about it" s superiority and feels that situation is conducive to launch war. Kautilya identified three types of wars: open warfare(normal war), treacherous warfare (using variety of ways to attack an enemy) and secret warfare(using secret agents and occult devices). The first war- open warfare is carried out by the strong king only.

5. Yana (March): acting from position of strength. Any state, possessed strong power shall march against his enemy. It can compel enemy into submission without actually fighting war.

6. Asana (neutrality):remaining quite in case of weak position. The policy of neutrality is pragmatic and changes with circumstances. There are three aspects of neutrality: stanza (keeping quiet), asana (withdrawal from hostility) and upeksha (taking no strategic steps). The first four are guidelines for strong nations, fifth principle- Samsara for the week and the last one- Duplicity policy is recommended for the middle status nation.

Importance of 'State' and Foreign Policy in Kautilya's Arthashastra : -According to Kautilya state is not a creation of God as believed in theory of divine origin, rather it is a product of social contract by humans. The major objective of the state is to provide good governance to its citizen. Kautilya also gives importance to religion as a means to accomplish political ends. In Arthashastra Kautilya has advocated about different concept only with one aim that is the prosperity and well being of the state and its subject. He stated a detail about the role and responsibilities of the king in maintaining day to day administration and internal and external security of the state. The king should have fatherly attitude towards his subject. At the starting of his epic book i.e. Arthashastra Kautilya mentioned about seven elements of the state (Saptanga Theory). These are like the king, minister, country, fort, treasury, army and ally. Without these seven elements a state can't exist. Among these seven elements 'The King' is the most important one as if it is the brain and other six are limbs functioning, according to the instruction of the brain. It all these seven elements have proper co-ordination between them a state can became a powerful state.

Relevance of Mandala theory in India's Foreign Policy :-In international relation you can change your friends but you can change your neighbours. Which suggest that geographic neighbours are fixed factor in relation making India as a country always believes in neighbourhood first policy in international relation. Being an active actor in international politics India always emphasized upon peaceful and stable neighbour hood based upon equality and mutual respects. India's foreign policy in 21st century also

follows some principles but this strategy of India does not work always due to presence of certain hostile neighbour's like China and Pakistan whose intention is always to harm India's strategy interest in international arena. Though India tried her best to maintain friendly relation with her immediate neighbor but failed very badly in her endeavour. In present day foreign policy of India Kautilya's Rajamandal Sidhanta is widely felt and accepted. In reference to Rajamandal India is surrounded by both friendly and unfriendly neighbours. India is surrounded by friendly countries like Bangladesh, Nepal, and Bhutan in one hand and foe countries like Pakistan and China and others.

The constituent of the Rajamandal includes Vijigishu, (the Ambitious one), Ari (Enemy), Mitra (Friend), Ari Mitra (Enemy's friend), Mitra's Mitra (Friends Friend), Parshnigraha (Adversary in the Rear), Akranda (Alley in the Rear), Madhyama (Middle King),Udasina (Nutral King) and Antardhi (Weak Intervening King).This representation is not permanent and can be changed as per the situation demands in international politics. In international politics there are permanent friends or enemies. The problem that faced Vigigishu (the ambitious one) faced in Kautilya's Mandal theory the same is facing by India in the 21st century. India has two adversaries in the name of Pakistan and China in the neighbourhood for balancing them India is developing military cooperation with Japan, Australia, USA, Vietnam, Singapore and etc. Repeatedly New Delhi is trying to lure Ari Mitra (Friend of Enemy) and at the same time maintaining Mitrata (Friendship) with traditional friends. In order to deal with the presence of China in South Asian States, India is perceived as Vijigishu as India in Rajamandala considers small states as its conventional sphere of influence and not just for strategic, but also for cultural historical and economic reasons. In the lens of Mandal theory South Asia states are Mitra (Ally) against China which is Ari (Adversary). In eye of above India's acceptance of India pacific strategy led by USA can be widely visible. The frame work for India's vision of Indo-Pacific is determined by creating a maritime Mandala along with Act East policy in search of ally to counter China's 21st century maritime Silk Road. As mentioned in Arthashastra India is also developing relationship with Himalayan states through Sandhi (Treaty) and Adistasandhi (Cession of part of Territory)6.New Delhi has treaty of friendship with Bhutan and Nepal to counter China's viable presence there. Neighbourhood first is the prime focus of the current foreign policy of India. In South Asian context India's application of four Upayas (Sam,Dama, Danda,Veda) has strengthen India's foreign policy. In 2022 Indian Prime Minister visited Nepal and offered prayer in different places of religious importance to gain attention of the public of Nepal. This an act of Sama meanwhile when there was economic crises in Nepal due to sudden earthquake India was the first country to offer help and provide economic packages for Nepal. This is regarded as an act of Dama. However economic blockade of 2015 was an action of Danda and use of domestic policy of Nepal to gain advantage is regarded as Veda with support of Indian Madhesi people are challenging the supremacy of Pahadis in each and every aspect of domestic policy of Nepal.

Conclusion :-The Saptang theory is a vivid manifestation of Kautilya's deeper understanding of not only the political nature of man, but also the functioning of his political institutions, especially the state.Kautilya's Mandala theory of foreign policy and international relation is not completely applicable in present scenario though we can't completely ignore its relevance it's very fortunate that the current foreign policy of India is based on Kutilya assumption of Rajamandals and Upayas. The application of the Kautilya approach to Indian neighbourhood policy indicates how Indian political destiny is driven by geography and policy choice and its execution (Upayas). India's current policies with South Asian states is based on Rajamdala or Mandala Sidhanta only to counter China's influence over these states. Though Indian policy maker has successfully suppress the Chinese threat though Upayas (Ways) mentioned by Kautilya but time has come to adopt a strong institutional approach to push India as chakravartin or the conqueror in world politics.

****

References :

1. Chaturvedy, R.R., (2014), "India's Neighborhood Policy under Modi". FPRC Journal, Pp.89-95. New Delhi.
2. Gautam, P.K., (2013), "Understanding Kautilya's Four Upayas", Institute for Defence Studies and Analyses, New Delhi.
3. Hagerty, D.T., (1991), "India's Regional Security Doctrine", Asian Survey, Vol. 31, Pp.351-363.
4. Liebig, M., (2013),"Kautilya's Relevance for India Today", India Quarterly, Vol. 69, Pp.99-116.
5. Pande,A.,(2017),"From Chanakya to Modi: Evolution of India's Foreign Policy", Harper Collins 6. Ramaswamy,T.N.,(1962),"Essentials of Indian Statecraft: Kautilya's Arthasastra for Contemporary Readers", Asia Publishing House: London.
7. https://procaffenation.com/the-mandala-theory-what-do-you-need-to-know/
8. https://blog.iasbyheart.com/2020/07/15/what-is-mandala-theory-and-is-it-relevant-in-present-times/
9.https://www.studocu.com/in/document/university-of-delhi/indian-political-thought-i/kautilyas-mandaltheory/14982718
10.https://www.mea.gov.in/distinguished-lectures detail.htm?410#:~:text=Kautilya's%20most%20significant%20contribution%20to,one's%20neighbours%20will %20be%20frie
11.https://www.indrastra.com/2015/05/Kautilyan-Foreign-Policy-by-Radhika-RV.html
12. https://www.thetruepicture.org/mandala-theory-current-times-modi/
13. https://idsa.in/askanexpert/kautilyamandalatheory_indiaforeignpolicy
14. https://www.nature.com/articles/s41599-021-00888-6
15. Mitra, Subrata K & Michael Liebig. (2017). Kautilya's Arthashastra: An Intellectual Portrait – The Classical Roots of Modern Politics in India. New Delhi: Rupa Publishing India Pvt Ltd.
16. Padhy, K. S. (2011). Indian Political Thought. New Delhi: PHI Learning Pvt Ltd.
17. Rangarajan, L.N. (1992). Kautilya: The Arthashastra. New Delhi: Penguin Books India (P) Ltd.
18. Sil, Narasingha P. (1985). Kautilya's Arthashastra: A Comparative Study. New Delhi: Academic Publishers.
19. Singh, M. P. (2017). Kautilya: Theory of State in Himanshu Roy and M P Singh (eds). Indian Political Thought– Theme and Thinkers. Noida: Pearson India Education Services Pvt Ltd.
20. Rangarajan,L.N.2000, Kautilya: The Arthashastra, New Delhi: Penguin books.
21. Soumak Set 2015 "Ancient wisdom for the modern world: Revisiting Kautilya and Arthashastra in the third millennium," Strategic Analysis, 2015, vol 39, no 6.

Effects of Nature on Human in Pandemic Situations

Tuli Bhattacharya
State Aided College Teacher
Department of Education, Serampore Girls' College

ABSTRACT: The outbreak of COVID- 19 raised numerous questions of the interactions between occurrence of new infections the environment climate and health. The emerging thirst caused by forbid 1910 has strongly modified our life style, making urgent to reconsider the human's environment relationships and stimulating towards more sustainable choice in our daily behavior. Scientific evidence show that the onset of new viral pathogenes with a height epidemic pandemic potential is Open the result of complex interaction between animal is humans and environment.

KEYWORDS: Interactions*, Urgent, Viral, Epidemic, Complex,*

INTRODUCTION: The current covid-19 pandemic is having an enormous impact on human health in terms of morbidity and mortality attracting the interest of the scientific community worldwide. The covered 19 pandemic is challenging the world's economic and health systems and exemplifies the degree of global interdependencies and need of preparedness for Global Health threats. Much of the focus is now on the response to the pandemic and the development of treatments and vaccines. Health threats due to human impacts on Earth, may appear to be of less immediate concern: climate change, population urbanization, and unsustainable consumption that have led to major environmental disturbances and biodiversity loss. It may be tempting to develop solution to the pandemic in- dependently of these threats, such as relying on disposable materials, reducing public transport use and subsidizing heavily polluting industries.

On the other hand, another important feature of covid-19 pandemic is related to the massive use of disinfectants to the viral transmission. among the compounds on extensive analysis of the potential impact on water Quality and ecosystem health by the use of chlorine and the cheapest tool to avoid viral transmission has been reported by Garcia -Avila et al (2020). These authors have underline that in the environment chlorine is transformed into highly dangerous compounds that are toxic for marine biota, Since they can persist in the environment longer than chlorine. Ecotoxicological effects related to the use of disinfectants have been reviewed by Sanjuan-Reyes et al. (2021).

AIR POLLUTION: -

Reduce carbon emission-With the closer of factories and restrictions of vehicle movement there has been a significant impact on carbon emissions. Kolkata, a metropolitan city in Eastern India with a population of 14.9 million that near the global CO2 emission average of 417.31 ppm as per record of30th April, 2020, recorded is significant decrease in CO2 emission post lockdown with an average of more than 40% reduction in emission as sampled from three different locations (Dhar et all,2020) .

Air quality index-The central pollution Control board (CPAB) along with state level pollution monitoring centers operates the NAMP (National Air Monitoring Programmed) that records the AQI of 24 cities across India based on 8 parameters, (PM10,PM2.5,NO2,SO2,CO2.O3,NA3 &Pb) High concentrations of such pollutants cause serious environmental hazards.emissionIs mostly credited to fuel uses in power station and from automobile exhausts(Wang and Su,2020).According to new satellite images taken by ESA (European Space Agency), from its Copernicus Sentinel-5p Satellite, Mumbai and Delhi, the two main metropolitan cities in India showed drops of about 40 - 50% in tropospheric NO2 columns compare to the same time frame from 2019. NASA's Terra satellite retrieved data from its moderate resolution imaging Spectroradiometer (MODIS) showed Aerosol anomaly post lockdown over India.

A Study based on the NAQI (national air quality index) around NCT of Delhi showed a significant decrease in pollutant during the lockdown (study period till 24 April 2020). With an average concentration PM 10 and PM 2.5 showing negative changes amidst from -51.84Percentage and 53.11% respectively, even other pollutants NO2 and Coheads hones considerable negative change considerable in concentration (Mahato et al.2020)

WATER POLLUTION: -During the nationwide lockdown, there has been an overall improvement of in the water quality with respect to the increased Dissolved Oxygen (DO) and decreased Nitrate concentration. This is mainly due to the absence of industrial discharge and Agriculture run off as well as land of as well as increased freshwater input. There was recorded less biological oxygen demand (BOD) as well as chemical oxygen demand (COD)due to relatively less democratic Waste water world influx (Source's report).

Water quality index-It provides useful information about the relative importance of the metals present in the river. The high concentration of dissolved salts and major cations such as sodium in the water can pose harmful consequences an agriculture soil and plants. It may

change the soil salinity, reduce the soil and fertility elevate the level of soil alkalinity and influence as the growth and nutrition availability for plants (Hasan et al.2020). To evaluate the level of salinity Hazard in the river, electrical conductivity (EC) according to micro in the water was measured in both pre lock down and post lockdown periods. The salinity hazard is grouped into four categories, i.e. excellent(150<EC<250), good (251<EC<750), doubtful(751<EC<2250) and unsuitable (EC>2250) Islam et al, 2017.

Negative environmental effect: -

a>***Increase Of biochemical waste generations:***

Since the outbreak of COVID- 19 medical waste generation is increased globally, which is a major threat to public health and environment. Sudden rise of hazardous waste and their proper management has become a significant Challenges to the local to the Waste management authorities.

b> ***Safety equipment use and haphazard disposal: -***

To protect from viral infection, presently peoples are using facemask, hand gloves and other safety equipment, which increase the amount of Health Care waste. Due to lack of knowledge about infection waste management, most people dump these (Face mask, hand gloves, ppe kit) in open place and in some cases with household wastage. Such haphazard dumping of their trashes creates clogging in water ways and worsens environmental pollution (Singh et al,2020, Zambrano Monserrate et al2020). Usually, poly propylene is used to make N- 95 masks and Tyvek for protective suits; gloves and medical face shields,which can persist for a long time and release dioxins and toxic elements to the environment (Singh et al,2020).

c> ***Municipal solid waste generation and reducing of recycling: -***Increase of municipal waste (both organic and inorganic) generation has direct and indirect effects on environment like air, water and soil pollution (Islam et al.2016). Due to the pandemic, quarantine policies established in many countries have led to an increase in the demand of online shopping for home delivery, which ultimately increase the amount of house hold waste from shipped package materials(Somani et al,2020,Zambro-Monserrate et. al2020). Overall due to disruption of routine municipal waste management, waste recovery and recycling activities, increasing the land filling and environmental pollutants worldwide.

d> Other effects on the environment: -Recently, huge amount of dis infectants in applied into roads, commercial and residential areas to exterminate SARS COV-2 virus. Such extensive use of dis infectants may kill non targeted beneficial species, which may create ecological imbalance (Islam and Bhuiyan,2016).

Potential strategies of environmental sustainability

It is assumed in that; all of these environmental consequences are short term. So, it is high time to make a proper strategy for long term benefit as well as sustainable environmental management. therefore, some possible Strategies are proposed for global environmental sustainability

1) Sustainable industrialization: -Industrialization is crucial for economic growth, however it's time to think about sustainability. It is essential to less energy intensive industries, use of clear fuels and technologies, and strong energy efficient policies (Pan.2016). Moreover, Industries should be built in some specific zones, keeping in mind that waste from one industry, can be used as a row material of the other (Hysa et al.2020)

2) ***Use of green and public transport: -*** To reduce emission, it is necessary to encourage people to use public transport, rather private vehicles. Besides, people should encourage to use bicycle in short difference.

3) ***Use of renewable energy: -*** Use of renewable energy can lower the demand of fossil fuels like coal, oil and natural gas, which can play any important role in reducing the GHGs emission (Ellabban et al,2014 CCAC 2019)

4)Wastewater treatment and reuse: -To control the challenges of water pollution, both industrial and municipal waste water should be properly treated before discharge. Besides, reuse of treated waste water in non-production process like toilet flashing and Road cleaning can reduce the burden of excess water withdrawal.

5) waste recycling and reuse: -To reduce the burden of waste and environmental pollution, both industrial and municipal water should be recycled and reduced. Moreover, hazardous and infectious medical waste should be properly managed by following guideline (WHO,2020C)

6) Ecological restoration and Eco tourism: - For ecological restoration, tourist spots should periodically shutdown after a certain period.

7) ***Behavioral change in daily life*** —To reduce the carbon footprint and global carbon emission, it is necessary to change the behavior in our daily life and optimum assumption of resources like avoid proceed and take locally grown food, make compost from food waste, switch off or unplug electronic device when not used, and use a bicycle instead of card for sorted distance.

CONCLUSION —Directly or indirectly the pandemic is affecting human life and the global economy, which is ultimately effective the environment and climate. It reminds us a how we have neglected the environmental components and enforce human induced climate change. Moreover, the global response of COVID- 19 also teaches us to work together to combat against the threat of mankind.

****

Effects of Covid-19 on Gender Security in Global Context

Dr. Renu Sain
Flat no. 4 Godavari hostel
Jawaharlal Nehru University New Delhi , 110067.

Abstract -Gender security refers to the security in social and cultural context for both males and females. According to UNDP report of 1994, health security is an important part of human security. Non-traditional security proposes health issues and disease as a major concern for human life. It's not for the first time when such a global health crisis has occurred. Pandemic phases have been an important part of human civilization. In history we saw many phases when people were in health crisis, such as Plague of Justinian in 541CE, Black Death in 1347 in Europe, The Great Plague of London from 1348 to 1665, Bubonic Plague in Europe and North Africa in 13th to 14th century, Spanish flu in 1918 etc. Pandemic not only harms physically but also socially, culturally, economically and mentally. The whole world has been impacted by the COVID-19 pandemic in varied manner. There is a strong relationship between the pandemic and women suffering because they are a vulnerable section of the society. Women suffered high level of insecurity than others, because they are the ones who look after children, old persons and handle them in close doors. They went through a psychological trauma when the bread and butter earning family member lost his job due to lockdown. Due to COVID 19, women's unemployment have risen faster than men, such as in the U.S. in the period from February 2020 to April 2020 from 3.55 million to 11 million were man, for female in same period, 2.7 million to 11.5 million further multiple problems grow with increasing unemployment. Gender based violence has increased against women and girls during this pandemic due to combination of multiple factors such as stress due to financial losses, risk of infection and death, restriction of movement, limited access to services, social isolation, crowded homes, substance abuse and reduced peer support. One positive element with women is that the number of reported cases are almost equal for men and women but the mortality rate seems to be higher in men which may be due to the gender based immunological and habitual patterns.

Keywords: Gender security, Human Security, Health Security, Non-traditional Threats, Pandemic, COVID-19, Women, Healthcare Workers, Gender Based Violence, and Unemployment.

COVID-19 pandemic has affected the humanity negatively. It has been observed that men and women have been affected by the crisis in different manner. Although different set of people faced the challenges of pandemic based on different factors such as residence, income, gender and race. Gender factor has been described in detail in subsequent sections. The term 'Gender' is usually used in the socio cultural context. Gender is a Cultural and Social Classification of woman and man in from Feminine and masculine. Roles of Gender and expectations are learned through the process of socialization and they can also transform over time. Gender is used as a tool to decode the social structure in regard to men and women (Suchinmmayee 2008: 7).The focus of gender studies is to improve the life of the vulnerable section between man and woman. Since it is obvious in all over the world that the condition of women is mostly worse in comparison to men, therefore, in general, gender security means women security (Mbote, Patricia Kameri 2004). The concept of gender security came late in the western societies but this concept was deeply ingrained in Indian society. In hindu religion, wife is referred to as "*ardhangini*" to her husband, which signifies the equal importance of both men and women in society (Pal, Bhaswati 2018).Its not first time that this type global health crisis came, about a hundred years ago, 1918 has witnessed the Spanish flu caused by powerful strain of H1N1 Influenza virus infecting one third of population, while in 2009 another strain of same virus has caused Swine flu pandemic. After each of these disasters social structure changed drastically irreversibly transforming life in the United States (Blackburn Ch.C. et al. 2018). The most infamous Black Death or Bubonic Plague wiped out two-third of human population in Europe and North Africa in 13th to 14th century (Rapp, Joshua 2020).

Any particular event whether it is positive or negative, affects men and women in different ways. COVID-19 as a pandemic has impacted the whole world in the many ways such as physically, mentally economically and socially. Although it seems that, this disease impacted both men and women in the similar manner healthwise but there are some other areas where women faced the brunt of this pandemic harder. There seems to be gender-based impact of COVID-19 as a disease. Although the number of reported cases are almost equal for men and women but the mortality rate seems to be higher in the men who may be due to the gender based immunological and habitual patterns. Health of women is also adversely affected but the reason for that is the reallocation of resources which was previously allocated for sexual and reproductive health (UN Women 2020).Healthcare workers in general, are more prone to get infected by COVID-19 and they also have higher chances to transmit the infection to others due to their close proximity with patients. In healthcare system, women form a major part of the healthcare force, which translates into women being more vulnerable/prone

to disease/infection. In Spain 72%, in Italy 66% and in the United States 73% of infected healthcare workers were women (Miyamoto, Inez 2020). Women forms around 70 percent of the health workforce globally, majorly taking the responsibility mostly as nurses, community health workers, pharmacists and midwives. Despite the unavailability of personal protective equipment (PPE) is grave concern for whole health sector but the issue enlarges when women health worker finds it difficult to wear PPE as PPE are designed for an average male body (Zhukava, Larisa 2020). Women also form the majority of health facility service-staff such as housekeeping workers, which makes them more vulnerable to the virus. Women are contributing 70% in global healthcare workforce, Where they are holding only 25% senior roles in the healthcare profession and mostly lower status roles that are underpaid. For example in India community health workers officially called as accredited social health activist (ASHA) are all women and work as honorary volunteers not as employees under government. ASHA workers work on a very small stipend without any additional allowances or benefits such as leaves, insurance etc. (Miyamoto, Inez 2020).

Inspite of working in an official job, women does the major share of the regular household chores, which is also known as "second shift" and it comes under the category of unpaid domestic labour. And this pandemic has made it very clear that women are taking care of the daily lives in the pandemic amidst the lockdown situation where schools, colleges, offices were closed all the activities has been shifted in work from home mode which puts additional burden of taking care of the need of all the family members 24X7 along with senior citizens and the infected family members (UN Women 2020).Women also suffered financial loss due to this crisis. During the pandemic, border and market were closed; movement were restricted during day time and curfew during night; and social interaction were restricted. This led to the job loss by women working as domestic worker as well as in the informal sector. The lockdown has also impacted key value chains in the industry; production, transformation and distribution of Fast moving consumer goods (FMCG) and other goods, which caused many women to lose their jobs or bearing a pay cut (Bisson, Loic 2020:6). There are many sectors, where involvement of women is higher such as tourism; hospitality industry; entertainment industry; sports etc. and these sectors got hit hardly during this pandemic eventually resulted in the job loss by women (Bisson, Loic 2020:1).

In Russia, jobs losses or income losses due to the pandemic is expected to affect about 35 million people. According to "Experts of Institute for Social Analysis and Prediction of the Russian Presidential Academy of National Economy and Public Administration" a report have published stating that self-employed, contract workers, sole proprietors and employees working in branches such as sports, entertainment, catering, tourism, and trade are drastically hit by the pandemic. This has led to the crisis hitting the women at first (Zhukava, Larisa 2020).

According to International Labour Organization "Global unemployment to rise between 5.3 million and 24.7 million from a base level of 188 million in 2019. According to the U.S. Bureau of Labor Statistics, "men's unemployment rose from 3.55 million in February to 11 million in April in 2020 while women's unemployment, which was lower than men's before the crisis went up from 2.7 million to 11.5 million in the same period" (UN Women Commission 2020).

Gender-based violence is another serious issue experienced by women and girls during this pandemic because they are confined at home with their partners for longer periods and secluded from their usual support networks (Bisson, Loic 2020:2). The reason for increasing risk of gender based violence amid pandemic is due to combination of multiple factors such as stress due to financial losses, risk of infection and death, restriction of movement, limited access to services, social isolation, crowded homes, substance abuse and reduced peer support. The social distancing protocols led to increase in the domestic violence reports and emergency calls by upto 25 % in many countries (UN Women 2020). Women's contribution has been significantly highlighted in the social and professional

fields during COVID-19. Women have portrayed as the health professionals, scientists, doctors, vaccine developers, community volunteers, and transport and logistics managers but often they are not having their say in national and global decision-making for encountering COVID-19. They worked in lesser salaries in comparison to men. World must look forward towards a more equality among the men and women in all front of roles. Necessary improvements can be recorder in such kind of crisis management if the role of women are made more equal to the men in future for building safe, secure and resilient world. Fiscal stimulus and social assistance program in the wake of pandemic should be designed considering the significant roles of women in taking care of the household without any remuneration to achieve greater equality and opportunities (UN Women 2020).-So as we felt that COVID-19 brought in more injustice to already suffering humanity especially the weaker gender. Women suffered high level of insecurity than others, because they are the ones who look after children and handle them in close doors. They went through a psychological trauma when the bread and butter earning family member lost his job due to lockdown. The middle class has been pushed more downwards due to the stringent measures imposed during lockdown. Social and behavioural changes were observed in the people. Despite these hurdles, women played very important role in house, health sector, sanitation sector and social work and the women of world have shown her power or *"Shakti"* to fight back.

****

Reference

1. Bisson Loic (2020), "COVID-19 Impact on West African Value Chains", [online Web] Accessed on 22 December 2020 URL: https://www.jstor.org/stable/resrep25675
2. Blackburn, Ch.C. and et al. (2018), "How the 1918 Flu Pandemic Helped Advance Women's Rights", [online Web] Accessed on 2 December 2020 URL: https://www.smithsonianmag.com/history/how-1918-flu-pandemic-helped-advance-womens-rights-180968311/
3. Mbote, Patricia Kameri (2004), "African Regional Security in the Age of Globalisation", [online Web] Accessed on 20 December 2020 URL: http://www.ielrc.org/content/a0502.pdf
4. Miyamoto, Inez (2020), " Covid-19 Healthcare Workers: 70% are Women", [online Web] Accessed on 12 December 2020 URL: https://www.jstor.org/stable/resrep24863
5. Pal, Bhaswati (2018), "The Saga of Women's Status in Ancient Indian Civilization", [online Web] Accessed on 21 December 2020 URL: http://ichg2018.uw.edu.pl/wp-content/uploads/sites/119/2018/07/936.pdf
6. Rapp, Joshua (2020), "COVID-19 isn't the first disease to upend daily life", [online Web] Accessed on 24 December 2020 URL: https://www.discovermagazine.com/health/these-4-pandemics-changed-the-course-of-human-history
7. Roos, Dave (2020), "How 5 of History's worst pandemics ended", [online Web] Accessed on 17 December 2020 URL: https://www.history.com/news/pandemics-end-plague-cholera-black-death-smallpox
8. Suchinmmayee, Rachna (2008), *Gender, Human Rights and Environment*, New Delhi: Atlantic Publisher and Distributors Ltd.
9. UN Women (2020), "How Covid 19 impact women and girls", [online Web] Accessed on 19 December 2020URL:https://interactive.unwomen.org/multimedia/explainer/covid19/en/index.html?gclid=CjwKCAjww5r8BRB6EiwArcckC_Z5TTLtEUNp2UQNguWENJ7yGDknYhfxnFtX7IaeFWUWbSIcsdXdiRoCW1EQAvD_BwE
10. Woertz, Eckart (2020), "Covid-19 in the Middle East and North Africa: Reactions, Vulnerabilities, Prospects", [online Web] Accessed on 27 December 2020 URL: https://www.jstor.org/stable/resrep24819
11. Zhukava, Larisa (2020), "How Covid-19 Pandemic Affected Women in Russia", [online Web] Accessed on 16 December 2020 URL: https://eu.boell.org/en/2020/06/18/how-covid-19-pandemic-affected-women-russia

Digital Humanities in English Language Teaching in Indian Multicultural Classrooms

Dr. Kumar Gaurav
Assistant Professor
Department of English Lovely Professional University, Punjab

Dinesh Sharma
Research Scholar
Department of English
Lovely Professional University, Punjab

Abstract:-This research paper has explored the role and opportunities of Digital Humanities in English language teaching within Indian multicultural classrooms. English Language teaching with technology still needs a great deal of research, as there is a lack of proper guidance and training for the teaching faculty. Along with this, the role of learners' culture, social constructs, level of motivation, and local contexts should not be forgotten while doing such research.Further, it is observed that entertainment movies and the training of pre-service teachers have a vital role to play in the process of preparing language experts. Entertainment movies develop critical thinking and assist in achieving the necessary English language pedagogical targets. For successful implementation, this paper exclusively probes staff development and the integration of digital humanities with teacher training.

Keywords:- Digital humanities, multicultural, pedagogical, teacher training

As we know, online language learning and the systematic use of digital resources have steadily increased in popularity over the last decade with the advancement of technology and education. Researchers have suggested the step-wise introduction of information technology to reach the complete adoption phase in education so that people can adapt to new changes according to their social and cultural contexts. It is also observed that those who are learning languages in different countries are actively involved in the progress of technology, as it offers multiple digital resources and motivates language teachers to acquire knowledge and skills about languages. The expansion of IT can be understood in the way humans work in society, especially in the field of education, though English trainers are hardly aware of new advancements (Pennington, 2004). For successful implementation of new learning, there is a need to ensure that pre-service language teachers are well trained and confident regarding new changes according to the Indian multicultural classrooms.

According to Rudenko et al. (2021), an analysis of online learning in educational institutions in Ukraine is based on the feedback of teachers and students. The major problems identified after the assessment of online teaching were less training, problems with the

objectivity of assessing the quality of knowledge, non-acceptance of online teaching, and conflicts between teachers and students. Further, for effective teaching and learning, some recommendations were given regarding the self-development of teachers, the introduction of new material in small quantities along with feedback to check subject mastery, and technical, organizational, motivational, and moral support by organizations, and universities to provide professional training to pre-service teachers. This study, which is based on the analysis, can be helpful in Indian multicultural classroom context.

In one of the studies for English language development, it was analyzed during the staff development workshop when teachers were infused with strategies focused on the development of Units of Practice (UOP) with the integration of technology,academic standards, and English as a Second Language (ESL) standards for culturally and linguistically diverse students to provide intentional language teaching for English language learners. The methods and strategies applied were found to be effective (Beckett et al., 2006). So, Indian multicultural classrooms should be integrated with these strategies so that effective outcomes can be assured, keeping in view learners' culture, social constructs, and local context. It was observed in one of the studies done by Compton, L. (2009), that the existing skills framework with the help of technology for pedagogical needs is very essential, and the role and responsibility of online language teachers become very important in such a context. It was also found, that while some skills, such as technical and software skills, can be inculcated easily instead of socializing and community-building skills, those are comparatively challenging during online teaching. Hence, there is a need for pedagogical skills so that teachers can teach effectively withthe help of technology according to the local context and social constructs. Further, it is emphasized that the integration of digital humanities and teachers' preservice training should be an integral part of English language teaching in Indian multicultural classrooms.One of the studies that describes the significance of integrating entertainment and critical pedagogy for multicultural pre-service teachers has shown the importance of utilizing films asa pedagogical tool for English language teaching. Entertainment movies have a vital role not only in enhancing the development of communicative competence but also in enabling us to develop critical thinking to understand social, cultural, and local contexts. It was also examined how movies for pre-service English teachers during lecture hours can develop and enhance competence on so many vital social issues, along with the inclusion of a pleasure element. According to the studies conducted, it was observed that entertainment movie watching had positive effects on enhancing and improving language skills to prepare language experts, and language learners felt motivated to become good teachers. Learners have remarked that watching movies has increased their understanding level and critical thinking, which has assisted them in enhancing educational outcomes (Lee, S., 2019).According to Gao, L. (2012), with the introduction of a new mandatory policy for the teaching of English in China, digital methods of teaching were given so much importance with the intention of modernizing and enhancing the quality of English teaching. Hence, the focus was given to student-centered approaches along with a new computer-based multimedia teaching model. Despite the planning for teaching, it was observed that there was a significant gap between the planning and its execution in terms of the inclusion of technology in the pedagogical needs for the change. Hence, such gaps should be investigated by the planners and investigators to eliminate the problems, and there should be the availability of digital resources according to the social and cultural contexts so that the proper implementation can be ensured according to the requirements of multicultural English classrooms for effective English language teaching.

In one of the research projects conducted in India, teachers' attitudes towards Communicative Language Teaching (CLT) were found to be positive, but challenges identified during the implementation were large classroom size, a shortage of time, the non-availability of resources, and a lack of verbal proficiency among teachers and students.On the other hand, different philosophies about CLT were prevalent among teachers, and some of them believed in promoting English at a global level while others were promoting it just for the employability of the students (Christ, T. et al., 2009). Such hurdles can create a gap between planning and its proper implementation.

According to Celik, S. (2013), Internet-assisted technologies that were used to teach English language development in Turkish universities for were found inappropriate according to the teaching material. It was also found that it was very difficult to integrate Internet resources into the curriculum; hence, there is no space left for teaching language effectively with the support of pedagogy. The study has also revealed whether instructors were willing to utilize the internet with a positive attitude,but they were unable to find quality material and were lacking in professional skills for internet-assisted language teaching. Hence, preservice training plays a crucial role in the integration of digital humanities with English language teaching.Whether information and communication technology has changed the role of technology in language learning, teachers still need training and a special conducive environment for the execution of the strategies.

Borthwick (2013) observed that language trainers engaged in teaching felt encouraged and motivated by open practice, and their potential to teach was also increased with the development opportunities. Hence, teacher development and the improved use of digital resources in language teaching are improved with open practice opportunities.With recent advancements, affordability, and availability, it has become possible for trainers to integrate 360 -degree technology into the classroom. Now, Google Expeditions and Google Lit platforms can allow educators to create and share virtual field trips for language learners, which can enhance students' understanding of English language learning (Smith, 2020). Language learners' virtual experience can help in understanding multicultural classrooms and equip them with a better understanding of social and cultural constructs for effective implementation of digital humanities in Indian multicultural classrooms.It was suggested in the study conducted that to increase the communication skills of the learners, education programs should be integrated with a multilingual and multicultural education philosophy (Makgato, M., 2015). Such positive steps will certainly assist teachers in becoming experts as English language teachers and will also enable them to fulfill the needs of multicultural societies like India.In his research related to the development of English language communication , Lee, C.(2020), has observed that there is a difference between intention to use versus actual adoption of technology for English learning. As human perceptions are different for different targets, it is very difficult to decide the factors like intention and behavior for learning English with the help of technology to maximize their learning outcomes. Hence, proper planning and preservice teacher training are highly recommended to resolve the issues associated with the start of the teaching of the English language. For the successful implementation and integration of digital resources in Indian multicultural English classrooms, proper guidance and staff development opportunities should be encouraged.

****

Works cited:

1. Pennington, M., 2004. Cycles of Innovation in the Adoption of Information Technology: A View for Language Teaching. Computer Assisted Language Learning, 17(1), pp.7-33.

2. Rudenko, Y., Naboka, O., Korolova, L.,Kozhukhova, K., Kazakevych, O. and Semenikhina, O., 2021. Online Learning with the Eyes of Teachers and Students in Educational Institutions of Ukraine. TEM Journal, pp.922-931.

3. Beckett, E., Wetzel, K., Chisholm, I., Zambo, R., Buss, R., Padgett, H., Williams, M. and Odom, M., 2006. Staff Development to Provide Intentional Language Teaching in Technology-Rich K-8 Multicultural Classrooms. Computers in the Schools,23(3-4), pp.23-30.

4. Compton, L., 2009. Preparing language teachers to teach language online: a look at skills, roles, and responsibilities. Computer Assisted Language Learning, 22(1), pp.73-99.

5. Lee, S., 2019. Integrating entertainment and critical pedagogy for multicultural pre-service teachers: film watching during the lecture hours of higher education. Intercultural Education, 30(2), pp.107-125

6. Gao, L., 2012. Digital technologies and English instruction in China"s higher education system. Teacher Development, 16(2), pp.161-179.

7. Christ, T. and Makarani, S., 2009. Teachers" attitudes about teaching English in India: An embedded mixed methods study. International Journal of Multiple Research Approaches, 3(1), pp.73-87.

8. Celik, S., 2013. Internet-assisted technologies for English language teaching in Turkish universities. Computer Assisted Language Learning, 26 (5), pp.468-483.

9. Lee, C., 2020. Intention to use versus actual adoption of technology by university English language learners: what perceptions and factors matter? Computer Assisted Language Learning, pp.1-29.

10. Makgato, M., 2015. Barriers associated with the use of English in the teaching of technology in grade 9 at some schools in Eastern Cape Province. Africa Education Review, 12(2), pp.180-192.

11. Borthwick, K. and Gallagher-Brett, A., 2013. „Inspiration, ideas, encouragement": teacher development and improved use of technology in language teaching through open educational practice. Computer Assisted Language Learning, 27(2), pp.163-183.

12. Ghavifekr, Simin. (2015). Teaching and Learning with Technology: Effectiveness of ICT Integration in Schools. International Journal of Research in Education and Science (IJRES). 1. 175-191. 10.21890/ijres.23596.

13. süzek birkollu, Sibel & Yücesoy, Yücehan & Baglama, Basak & Kanbul, Sezer. Investigating the Attitudes of Pre-service Teachers Towards Technology Based on Various Variables. TEM JOURNAL-Technology, Education, Management, Informatics. 6. 10.18421/TEM63-20.

14. Smith, Hamish, and Simon D. C. Townsend. "Investigating The Efficacy of Utilizing 360° Camera Technology as A Language Teaching And Learning Tool In A Science Content Based EFL Classroom.". Innovation In Language Learning and Teaching, vol 15, no. 2, 2020, pp. 143-155.

15. Ewa M. Golonka, Anita R. Bowles, Victor M. Frank, Dorna L. Richardson & Suzanne Freynik (2014) Technologies for foreign language learning: a review of technology types and their effectiveness, Computer Assisted Language Learning, 27:1, 70-105.

16. Monther M. Elaish, Liyana Shuib, Norjihan Abdul Ghani & Elaheh Yadegaridehkordi (2019) Mobile English Language Learning (MELL): a literature review, Educational Review, 71:2, 257-276.

17. Pandey, Krishna Kumar, and Smita Jha. "Exploring the Interrelationship between Culture and Learning: The Case of English as a Second Language in India." Asian Englishes, Informa UK Limited, June 2021, pp. 1–17. Crossref, doi:10.1080/13488678.2021.1925811.

Exploring the Elements of Bhabha's Cultural Hybridity in the Works of Marlon James

Dr. Kumar Gaurav
Assistant Professor, Department of English
Lovely Professional University, Punjab

Suman Devi
Research Scholar
Department of English, Lovely Professional University, Pujab

ABSTRACT:-The concept of cultural hybridity has emerged as a dominant theme in various areas of cultural research, theory, and criticism, and one of the most popular and much-contested ideas in postcolonial theory. Despite its popularity, the concept of cultural hybridity has also been contested. There are numerous advocates for it, ranging from Bakhtin (1981) and Bhabha (1994) to more current theorists of hybridity in its many forms. But there are also a lot of opponents. This research paper aims to contribute to ongoing conversations in postcolonial studies by examining how cultural hybridity can be employed as a tool for resistance and subversion in contemporary literary discourse, with a specific focus on the work of Marlon James, a Jamaican author and Man Booker Prize winner. Drawing on Homi Bhabha's theory of cultural hybridity, this study analyzes the themes and stylistic elements employed by James, such as the usage of Creole language, the inclusion of mythology and folktales, and the portrayal of marginalized communities, to challenge dominant discourses and disrupt conventional notions of identity and belonging. Through an in-depth analysis of James's literary works, this research aims to shed light on the intricate ways in which cultural identity is negotiated and reinvented in postcolonial cultures, with a particular emphasis on the interaction between political power and cultural hybridity. By highlighting the potential of cultural hybridity as a tool for resistance and subversion, this study aims to contribute to a more nuanced understanding of the complex dynamics of cultural identity in postcolonial cultures.

Keywords: Crisis, Colonial, Hybridity, Identity, Multiculturalism, Race etc.

Hybridity defines by Ashcroft, Griffiths and Tiffin in their book *Key Concepts in Post-colonial Studies* as "One of the most widely employed and disputed terms in postcolonial theory" (118). Hybridity has emerged as a dominant cliche in many areas of cultural criticism, theory, and study. Schoff defined hybridity as a "ferment which changes cultures" (281). Bhabha discusses cultural hybridity in relation to colonialism and post colonialism. He looks at the coloniser-colonised connection and makes the case that the two civilizations are always influencing and affecting one another. This mingling of cultures takes place but Bhabha has coined the term that space, which he described as liminal space compare able to Stairway. Homi Bhabha defines cultural hybridity as a process of cultural blending that results from the interaction of different cultures. New cultural forms are created as a result of this process, and these forms exhibit liminality, in-betweenness, and the capacity to resist dominant cultural narratives. Cultural hybridity is a dynamic process that is always changing and evolving, not static. According to Bhabha, cultural hybridity is a subversive force that undermines prevailing cultural narratives and challenges the notion of a single unified identity. Instead, cultural hybridity highlights the value of hybrid cultural forms that result from the mingling of several cultures and embraces diversity, difference, and multiplicity.

This paper traverses the problem of identity and hybridity in postcolonial literature since the quest for identity and hybridity is a significant theme in postcolonial studies and literature. The primary purpose is to examine the effects of the colonizer's dominance upon natives and how they reflect upon colonization. In the field of postcolonial studies, Homi K. Bhabha is often regarded as part of the "holy trinity", with the other two, being, Edward Said and Gayatri Chakravorty Spivak. The term hybridity has recently become one of the most steady and muddled concepts unswervingly connected with character arrangement under colonial antagonism and inequity. Homi Bhabha, a prominent figure in contemporary cultural discourse, the hypothesis of cultural difference gives the theoretical jargon of hybridity and the third space. One of the pioneers to present the idea developed from cultural and literary theory establishing his commitments on the connection between the colonizer who enticed to interpret the colonized native characters making a cultural clash. He works on the idea of 'hybridity', and features by contention the presence of the 'third space' wherein the two referenced blended societies, morals, and values meet and coincide in a solitary person after a long time of expansionism. Homi Bhabha alludes to this combination as hybridity. As we know, how Europeans create colonialism as a civilizing mission in which the "inferior culture" of the colonized periphery interacts with the superior culture of the metropolitan West. This superior-inferior binary shows that, despite colonial contact, the cultures and civilizations of the Western colonizer and the colonized East were regarded as two independent and distinct entities. And the famous first line of Rudyard Kipling's poem, *The Ballad of East and West*, may best express this view. The line is that East is East and West is West, and the two shall never intersect. The colonizer's Western civilization and culture were different from and superior to the colonized

East's civilizational values.Bhabha's concept of hybridity is complex but it is central to the field of postcolonial studies. According to Bhabha, culture is not a static entity, it is not an essence, that can be fixed, in time, and space. Contrarily, Bhabha believed that culture was fluid and constantly changing. It is a melting pot of several disparate components, which are routine, and our cultural identities. Therefore, according to Bhabha, there is no such thing as pure Indianness, Africanness, or Britishness that can be understood, studied or even reclaimed. Bhabha's concept of hybridity is established on Bakhtin's idea of hybridization. Moreover, for Bakhtin, hybridity is defined as the double-voicedness of languages. According to his literary theory, a language can signify another while holding "the capacity to sound simultaneous both outside it and within it " (358). "Decolonization never takes place unnoticed, for it influences individuals and modifies them fundamentally" (Fanon 36). In his collection of essays, *The Location of Culture*, Bhabha states that there is a space "in-between the designations of identity" and that "this interstitial passage between fixed identifications opens up the possibility of cultural hybridity that entertains difference without an assumed or imposed hierarchy" (4). In other words, cultural hybridity is twisted at one condition, which is the confrontation with the colonial, i.e. at the moment, the 'Self' and 'Other' are in each other's pocket or attached.

Homi K. Bhabha is a significant thinker in Postcolonial criticism and key concepts Such as hybridity, mimicry, otherness, difference and ambivalence. As per Bhabha's post, colonial theory means these terms describe how colonized people have been regulated. The power of the coloniser. It is beyond doubt that he is the leader of postcolonial studies. His works affect a wide range of themes: nationalism, ethnicity, postcolonial literature, culture and philosophy of the third world countries, identity crisis etc., but the keyword to distinguish his research activity is still 'Postcolonialism'. Homi K. Bhabha has developed his concept of hybridity in his key text, *The Location of Culture* (1994), where it is presented as a paradigm of colonial anxiety. He used this concept to describe culture and identity construction within conditions of imbalance and antagonism. Bhabha expresses his relationship between culture and hybridity, which is one of the central issues of this study. As per Bhabha, hybridity is the process the colonial overseeing authority embraces to decipher the identity of the colonized (the others). Within a solitary general framework, but then fails to create something familiar but new. It is an evocative term for the formation of identity. This idea has been taken from Edward Said's Work *Orientalism*, which describes the emergence of new cultural forms of multiculturalism. Homi Bhabha generated the concept of hybridity in terms of culture, which refers to the mixedness of culture. Every culture is an original mixedness within every form of identity. According to Bhabha, It is a combination of two or more identities within one person without an assumed or imposed hierarchy. It is a mixture of the colonized experience and the colonized influence.

The term hybridity originated from biology and was subsequently employed in linguistics and racial theory in the 19th Century. The terms are used in discourses about race identity and multiculturalism. The significant proposition is the hybridity of colonial identity. It is a process of cultural exchange. Briefly, hybridity is the concept in the colonized country that mainly talks about how cultural blends happen in the colonized country. It is also designated as a sign of colonial supremacy, which controls the colonized people's behaviour and ethos and shows the colonizer's superior ethos. Postcolonial theory and studies are the most disputable and significant issue is identity crisis or quest for identity. The phrase "identity crisis" was first used in 1950 in Erik H. Erikson's book *Childhood and Society*, a well-known German psychologist. He describes identification as a process operating at the centre of the individual as well as the core of his or her group culture. He sees identity as Psychosocial. Erikson continues: Without a sense of identity, there is no sense of being alive in the social jungle of human existence. According to him, going through an identity crisis is a step of the identity-development process that entails trying to settle a dispute. He defines an identity crisis as "In a necessity turning point, a crucial moment when development must move one way or another marshalling resources of growth, recovery, and further differentiation" (Erikson 16). "The common dynamic pattern of a group of severe disturbances... a pathological aggravation, and undue prolongation of, or a regression to, in normative crisis 'belonging' to a particular stage of individual development" (17). Erikson also describes: In the social jungle of human existence there is no feeling of being alive without a sense of identity.

The identity crisis has been identified as one of the major topics in literature. Identity crises are frequently brought on by conflict in modern literature. The conflict between one person or group and another or power struggles between a group and a natural force is the causes of change. Collectors' confusion about their identities and assigned social positions are caused by an identity crisis. A person experiencing an identity crisis will reflect on who they are and what they are. The laws of a person's perception of self, which typically happens after tragic occurrences, are the first challenge to face when going through an identity crisis. One of the key themes in literature has been deemed to be the identity

crisis. Conflict is a common cause of identity crisis in contemporary literature. Postcolonial theorists and critics have considered the issue of identity as one of the considerable impacts of colonialism on local culture. It is the most pressing issue in postcolonial times and literature and the most imperative for its crisis in postcolonial communities that confronted newly freed nations and countries in their quest for identity. Identity is characterized as "the certainty of being who or what a man or thing is" as per Oxford English definition of identity. Edward Said and Frantz Fanon perceive identity as influenced by the colonial impact on colonized, which made them feel inferior. According to Frantz Fanon, an identity crisis is a historical association between the colonized and colonizers. On the other hand, Edward Said associated the identity crisis with political discourse. His thoughts are constructed on the Foucaultian view of power and knowledge; Edward Said translates the relationship between colonial power and colonized countries and individuals.

The postcolonial novelists uncovered the dilemma of identity and the issues associated with identity. Marlon James is one of the significant postcolonial novelists. His novels display the struggle to find an identity, whether as an enslaved person or a postcolonial inhabitant of Jamaica. He presents the anguish of postcolonial society struggling for its own identity. His first novel *John Crow's Devil* explores postcolonial Jamaica through a religious battle between good and evil. In this novel, James utilizes a small community show to propose the more considerable misery of a postcolonial society battling its own identity, but he infused this with religious fervour. The ghost of colonialism is subtler, but the instability and struggle for identity are clear to the reader. This remarkable novel is more than a theological struggle pitting a fierce deity against a docile one. Communal fears, set against the two preachers named Hector Bligh and Apostle York's spiritual crisis, turns this novel into a psychological novel with a difference. An exploration of internal neuroses of the character that have increasingly surreal external manifestations. James uses his portrayal of the small Jamaican town of Gibbeah drama to suggest the wider suffering of a postcolonial culture battling for its own identity in his assured and controlled writing. But he also invokes a cult-like religiosity that is reminiscent of the people's temple and the Jones town massacre in the 1970s. His subsequent novel, *The Book of Night Women,* also deals with the quest for identity as an enslaved of Jamaica. A postcolonial writer such as Marlon James sought to depict these notions, identity and hybridity, by carefully representing the elements that make up these concepts of identity, such as language, characters, religion, style, setting, home culture, etc. Interestingly, what creates a debate over the representation of postcolonial societies is that many postcolonial writers write about the experience of their people in foreign languages, mainly that of their colonizers. Next to identity lies hybridity, a critical element explored by Marlon James. He depicts cultural hybridity through their characters as different in how they live and correspond. In most postcolonial prose, there is the notion of mixing cultures; however, people resist ultimately adopting the new regimes at the expense of their original identity. For example, they portray their characters as hybrids through their way of dressing, communicating, behaving, etc. But still, other characters seem to act on the opposite side, rebelling against the changes. Marlon James, through their literature, declares in one way or another that hybridity is alive within their society and that people during and after colonization are becoming inevitably multicultural people and their endeavours to regain the purity of their identity are quite impossible.

The Book of Night Woman can be analysed through the lens of Bhabha's cultural hybridity. The novel is set in 18th-century Jamaica and examines the lives of an enslaved woman on a sugar plantation. James uses a range of narrative techniques, such as Jamaican patois, multiple narrators, and a non-linear narrative framework, to illustrate the cultural hybridity of Jamaica. James uses patois to convey authenticity and express the cultural identity in *The Book of Night Women*. For Ania Loomba, "postcolonial studies have been preoccupied with issues of hybridity, creolisation, mestizaje, in in-betweenness, diasporas and liminality, with the mobility and cross-overs of ideas and identities is generated by colonialism" (173).

Aspects of Bhabha's concept of cultural hybridity are also present in the characters of *The Book of Night Women* particularly in the novel, the enslaved women have hybrid identities that are influenced by both their African and European cultural heritage and their slavery-related experiences. These women are forced to negotiate between many cultural traditions, as they attempt to balance their African identity with the European cultural norms placed on them by their captors. The main character of the book, Lilith, represents the liminality and in-betweenness of cultural hybridity. Lilith represents the hybrid cultural traditions of Jamaica, as she is the daughter of a white plantation owner and an African lady who was enslaved. Due to her hybrid identity, Lilith is an outsider in both African and Europe communities because neither one of them truly accepts her. Through the character of Lilith, James can examine the complexities of cultural hybridity and its consequences and personal identity. The difficulties and consistency brought on by cultural blending are highlighted by Lilith's struggle to balance her African identity with Europe in cultural norms that were imposed on her.

James' novel *A Brief History of Seven Killings* can be analysed through

the lens of Bhabha's theory of cultural hybridity. The novel is set in the 1970s in Jamaica and examines the interaction of different cultural and social groups in Jamaica. James uses a range of narrative techniques, Including Jamaican patois, various narrators, and a non-linear narrative framework, to illustrate the cultural hybridity of Jamaica. One of the things that set James' work apart is the way he uses Jamaican patois. Patois is the Creole language that was created through the blending of African and European languages during the period of slavery in the Caribbean. The novel's numerous narrators also serve to subvert dominant cultural narratives that aim to force a single, Cohesive identity on Jamaica. By presenting multiple viewpoints on the events that occur, James can show the variety of cultural identities that make up Jamaica and prevent the Harmonization of culture. James uses pet toys in a *Brief History of Seven Killings* to convey authenticity and portray the cultural identity of Jamaica. Patois is used by the characters in the book to resist the dominant cultural narratives that tried to impose a single, united identity on Jamaica. By using Patois, Marlon James can portray the various ethnic and social groupings that makeup Jamaica, including gang members, official journalists, and CIA agents. Patois is a symbol of cultural hybridity since it represents the fusion of several linguistic and cultural traditions that have produced a chemical identity which allows James to illustrate Jamaica's cultural hybridity from different points of view.

The seminal narratives in the book are meant to represent various ethnic and social groupings, and each has a unique viewpoint on the events that are happening. Each narrator represents a cultural identity that is not fully a part of one culture or the other, and this storytelling technique serves to emphasise the in-betweenness of cultural hybridity. Finally, the novel's non-linear narrative form helps to emphasise the liminality of cultural hybridity. Several narrators shared their stories at various periods in the timeline as the book jumps back and forth in time. This narrative structure serves to destabilize the dominant cultural narratives that try to impose a single unified identity on Jamaica, as it emphasises the variety of cultural identities.

Conclusion: This research article has examined the components of Homi Bhabha's cultural hybridity theory in Marlon James's literary works. James's engagement with hybridity is illustrated through several significant themes and stylistic techniques that have been pinpointed through in-depth analysis of James's books, including the employment of the Creole language, the infusion of mythology and folktales, and the portrayal of neglected people. The purpose of this article was to provide light on how cultural hybridity can be used as a potent tool for resistance and subversion in current literary discourse by placing James's work within the broader context of postcolonial literature and thought. One of the main points of this article is that James's work shows how cultural hybridity can be employed as a strategy for defying prevailing cultural narratives. James can question traditional ideas of identification and belonging by mixing components of other cultural traditions into his writing. He also creates a space for voices and opinions that are frequently neglected in the mainstream debate. His book *A Brief History of Seven Killings,* which presents a complex and nuanced portrait of Jamaican society that defies simplistic cliches, is a prime example of this.

The research also emphasized the significance of context in determining cultural hybridity. While Bhabha's theory stresses how contacts between many cultural traditions form cultural hybridity. James' novels also show how the particular historical and political environment of Jamaica has influenced the growth of cultural hybridity in that nation. The study has illuminated the complicated ways in which cultural identity is negotiated and reinvented in postcolonial cultures by examining the interaction between cultural hybridity and political power in James's work. Consequently, by examining how cultural hybridity can be employed as a weapon for resistance and subversion in contemporary literary discourse, this research article has added to ongoing conversations in postcolonial studies. The study has illustrated how cultural hybridity can undermine established cultural narratives and make room for different voices and viewpoints through its research of Marlon James' novels. The study has contributed to a more nuanced understanding of the complicated ways in which cultural identity is negotiated and remade in postcolonial cultures by underlining the significance of context in producing cultural hybridity.

****

Works Cited

1. James, Marlon. *John Crow's Devil*. Akashic Books, 2010.
2. ---. *The Book of Night Women*. Oneworld Publications, 2014.
3. ---. *A Brief History of Seven Killings*. Oneworld Publications, 2015.
4. ---. *Black Leopard, Red Wolf: Dark Star Trilogy Book 1*. Riverhead Books, 2019.
5. Ashcroft, Bill, and Gareth Griffiths. *Key Concepts in Post-Colonial Studies*. Routledge, 1998.
6. Bakhtin, M. M., and Michael Holquist. *The Dialogic Imagination: Four Essays.* The University of Texas Press, 2000.
7. Schaff, Barbara. *Transcultural English Studies: Theories, Fictions, Realities.* Rodopi, 2009, pp. 281–292. Edited by Frank Schulze-Engler and Sissy Helff.
8. Bhabha, Homi K. *The Location of Culture.* Routledge, 1994.
9. Fanon, Frantz. *The Wretched of the Earth*. *Preface by Jean-Paul Sartre.* Grove Press, 1968.
10. Loomba, Ania. *Colonialism/Postcolonialism*. Routledge, 2015.
11. Erikson, Erik H. *Childhood and Society*. Vintage, 1995.
12. Said, Edward W. *Orientalism*. Penguin, 2021.

Micro Foundations of Indian Household Finance – Studying The Long Term Trends.

Suvojit Lahiri Chakravarty
Associate Professor
Department of Economics, Aryabhatta College
University of Delhi

Sonia Goel
Associate Professor
Department of Economics, Ramjas College
University of Delhi

Abstract-*The micro-foundations household finance of any economy clearly state that the source of real savings for the economy is the household sector. Household savings are converted into financial assets, through the financial system and are supplied to firms' sector for financing real investment. Thus, capital formation at the economy level depends on the micro-foundations household finance. It is, thus, important to examine whether the behavioural basis of micro-foundations have changed over the past 40 years.*

This study examines the pattern of changes in Indian Household Finance from 1978-79 to 2018-19. The variables considered in the study are currency notes and coins held, changes in bank deposits, changes in financial assets, physical and financial savings of the households.

The changes in the Indian Household Finance have been studied in three different policy periods: liberalisation in 1991, Global Financial Crisis in 2008 and Demonetization in 2016.Household portfolio of savings is no longer stuck with physical savings. There is a movement towards financial saving which are liquid, efficient and diversifiable. As far as banking habit is concerned it has grown but funds in certain periods have shifted towards other forms of investment. However, the movement towards cashless economy is not perceptible.

Keywords: Household Finance, Parameters of Micro Foundations, Changes in assets, Policy Periods.
JEL Codes: D14, G21, G50

IIntroduction-For each theory in macroeconomics there is a microeconomics foundation. A lot of policies and analysis in macroeconomics takes for granted a lot of behavioral parameters of the individual entity; be it the firm, household, or an investor.

The most important source of savings for the Indian economy is the household sector. Households are a deficit spending unit (DSU). The financial system acts as a conduit which passes on these real savings to the firms who are surplus spending units (SSU) and not the ones who generate real savings. The role of firms is to invest the real savings and create capital stock. This gap between households' real savings and real investment by firms is bridged by the capital market. The macroeconomics literature emphasizes the role of capital market in the process of accumulation of capital stock but there is little literature that examines the micro foundations of the saving investment process which involves the creation of financial assets. The motivation of this paper is to look at changes in the behavioral parameters underlying the micro foundations of household finance. Over the years household savings are held in different forms like physical savings, financial savings, currency, and bank deposits. The portfolio of household finance is measured in the form of additions to financial asset which gives rise to building up of the capital stock through the conduit of capital market.

New investment is captured with the help of the following equation

$$I_{it} = A_{it} - A_{i(t-1)}$$

where i= 1,2.

I_{it} stands for two different *asset classes spread over t time periods.*

Where I_{it} is new investment in each of the two asset class namely, currency notes and coins held by households and bank deposits at period 't'. A_{it} is asset base in current year and $A_{i(t-1)}$ is asset base in previous year. Households invest in a portfolio of asset. In this study Bank Deposits, Currency, Physical savings and financial savings are considered. Physical and financial savings are recorded in aggregate form. Household's portfolio comprises of various financial assets and physical assets in the form of gold and consumer durables.

IIObjectives-Macro Economics theory and policy are implicitly based on certain micro foundations of Economics. There is little attention paid in economic literature on verifying whether the axiomatic basis about household investment behavior can be justified without empirically testing the long term trends. In a major part of macroeconomic analysis, parameters relating to the behavior of households are taken for granted. It is, therefore, important to verify empirically whether the long term behavior of households in the Indian economy in terms of micro foundations of macroeconomics is found to be stable. Unless this is verified, lot of ensuing literature and analysis may not be accurate. Therefore, the main motive of the paper is to test for certain parameters of household investment behavior in the long run. The variables looked at are currency notes and coins, changes in bank deposits, physical savings, and financial savings We will be looking at these parameters to see if the

behavioral aspects of micro foundations are incorporated or not. The following objectives will be looked at.

The objectives of the paper are:

- To analyze the trend towards a cashless economy.
- To analyze the banking habits of the households.
- To analyze the trend in physical savings of the household sector
- To analyze the trend in financial savings of the household.

The implications of examining these trends are to understand whether in the long run there is any change in the savings behavior of households.

III.Literature Review-Macro-Economic theory and policy are entrenched or based on certain behavioral assumptions. These behavioral assumptions relate to household finance and lie in the realm of behavioral finance. Economic literature has only rarely visited these behavioral assumptions. One such study is Ramadorai (2017) which discusses the behavior of household finance. There are several attributes of Indian households that are exceptional in the international context. Importantly, these distinctive features of Indian household balance sheets cannot be explained by differences in the demographic characteristics, wealth, or income of Indian households relative to their counterparts in other countries. The micro foundations of household finance in long term are to see if there are any behavioral changes in the long term pattern of savings.Financial reforms in India are an ongoing affair. The financial sector plays a vital role in promoting efficiency and growth. Till the late 1970s, a large part of household savings in India was either invested in physical assets or put in bank deposits and government's small saving schemes. It is only since the late 1980s that the equity market, medium and long term debt market, and short term money market has started playing an increasingly important role in this intermediation process. A closely related development to the theory of portfolio selection is the general equilibrium approach to portfolio behavior. This approach is developed in papers by Brainard and Tobin (1968). The general equilibrium framework for monetary analysis focusses on different sectors of the economy, specifies a menu of financial and non-financial assets that appear in the portfolio and balance sheets. Assume an investor seeking to maximize the value of his wealth. This investor would estimate the possibilities and costs of portfolio shifts at any time during the relevant period.

One of the theories explaining household finance is Life Cycle hypothesis. In the case of developed economies, the stock market and other investment avenues are more developed. Therefore, studies which look into household's investment behavior are driven by Finance literature. Literature looks at savings and investment of households as main choice in stocks. It is found that in developing economies like India, things are very different. Thus, there is a need to develop a framework which is different from Finance Theory.

Life Cycle Hypothesis comes closest to studying household savings and investment patterns. Savings are a byproduct of Life Cycle Hypothesis. Life Cycle Hypothesis talks about the difference between earning and consumption because earnings follow a bell shaped pattern and expenditure, or consumption follows a linear upward pattern. Therefore, they have a certain pattern of savings. The Life cycle portfolio choice model talks about low earning capacity in the early career, which is very low, it peaks toward mid-career and later towards retirement, the earning cap goes down. The expenditure on the other hand keeps increasing over time. If the Life Cycle Hypothesis is related to Indian pattern, it is found that Indian pattern is different. Indian households hold more physical assets including real estate, gold which is unusual in international market. Indian households tend to borrow later in life and are more likely to reach retirement age with positive debt balances, which is a source of risk given that they are no longer earning income during these years. Under the life cycle hypothesis, consumption and saving in any period is determined not just by current income in that period but by lifetime expected income and wealth. Permanent Income Hypothesis (PIH) by Friedman (1957), talks about the consumer plans over an infinite period of time. It assumes a forward-looking consumer who is certain about the future with point expectations about future income. It also assumes that individuals plan their consumption on the basis of long-term income expectation, not current income. The life cycle and permanent income theories may be of less relevance in developing economies for several reasons. First, households in developing economies tend to be large and poor. They typically comprise several generations living together. Therefore, it may not be necessary to save for retirement. Second, uncertain income makes projection of future cash flows difficult. Third, there may be binding credit constraints for the younger households. Households in developing economies save in order to smooth consumption, rather than to accumulate for retirement. They only affect Indian household savings indirectly since these are consumption theories. PIH which emphasizes wealth but all in the context of consumption. Therefore, it is not important for savings directly. We have not gone into this strand of literature since it does not tell us about savings much. In developing economies like India, the major surplus saving sector is the household sector which hardly invests around 3 to 4% in stocks and major part of their savings is in non-risky assets. At the present stage of financial development in India it is important

therefore, to study the changes in the Indian household Finance as it is the largest saving surplus sector. It also becomes important to analyze to what extent it reflects a structural change in their asset choice behavior. M o d i g l i a n i (1968) theory of the life cycle hypothesis is complementary to Campbell (2006). It talks of housing as an asset class of dominant importance for middle-class homeowners. Houses are long-term assets that deliver a stream of housing services to their owners; in this sense they are like long-term bonds and can be used to hedge changes in the relative price of housing. Vishwanath. C. et al (2020) is an attempt in the field of household finance in India that presents the case for household finance research along with comprehensively describing its' current state, challenges, and scope for innovation towards achieving universal financial inclusion. This paper attempts to provide a theoretical background to researchers looking to conduct research in the field of household finance, as it not only surveys the existing literature relevant to the field but also highlights areas of household finance in India.

Balasubramaniam. V. et al (2016). This paper tries to explain patterns in recent data on the allocation of Indian household wealth (accumulated savings). Unlike micro-data from other countries, Indian household wealth is dominated by the presence of non-financial assets in the household balance sheet, with emphasis in gold. The cross-household scatterness in the share of non-financial assets is largely related to the rural-urban divide, as well as to differences in education, family composition, wealth, and age.

Badarinza, Ramadorai et al (2016) argue that in India, the average household holds 77% of its total assets in real estate 7% in other durable goods 11% in gold and the residual 5% in financial assets (such as deposits and savings accounts, publicly traded shares, mutual funds, life insurance and retirement accounts). Taken together, non-financial assets therefore account for 95% of the household balance sheet. The liabilities of Indian households also exhibit distinct patterns relative to other Countries. However, in India, the non-financial assets in the household balance sheet play an important role, mortgage loans account for only a small part of total liabilities (23%) and the role of other secured debt (such as vehicle loans) Rangarajan (2009) examines the total savings by dividing them into physical (in assets such as gold and real estate), and financial savings (invested in claims such as deposits, debt, and equity), an important finding is that the Indian households favour physical over financial savings. Cultural factors play an important role in the extent to which households hold gold.

The paper added "although financial assets provide better liquidity and diversification properties than physical assets, and can facilitate efficient household lifecycle portfolio management, still it was found that there was high allocation to non-financial assets".

Mukhopadhyay (2016) analyses India's gradual transition towards a cashless economy. They present a theoretical model that evaluates decisions by consumers and sellers to adopt cashless payments. In this paper, apart from identifying some of these benefits for India, there are two major issues that have been addressed: the share of cashless -both in terms of transactions as well as value and the factors that affect them the most. This provides a roadmap to increasing the share of cashless transactions in the economy.

Ghosh (1990) attempted to investigate the causes for movement in household savings from physical to financial savings since 1970-71. The study by Pandit (1991) is a study of the structure and growth of saving in India. He also found that the composition of household financial saving is driven by the rates of return on each type of financial saving and to some extent, by bank expansion.

Upender et al. (2007) examined savings behaviour in the Indian economy in terms of the shift in the growth rates of domestic savings, and in magnitude of income elasticity of the domestic savings at the aggregate and disaggregated levels during the post economic reform period.Hada and Suri (2018) analyse the trends in Gross Domestic and Household Savings and its components in India. The importance of household savings as a major component of gross domestic savings followed by private corporate savings and public sector savings has been highlighted. It was the result of high savings rate that the Indian economy stand strong during the global recession of 2008.

IVResearch methodology: Data and model

IV.1Data Description

In our study we would be examining the long term trends in the micro foundations of Indian household finance. The variables used in this paper are Currency notes and coins held with public, Bank Deposits, Physical savings and financial savings of the household sector. Currency held is a sterile asset and not an income earning asset. Physical savings is in the form of real estate, gold, and consumer durables.

Data has been collected on changes in Currency held with public, changes in bank deposits and changes in total financial assets with the households. Data has also been obtained on physical and financial savings of the households in the last four decades. Time Series data is used to analyze the changes in Indian Household Finance. Data is available for the household sector as a whole. Households also include non-profit institutions serving households (NPISHs) which include religious societies, social, cultural and recreational sports clubs, political parties and trade unions, etc. These institutions are clubbed with the household sector due to paucity of

information.Period of study is from 1978-79 to 2018-19. Time Series data on household physical and financial savings and various components of financial savings by the households used in the present study has been drawn from Report on Currency and Finance, Reserve Bank of India Bulletin, and All India Handbook of Statistics (various issues).

IV.2Empirical exercises-The exercises undertaken to study the Indian Household Finance can broadly be classified into the following categories.

IV.2.1 Empirical testing of the objectives-Four objectives of the paper have been listed in the previous section. Firstly, to analyze if there is a trend towards cashless economy? To verify this, the trend in proportion of change in currency to change in total financial assets over the last 40 year period is analyzed. A decline in the growth rate of proportion of change in currency to change in total financial assets is expected.Money supply is measured as sum of currency in hand, bank deposits and other deposits of the Reserve Bank of India. Since other deposits is a very small proportion it is often not taken into account. The two important parameters are, therefore, currency and bank deposits underlying the money supply. An increase in the growth rate is expected.Thirdly, to analyze the trend in physical savings and financial savings, we have measured the growth rate of the ratio of physical savings to financial savings. A decrease in the growth rate of the ratio of physical to financial savings is expected.

IV.2.2Hypotheses -The following null hypotheses have been set up regarding the micro-foundations of household finance:

1. There is no movement towards cashless economy.
2. There is no change in banking habits of the people
3. There is no change in the trend of physical savings.
4. There is change in trend of financial savings of households.

Table 1
Description of Variables

S.n.	Variable	Nomenclature	Measure	Expected Sign
1	Change in Currency	CC	Ln (CC)	(-)
2	Proportion of change in currency to change in total financial assets	CC/FA	Ln (CC/FA)	(-)
3	Change in Bank Deposits	CBD	Ln (BD)	(+)
4	Proportion of change in bank deposits to change in total financial assets	CBD/FA	Ln (BD/FA)	(+)
5	Physical Savings	PS	Ln (PS)	(-)
6	Financial Savings	FS	Ln (FS)	(+)
7	Proportion of physical to financial savings	PS/FS	Ln (PS/FS)	(-)

Source: Authors' own.

For each of the above mentioned variables, following exercises have been carried out.

1. Graphical Analysis
2. Period wise analysis

Graphical analysis is done because there are certain policy periods in which certain events have taken place. Through the graphical analysis it can be identified whether these policy periods are reflected in the changing picture in each of the variables. Sometimes, it is difficult to make out if the changes are in accordance with the policy period. Therefore, dummy variable exercise is carried out to verify the events and policy periods. This helps to see the magnitude of change, the direction of change and the significance of change.

To analyze if the micro foundations of macro economy have changed as a result of the three policy periods: the liberalization policy of 1991, The Global Financial crises of 2008, and the Demonetization in 2016. For this purpose, the period when the policy was introduced has been identified and estimated the changes in growth rates in different sub periods with the help of dummy variables. Use of dummy variables is done to study the impact of crucial policy periods on the four behavioral variables mentioned above. The model used to carry out the empirical exercise has been explained below.

The following model has been estimated

$$LnF = b_1 + b_2D_2 + b_3D_3 + b_4D_4 + b_5t + b_6$$

….(3)

Where Ln F is the natural log of the variable considered

b_1 - intercept in the pre liberalisation period.

b_2, b_3 and b_4 - coefficient of difference intercept of pre and post liberalisation, of pre liberalisation and post Global Financial Crisis period and of pre liberalisation and post demonetisation period.

b_5 - slope coefficient in pre liberalisation period

b_6, b_7 and b_8 - coefficient of difference in slope in pre liberalisation and post liberalisation period, in pre liberalisation and post GFC period and in pre liberalisation and post demonetisation period.

The first period is the pre liberalization period. The second period is from 1991-2007. The third period if from 2008 to 2015 and the last period is from 2016 onwards, that is, the post demonetization period.

The above mentioned empirical exercise has been carried out to study the impact of three important policy periods on the four behavioral variables discussed above on changes in the Indian household finance.

To study if the behavioral parameters of household finance have changed or not during the period of our study, the above stated hypotheses have been studied.

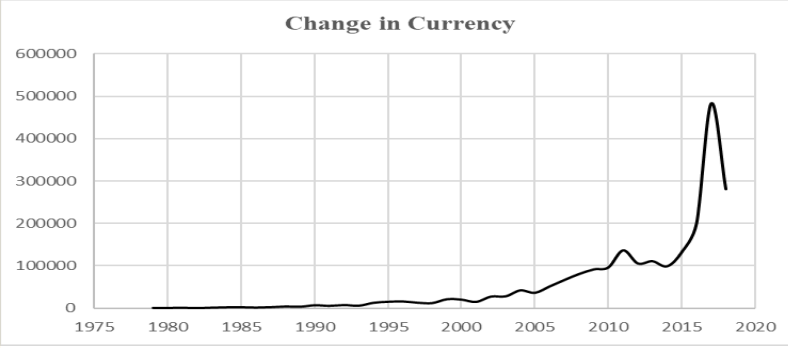
Also, the implications of the change will be analyzed.

VAnalysis

Policy Period Analysis-To analyze if any of the micro foundations discussed above has affected the parameters talked of in the study. Any change is a behavioral change if it is long term, statistically significant and stable. If it is so, only then it can be said that the parameters under study show a change in terms of the micro foundations

V.1 Growth rate of change in Currency.-The trends in the changes in currency held by the household sector can be viewed at a glance from the graphical representation in Figure 1. (See Figure 1)

Figure 1-Trends in changes in currency held by the Household Sector



Source: Authors' own.

From the figure above it is not clearly observable that liberalization and Global financial crises (GFC) had any impact on change in currency held by the households but it shows that demonetization had an impact. Thus, it becomes important to carry out the dummy variable exercise to know the impact of various policy periods.

Talking about the rate of growth of change in currency to change in total financial assets it is found that the coefficient of D2, D3 and D4 are all insignificant (Table 2). The coefficient of D2 tells that liberalization, however big a policy change it was, its impact was not immediate. A significant fall was expected. With liberalization, it is expected that people would hold less currency and invest more in other financial assets. Anomalously, it has seen a very small increase in currency holding. The event of liberalization led to uncertainty and there was a risk perception amongst the households. The coefficient of D3 is positive but insignificant. This is because it cannot be expected that the currency as a proportion of total financial assets to see an immediate fall. The immediate effect of GFC was that the trust in financial sector had seen a jolt. With demonetization, cash was taken away from the hands of public immediately. This is reflected in the negative and high value of D4 although it is insignificant. Talking about the slope coefficients, it is seen from 1991 to 2007, the rog of currency did fall but insignificantly. The negative coefficient of D3t shows some recovery in the financial sector where households held other forms of assets and less currency. Thus, as a result of GFC there was a shift away from holding currency to investing in other forms.The coefficient of D4t is positive and insignificant. We had expected it to be negative. But this can be explained. The reason is statistical. Growth rate started from a very low level. When there is a dip there is revival from there. Hence, whatever growth is there it is like a correction. Even a small rise would be statistically exaggerated. The data point after demonetization have been very small. Thus, it has not been established as a long term trend

Table 2

Growth in change in currency as a proportion of change in total financial assets

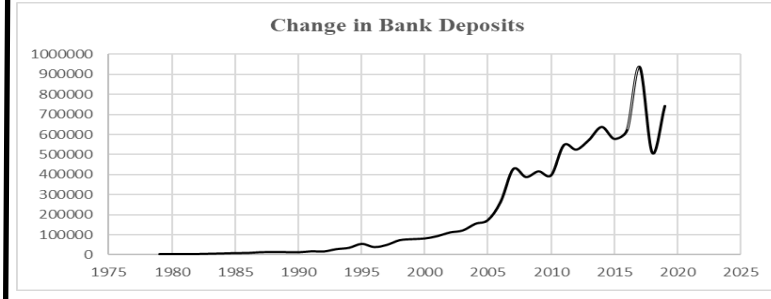
	Coefficients	*Standard Error*	*t Stat*	*P-value*
Intercept	-1.92073	0.147398	-13.0309	2.42E-14
T	-0.00545	0.020027	-0.27235	0.787102
D2	0.167093	0.295121	0.566186	0.575217
D3	0.720074	1.249595	0.576246	0.56848
D4	-2.29172	4.402239	-0.52058	0.606243
D2t	-0.01739	0.023274	-0.74723	0.460382
D3t	-0.02173	0.042033	-0.51689	0.608789
D4t	0.070923	0.112658	0.629542	0.533463

V.2 Growth rate of change in Bank Deposits.

The trends in changes in Bank Deposits of the household sector can be viewed at a glance from the graphical representation in Figure 2. (See Figure 2)

Figure 2

Trends in changes in Bank Deposits



Source: Authors' own.

There is some volatility and drop seen in 2008. There is a rise and dip with a recovery after some time seen as a result of demonetization. Overall bank deposits are definitely rising.Bank deposits have been the most stable and highest component in the household portfolio of investment in the last four decades. Only in recent years a slight dip in bank deposits due to falling interest rate has been witnessed. Bank deposits although have relatively low return but is stable. If over so many years,

households still prefer bank deposits it clearly shows that they are risk averse by nature.With liberalization, the proportion of change in bank deposits to change in total financial assets fell implying, liberalization did come as an immediate shock to the people as a result of which they were reluctant to put more money in banks. The coefficient of D3 and D4 is bound to increase because the immediate impact of the two shocks GFC and demonetization was withdrawal of funds from shares, stocks and other forms of investment and putting funds in risk free bank deposits.

The coefficient of D2t is positive and highly significant. As a result of liberalization, financial sector grew, and financial markets became more integrated with the banking sector. The coefficient of D3t is positive but insignificant. It shows a conflicting and not a stable trend. Rates of interest decreased during this period on one hand, but because the period of GFC up to demonetization saw destabilization of the financial sector, households were not confident of other forms of investment which they might have perceived as riskier. Talking about the coefficient of D4t, it is negative and insignificant. This also shows conflicting tendencies as different things pulled in different directions. Only a small proportion of people went towards stock market, mutual funds and not everyone gave up bank deposits. Rates of interest were market determined, new financial instruments were introduced, financial markets were getting more developed which offered different kinds of investment. Another reason could be that after demonetization, data points are only for two years. Thus, it is not reasonable to expect a significant trend.

Table 3
Growth in Bank Deposits as a proportion of Total Financial Assets

	Coefficients	*Standard Error*	*t Stat*	*P-value*
Intercept	-0.53266	0.072044	-7.39343	1.71E-08
Year	-0.02844	0.009789	-2.90507	0.006507
D2	-0.71137	0.144248	-4.93158	2.26E-05
D3	0.105071	0.610771	0.172029	0.864465
D4	2.459521	2.069909	1.188226	0.243226
D2t	0.046445	0.011376	4.082851	0.000266
D3t	0.024614	0.020544	1.198079	0.23942
D4t	-0.04196	0.053257	-0.78795	0.436349

Source: Authors' own.

V.3 Growth Rate of Physical and Financial Savings

The trend in Physical Savings and Financial Savings of the household sector can be viewed at a glance from the graphical representation in Figure 3, 4 and 5. (See Figure 3, 4 and 5)

Figure

Trend in Physical Savings

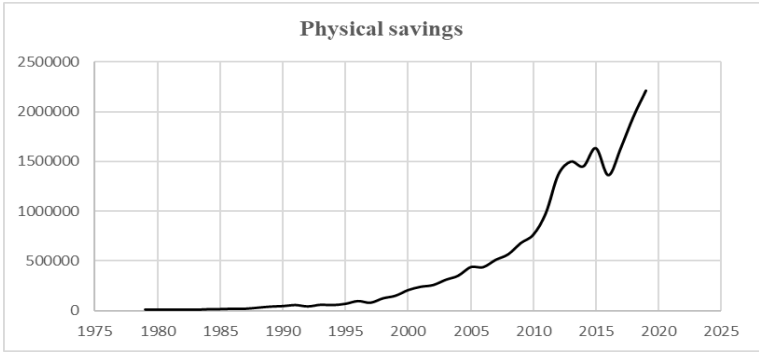
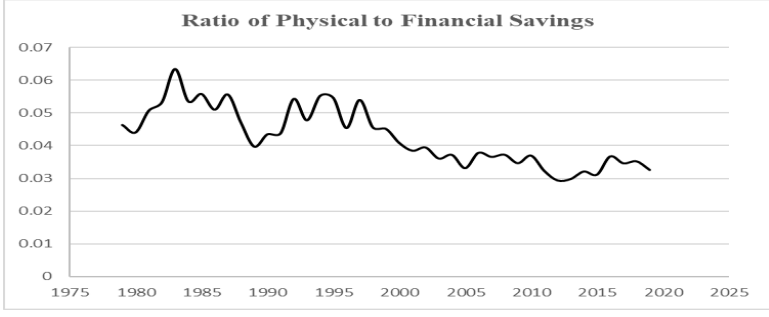


Figure 4
Trend in Financial Savings



Source: Authors' own.

Figure 5
Trend in ratio of physical to financial savings



Source: Authors' own.

Although there has been an increase in both the Physical and Financial savings, but over the years especially after liberalization, there is a continuous fall in the ratio of physical to financial savings. The variations and fluctuations only indicate that it is not a very large switch over from physical to financial savings. Also, it was expected as financial development takes place there would be a shift away from physical savings towards financial savings. One major finding from Table 4 is that in the pre liberalization period the economy was a slow moving economy with less volatility, less of uncertainty. The exchange rates were fixed. There were only about four periods when the fixed exchange rate was revised. Not many investment avenues were available and hence the ratio of physical to financial savings was high. The immediate impact of the three policy shocks is a fall in the ratio of physical to financial savings. (Coefficient of D2, D3 and D4 are negative)

The coefficient of D2t, D3t and D4t shows that the rate of growth of physical to financial savings has seen an increase in all the three policy periods as a result of the three shocks:

liberalization, GFC and demonetization but the increase is statistically significant only during the liberalization period and not due to GFC and demonetization.

Table 4

Rate of Growth of Physical Savings as a proportion of Financial Savings

	Coefficients	*Standard Error*	*t Stat*	*P-value*
Intercept	0.158035	0.135498	1.166327	0.251842
Time	-0.01416	0.018411	-0.76887	0.447438
D2	-0.97577	0.271295	-3.59671	0.00104
D3	-1.12906	1.148714	-0.98289	0.332811
D4	-2.22968	3.893003	-0.57274	0.570703
D2t	0.04837	0.021395	2.26082	0.030489
D3t	0.049079	0.038639	1.270183	0.212902
D4t	0.066447	0.100164	0.663382	0.511694

Source: Authors' own.

VIFindings-It cannot be said if movement towards cashless economy has taken shape. The null hypothesis that there is no movement towards cashless economy cannot be rejected. One of the reasons could be that the movement towards cashless economy is more recent. In 40 years period, taking into account the post demonetization period, which is only a four year period, seems to be too small a period to comment. The null hypothesis that there is no change in banking habits of the people is rejected because there are significant changes seen in different periods. The overall bank deposits are definitely increasing except for the post demonetization period.

VII Suggestions-Policy makers should take this into account. It is not that households will remain in the narrow groove of bank deposits. They have come out to save in other forms. Households have adopted a more venturesome approach towards risk return relationship. The two financial shocks: Global Financial Crises and Demonetization have led households to come out of comfortable zone of risk free bank deposits. Most recently, the fraction of non-financial assets in annual savings has risen, further enhancing the concern about declining financial resources available for investment in the macroeconomy. The point that we are trying to emphasise is that the policy makers should take up steps to boost financial savings. Some of them at ground root level include marketing campaigns and account features that try to overcome psychological obstacles to savings This will help in increasing take-up and use of financial investments. Technological innovations, including mobile banking and direct deposit options, have the potential to expand access to and use of financial savings.

VIIIConclusion-On the whole behavioral changes have been seen in the pattern of Indian Household Finance and savings. There are two levels from which household finance is being observed. First, the shift from 'cash held by public' towards keeping savings in banks. It is expected that cash holding would go down with the advent of financial development. Such a shift purports growth in banking habit. The second shift is if there is a significant increase in bank deposits, independent of there being a promotion of banking habits. This also tallies with the idea that households have shifted investment in other forms of financial assets because acquisition of new financial assets is increasingly done through banks.All the above inferences are not very definitive. A lot of economic modelling and statistical analysis is required which is beyond the scope of this paper. The intention of this paper is to look at the basic behavioral parameters of the micro foundations to highlight the changes in long term trends of behavior of household finance and relate these trends to different policy periods. Finally, there appears an interrelationship between different forms of assets. Behavioral changes have to take into account the interrelationship between policy periods, between different kinds of assets, between different trends like fall in interest rates, availability of other avenues of investment, integration of global financial markets. We have not directly studied these phenomena. The purpose of the paper is to examine the potential for further research into the relationship between behavioral parameters of the micro foundations of household finance, different policy periods and long term trends.

****

References

1. Badarinza, Balasubramaniam, V. and Ramadorai, T. (2016). The Indian Household Savings Landscape. India Policy Forum, NCAER.
2. Boyce, J. (2009). Kinked Exponential Models for Growth Rate Estimation. *Oxford Bulletin of Economics and Statistics,* 48(4), 385 - 391.
3. Campbell, J.Household finance. *The Journal of Finance*, 61(4), 1553-1604.
4. Ghosh, A. (1990). Saving in India: Some Broad Reflections in Datta Roy Chaudhary, Uma and Amrish Bagchi (eds.), Domestic Savings in India, Trends and Issues, Vikas Publishing, New Delhi.
5. Gupta S.B. Monetary Planning for India. *Oxford University Press*, New Delhi.
6. Hada and Suri (2018). Analysis of Trends in Gross Domestic and Household savings and its Components in India. Studies in Business and Economics. 13(1), 181-193.
7. Pandit, B.L. (1991). The Growth and Structure of saving in India. Oxford University Press, Delhi.
8. Ramadorai, Tarun et al (2017). Report of the Household Finance Committee – Indian Household Finance, July, RBI, Mumbai.
9. Rangarajan, C (2009). Report of the High-Level Committee on Savings and Investment. *Ministry of Finance, Government of India.*
10. Modigliani, F. (1968). Life cycle, individual thrift, and the wealth of nations. *The American Economic Review*, 1986, *76* (3), 297–313.
11. Mukhopadhyay, B. (2016). Understanding cashless payments in India, Financial Innovation, *Springer*, Heidelberg. 2(27), pp. 1-26.
12. Friedman, M. (1957). The permanent income hypothesis, in 'A theory of the consumption function'. *Princeton University Press*, 20–37.
13. Report on Trends and Progress of Banking in India, Reserve Bank of India. Various Issues
14. Tobin, J and Brainard W.C. (1968). Pitfalls in Financial Model Building. American Economic Review, 58, May. 99-122
15. Tobin, J. A General Equilibrium Approach to Monetary Theory. *JMCB,* 1, 15-29
16. Upender, M. and Reddy, N.L. (2007). Saving Behaviour in the Indian Economy, *International Journal of Applied Econometrics and Quantitative Studies*, 4(1), 35-56.
17. Vishwanath, C., Dasgupta, M. and Sharma, M. (2020). Household Finance in India: Approaches and Challenges. *Dvara Research* Working Paper Series No. WP-2020-02. May. Version 1.0

Percepion of Employees Towards Performance Appraisal System and Their Performance in Mysuru Based Pharmaceutical Companies

Dr K. Nagendra Babu
Professor
Department of Studies In Commerce, Manasagangothri
University of Mysore, Mysore-570006

Divya K.
Research Scholar
Department of Studies In Commerce, Manasagangothri
University of Mysore, Mysore-570006

ABSTRACT-Performance appraisal is systematic and necessary for evaluation of employee performance by employers for various purposes. It is mainly conducted to measure the level of performance of employees for wage fixation, promotion and increment purposes. Employees feel that they are treated in just and equitable manner when the performance appraisal is conducted fairly. The employees could understand their level of performance and they are able to know their strengths and weakness. This study has been undertaken with a view to explore the influence of perception of employees towards performance appraisal system on their performance. For this purpose, 150 employees working in Mysuru based pharmaceutical companies were selected under systematic random sampling method. The data analyzed using mean, standard deviation, chi square test and multiple regression analysis indicated that the perception of employees towards proper evaluation, efficient monitoring, satisfaction on performance appraisal and regular appraisal has been influenced by the age of the employees. Higher perception was found among young employees and the perception level is decreased among older employees. Evaluation, satisfaction and regular appraisal have influenced the performance of the selected employees.

Keywords: Appraisal, Evaluation, Monitoring, Perception, Performance, Satisfaction

INTRODUCTION-Every company aims at improving the performance of its employees. In this regard, the companies appraise the performance by adopting different types of appraisal methods. The performance appraisal is helpful for the employers to understand whether the employees are performing in accordance with the fulfillment of their organizational objectives. The performance appraisal is used to measure the performance for wage fixation, promotion and increment policies. Therefore, the performance appraisal is considered as the right channel for measuring the employee performance. When the appraisal is made fairly, the employees are satisfied and they perform better. They expect that the appraisal system should be transparent and well informed. Performance appraisal is helpful to understand the strengths and weakness of the employees. The employers feel that the performance appraisal is useful for determining training and development policies. The employers adopt traditional and modern performance appraisal methods according to their specific requirements.

REVIEW OF LITERATURE-Sanjeev, R. & Singh, S.K. (2014) argued that performance appraisal system has improved the performance of employees. It has motivated them to work hard and the personnel skills were improved due to effective performance appraisal system. The employees have agreed that the performance appraisal system has enhanced the promotion opportunities. Performance appraisal system enabled the employees to understand their performance level. However, there was an irritation among the employees about the performance appraisal since there could be competition among the employees. **Khan, A.H. (2016)** observed that the perception of employees on performance appraisal has been influenced by the process followed for performance appraisal. Procedural justice is found to have impact on the perception on performance appraisal. Goal setting and perception of employees on performance appraisal system are found to be significantly associated. Feedback system has influenced the perception of employees towards performance appraisal system. It is noted that the Pay for Performance has made positive impact on the perception towards performance appraisal. **Aarathy, T.S. & Raju, D.V. (2018)** found that the behaviour of the employees has been modified due to effective performance appraisal system. In most of the cases, the self assessment of performance was preferred by the employees rather than by superiors. However there was a chance for conflict among employees after the performance evaluation. Weightage given for each activity was satisfactory for the employees. They have revealed that the appraisers allowed them to express their disagreement without any hesitation. **Giner, T.C. et al. (2020)** proclaimed that there was a direct positive impact of performance appraisal on the innovative behaviour of the employees while the association between performance appraisal and innovative behaviour was mediated by the consistency. There was no evidence for the significant impact of consistency on the innovative behaviour of the employees.

PROBLEM DEFINITION-The previous studies made on performance appraisal have examined the effectiveness of appraisal methods, its impact on the modification of behaviour and performance of the employees. These studies have been conducted in various sectors. However, there have been little quantum of studies focusing on the impact of perception of employees

towards performance appraisal system on the employee perception. Therefore, it is decided to carry out the present study to examine the impact of employees' perception towards performance appraisal on their performance.

OBJECTIVES

- To examine the perception of employees of Mysuru based pharmaceutical companies towards performance appraisal system and
- To investigate the impact of perception towards performance appraisal system on the employee performance.

HYPOTHESES-Age of the employees has no significant relationship with their perception on current performance appraisal system The employee performance is not significantly influenced by the perception of employees on current performance appraisals system.

METHODOLOGY-The empirical study is conducted to fulfill the above objectives as an exploratory study. It is conducted among 150 employees working in Mysuru based pharmaceutical companies. These employees were selected using systematic random sampling method. The researchers have collected the data from the selected respondents using well drafted questionnaire. The data collected were analyzed using mean, standard deviation, chi square test and multiple regression analysis.

RESULTS

Age and Perception on Performance Appraisal System

Age	N		Proper Evaluation	Efficient Monitoring	Satisfaction on Appraisal	Regular Appraisal
Less than 25 years	25	Mean	2.48	2.32	2.96	3.04
		SD	1.45	1.35	1.27	1.67
25 to 35 years	22	Mean	1.59	1.50	2.32	2.09
		SD	1.18	0.74	0.95	1.66
35 to 45 years	44	Mean	2.02	1.23	3.98	2.95
		SD	0.88	0.42	0.26	1.73
Above 45 years	59	Mean	2.22	1.86	2.37	2.58
		SD	1.38	1.27	0.87	1.62
Total	150	Mean	2.11	1.70	2.93	2.69
		SD	1.25	1.09	1.10	1.68
Chi Square value			65.997	31.057	89.019	33.132
DF			12	12	12	12
P value			0.000	0.002	0.000	0.001
Result			Significant @ 1%	Significant @ 1%	Significant @ 1%	Significant @ 1%

The p value of 0.000 indicates that the perception of employees towards proper evaluation according to the current performance appraisal system is significantly influenced by the age of the employees. The highest perception level (2.48) was found among the employees less than 25 years of age while the lowest perception level (1.59) was observed among the employees pertaining to the age group of 25 to 35 years.

It could be understood from the p value of 0.002 that the perception of employees on efficient monitoring is influenced significantly by their age. The level of perception was the highest (2.32) among the employees belonging to the age group of 'less than 25 years' and the lowest (1.23) among the employees in the age group of '35 to 45 years'.

It is denoted by the p value of 0.000 that the satisfaction of employees on current performance appraisal system is significantly influenced by their age. The perception level ranged between 2.32 and 3.98. The employees pertaining to the age group of '35 to 45 years' possessed the highest perception level while the employees belonging to the age group of '25 to 35 years' have got the lowest perception level.

There was a significant influence of age of employees on their perception towards regular appraisal as denoted by the p value of 0.001. The greatest perception level (3.04) was reported by the employees less than 25 years of age and the lowest perception level (2.09) was notified by the employees in the age group of '25 to 35 years'. The employee performance was measured in terms of their behaviour, attitude and morale. The employees were asked to state whether their behaviour, attitude and morale were improved, decreased or no change according to their perception towards the components of current performance appraisal system.

Perception on Performance Appraisal and Employee PerformanA significant relationship was

Model	Components	Unstandardized Coefficients		Standardized Coefficients	T	Sig.
		B	Std. Error	Beta		
1	(Constant)	4.87	0.59		8.20	0.000
	Proper Evaluation	0.36	0.16	0.18	2.27	0.025 *
	Efficient Monitoring	0.00	0.18	0.00	0.00	0.997
	Satisfaction on Appraisal	0.55	0.17	0.24	3.16	0.002 **
	Regular Appraisal	0.56	0.11	0.38	5.09	0.000 **
	R		0.596			
	R Square		0.355			

* Significant @ 5% ** Significant @ 1%

A significant relationship was observed between perception of employees on proper evaluation and their performance at 5% level whereas the association between satisfaction on current appraisal system and employee performance was significant @ 1% as also the relationship between perception on regular appraisal and employee performance. However, the relationship between perception on efficient monitoring and employee performance was insignificant. The beta coefficients indicated that the highest impact on employee performance was made by regular appraisal followed by satisfaction on current appraisal system and proper evaluation. No effect could be made by efficient monitoring on employee performance.

DISCUSSION-It implies that the perception of employees on proper evaluation decreases as the age increases. It is realized that the employees perceived highly about the efficient monitoring while they were young. It could be inferred that the satisfaction of employees towards current performance appraisal system increased as the age increased. It is proclaimed that the perception of employees on regular appraisal declined when their age increased.

The employee performance increased when the assessors conduct proper evaluation of the performance of employees. Efficient monitoring of employees has not resulted in the improvement of employee performance. The employees have affirmed that their performance is increased when they are satisfied with the current appraisal system. The employee performance is observed to be increased when the authorities conduct performance appraisal regularly.

SUGGESTIONS-It is suggested that real time performance evaluation shall be introduced in order to improve the perception of older employees. Transparent yardsticks shall be established and employee monitoring shall be made efficient with a view to improve the perception of employees. Frequent feedback shall be obtained from the employees towards their satisfaction on current appraisal system and changes shall be made as per their expectations subject to the performance appraisal policies of the company. Regular and periodical but not very frequent appraisal could improve the perception of employees on the appraisal system.

CONCLUSION-Employees' perception on the components of current performance appraisal system in terms of proper evaluation, efficient monitoring, satisfaction and regular appraisal has been examined in this paper. The perception of employees on performance appraisal system has been affected by the age of the employees working in Mysuru based pharmaceutical companies. The younger employees possessed the highest level of perception towards proper evaluation, efficient monitoring and regular appraisal. The performance of employees in terms of behaviour, attitude and morale has been influenced by evaluation, satisfaction and regular appraisal. On the other hand, no significant effect is made by efficient monitoring on the employee performance.

****

REFERENCES:

1. Sanjeev, R. & Singh, S.K. (2014). Employee Perception towards Performance Appraisal Program in Packaging Industry. Journal of Strategic Human Resources Management. 3(1): 16-22.
2. Khan, A.H. (2016). Employees Perception on Performance Appraisal System in a Public Limited Company in Pakistan. International Journal of Learning and Development. 6(3): 168-200.
3. Aarathy, T.S. & Raju, D.V. (2018). Employee Perception towards Performance Appraisal System in IT Sector. International Journal of Mechanical Engineering and Technology. 9(5): 131-135.
4. Giner, T.C. et al. (2020). Impact of Perception of Performance Appraisal Practices on Individual Innovative Behaviour. European Journal of Management and Business Economics. 29(3): 277-296.

Amish Tripathi's 'Scion of Ikshvaku': A Study in Hinduism

Dr. Manju Roy
Professor
Department of English
Lalit Narayan Mithila University, Darbhanga, Bihar

Sumit Saurabh
Research Scholar
Department of English
Lalit Narayan Mithila University, Darbhanga, Bihar

Abstract-'*Ram: Scion of Ikshvaku',* Amish Tripathi's first installment in the Ram Chandra series, is a modernist humanist and realistic take on the Hindu epic of the 'Ramayana'. The author engages and problematizes the themes of an efficient or ideal ruler, his responsibilities and his role in the larger framework of the Vedic Society and Jati Varnas. The intersectionality of Law and Upanishads, with the distinction between law and Dharma, addresses the paradoxical question of framing natural laws into an anthropological legal and administrative framework of understanding in the kingdom. The Hindu philosophy and the interpretation of God restructure and encompass the masculine and feminine way of life paramount in ancient India. The novel places the character in the volatile socio-religious belief intertwined with dynamic conflicts, distortion and urgency in course correction. The research propounds on ancient India and its socio-political realities in resonance with the condition of women and the institution of marriage. The author problematizes and explores in symbolic and academic analysis the nuances available through scriptures, customs and traditions, formulating and depicting all crucial parts of the plot and narrative. The novel is replete with instances and in -depth analysis of the themes and characters shaping particular events that address the readers and the problems that resonate with modern thinkers, scholars and readers of the contemporary period.

Keywords-The'Rig Veda', Upanishads, Dharma, Smritis, Swadharma, Marriage

Introduction-In 'Ram: Scion of Ikshvaku,' Amish Tripathi reveals to his readers the original story of Lord Ram, the most widely known and celebrated divine figure in the Hindu epic the 'Ramayana.' The novel retells the epic in the most realistic, modernist and humanistic sense of both the character and the setting. The hyperlink narrative technique deployed allows the author to weave an intricate web of events and circumstances that focus upon a particular event and character to connect them by a common thread and assimilates the retelling of the story in the most unconventional manner. The author wants to rejuvenate the ancient culture and tradition of the country. He seeks to impart to the coming generations the heritage and knowledge of this ancient civilization to connect them with their roots and identity as citizens of this land, all in unity. The well-known act of 'Sita Haran' becomes the fertile stable ground for the author to give roots to his imagination that begins in the year "3400 BCE somewhere near Godavari River India" (Tripathi 1), and hooks the readers suspending them with its last lines. "Ram looked up, enraged at the speck moving rapidly away from them. He screamed in anger, 'SITAAA!'" (Tripathi 7).

Efficient Vedic leader and justice-In contrast to the divine deity, Amish's character, Ram, is neither born through divine means nor portrayed as the apple of everyone's eye, but rather an unloved prince realistically."Ram's life would not succeed in washing away the 'taint of 7032', the year that according to the calendar of Lord Manu, Dasharath was defeated and Ram was born" (Tripathi 42). Under his ruling dispensation, the caste system became extremely rigid and distorted with immense contempt and hatred for the trader class. As Amish says,"Dasharath could scarcely conceal his Kshatriya disdain for the trading class, Vaishyas. In the Sapt Sindhu royalty, wealth was the conquerer's right when acquired as spoils of war, but inappropriate when earned through mere profiteering" (Tripathi 9) In fact, by the lack on the part of the Vaishyas class, this animosity blinded the king and led the whole kingdom to its ruin, subtly indicated in Maharishi Vasishta's question to the four princes.

"And what would you say about a very good man, a king who has fallen into depression? He has converted his personal loss to that of the people. They suffer because he does. Is he then a good king?" (Tripathi 68). "Bharat contents Ayodhyans tendency to hold Ravan responsible for their own vices and destitution (a debate and discourse……..521)". Socrates in 'Republic' poses a question about justice: "What justice is and whether it is better to be just or unjust establishing conventional and popular opinions about justice have important flaws." (Plato Republic Book 1, 331-336)Amish invokes Manu Smriti, and raises one of the most pertinent questions relevant both in the context of the novel and in the contemporary setting to the readers and modern thinkers of the 21st century about who should actually rule and what qualities, character and abilities he must possess to be an efficient ruler or king. His novel propounds that it is not necessary for a son of a king to fill his father's shoe by giving into notions of blood, laws and custom that demand it, rather "anyone other than the king who is required to lead the people to safety" (Tripathi 67), prosperity and a better future that becomes the suitable and rational choice. Plato, too in his book, 'Republic', voices "that persons whose souls are not well ordered in the sense of being governed by reason, must not be leaders" ('Republic' Book 1). Societies are

essential for the king to recoil from evil and turn towards good. Wisdom lies not only in the knowledge of the truth but also in the eagerness to strive towards doing good for the people. He should always measure everything by recognizing the good in them and negating what is base and evil. His greatness in power should rival his greatness in goodness and being nearer to God since there is nothing nobler than following in the steps of the ancient greats like Lord Vishnu, who brought about radical change for his people. He should give into rationality, divinity and compassion to understand the need of the hour and should not indulge in the gluttony of base human carnal emotions and weaknesses. Sometimes honorable people become victims of their own follies (Dasharath), and men of questionable character rise to the occasion in the hour of need to do the necessary (Ravan); thus, it does not make them unsuitable for the position, nor does failure condemns one to an eternity of despair and destitution. One should always have the spirit to judge themselves, accept one's own actions and rise above them. Ravan might be the villain for the people of Ayodhya. But, in the eyes of his own people, he is a hero who has safeguarded not only the interest of his own country but also the needs and aspirations of his people. While Dasharath waged war for his arrogant honour, Ravan fought against corruption, malpractice, and injustice of the trader class; thus, his victory was destined. He neither gave into hollow pride nor engaged in false honour or glory that could have blinded his goal. Amish propounds:

"A leader must love his country more than he loves his own soul" (Tripathi 41).

He should adhere to his Swadharama with guidance from 'Vasya Upanishad', which says,

"Let me see your gracious self beyond the luminosity, and realise that the god in you is me" (Tripathi 51)

and thus impart justice to oneself and to others. Amish wants the readers to understand that leadership of the state or a monarchy ultimately is not only individual but a collective representation of culture, philosophical thought and ethos. Aristotle, too, concludes, "The role of the leader is to create the environment in which all members of an organisation have the opportunity to realise their own potential" (Nicomachean Ethics, Cambridge). Thus, it becomes paramount that the leader or king follows his Dharma and obeys his Swadharma. The leader should flow, by nature, to grow from within so that his actions uplift him in his Swadharma. "Dharma" culminates in holding the mind, intellect, memory, and inner soul together in harmony as an overarching umbrella of cosmic forces that compliments and supplements one's growth that comes by adhering to the principles of Swadharma. When we forget our duties and responsibilities, cared texts like 'Shrimad Bhagavad Gita' teach us, we are disarrayed from the path of truth. The act of presiding over the masses should not come from the sense of entitlement or authority but from the contours of serving the people and not serving oneself.

Law and Upanishads-The bedrock for the existence of any society lies in its sense of common agreements that are complied with and adhered to by its citizens in the form of laws. However, Bharat questions human beings' intellectual, cognitive capacity and consciousness of their intra and interdependence on different aspects of nature that cannot be comprehensively and concisely attributed within the structured domain of man-made laws. Even Ram questions, "I wonder if we actually help these animals on our bi-weekly medical tour or are we just assuaging our consciousness." (Tripathi 69) while hunting them and then nursing them to health. Bharat raises the cynical notion that humans are hypocritical by nature and reason. He says,

"We criticize corruption in others but are blind to our own dishonesty. We hate others who do wrong and commit crimes, blithely blame Ravan for all our ills, refusing to acknowledge that we created the mess we find ourselves in" (Tripathi 73).It is easy for us to criticize other people's corruption, yet we ignore our own dishonesty. He questions laws as a means to meet the end or end to the means of natural life itself. The essence of humanity lies in the freedom with which everyone is born into the world. If only one could harness its manifestation of selfishness by creating an efficient structure and system, then it could be deployed for the betterment of society. However, freedom corrupts the mind, and unchecked freedom corrupts it absolutely. In the absence of law, all individuals form their own understanding and perception of the world marked by their own requirements and ambitions for which they would go to any lengths. Conflict and chaos then become their staple diet. This, in turn, then perpetuates countless wars, bloodshed and act of violence driven by human vices. Thus "Freedom is never the ally of law. You can have the freedom to choose whether you want to join or leave a society based on the rule of law. But so long as you live in such a society, you must obey the law" (Tripathi 73). The Upanishads and Smriti then become a guide for the society to follow in the footsteps of their forefathers and laws made and approved by their esteemed knowledge and better faculties. As Amish says,"The 'Manu Smriti' was well known. Most people were unaware of it; similarly, the 'Brihad Manu Smriti', 'Yajnavalkya Smriti', 'Narad Smriti', 'Aapastamb Smriti', 'Arti Smriti', 'Yam Smriti' and 'Vyas Smriti" (Tripathi 116) were availably codified with laws that allow for the felicitation of human activities in an organized and orderly manner. But people neither read them nor ever cared to do so. Rather they indulged in heresy, gossip and only half information that created complex problems of disinformation and corrupt practices that led to moral and ethical degradation of society and individuals in general. Ram, as the chief of police, negates these

aspects first and foremost. But can such notions give way to 'an ideal life' in an uncompromising and unpredictable realistic setting? What are the ways in which societies achieve these goals? Although it may be impossible, if it were possible, perhaps people could chart their own lives if they were given the opportunity to do so. Can freedom help everyone achieve his/her dreams? In such a scenario, the strong man would overwhelm the weak and marginalize their prospects. Shatrughn proposes that the law of nature should be upheld. Who are we to intervene in the natural laws that are far greater than our comprehension, and what gives us the right to undermine them? In nature, only the fit and strong survive while the weak get weeded out, and the species continues to survive. But human beings are endowed with intelligence and consciousness far greater than any animal and thus could not reduce its behaviour to such elementary status. We do not abandon or kill our weak, we rather nurture and care for them, for we realise their potential that cannot be judged on the temporality of only certain conditions. Formal enacted and enforced law may not always resolve disputes or govern situations. (Ellickson 1994)

As Amish writes,

"The purpose of the law is not only to create a governing system, standing army and codified regulations. Rather, its effort should be as much sync with the Dharma as possible, for if the prospects of the strong are compromised and if we lean towards the interest of the weak, then the society itself could decline". (Tripathi 85). The law should be Dharma. A distinction should not be created as it allows people to cheat the laws since it does not violate their Dharma. One of the problems that Amish highlight is how the binary classification of law and Dharma as separate units emboldens criminals to utilise the loopholes in the constitution to commit the most heinous crimes and get away with it. In Dharma, there are no loopholes. Aristotle, in 'Poetics', writes to of law of men: "a man may be safer ruler than the written law, but not safer than the customary law" ('Politics' 1287b).

The test of Roshini's torture and tragic death tears through the fundamentals of the law. The whole of society questions the very nature of the law that lets a criminal walk free on technicalities. Should a brutal and inhumane murder of an innocent person be left adequately unpunished? It is just because the law finds itself incompetent with the rules that humans make. But Dharma does not waver in this complexity. Rather, it exists by Brahma's very creation of the universe; the murder of an innocent person can never be argued or justified in Dharma. Unlike the law, it's not superficial and arbitrary and does not change upon the whims and fancies of society. Rather it remains constant, and the Vedas and the Upanishads emulate this distinction between law and Dharma. Dhenuka is wronged lawfully, but by Dharma, he committed evil, which demands retribution, a punishment that the law could not provide. Bharat found himself vehemently against it, so much so that it led him to kill Dhenuka as the law failed to provide justice. The society transforms into a trance of frenzied mob boiling with anger that manifests into the inhumane act of killing the perpetrator, which disgusts the author and readers. However, the author points out that this is a danger that society is susceptible to if the constitutional authorities and the law fail to deliver justice. The author's elaborate and extensive use of shlokas and Sanskrit verses leaves the readers awestruck with ideas and debates culminating beautifully in the plot. The character of Roshini is the author's tribute to the real-life victim Nirbhaya and the inhumane act of killing that made our national conscience shake with shock and burn with anger to make a stark critique of people, politicians and law-enforcing institutions. This question shatters the structure and system of law and plunges one brother into turmoil and depression. At the same time, the other succumbs to anger and hatred."Amish elucidates the pivotal role of law in foresters and contrasts it with the act of rape that presents a dichotomy of complexities of upholding and breaking the law" (A Forum for debate on Contemporary Issues, 525). At times, the author criticizes the two characters for giving into two extremes of circumstance, rather in Vasishta readers find a sensible answer always to aspire for balance and always inspire the public for the better.

Interpretation of God and life-The retelling of the 'Ramayana' provides a radical modernistic viewpoint from either the original epic or C. Rajagopalchari's take on it. In the novel, Amish proposes a way of living that is ideal. A gendered way of living, conforms to the prescribed tenets of rules and regulations that enacts the dichotomy of nature into the cyclic manifestation of the masculine and feminine. The masculine way of life perpetuates "truth, duty, and honour, at its peak, masculine civilisations are efficient, just and egalitarian. But as they decline, they become fanatical, rigid and especially harsh towards the weak" (Tripathi 85). The feminine way, in contrast to its contemporary "shirks responsibilities, their message to their followers is: it is your decision. When things go wrong, there is no one who can be held accountable" (Tripathi 93). Society is confused, endlessly debating, analyzing and paralyzed without a clear vision or purpose. People of Ayodhya believed in creating the universe that is born due to the splitting of 'The One Ekam' via a big bang, thus activating the cycle of existence, life and death. The idea of "Atma" and "Paramatma" stem from the existence of the supreme God 'Brahman' within each animate and inanimate being as a holy trinity of God, manifesting themselves into the triumvirate. Brahma is the creator of the universe and all materialistic existence. He is celebrated as a

Scientist and credited for giving origin to holy scriptures, the Vedas and the Vedic form of life. Lord Vishnu is the preserver endowed with the task of observing inefficiency, corruption, moral degradation and fanaticism in society to eliminate them. He propagates good and radically changes society's lives and functions. Lord Rudra or Mahadev has bestowed the title of the destroyer. He does not concern himself with guiding humanity or course-correcting its path. Rather, he brings about the destruction of the world and the universe. However, the 'Rig Veda' talks about the existence of only one supreme God, Ekam. It leads Shukracharya, the guru of Asuras, to believe that all other manifestations are perversions upon the idea of God and thus create differences and unnecessary conflict, especially among those who are neither versed in theological knowledge of the Vedas nor do understand it.

Thus, to bring these conflicts and differences, he clearly states that God is only 'The One Ekam', and both Asuras and Devas are their descendants, who became exclusionist under the masculine way of life. Amish draws the analogy between the monotheistic and polytheistic model of belief systems that exist as religions in our contemporary times. The tenets of monotheism firstly enforce rigid and draconian rules and regulations that, if violated, cost followers their life; secondly, they look down upon followers of others' faith or belief as "heathens" or "Kafirs", who do not believe in their interpretation of God. In the face of such a problem, living a feminine lifestyle falters and crumbles as "how to unite their own, behind a large cause. The followers of the feminine way are usually so divided that it takes a miracle for them to come together for any one purpose, under a single banner" (Tripathi 93). Through his novel, the author explains how one true God is 'Niraakaar' and 'Nirguna.' Consequently, how could He have a preference over any form if He didn't have a definite one? Since He is a member of all and none simultaneously, he cannot belong to any specific group. He exists in plants, animals, humans and all the creations of this world; therefore, he has many forms and none exact that could be held as the one true form. This fundamental misunderstanding of the believers in interpreting God in our realm of forms and the dichotomy of Him being in a formless world perpetuates and propagates differences among the masses and results in animosity. The Hindu scriptures like

The 'Rig Veda' refers to Ekam, the One Absolute, the sum of all souls, the Parmatama" (Tripathi 91), and

"The Upanishads impose the concept of one God upon the mind that does not respect diversity, which will only result in intolerance as a warning" (Tripathi 92).

They support the idea that God belongs to everyone and everyone belongs to God; thus, He will never pick sides in mortal human conflicts because if he does so, then we can no longer ascertain that He is one true God. God was described by Plato as the transcendent, being that creates an eternal and uncreated universe using eternal forms or archetypes. (Plato. 2007 p.317) Like the feminine, the masculine way of life has discrepancies that lead people to disarray. However, its foundations rely upon accountability, making it the closest to a stable system with changes to give humanity a better future. Ram himself comes to a conclusion and propounds that "Shukracharya was right in wanting to create a perfect masculine society. The mistake he made was that he based it on faith. The masculine way of life should be built on laws and not faith" (Tripathi 207). He firmly believes in doing so and puts it into action by successfully convincing Tadaka and Subahu of his beliefs, negating the follies that they held onto and were the cause of dispute between them and the Malayaputras.

"Religious fundamentalism and intolerance play havoc in the contemporary world today, and Amish addresses the inhumanity and terrorism perpetrated in the misguided belief of God. (Nimavat, Political and Cultural Discourse).

Marriage and Swayamvar-The institution of marriage has been problematised by Amish in his novel, which presents itself to the readers with questions that ask careful thought and consideration. Aristotle in his 'Nicomachean Ethics' defines " marriage is rooted in a natural complimentary between man and woman"(' Nicomachean Ethics' 205). Although "the relationship of husband and wife is of a "superiority" , it is still possible for the husband amd wife relationship to be proportional"('Nichomachean Ethics' 207). Ancient India had kingdoms and Empires that were either in conflict or alliances with each other. These relations with the state were marked by the institution of marriage that served as a necessary evil and an opportunity for the king to consolidate wealth, army, and power to safeguard the needs and interests of his people. However, it took an immense toll upon the individual bound in this institution, either with or against their consent. The plight of Kaushalya, Kaikeyi and Sumitra post-Dasharath's defeat in the battle of karachapa at the hands of Ravan drives a deep wedge between the familial space of Ayodhya, particularly the institution of marriage. Dasharath practised polygamy, for it was a necessary evil and hour of his need. However, it created a hostile environment for the queens who were pittied against one another along with their kingdom for their individual prospects, love, and affection from their own husbands, whether it was Kaushalya's wish to deliver Ayodhya its prince or Kaikeyi's desire to anoint Bharat as the protector of Sapt Sindhu Empire by her dealings with Manthara. Despite being women, they share only formal cordiality and no sense of camaraderie, female bonding or sisterhood,

which results in conflict and undermines and weakens the empire from inside. It happens because society and the ruling monarch give in to prevailing corruption, moral degradation and distortion of the holy scriptures. Amish takes a stand to course-correct this misinformation with his character Ram, who "believes marriage is sacred" (Tripathi 215) and pious instruction of communion and intertwining of two souls under the eyes of God bound by oaths and codes inscribed in the The 'Rig Veda'. "It should not be treated as a political alliance" (Tripathi 215) or just a political tool to advance one's prospects or the kingdoms. He considers love to realise and achieve the "Parmatama" or "Ekam", one true God. He questions that if the right of polygamy is given to men, then it's only fair that women should be allowed to practise polyandry, both of which he neither supports nor considers to have been prescribed by the Vedas.

"He believes that a man must marry only one woman and that polygamy is unfair to women and must be banned" (Tripathi 215).

Ram's concept of love and marriage reminds us of Khalil Gibran's words:

"Love one another, but make not a bond of love. Give your hearts, but not into each other's keeping." (Gibran, 'The Prophet')

Furthermore, marriage should not occur on mere bodily and lustful affections of carnal love and passion for one another. Rather, Amish puts it across to the reader via Ram

"He wants a woman who can make him bow his head in admiration" (Tripathi216).

No one should be forced into marriage. As Amish says:

"nothing's worse than being married to the wrong person. You should only get married if you find someone you admire who will help you to understand and fulfil your life's purpose. If you're able to find that one person, then marry her" (Tripathi 245).

The "Maangalyatantunaanena bhava jeevanhetuh mey ", a Sanskrit verse reverberates and echoes the Vedic ethos of love that binds Ram and Sita's ethereal words

"with this holy thread I offer to you, please become the purpose of my life…." (Tripathi 247).

The 'Rig Veda' deals with the institution of marriage and dismisses the popular misinformation debunking the idea of forced marriage as a part of the Hindu faith. In fact, it propounds that a love marriage, with the consent of two individuals in all honest faith and will, is far superior to an arranged marriage. The concept of Swayamvar, both in the sacred text and the novel, supports it distinctively. The custom of Swayamvar allows a woman the freedom to choose her own husband in the presence of society, her parents and Gods. The literal and etymological meaning of Swayamvar itself is the freedom to choose a life partner by oneself (The 'Rig Veda'). The Swaymvar had a reversal of scenic details from 'Mahabharata' into 'Ramayana', particularly the task of hitting the bull's eye of the fish on a ceiling (Thinkerviews) The tradition of Swayamvar is marked by certain charted-out tests and requirements that are needed to be met and that are put in place with the due consideration of the woman and her parents. They range from testing intelligence to martial art skills and even testing the principles and values of a person that gives a better understanding of his character and personality and allows the woman to consider whether the person would be a suitable life partner for her or not. It demands the husband to prove his credentials, honesty and diligence in the eyes of the woman, her parents and the learned and experienced people of society and to uphold his Dharma.

Discussion-The role of leadership in the novel can be dealt with in selected readings of Plato's 'Republic' or Karl Marx's 'Das Kapital' analysed through the lens of a contemporary modernist setting in the 21st century. Plato argues in his 'Republic' that a king should be a philosopher. As the future king, Ram fits the role and goes the extramile to question the authority and prevailing structure of social, political and economic systems. The division of society into a hierarchy workforce with charted-out functions could be analysed through the capitalistic model, and the tension between the trading class, Vaishyas, and the masses with underlying prejudices and problems too could be open for arguments. The laws are anthropological and social constructions by mankind, and in the face of forces of nature, find themselves incapacitated. This paradoxical and redundant undertaking of morphing the entire universe into the limited understanding of human knowledge is an area deeply engaged in multiple domains from sociology, anthropology, science, and literature. Thus, interdisciplinary engagement on the nuances, characters and themes opens the problem for in-depth understanding and analysis. The existing codified framework of structures like Vedas provides an opportunity to be remoulded in accordance with changing passage of time. However, it does not mean that they lose their relevance. The earliest and most nascent understanding of our universe and nature comes from the theology of religion as the first school of thought. However, it is necessary to take other disciplines and interpretations of our existing knowledge to find definite answers to indefinite problems. Freedom and flexibility become the pillar and hallmark of any great civilisation or academic undertaking. The institution of marriage, particularly polygamy, can be problematised as it is and can be analysed under the lens of theoretical and literary criticism of homegrown thoughts like Nyaya, Vaishesika, Yoga, Purva Mimansa, Samkhya and Vedanta orUttara Mimansa founded by sages Kanaada, Gautama, Patanjali, Jaimini, Kapila, Vyasa and guiding scholarly discourse in the country.

Conclusion-The paper makes an academic discourse on the prominent themes of an efficient leader that resonates

both in the contemporary settings as well in the plot of the novel. The Vedic School of thought has challenged authority as not a prerogative of royalty but rather that of capability and necessity, debunking the dichotomy of good vs evil. The pervasive misinterpretation of law as either archaic or redundant is taken up. Revising the existing knowledge and weeding out discrepancies is the larger message that the novel resonates with. Revisiting the ancient knowledge and revising the approach to deal with the problems of caste, religion and trade are made with modernistic and humanistic perspectives demystifying the myth and making it real. Religion becomes the central figure around other administrative and social systems. Thus, the interpretation of God is problematized and pitied against existing distorted knowledge in the public domain. The conflict and problems in any established form of living are analyzed rather than solidified or glorified. The author redlines the purpose of religion as an institution and what role it should play in the progress and maintenance of society. The institution of marriage is explored from the existing preview and that inscribed in the 'Rig Veda' that propounds upon traditions like Swayamvar, a very radical and progressive thought when analyzed with the contemporary lens of modernity. The author has made the sincerest attempts to familiarise modernity with tradition in the humanistic and realistic essence to find solutions to existing problems in modern India.

****

Works Cited

1. Tripathi, Amish. 'Ram: Scion of Ikshvaku.' Westland, 2015.
2. Ashakiran, A S. Galaxy: International Multidisciplinary Research Journal – 'the Criterion', Aug. 2017, www.the-criterion.com/V8/n4/AM01.pdf.
3. Nimavat, Dr Dushyant. 'POLITICAL AND CULTURAL DISCOURSE IN AMISH TRIPATHI'S SCION OF IKSVAKU', Aug. 2019, www.gapbodhitaru.org/res/articles/(46-50)%20CLASSICISM%20IN%20INDIAN%20DANCE%20STYLES%20NATYA,%20NTTA%20AND%20NTYA.pdf.
4. Dwivedi, Manisha, and Sonal Malik. *Status of Women in Vedic Period - Positive Psychology*, 2021, www.journalppw.com/index.php/jpsp/article/download/3256/2116/3712.
5. Gibran, khalil. 'The Prophet.' Macmillan Collectors Library, 2016.
6. Aristotle, and Stephen Everson. *Aristotle: The Politics*. Cambridge University Press, 1988.
7. Ellickson, Robert C. *Order without Law: How Neighbors Settle Disputes*. Harvard University Press, 2005.
8. Aristotle, and Crisp. *Aristotle: Nicomachean Ethics*. Cambridge University Press, 2014.
9. Plato, et al. *The Republic*. Penguin, 2007.

Cotribution to Rousseau on Naturalistic Phillosophical Thoughts in Education and as the Father of Child -Centric Education

Sarmistha Chowdhury Biswas
State Aided College Teacher
Department of Education
Serampore Girls' College Serampore,
Hooghly, West Bengal

ABSTRACT:-This research article explores the contributions of Jean-Jacques Rousseau to naturalistic philosophical thoughts and his pivotal role as the father of child-centrism in education. Rousseau's ideas revolutionized the educational landscape by emphasizing the importance of the child's nature, individuality, and freedom in the learning process. Through a comprehensive analysis of Rousseau's works, including his influential treatise "Emile, or On Education," published in 1762, proposed a revolutionary approach to education based on natural development and individual freedom. Through an analysis of Rousseau's key concepts, such as the importance of nature, the role of the educator, and the need for a child-centered approach.This article sheds light on his key concepts, such as the state of nature, the noble savage, and the development of the child's autonomy. Rousseau's ideas emphasized the importance of nurturing children's innate curiosity and allowing them to develop at their own pace in harmony with nature.By analyzing Rousseau's influential work, this research sheds light on the lasting impact of his ideas on modern educational practices, emphasizing the significance of child-centrism.

KEYWORDS: Rousseau, Child-Centrism, Child-Centered Education, Naturalistic Philosophy, Emile, Autonomy, Holistic development.

INTRODUCTION:-Jean-Jacques Rousseau was born june28, 1712, Geneva; Switzerland.He was philosopher, writer, and political theorist whose treatises and novels inspired the leaders of the French Revolution and the Romantic generation. Jean-Jacques Rousseau, an 18th-century philosopher, writer, and social theorist, made significant contributions to naturalistic philosophical thoughts and played a vital role in the development of child-centricism in education. Rousseau's ideas challenged the prevailing educational norms of his time, which focused on rote memorization and strict discipline, and advocated for a more natural and child-centered approach. This article aims to explore the key aspects of Rousseau's naturalistic philosophy and its application to educational theory and practice. Rousseau was the greatest exponent .He was the leader of the naturalistic movement because of his deep emotionalism and his profound sympathy for the people. He gave stress on the nature of man which has been given by nature. This element of nature

has been destroyed by the artificial institutions of the society.Jean-Jacques Rousseau, an Enlightenment philosopher, is widely regarded as the father of child-centric education. His work, "Emile: or On Education," published in 1762, challenged the conventional educational methods of his time and proposed a radical approach that prioritized the natural development of children.The 'Emile'opens with the lines-

"Everything is good as it comes from the hands of the author of nature,but everything degenerates in the hands of man".Social one is first and the fundamental meaning of nature.In Emile Rousseau describes an education based on the knowledge of the true nature of man not on the form,traditions,conventions of the society or social organisations.Rousseau emphasized the significance of nature, child autonomy, and experiential learning as fundamental pillars of education. This article aims to explore Rousseau's naturalistic thoughts and their profound influence on the emergence of child-centric education. Rousseau says-The key-notes to his philosophy are his concepts of "State Nature" "Natural Man"and "Natural Civilization".The three things was influenced by Rousseau's philosophy such as-the state of time,extremely varied experience of his life and his emotional nature.

"Naturalism"is usually termed as Rousseau's philosophy.Rousseau's contended that all the ills and miseries of civilization are due to a departure from a state of nature.

The essence of "Naturalism" was to go back to the nature and fight against all sorts of artificialities. The term "Nature "has been interpreted in three different senses-

1.Nature in the psychological sense.
2.Nature in the phenomenal sense.
3.Nature in the social sense.

Rousseau's philosophy of education is naturalistic.He is against formal education and a system of conventional education according to Rousseau education doesn't mean merely imparting information or knowledge.It is not imposition from without,it is development of the child's natural powers and abilities from within.According to nature Rousseau was a staunch supporter of education.He has brought revolutionary changes in the fields of educational theory and practice.Emile the novel,on educational doctrine,contains the theme of his philosophy,naturalism.

The basic philosophy of education that Rousseau advocates in the *Emile*, much like his thought in the first two *Discourses*, is rooted in the notion that human beings are good by nature. The *Emile* is a large work, which is divided into five Books, and Book One opens with Rousseau's claim that the goal of education should be to cultivate our natural tendencies. Rousseau says, someone who has been properly educated will be engaged in society, but relate to his or her fellow citizens in a natural way.Rousseau's ideas about education are mainly expounded in *Emile*. In that work, he advances the idea of "negative education", which is a form of "child-centered" education. His essential idea is that education should be carried out, so far as possible, in harmony with the development of the child's natural capacities by a process of apparently autonomous discovery. This is in contrast to a model of education where the teacher is a figure of authority who conveys knowledge and skills according to a predetermined curriculum. Rousseau depends here on his thesis of natural goodness, which he asserts at the beginning of the book, and his educational scheme involves the protection and development of the child's natural goodness through various stages, along with the isolation of the child from the domineering wills of others. Up to adolescence at least, the educational program comprises a sequence of manipulations of the environment by the tutor.

Child Autonomy and Freedom: Rousseau advocated for granting children more autonomy and freedom in their learning process. He argued that education should not be imposed upon children but rather should enable them to explore and discover knowledge through their own experiences. This approach aimed to nurture their innate curiosity and foster a love for learning.

Experiential Learning and Practical Education: Rousseau proposed a hands-on approach to education, emphasizing the value of experiential learning. He believed that children learn best by actively engaging with the world around them and gaining practical knowledge through direct experiences. This pedagogical method sought to align education with the child's developmental needs and promote holistic growth.

The Concept of the "Noble Savage": Rousseau's belief that humans are born inherently good and that society corrupts them influenced his approach to education. He advocated for an education that preserved and nurtured a child's natural innocence and goodness.

Education as the Development of Faculties: Rousseau argued that education should focus on the holistic development of a child's faculties, including their physical, emotional, and intellectual capacities. He emphasized the importance of sensory experiences and hands-on learning to facilitate this development.

The Role of the Tutor: Rousseau proposed a personalized educational approach where a tutor guides the child's learning based on their individual needs and interests. The tutor acts as a facilitator, observing and understanding the child's unique qualities to provide appropriate guidance.

Freedom and Autonomy in Education: Rousseau advocated for granting children a certain degree of freedom and autonomy in their education. He believed that children should actively participate in their learning process, allowing them to develop self-reliance and critical thinking skills.

The importance of Innate Curiosity: Rousseau emphasized

the significance of children's innate curiosity and proposed that education should capitalize on it. He advocated for an educational environment that encourages exploration, discovery, and independent thinking, enabling children to develop their unique abilities and interests.

Embracing the Influence of Nature: Rousseau believed that nature played a vital role in shaping a child's development. He argued for an educational approach that aligned with the natural world, emphasizing outdoor activities, hands-on experiences, and direct engagement with the environment.

Child-Centrism and Individualized Education: Rousseau's ideas laid the foundation for child-centrism in education, emphasizing the importance of tailoring education to the individual needs and interests of each child. He advocated for personalized instruction, recognizing that children have different strengths, weaknesses, and learning styles.Rousseau's naturalistic philosophical thoughts and his role as the father of child-centrism in education have had a profound impact on educational theories and practices. His emphasis on the child's nature, individuality, and freedom continues to shape modern educational approaches that prioritize student-centered learning, active engagement, and the development of autonomy. Rousseau's ideas remain relevant and influential in contemporary discussions on educational reform and the holistic development of children.

CONCLUSION:-Jean-Jacques Rousseau's naturalistic thoughts on education and his advocacy for child-centrism have had a profound impact on modern educational practices. His emphasis on nurturing innate curiosity, embracing nature, and providing individualized education continues to influence contemporary educational philosophies and approaches. Rousseau's ideas challenged the prevailing notions of his time and provided a revolutionary framework for creating educational environments that foster children's holistic development. Acknowledging Rousseau as the father of child-centrism highlights his enduring legacy and the ongoing relevance of his ideas in shaping educational practices today.

REFERENCES:

1. Rousseau, J.J. (1762). Emile, or On Education. London, UK: Penguin Classics.
2. Gardner, S. (1999). Rousseau's Theory of Development: Nature, Nurture, and the Role of the Teacher. Educational Theory, 49(2), 213-227.
3. Rousseau, J. J. (1762). Emile, or On Education.
4. Miller, H.P. (2010). Rousseau: Dreamer of Democracy. New Haven, CT: Yale University Press.
5. Palmer, R.R. The School of Rousseau. Journal of the History of Ideas, 28(2), 145-159.
6. Taylor, D. (1994). Rousseau's Theory of the Development of Autonomy. Studies in Philosophy and Education, 13(4), 341-352.
7. Sturman, L., & McGuire, M. (2008). Jean-Jacques Rousseau and Child-Centered Education. The Journal of Educational Thought (JET)/Revue de la Pensée Éducative, 42(1), 69-84.
8.Bredeson, P. V. (2003). The Social and Political Thought of Jean-Jacques Rousseau An Introduction. University Press of America.
9. Raths, L. E. (1969). Rousseau: Child-Centered Education. Journal of Teacher Education, 20(4), 378-382.
10. Purkait, Biswa Ranjan.(2011).Great Educators and their philosophies, New Central Book Agency,pp.154,156-159.
11. Banerjee.A.(2018-2019).Philosophy And Principles of Education.B.B.Kundu Grandsons,pp.431-433.

A Study on Impact of Superior Subordinate Relationship on Employee Commitment of Canara Bank Employees in UDUPI District

Shruthi.C
Assistant Professor
Department of Commerce, GFGC & PG Study Centre, Shankaranarayana, Kundapura Taluk, Udupi District.

Dr. Vijaya kumar A B
Assistant Professor
Department of Commerce, MSB Arts and Commerce College, Davanagere, Karnataka

Abstract:-Banking sector is a dynamic sector and is seeing a drastic change in the field of technology, mergers, new fiscal policies, new financial schemes announced by the government, pay policies, holiday related strikes, etc. In this paper, an attempt is made to study the effect of superior-subordinate relationship and its impact on employee commitment from the viewpoint of banking employees.

Key Words: *Bank employees, Superior-subordinate relationship, Employee Commitment, Udupi District*

Introduction:-Employee commitment is the employee's psychological feeling of being committed to the organization's structure, functioning, rules and discharging the duties assigned in the best possible manner. Superior-subordinate relationship is essentially a determining aspect and has a powerful impact on the employee commitment of any organization. Due to the changing conditions, rules and regulations, work pressure, extensive use of artificial intelligence, work related stress, and so many aspects, there is a need to look into the effect of superior-subordinate relationship in the banking sector. This paper is intended to study the opinion of the select banking employees in Udupi about impact of superior-subordinate relationship on employee commitment, to analyze the effect of good superior relationships in the bank organization.

Objectives:

1.To analyze the various factors affecting superior-subordinate relationship

2.To study effect of superior-subordinate relationship on employee commitment

Literature Review:-

No.	Author	Purpose	Methodology	Findings
1.	**Shettigar, R. & Shankar, S.K.C. (2020)**	Analyse whether careful practice of engaging workers improve their participation in the company.	Primary data collected from banking employees through questionnaire and analysis of collected data	Results indicated that: Gender does not affect their organizational commitment. It has been found that age and educational qualification influence their organizational commitment.
2.	**Kumari, P.Vakula (2021)**	To study the impact of HRM practices on employee performance and organisational commitment	400 samples were collected comprising of 50 each from each selected bank. Statistical tools used for the study are Reliability measures, Validity measures, Factor analysis and Structural Equation Modelling.	The result of the study supports that effective and planned human resource practices can positively impact and increase the employee performance and commitment.

Research Methodology:-The study on effect of superior -subordinate relationship on employee commitment is an analytical study. The data is collected through primary and secondary means. The primary data is collected from select banking employees through questionnaire and the collected data has been analysed for the study using statistical tools. The Secondary data is taken from review of related literatures. Sample size for the primary data is 40 members, randomly selected and survey method is used to collect the data.

Findings and Interpretation:

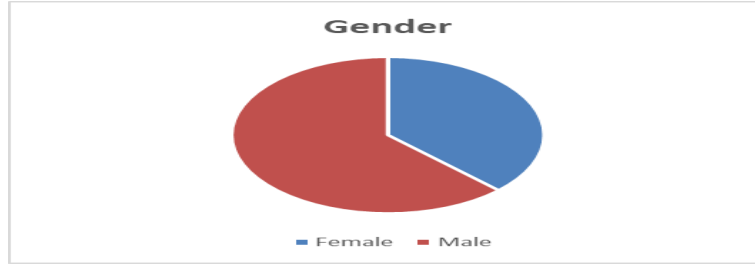
Objective no.1: To analyze the various factors affecting superior-subordinate relationship

Table no.1: Gender

Gender	No. of Respondents	Percentage
Female	15	37.5%
Male	25	62.5%

Source: Primary survey-2023

Graph no.1: Gender



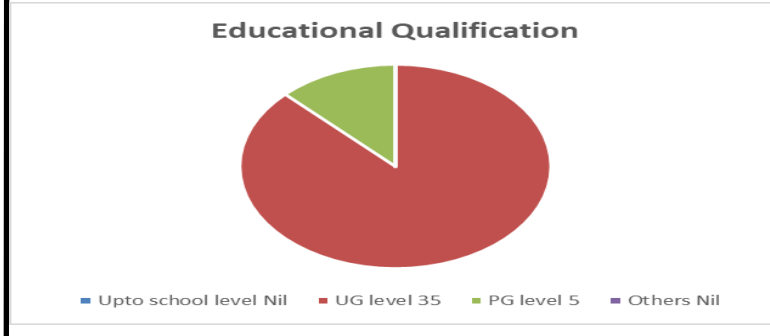
Out of 40 responses received, 37.5% are female respondents and 62.5% are male respondents. It clearly indicates both genders have been significantly considered for the study.

Table no.2: Educational Qualification

Educational Qualification	No. of Respondents	Percentage
Up to school level	Nil	0%
UG level	35	87.5%
PG level	05	12.5%
Others	Nil	0%

Source: Primary survey-2023

Graph no.2: Educational Qualification



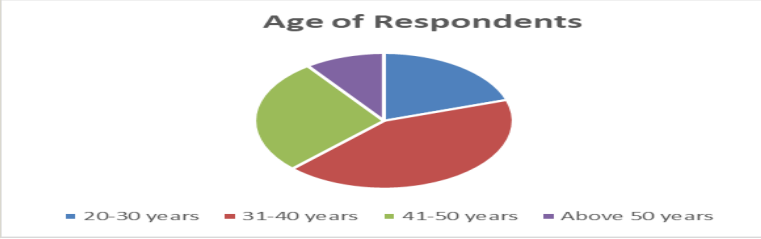
Out of total respondents, 87.5% are degree completed and 12.5% are master degree completed.It is clear that more literate and educated people's opinion is there in the survey than uneducated. Usually, it is presumed that educated will be aware of usefulness of good human relationships in the workplace.

Table no.3: Age of Respondents

Age	No. of Respondents	Percentage
20-30 years	8	29.9%
31-40 years	17	16.4%
41-50 years	11	4.3%
Above 50 years	4	3.1%

Source: Primary survey-2023

Graph no.3: Age



It is evident from Table no.3 and Graph no.3 that respondents from all the age groups have been considered for the study. The maximum respondents are youth respondents who are socially responsible have given their opinion through survey.

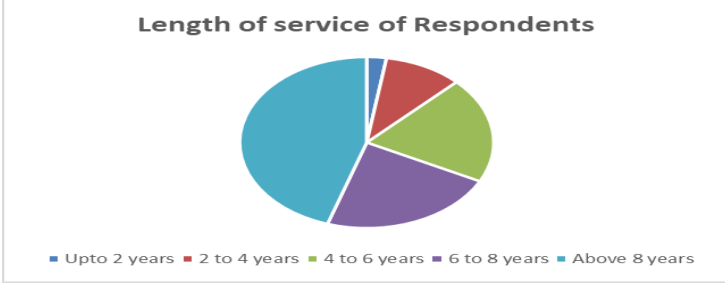
Designation:-The respondents are from different designation like Clerk, Officer Grade 1, Officer Grade 2, Manager, Probationary clerk.Hence the varied sector peoples' viewpoint is studied.

Table no.4: Length of Service

Length of service	No. of Respondents	Percentage
Less than 2 years	1	2.5%
2 to 4 years	4	10%
4 to 6 years	8	20%
6 to 8 years	9	22.5%
Above 8 years	18	45%

Source: Primary survey-2023

Graph no.4: Length of service



It is evident from Table no.4 and Graph no.4 that respondents from all the age groups have been considered for the study. The maximum respondents are youth respondents who are socially responsible have given their opinion through survey.

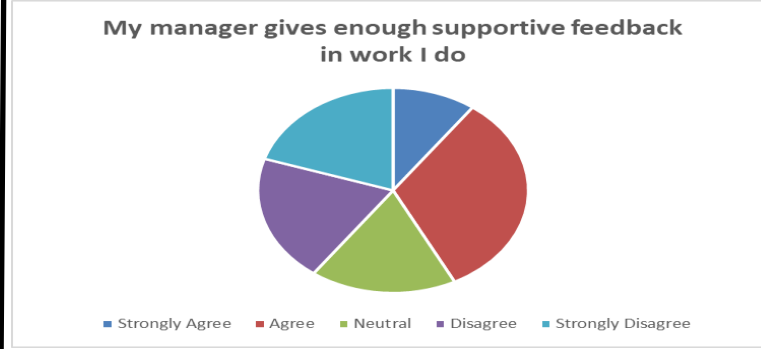
Questions Related to Superior-Subordinate Relationship and Employee Commitment:

Table no 5: My manager gives enough supportive feedback in work I do

My manager gives enough supportive feedback in work I do	No. of Respondents	Percentage
Strongly Agree	4	10%
Agree	13	32.5%
Neutral	7	17.5%
Disagree	8	20%
Strongly Disagree	8	20%

Source: Primary survey-2023

Chart no 5: My manager gives enough supportive feedback in work I do



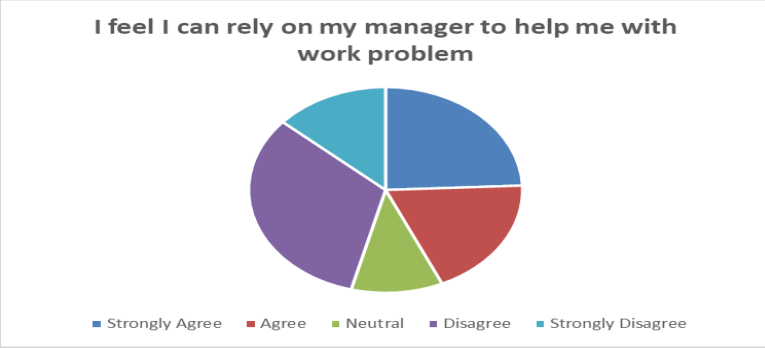
Effective feedback plays an important role in banking sector since feedback is an effective tool which helps the employees to evaluate themselves and also understand what others perceive about their work. And hence supportive feedback is very much important for the employee to be more committed. It is evident form the table that 42.5% employees have a positive opinion on the feedback they are receiving from their superiors and 40% have negative opinion in this regard and remaining 17.5% are neutral, which clearly indicates that effective and supportive feedback system needs to be constituted in the banking organization to make the employees feel positive towards their job as well as organization.

Table no 6: I feel I can rely on my manager to help me with work problem

I feel I can rely on my manager to help me with work problem	No. of Respondents	Percentage
Strongly Agree	9	22.5%
Agree	7	17.5%
Neutral	4	10%
Disagree	12	30%
Strongly Disagree	5	12.5%

Source: Primary survey-2023

Chart no 6: I feel I can rely on my manager to help me with work problem



With regards to reliance on the manager in helping employees with their problems related to work, 22.5% employees strongly agree to the point, 17.5% agree, 30% disagree and 12.5% strongly disagree to it. It clearly indicates there is a need to give confidence to the employees by making them feel they can rely on the manager for work related problems.

Table no 7: I feel my manager recognizes my potential as an employee,

I feel my manager recognizes my potential as an employee	No. of Respondents	Percentage
Strongly Agree	9	22.5%
Agree	6	15%
Neutral	3	7.5%
Disagree	12	30%
Strongly Disagree	10	25%

Source: Primary survey-2023

Chart no 7: I feel my manager recognizes my potential as an employee

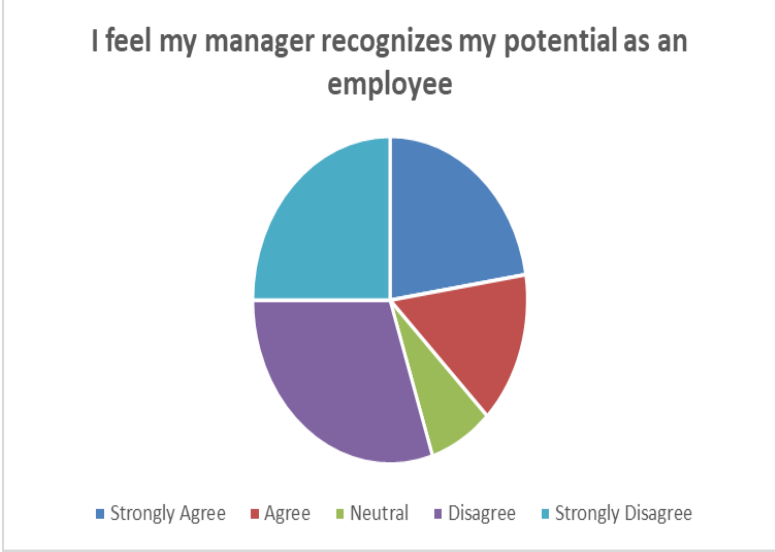


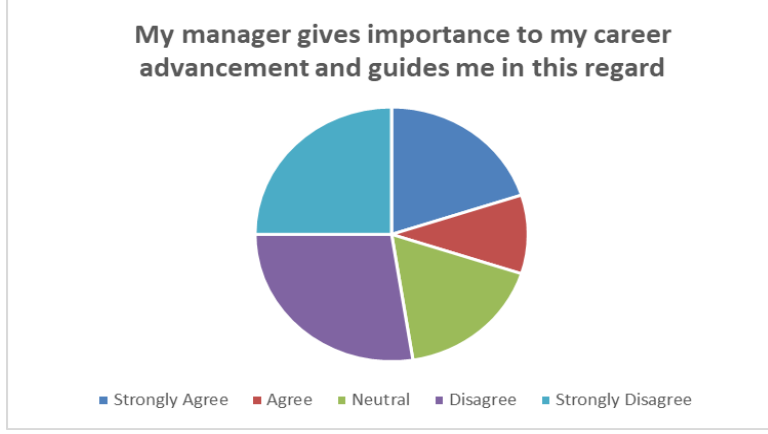
Table no.6 and Chart no.6 reveals the fact that 22.5% employees strongly feel that their manager recognizes their potential, 15% employees agree to the point and 55% employees are not feeling positive in this regard. It can be said by observing the study that the employees work, their performance, their potentiality in the work should be recognized in the bank properly and some standard criterions has to be set to evaluate the potentiality of the employee to make the hard-working employee feel honored and new employees to get motivated.

Table no 8: My manager gives importance to my career advancement and guides me in this regard

My manager gives importance to my career advancement and guides me in this regard	No. of Respondents	Percentage
Strongly Agree	8	20%
Agree	4	10%
Neutral	7	17.5%
Disagree	11	27.5%
Strongly Disagree	10	25%

Source: Primary survey-2023

Chart no 8: My manager gives importance to my career advancement and guides me in this regard



It can be observed that 52.5% employees feel that their managers does not give importance to their career advancement and does not guide them in this regards.

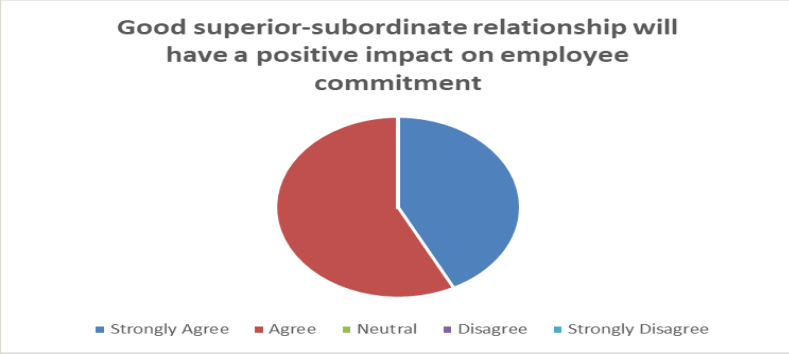
It is a matter of concern because the employee feel more secured and more committed towards his work only when he feels that his superior has concern about their subordinates' career advancement and also properly guides them in this regard. Hence the manager should guide the employees regarding how they can advance in their careers so that it helps not only to maintain good superior-subordinate relationship but also it helps to increase the employee's morale and commitment.

Table no 9: Good superior-subordinate relationship will have a positive impact on employee commitment

Good superior-subordinate relationship will have a positive impact on employee commitment	No. of Respondents	Percentage
Strongly Agree	17	42.5%
Agree	23	57.5%
Neutral	0	Nil
Disagree	0	Nil
Strongly Disagree	0	Nil

Source: Primary survey-2023

Chart no 9: Good superior-subordinate relationship will have a positive impact on employee commitment



All the respondents are agreeing to the point that good superior-subordinate relationship will have a positive impact on employee commitment. Since respondents of different age groups and various designation have been considered for this study, it is one single voice of everyone conveying the importance of good superior-subordinate relationships. HR department has to frame policies and ensure that good superior-subordinate relationship is maintained in the organization.

Findings and Suggestions on Superior-subordinate relationship and its impact on employee commitment:

There are quite reasonable suggestions given by respondents in qualitative terms, they are- With regards to supportive feedback from superiors, 40% of the respondents feel that they are not getting proper and supportive feedback, which needs to be improved. Regarding reliance on manager on work related problem, the respondents with the negative opinion are more than the respondents with the positive opinion, which is a clear indication that the manager should make the employees feel that they can rely on their superior on any work-related problems, through which the morale, commitment and sense of belongingness to the organization increases among the employees. Stressing on the point that the manager recognizing the potential of the employees, half of the respondents are not satisfied in this regard which indicates that the superior should recognize the talent of the subordinate and encourage them from time to time to increase their sense of belongingness and commitment towards the organization.

Manager giving importance to career advancement of their subordinates and guiding them in this regard is considered very important from most of the respondents since it is very important for an individual to attain one's individual goals and if these individual goals can be connected towards organizational goals, the performance and commitment of the employees can be improved.

Good superior-subordinate relationship will definitely have a positive impact on employee commitment. It is also proven from the study, since not even a single respondent disagreed to the point

Conclusion:-It is clear from the study that there are some HR qualities that should be instigated in the managers to increase the performance of the employees which in turn improves overall organizational performance. The qualities such as supportive feedback system, reliability on manager for work related problems, recognition of potentiality in dedicated employees, giving importance to career advancement and career guidance to the subordinates and maintaining an overall good superior-subordinate relationship can definitely make an employee more committed towards his work as well as organization.

For future research purpose, we can venture on possible innovative HR practices and aspects which can increase morale and commitment among employees of banking sector.

****

Reference:

1.Anwar, G., & Abdullah, N. N. (2021). The impact of Human resource management practice on Organizational performance. International journal of Engineering, Business and Management (IJEBM), 5.

2.Hassan, M. & Jagirni, T.S. (2019). Employee Turnover in Public Sector Banks of Pakistan. Market Forces College of Management Sciences. 14(1): 119-137.

3.Karthiga, V. (2016). A Study to improve Organizational Citizenship Behaviors in Private Sector Banks through Organizational Effectiveness. IJARIE. 2(2): 325-328.

4.Kraemer, Harry M. (2011). From Values to Action: The Four Principles of Values-Based Leadership, Jossey-Bass; 1st Edn.

5.Krishna, B.H.V.S. & Prasad, V.S. (2022). Perceived Organizational Culture among Bank Employees: A Comparative Study. International Journal of Social Science and Human Research. 5(4): 1309-1314.

6.Shettigar, R. & Shankar, S.K.C. (2020). A Study on the Challenges of Employee Engagement in Banking Industry in Bangalore. International Research Journal on Advanced Science Hub. 2(9S): 116-119.

7.www.shodhganga.net

8.Wikipedia and Google

Increasing Trend of Cyber Crime in Modern Era: A Global Analysis

Dr. Harishankar Rai
Supervisor, Associate Professor
Department of law, Meerut College Meerut.

Amita
Research Scholar
Department of law, Meerut College Meeru

Abstract-*Adware, or advertising-supported software, is a smart twist that automatically shows pop-ups or downloads adverts to the user's computer in order to persuade them to buy items or services. A buyer looking for auto insurance online, for example, can come across an adware pop-up displaying an ad for a car insurance business in an attempt to get them to buy their policy. Adware sellers expanded their operations by installing their software on as many computers as possible. The pay-per-install affiliate business was one of the methods they deployed. Attackers leaped at the chance to install various adware programs on millions of computers while earning large sums of money. Spyware, which captures what we type or monitors the websites we visit, was another common concern at the time. With adware and spyware, cybercriminals demonstrated that they were serious about making money and breaching people's privacy.*

Key Words: *Demonstrated, Cyber Criminals, Fraud network, Operation Firewall.*

1.1 Introduction-Another significant difficulty at this time was that cybercrime was well advanced, with the creation of software that could get privileged access to a computer while also concealing its presence. Then, cyber criminals began to utilize this software to conceal malware by stealing passwords, obtaining credit card information, and propagating infections. Cyber criminals might use this approach to remotely infect and control thousands of machines at the same time without the users' awareness. Carding is a criminal method that involves stealing and fabricating actual credit cards. In late 2004, the US Secret Service launched Operation Firewall, one of the most major successful investigations and prosecutions of an international credit card fraud network of the 2000 decade. Investigators discovered a network of over 4,000 members communicating via the Internet and conspiring to use phishing, spamming, forged identity documents, the creation of fake plastic credit cards and the resale of gift cards purchased with fake credit cards, fencing of stolen goods via eBay, and interstate or international funds transfers using electronic money such as E-Gold and Web Money.

1.2 MODERN HISTORY-Criminals that engage in cybercrime today are not motivated by vanity or competence. Instead, they want to swiftly profit from their expertise. They are stealing, deceiving, and exploiting others since it is simple for them to get money without having to work an honest day's labor. Cybercrime differs significantly from traditional crime. These crimes do not necessitate the offenders' personal presence. The following is a brief modern history of cyber crimes using computers and computer networks:

1In the phase of 2000 to 2003 —Notoriety and Personal Challenge

The Information Technology Act (ITA) of 2000 was passed by the Indian Parliament with the goal of combating cybercrime and providing a legal framework for e-commerce transactions. This was India's first cyber legislation, which dealt particularly with cybercrime. It covers a wide range of offenses committed in an electronic format or using computers, computer systems, and computer networks. Surprisingly, neither the phrase "cyber crime" nor the expression "cyber offence" are specified in the Information Technology Act of 2000. The Indian Penal Code, 1860; the Indian Evidence Act, 1872; the Bankers Book Evidence Act, 1891; and the Reserve Bank of India Act, 1934 are all amended by this Act.The Yahoo decision was reaffirmed in the case of Rediff Communications Ltd. v. Cyberbooth. In this scenario, there are several difficulties that must be addressed in order to solve the cybercrime. The first issue is that India lacks a comprehensive legal and regulatory framework for controlling all types of cybercrime, including data breaches, the publication of bogus Digital Signature Certificates in specific instances, and the use of such certificates for fraudulent purposes. Furthermore, the IT Act of 2000 altered the Indian Penal Code, 1860, however the revisions were done in such a way that electronic records were included in the scope of documents indicated in several penal laws. As a result, there are a variety of cybercrimes that are not covered under the Indian Penal Code, such as internet stalking, cyber harassment, and online annoyance. In this instance, the plaintiff also filed a lawsuit to prevent the defendants from using the domain name 'RADIFF' or any other term, mark, or name that is confusingly similar to the plaintiff's mark/name "REDIFF." At this instance, the Court issued an injunction against the defendants and rejected Cyber booth's Special Leave plea in the Supreme Court.

The petitioners filed a suo moto writ petition to the Chief Justice of Bombay High Court on July 29, 2001, in Jayesh S. Thakkar v. State of Maharashtra case, protesting about pornographic websites on the internet. The Bombay High Court's Division Bench issued an order appointing a committee to suggest and recommend preventative measures for protecting against pornographic and obscene content on the internet in response

to this appeal. Then, on January 30, 2002, the Bombay High Court's Special Committee issued various recommendations pertaining to Protecting Minors from Unsuitable Internet Material based on public comments on the internet. The Antony v. State of Kerala case established that an item does not have to be visible to the naked eye to be obscene. The Supreme Court concluded in C.K. Karodkar v. State of Maharashtra that the definition of obscenity varies from nation to country, based on modern moral norms. After that, in the case of Vishakha v. State of Rajasthan, a landmark ruling was handed down, which is also considered as India's leading case law on workplace harassment. There was no law in India addressing workplace harassment prior to this case.

Other superhighway crimes arose in 2001, such as cyber terrorism, spamming, worms, and phishing, all of which have the same effects. New Delhi Police investigated and discovered that South African cricket captain Hansie Cronje was plotting with Indian bookmaker Sanjeev Chawla to predetermine performances during a phone tapping investigation in March 2000. Cronje later acknowledged to taking payments from bookies in order to supply intelligence and rig matches, showing the depth of the international cricket corruption scandal. Mr. Bharat Shah, a film financier, was discovered talking with criminals Dawood Ibrahim and Chhota Shakeel, and police taped their discussions. He was then brought to trial based on the tapes, which were made between January and February 2001. This issue included the film Chori Chori Chupke Chupke, which was sponsored by Mr. Shah on behalf of Karachi mobster Shakeel and probed with the use of a tapping device.One telephone conversation, reportedly taped between actor Salman Khan and then-girlfriend Aishwsarya Rai discussing their criminal contacts in 2001, was revealed in July 2005.

The right to intercept phones in the interest of national security or "public emergency" is granted under section 5 of the Indian Telegraph Act 1885. The authorities may need to seek approval from the Home Department in this regard. In the era of communication convergence, the same mechanism should be authorized in India under the Information Technology Act 2000 to probe cyber crimes utilizing modern information technology. Only then will we be able to avert assaults such as those on the Indian Parliament on December 13, 2001, and the World Trade Center and Pentagon in the United States of America.Claude R. Carpenter, a former IRS employee who worked as a systems administrator of hardware and software within the IRS, unauthorized logged into one of his supervisor's computer profile servers with the intent to modify the profile and inserted several lines of destructive computer code on the 18th and 19th of May 2001. After that, he purposefully entered those damaging codes into three different IRS servers before attempting to log out of the system in order to delete the history files he had attempted. However, he was tracked down by the Treasury Inspector General for Tax Administration's investigating team. He admitted to inflicting deliberate harm to a protected computer or sabotage against the Internet Revenue Service (IRS). A federal judge sentenced him to ten years in jail and a fine of $250,000.More than 400 websites with anti-war appeals in Arabic and English were attacked in 2002, shortly after military operations in Iraq, by a computer virus with the e-mail "Go USA" for viewing the latest photos of military events, causing damage to several computers, computer systems, and computer networks.

According to a report released by the Computer Security Institute, cyber hacking cases in the United Kingdom increased by 32% in the second half of 2002 compared to 2001, and unauthorized data modification also increased because the internet became the primary source of information in the political and economic fields around the world after the terrorist attacks on the World Trade Center and the Pentagon in the United States of America on September 11, 2001.

The Electronic Crime Congress was held in London in 2002 with the goal of preventing and controlling cybercrime as well as developing worldwide strategy. The National Hi-Tech Crime Unit (NHTCU) in the United Kingdom arranged this conference. The Unit has spent almost £25 million on cyber crime prevention and control. This Congress will require 3 years of corresponding and other development work. This conference drew almost 400 delegates from Hong Kong, the United States, Russia, Korea, Australia, New Zealand, and other nations. The focus of the Congress was on the rapid growth and causes of cybercrime, such as the lack of fear of being caught and convicted, easy access to the internet, jurisdiction, location, residence, nationality, lack of physical appearance, and difficulty identifying criminals in cyberspace, among other topics. Cyber thieves are readily encouraged to defraud people for these reasons. Their primary goal might be to conceal evidence and readily steal property in order to pose a danger to both developed and underdeveloped countries.In the phase of 2004 to 2005 —Lure of Money and Professionalism-Data breaches occurred on a daily basis between 2004 and 2005, with a detrimental impact on the victimized firm. They have the ability to influence laws and affect the security sector. At that time, cyber fraudsters had shown their abilities, and it was a good moment for them to move on with their plans to cause harm and make money in the real world. By this point, cyber thieves have honed their skills in both committing cyber crimes and influencing others to do likewise. As a result, this period is

.associated with the allure of money and professionalism Choice Point, a consumer data broker that was later bought by LexisNexis, was publicly chastised for its handling of a data leak in 2004. Despite knowing that a 41-year-old Nigerian citizen had exposed customer data, the firm only told 35,000 customers about the breach—until public pressure forced the corporation to divulge that another 128,000 people's information had been hacked. According to Radware, many individuals feel the company's handling of the situation helped strengthen privacy policies across numerous firms since so many people were outraged. Choice point finally paid $1 million in civil fines and $5 million in consumer restitution to resolve the data security breach accusations. However, the settlement required Choice Point to implement new procedures to ensure that consumer reports are only provided to legitimate businesses for lawful purposes, to establish and maintain a comprehensive information security program, and to obtain audits from an independent third-party security professional every other year until 2026.Meanwhile, when thieves broke into massive enterprise systems to get vast quantities of consumer data, customer data breaches became increasingly widespread. At the same time, identity theft was on the rise. It would be a severe problem impacting 11.1 million Americans in five years. During this time, Facebook was also launched. It would subsequently show to be a fertile ground for cyber criminals to perpetrate their schemes, much like other social networking sites.State of Tamil Nadu v. Suhas Katti is a significant case in India that is regarded to be the first conviction under section 67 of the Information Technology Act, making this section of historical significance. In this instance, the victim was the subject of libelous, vulgar, and unpleasant postings on a Yahoo chat group, which resulted in harassing phone calls. She filed a FIR, and after an investigation, the accused was found guilty and sentenced under sections 469 and 509 of the Indian Penal Code, as well as section 67 of the Information Technology Act.Syed Asifuddin and Ors. v. State of Andhra Pradesh and Anr. was the first lawsuit filed in India under section 65 of the Information Technology Act in 2005. In this case, the court determined that cell phones met the definition of "computer" under the Information Technology Act, and that the unique Electronic Serial Numbers (ESNs), SIDs (System Identification Codes), and MINs (Mobile Identification Numbers) programmed into each handset are "computer source code" under the Information Technology Act, which must be kept and maintained by the law.in the case of Avinash Bajaj v. State (NCT) of Delhi, obscene content was posted for sale on the website Baazee.com and sold/transmitted to various persons in different areas of the nation in a very short period of time. The question was addressed as to whether the content was published under section 67 prior to the amendment or if the material was indirectly released through a website. The court determined that the eventual transfer of the obscene content would not have been feasible without the website's initial aid, and that the website was thus responsible under the provision.In Kumar v. Whiteley, the defendant acquired illegal access to the Joint Academic Network, destroyed files, and altered passwords to prevent authorized users from accessing the network. For computer-related offenses using communication services, etc., the magistrate in Chennai sentenced him to one year in jail and a fine under sections 420 of the Indian Penal Code and section 66 of the Information Technology Act.

In the phase of 2006 to 2008 —Gangs and Discretion Between 2006 and 2008, cybercriminals began to form gangs with a greater amount of money on the line. Malicious hackers, programmers, and data dealers all reported to managers, who in turn reported to a supervisor in charge of distributing cybercrime kits. They might also distribute malware simply by exploiting a flaw in the program that the creator had left open in order to gain total control over users' systems. By this point, cyber criminals have developed a reputation for committing cyber crimes through their gangs and for pushing others to join them. As a result, this period is famous for the temptation of money through gangs and secrecy.in the case of Bhim Sen Garg v. State of Rajasthan and Others, an Indian court declared on 2006 that fabricating an electronic record or committing forgery by way of interpolations in a CD submitted as evidence in a court attracts penalty under section 65 of the Information Technology Act.

The government of Kerala had issued a declaration classifying an e-government program named 'FRIENDS,' which was produced by the petitioner under a contract, as a protected system in the case of B.N. Firos v. State of Kerala. The petitioner filed a writ petition, alleging that section 70 of the Information Technology Act and the notification are unconstitutional and in violation of the copyright act. A notice under section 70 of the Information Technology Act is deemed to be a copyright declaration under section 17 (d) of the Copyright Act, 1957. The court went on to say that only if a computer resource amounted to a government work under the copyright act could it be labeled a protected system under the Information Technology Act.TJ Maxx, a bargain retailer, had a massive security data breach in 2007, putting over 45 million credit and debit card customers at risk. Customers' personal information was taken by hackers who entered the company's computers during an 18-month period. This was the largest card hack in

history. Six persons have been charged in Florida with using stolen credit card information as a result of the incident. For many people, this was their first serious security fear, and it helped them understand the dread that comes with security breaches.Attackers were also seeking for ways to modify software features for their own objectives during this time. For example, the Auto run function in Microsoft Windows software was created to launch programs from external devices automatically. Cyber criminals might use this feature to make Microsoft's flagship operating system run malicious programs automatically. Cybercriminals were quietly getting access to users' devices while thumbing their noses at software vendors by abusing both program weaknesses and perks. Meanwhile, new services like Skype and Twitter emerged, providing computer users with new opportunities to stay connected and exchange information. Twitter, like Facebook, would quickly become an appealing venue for criminals to communicate with people and try to defraud them of money and information. This was also the time when the iPhone was released, with a plethora of mobile applications and criminal prospects.Serial bombings in Ahmadabad, Delhi, Jaipur, and Banglore in 2008 are living examples of India's cyber terrorism. The Mumbai Taj Hotel assault in 2008, popularly known as 26/11, and the Varanasi bomb in 2010 both have cyber terrorism tracks. The fundamental goal of a cyber terrorist is to obtain sensitive information and propagate fear via cyber communications in order to jeopardize national security, unity, integrity, and peace.The Information Technology Act of 2000 (IT Act) has proven to be a contentious piece of legislation. The Act has received a lot of backlash from the legal establishment and the general public. It is said to have a wide range of problems, inadequacies, and perils, ranging from ineffectiveness in combating cybercrime to arbitrary restrictions on residents' civil freedoms.

The Information Technology Act has been in existence in India since 2000 to combat cybercrime, but the problem is that it is still more on paper than in practice since attorneys, police officers, prosecutors, and judges are unable to comprehend its extremely technical wording. It was adopted as the primary law governing online transactions in India, however it was changed in 2008 owing to various flaws.in the phase of 2009 to 2010 —Social Networking and Engineering-Because social networking sites like Facebook and Twitter began to take off in the latter half of the decade, this period is recognized for social networking and engineering. Because people put anything on the sites, from where they lived and worked to their present location, cyber crooks began collecting personal information from users with an increasing amount of money at risk. They've also used social engineering to play the game, identifying themes of interest to Internet users and then posting a message, image, or video mentioning or using that topic, along with a link to a website designed to steal credit card and other personal information in exchange for money. Cyber thieves have gotten more skilled at committing cyber crimes by interacting with social networking sites by this point.in 2010, Google publicly announced for the first time that it had been hit by a cyber attack known as Operation Aurora, which targeted the search engine giant along with other major companies such as Adobe Systems, Yahoo, and Symantec and brought advanced persistent threats (APTs) into the mainstream. APTs are a type of organisation that uses cyber espionage and intelligence to collect sensitive data from certain companies.

From the Phase of 2011 to till date-In India, following a series of arrests made under Section 66A of the Information Technology Act, 2000, Shreya Singhal v. Union of India is a case where a writ petition was filed in the public interest under Article 32 of the Indian Constitution, arguing that Section 66A is so broad, vague, and incapable of being judged on objective standards that it is vulnerable to willful abuse. It was also claimed that the phrases "offensive," "menacing," "annoyance," "danger," "obstruction," and "insult" were not defined under the Information Technology Act, the General Clauses Act, or any other law. Citing the arrests made under Section 66A, the petitioner claims that the Section's broad legislative language discourages citizens from exercising their constitutionally protected right to free speech for fear of frivolous prosecution (the "chilling effect"), which violates Article 19(1)(a) of the Constitution's guarantee of freedom of speech and expression. Moreover, whether or not section 66A fulfills the'reasonableness' criteria set forth in Article 19(2), it violates Articles 14 (Right to Equality) and 21 of the Constitution.In Rajeev Chandrashekhar v. Union of India and Common Cause v. Union of India, a writ petition was filed in the public interest under Article 32 of the Indian Constitution, challenging the constitutionality of section 66A of the Information Technology Act, 2000, and Rules 3(2), 3(3), 3(4), and 3(7) of the Information Technology (Intermediaries Guidelines) Rules, 2011. In this action, the Petitioner, a sitting Member of Parliament, claims that Section 66A contains various unclear, imprecise, and potentially problematic phrases and concepts. This imposes statutory restrictions on internet freedom that go far beyond the Constitutional parameters of'reasonable restrictions' enshrined in Article 19(2), and the Intermediaries Guidelines Rules, Rule 3(2), lists the various types of information that should not be carried on a computer system, which is arbitrary and overly broad and violates chevalier chevalier chevalier chevalier chevalier chevalier chevalier

chevalier chevalier chevalier chevalier chevalier chevalier chevalier chevalier chevalier chevalier cheval.The National Crime Records Bureau (NCRB) of India's Ministry of Home Affairs has released Cyber Crime Statistics for 2013, which show a 50 percent increase in cyber crime year over year from 2012 to 2013. The data mostly highlight cybercrime instances organized by reasons and suspects. The most offenders were between the ages of 18 and 30. Maharashtra (907) had the most cyber crime instances, followed by Uttar Pradesh (682) and Andhra Pradesh (681). (651). Maharashtra (426) and Andhra Pradesh (296), respectively, had the most cyber criminals apprehended under the IT Act (283). Uttrakhand has seen the most significant surge in cases filed under the IT Act (475 percent), followed by Assam (450 percent). Incredibly, the picture postcard union territory of the Andaman and Nicobar Islands had an 800 percent surge in the same category. In the year 2012, the city of Delhi recorded 131 occurrences of cyber crime, a rise of 72.4 percent over the previous year. Lakshadweep, Dadar, and Nagar Haveli, on the other hand, recorded no cybercrime instances in 2013. In addition, cybercrime appears to be uncommon in the northeastern states. Nagaland and Mizoram each had only one instance recorded in 2013.In Shreya Singhal and others v. Union of India, the Supreme Court pronounced section 66A to be unconstitutional in its entirety and to be anti-freedom of speech and expression. Police in several jurisdictions have utilized this provision to falsely arrest people for making critical remarks about social and political problems on social media platforms. Many people have been arrested as a result of this section for allegedly publishing undesirable information on the internet.

In India, the United States of America, and the United Kingdom, several cyber laws have been established and updated. However, in the absence of these rules, cybercrime is on the rise. For example, a total of 8, 045 complaints were filed under the Information Technology Act in 2015, compared to 7, 201 instances in 2014 and 4,356 cases in 2013, representing an increase of 11.7 percent in 2015 over 2014 and a 65.3 percent increase in 2014 over 2013. In comparison to India, the Cost of Data Breach Study conducted by IBM and the Pone mom Institute in 2015 found that the average overall cost of a data breach grew from $ 3.52 million in 2014 to $ 3.79 million in 2015. According to another analysis, cybercrime would cost $2.1 trillion by 2019. On July 7, 2016, the National Crime Agency (NCA) issued a study underlining the need for improved law enforcement and industry collaboration to combat cyber crime. According to the NCA, cyber crime now accounts for the majority of overall crime in the UK, with "cyber enabled fraud" accounting for 36% of all recorded crime and computer misuse accounting for 17%. According to the Office of National Statistics (ONS), there were 2.46 million cyber incidents and 2.11 million victims of cyber crime in the UK in 2015, with just 16, 349 cyber dependent and roughly 700,000 cyber enabled events reported to Action Fraud during the same time period.

President Barack Obama of the United States issued an executive order in April 2015 to combat cybercrime, allowing the US to freeze the assets of convicted cybercriminals and halt their economic operations within the country.According to a Juniper Research analysis published in 2016, the cost of cyber crime might reach $2.1 trillion by 2019.As a result, cybercrime is an evil that has its roots in modern society's growing reliance on computers. Communication technology may be used to perpetrate a wide range of criminal offenses. It is not going away anytime soon, and it appears that it will only increase unless new

****

Bibliography

Shun Young Kevin Wang and Wilson Haung, "The Evolutional View of the Types of Identity Thefts and Online Frauds in the Era of the Internet", Internet Journal of Criminology (online), 2011, p. 2, available at: http://media.wix.com/ugd/b93dd4_83ceccb58ea64dcd8bd7 a6aa67f082 fe. pdf (visited on March 9, 2017).

Kathy Martinez Prather and Donna M. Vandiver, "Sexting among Teenagers in the United States: A Retrospective analysis of Identifying Motivating Factors, Potential Targets and the Role of a capable Guardian", International Journal of Cyber Criminology, vol.8, No.1, January-June, 2014, p. 21, available at: http://www.cybercrimejournal.com/pratherVandiverijcc2014vol8issue1.pdf (visited on March 9, 2017).

"Introduction and Evolution of Computer", available at: http://fundamentalofcomputing. blogspot.in/p/introduction-and-evolution-of-computer.html (visited on March 10, 2017).

United Nations Manual on the Prevention and Control of Computer Related Crime, 1994, p. 5, available at: http://216.55.97.163/wp-content/themes/bcb/bdf/int_regulations/un/CompCrims_UN_Guide.pdf, (visited on March 15, 2017).

5. Harpreet Singh Dalla and Geeta, "Cyber Crime- A Threat to Persons, Property, Government and societies", International Journal of Advanced Research in Computer Science and Software Engineering , vol.3, No. 5, May, 2013, p. 997, available at: http://www.ijarcsse.com/docs/ papers/Volume_3/5_May2013/V3I5-0374.pdf (visited on March 9, 2017).

6. M.E. Kabay, A Brief History of Computer Crime, 2008, p. 5 available at: http://www.mekabay. com/overviews/history.pdf (visited on March 9, 2017).

7. D. Thomas and B.D. Loader, Cyber Crimes, Law Enforcement, Security and Surveillance in the Information Age, 1995, p. 59.

8. "A Good Decade for Cyber Crime", McAfee Report, 2011, p. 5, available at: http:// cdn. bizcommunity.com/f/1106/rp_good_decade_for_cybercrime.pdf (visited on March 10, 2017).

9. Samiksha Godara, "Prevention and Control of Cyber Crimes in India: Problems, Issues and Strategies", A Thesis submitted to Maharishi Dayanand University, April 1, 2013, p. 2.

10. Limor Kissem, "2016 Cyber Crime Reloaded: Our Prediction for the Year Ahead", (Last Modified on Jan. 15, 2016), available at: https://securityintelligence.com/2016-cybercrime-reloaded-our- predictions-for-the-year-ahead/ (visited on Dec. 2, 2016).

11. National Crime Agency (UK), Cyber Crime Assessment, 2016, available at: www.nationalcrimeagency.gov.uk/publications/709-cyber-crime-assessment-2016/file (visited on Feb. 14, 2017).

12. "History of Cyber Crime", available at: http://www.bezaspeaks.com/cybercrime/history.htm (visited on March 9, 2017).

13. "Emerging Cyber Threats and Challenges", 2014, available at: http://www.mcciorg.com/ AttachFile/EventAttach/backgrounder-emerging-cyber-threats-240414.pdf (visited on March 26, 2015).

14. "Supreme Court of India: To Hear Eight IT Act Related Cases on 11th April 2014- SFLC", available at: http://www.medianama.com/2014/03/223-supreme-court-of-india-to-hear-eight-it-act- related-cases-on-11th-april-2014-sflc/ (visited on June 29, 2016).

15. Samiksha Godara, "Prevention and Control of Cyber Crimes in India: Problems, Issues and Strategies", A Thesis submitted to Maharishi Dayanand University, April 1, 2013, p. 2, available at: http://shodhganga.inflibnet.ac.in/bitstream/10603/7829/12/12_chapter%203.pdf (visited on May 20, 2016).

16. The Office of National Statistics(UK), Cyber Crime Assessment, 2015, pp. 5-6, available at: www.nationalcrimeagency.gov.uk/publications/709-cyber-crime-assessment-2016/file (visited on Feb. 14, 2017).

Practic of Religin Provided Under THE Constitution and Forceful Conversions in India

Dr.M.Imran
Associate Prof. Under the School of Law
Shobhit University, Meerut.

Suman
Research Scholar, Research scholar,Under the School of Law, Shobhit University, Meerut.

Abstract
In order to maintain public order and to safeguard the larger interests of society, many states have passed laws that regulate conversion from one religion to another and prohibit conversion through methods that offend the community's conscience. These laws were implemented in accordance with the framework of our Constitution. In their zeal to protect "indigenous religions," it appears that some of them have gone so far as to put an end to religious freedom. The goal of the current study is to determine whether or not the provisions of these laws are consistent with the freedom of religion guaranteed by Article 25 of the Constitution and other pertinent clauses, or if the right to freedom of religion has actually been curtailed.

Key words: *U*ntouchability,Freedom of conscience,Preferred Religious.

1.1 INTRODUCTION

Similar to the majority of other traditional societies, religion has served as the cornerstone of Indian society throughout all eras as it has evolved into a democratic state. The statement that "If life may be compared to a pie, religion is not one of those pieces along with the pieces designated politics, economy, social structure, education, and law" is made in reference to India. Instead, religion is the fruit that can be found in all of the pie. In addition to being the birthplace of many religions, this religious India also served as a haven for numerous other religions that emigrated from other regions of the world. Together, all of these religions and their adherents played a significant part in creating the modern, secular India where, in accordance with the constitutional guarantee, anyone is free to profess, practise, and spread their religion as long as it doesn't interfere with public morality, health, or order. According to our constitutional system, this freedom may also be limited in order to end untouchability, promote social welfare, and affect reform. These restrictions placed on the right to freedom of conscience and its related rights not only demonstrate the potential conflicts of interest that could arise in the exercise of religious freedom in pluralistic India, but they also unequivocally demonstrate the founders of our Constitution's desire to uphold complete harmony so that all religions can coexist side by side without impeding social harmony or the advancement of the country. So, while religious equality and freedom are enshrined in our Constitution, the latter has been explicitly made subject to the societal good.It appears that the spirit of secularism was unable to replace the significance that religion holds for the Indian people, even though the Constitution of India was constructed on such a secular foundation. Religion continues to be a contentious topic in our secular nation. Our polity is facing difficulties as a result of some religious groups' strong efforts to spread their faith. One of the greatest difficulties surrounding the freedom of religion is the question of conversion from one religion to another, which puts inter-religious groups and their adherents in opposition.All Indians, not just adherents of one particular religion, are guaranteed freedom of religion under the country's constitution. "Freedom of conscience" refers to a person's right to practise any religion they choose or no religion at all. On the other side, "freedom to disseminate" refers to the freedom, within bounds, to transmit or spread one's faith by the presentation of its fundamentals or his own views and convictions. It is challenging to preserve harmony between the two unless they are comprehended in the proper perspective and construed properly. More so when adherents of any faith assert their right to freedom of propagation, which includes the freedom to convert others to their faith in any way they choose. In order to protect the broader interests of society, such a circumstance justifies government intervention to limit how these freedoms are used. And because our constitutional system explicitly links such liberties to the broader interests of society, such a state intrusion has been considered.

1.2 CONSTITUTIONAL FRAMEWORK OF RIGHT TO FREEDOM OF RELIGION IN INDIA

Under the ultimate law of the land itself, the founding fathers of the Constitution granted to themselves, "we the people of India," the fundamental rights and guiding principles of state policy to create an equal social order for all segments of society. As equality of religion is a fundamental aspect of egalitarianism, it has been incorporated into the Indian Constitution. Secularism's core principles include religious tolerance and respect for all faith groups. Such a secular foundation is one of the foundations upon which the Indian Constitution was created. Although the term "secularism" was not included in the original Constitution when it was enacted in 1950, the ideas of secularism were incorporated into many other portions of the document, including the preamble, fundamental rights, and guiding principles for government. More specifically, Articles 25, 26, 27 and 28 protect different aspects of the right to freedom of religion with built-in limitations and restrictions.

1.3 THE PURPOSE AND AMBITION OF RELIGIOUS FREEDOM:

The passive and constructive elements of secularism are both embodied in the Indian Constitution. It is passive in the sense that the Constitution calls for state neutrality in matters of religion. Since India is a secular nation, there is no official state religion or preferred religion. It has an underlying component of religious tolerance. India is not a state devoid of religion, though. In order for every religion to grow freely and without hindrance, it respects all religious groups equally, offers protection, freedom to practise, profess, and promote religion, as well as freedom to administer religious affairs, among other beneficial aspects of secularism. In particular, Articles 25, 26, 27 and 28 of the Constitution make clear the Indian Constitution's commitment to secularism. The breadth and range of these laws can be examined under many headings for the sake of convenience.Article 25 of the Indian Constitution addresses the fundamental ideas of religious freedom, including freedom of conscience and freedom of profession, practise, and proclamation of religion. It is the most fundamental of several related rights to religious freedom. It says, "25." (1) Everyone has a right to religious freedom and the freedom to proclaim, practise, and spread their religion freely, subject to public order, morality, and health as well as the other requirements of this Article.

(2) Nothing in this article shall interfere with the operation of any existing law or prevent the state from enacting legislation that (a) regulates or limits any economic, financial, political, or other secular activity that may be connected to religious practises; (b) promotes social welfare and reform, or opens Hindu religious institutions of a public nature to all classes and sections of Hindus.

I. The wearing and carrying of kirpans should be recognised to be a part of the Sikh religious profession.

Explanation: II. In subclause (b) of Article (2), references to Hindus are to be understood to include references to those who practise the Sikh, Jaina, or Buddhist religions, and references to Hindu religious institutions are to be understood in the same manner.

Every person, citizen or non-citizen, has the right to freedom of conscience and the freedom to profess, practise, and promote religion, according to Article 25 of the Constitution. Yet, these freedoms are not explicitly guaranteed by the Constitution. They are made subject to the following laws: I Public order, morality, and health; (ii) Other Part III provisions, or other fundamental rights; (iii) Any law, present or future, regulating or restricting an economic, financial, political, or other secular activity that may be connected to religious practise; and (iv) Any law, present or future, promoting social welfare and reform.

1.4 ADDITIONAL DIMENSIONS OF RELIGIOUS FREEDOM:-As was already established, the constitutional guarantee of freedom of religion covers much more than only the right to free speech and the right to profess, practise, and spread one's religion. Every religious denomination or division thereof has been granted the freedom to: (a) establish and maintain institutions for religious and charitable purposes; (b) manage its own religious affairs; (c) possess and acquire real estate; and (d) manage such real estate in conformity with the law. These freedoms are constrained by law, morality, and health. Moreover, Article 27 offers exemption from paying taxes on income that is specifically designated for paying costs associated with promoting or maintaining a particular religion or religious sect. These clauses, however, don't need to be explained in the context.

Given that Article 28 imposes a constructive restriction on the "propagation of religious belief or tenets" in educational institutions, the restriction on providing religious instruction and freedom regarding attendance at religious instruction or religious worship in some educational institutions seems relevant to the context. It is a requirement of the Constitution that no religious instruction be given in any educational facility entirely supported by State funds. Furthermore, the freedom to attend religious instruction or worship is granted by Paragraph (3) of Article 28 in several educational institutions. It states unequivocally that no person attending any educational institution recognised by the State or receiving financial assistance from the State shall be required to participate in any religious instruction that may be given in such institution or to attend any religious worship that may be held in such institution or any premises connected thereto unless such person or, if such person is a minor, his guardian has given his consent to such requirements.Given that India is a secular nation, using public funds to provide religious instruction that could lead to conversion from one religion to another would not be consistent with India's secular credentials. This is the likely justification for the broad ban on providing religious instruction in educational institutions wholly maintained out of state funds. This is to secure the religious neutrality of public institutions entirely maintained out of the public funds. Similar to Clause (2), the justification for Clause (3), which grants freedom regarding attendance at religious instruction or religious worship in educational institutions recognised by the State or receiving aid from State funds, is that there is every chance that students will be subjected to undue influence to convert them from one religious faith to another in such institutions. Furthermore, any use of coercion or undue persuasion would violate one's "freedom of conscience," which is the foundation of reli

gious freedom. Article (3), in contrast to Clause (1), does not outright forbid giving religious instruction; rather, it only grants freedom with regard to attending religious instruction or religious service. In other words, there is no restriction on teaching religious doctrine, performing religious rites, or obtaining financial support from the State at institutions recognised by the State, but such institutions may not compel students to participate in them. Students may choose to attend these instructions, rites, or ceremonies on their own initiative or, in the case of minors, at the request of their legal guardians.

1.5 LEGISLATIVE COMPETENCE TO REGULATE FREEDOM OF RELIGION:-The Union and State legislatures have distinct legislative authority within our constitutional framework. The territorial scope of the implementation of laws passed by both Parliament and the State Legislatures is covered in Article 245 of the Constitution. The subject matter jurisdiction of both the Parliament and State legislatures to enact legislation is discussed in Article 246 of the Constitution, which is relevant in this case. There are three different lists in Schedule VII, each listing a different category of legislative topics. The Parliament has the authority to pass laws on the topics listed in List I, or the Union List, under Clause (1) of Article 246. In accordance with Article (3), State legislatures have the only authority to enact legislation pertaining to any of the matters included in List II, or the State List, subject to Clauses (1) and (2). Both the Union and State Legislatures may pass laws on any of the items listed in List III, or the Concurrent List, according to Article 246's Clause (2). Nonetheless, under Article 254 of the Constitution, the Union's laws have precedence over those of the States in cases of a disagreement. Thus, the scheme grants the Parliament exclusive/superior authority to legislate on any of the Schedule VII entries, save those listed in List II. Hence, the banned field for the Centre is any topic that is solely within the purview of the States.Even though the Indian Constitution has a very complex system for allocating legislative authority among three lists, "religion" is not included in any of the lists. The profession, practise, and promotion of religion, as well as any other activities that are primarily linked with religion, may nonetheless be subject to regulation even in the lack of a pertinent legislative provision. The Union Legislature has been given "residuary legislative power" under the Constitution's system of allocating legislative authority in order to handle such a circumstance. Residuary power has a very broad range. It must be proven beyond a reasonable doubt that the State legislature is incapable of passing laws in order to exercise residual legislative power. As a result, the Parliament may pass extensive legislation covering the many aspects of "religion" subject to the entries in List II under Article 248 read with entry 97 of List I of Schedule VII. It goes without saying that Union legislation may very possibly address the problem of conversion from one faith to another.The "freedom of religion" promised by Article 25 is not absolute, however, and is instead made subject to things like public order, morality, and health. The freedom of religion is subject to two important elements, "public order" and "public health," which are listed, respectively, in entries 1 and 6 of List - II of Schedule VII. According to Clause (2) of Article 246 as previously noted, the State legislature alone has the authority to enact legislation for the benefit of or to maintain public order and health, subject to Clauses (1) and (2). The widely accepted rule of thumb for interpreting legislative entries is that "none of the entries should be read in a narrow, pedantic sense; that the "widest possible" and "most liberal" construction be put on each entry, and that each general word in an entry should be held to extend to all ancillary or subsidiary matters which can fairly and reasonably be said to be encompassed in it". Hence, the State legislature has the authority to enact legislation to control any acts that, in its opinion, have a propensity to disturb public order or have a negative impact on public health. The State legislature is competent to pass the law to control the freedom to profess, practise, and propagate religion if it is exercised in a way that is likely to upset public order or impair public health. Such State legislation is intra vires as long as it explicitly addresses maintaining public order or safeguarding the people's health.

As a result, the State legislature, only for the purpose of preserving public order and protecting public health, and the Union Legislature, by virtue of residuary legislative power under Article 248 read with entry 97 of List - I, are both capable of passing laws for the purpose of regulating religious activities.

1.6 CONCLUSION-Before independence, some princely realms had anti-conversion legislation in place. Following independence, numerous states passed these laws in an effort to stop conversions carried out through "force," "fraud," or "allurement/induction." The latter require a more thorough investigation whereas the former do not. Because the British themselves practised a proselytising religion, British India has never had anti-conversion legislation. Yet, analogous laws have been passed by numerous princely states. The Rajgrah State Act of 1936, the Patna Freedom of Religion Act of 1942, the Surguja State Apostasy Act of 1945, and the Udaipur State Anti Conversion Act of 1946 were among the more notable ones. Similar laws were passed in Bikaner, Jodhpur, Klahanadi, and Kota, among other places. specifically opposed to becoming a Christian.The Rajgrah State Conversion Act, which was passed in 1936, was the first anti -conversion legislation. This law outlawed

Christian missionaries' access into the old Kingdom of Rajgrah, Jodhpur, Surguja, etc. of Chhotanagpur districts as well as the proclamation of Christianity. The Surguja State Apostasy Act of 1945 was the second law to forbid conversion from Hinduism to Islam or Christianity by giving the Darbar of the Rajas the authority to permit or forbid conversion in the sake of upholding law and order and fostering public harmony. Similar to this, the Udaipur State Conversion Act of 1946 mandated that all conversions from Hinduism to other religions be recorded in writing. All of these regulations were primarily passed to protect Hindus from the influx of Christian missionary operations. The majority of these legislation mandated that converts individually register their conversion with particular governmental entities. A person was made punishable if they were converted through fraud, misrepresentation, coercion, intimidation, undue influence, or other means. Children of converts would not automatically inherit their parents' new faith, and conversions of minors are not possible. The Hindu kings of princely states thus sought to restrict conversion to other religions on a legal basis.

In contrast to other Acts, this Act's Section 4 does not specify a distinct penalty for the conversion of women, children, or other members of the weaker portion of society. The Act mandates the imposition of both a fine and an imprisonment, subject to the set maximums. The options here are not a fine or imprisonment.

(1) Whoever converts any person from his or her indigenous faith to any other faith or religion by performing the ceremony necessary for such conversion himself as a religious priest or by participating directly or indirectly in such ceremony shall send an intimation to the Deputy Commissioner of the district to which the person was converted within such period after the ceremony as may be prescribed.

(2) Anybody who disregards the requirements of subsection (1) without good reason is subject to a fine of up to a thousand rupees, a term of imprisonment that may reach a year, or both.This clause is the exact same as section 5 of the MP Act of 1968 as it was originally written. The provision requires the person who converts the other to notify the Deputy Commissioner of the District to which the converted person belongs with all necessary information. This obligation can be met by the person converting the other by himself performing the necessary ceremony as a religious priest or by participating in such ceremony, either directly or indirectly.In accordance with Section 6 of the Act, an offence must be cognizable before it can be investigated by a police officer who is not an Inspector of Police.

Section 7. Prosecution sanction: No prosecution for an offence under the Act may be brought without the Deputy Commissioner's prior approval or that of such other authority, not below the rank of an Extra Assistant Commissioner, as he may designate in his behalf.

Section 8. Rule-making authority: To implement the Act's provisions, the Government may issue regulations.

****

BIBLIOGRAPHY

1. B. Shiva Rao (edt), The Framing of India's Constitution: Select Document, (Universal Law Publishing Co. Pvt. Ltd. 2004).
2. Bachal, V.M., Freedom of Religion and Indian Judiciary: a Critical Study of Judicial Decisions (Shubhada Saraswat, Poona, 1975).
3. Berman, Harald J, Interaction of Law and Religion (Abingdon Press, Nashville, 1974).
4. Bhartiya, V.P, Religion-State Relationship and Constitutional Rights in India
5. (Deep & Deep, New Delhi, 1987).
6. Cogley, Johan, Religion In A Secular Age: The Search For Final Meaning (Pall Mall, London, 1968).
7. Derrett, J.Duncan M, Religion, Law And The State In India (Oxford University Press, Delhi, 1999).
8. Drinan, Robert, Religion, The Courts And Public Policy (McGraw Hill, New York, 1963).
9. Ferrara, Peter J, Religion And The Constitution: A Reinterpretation, (Cong. Research and Education Foundation, New York, 1983).
10. Giannella, Donald A, Religion And The Public Order: An Annual Review Of Church And State, And Of Religion, Law And Society (Cornell University Press, Ithaca, 1968).
11. H.M. Seervai, Constitutional Law of India (Universal Law Publishing Co. Pvt. Ltd, New Delhi, 4th Edn).
12. Kshiragar R.K, Legal View of the Problem of Scheduled Castes Converts to Buddhism (Budha Jyoti Prakashan, Aurangabad, 1989).
13. Mitchell,Basil, Law, Morality And Religion In A Secular Society (Oxford University Press, New York, 1967).
14. Morgan, Richard E, Supreme Court And Religion (Free Press, New York, 1972).
15. Mustafa, Faizan and Sharma, Anurag, Conversion: Constitutional and Legal Implications (Kanishka Publishers, New Delhi, 2003).
16. Nizami, Khaliq Ahmad, Some aspects of religion and politics in India during thirteenth century (Idarah-I-Adobiyat, Delhi, 1974).
17. Srivastava, Dhirendra K, Religious Freedom In India: A Historical And Constitutional Study (Deep & Deep, New Delhi, 1982).

Impact of Information Technology on Job Satisfaction

Dr.William
Assistant Professor
Department of Commerce, NREC
College Khurja, Bulandshahr.

Rohini Mahur
Research scholar
Department of Commerce, NREC
College Khurja, Bulandshahr

ABSTRACT-Job satisfaction is very important for the success of every organization. Satisfaction of employees is required in every field of work to increase their work of performance. Job satisfaction of the employees will not only help in smooth running of the organization but will also help in the growth of the organization in all reason. The aim of this research is to investigate the impact of job satisfaction among employees in teaching. The present study proposes a model of the impact of key predictors of job satisfaction on job performance. The study found that pay, supervision, work teachingself and promotion are impacting significantly the job performance. Therefore, Schools and colleges should focus on the above factors to job performance of employees. The study investigated the impact of key predictors of job satisfaction on job performance of the employees in teaching concluded that pay had the highest impact on the job performance of the employees' supervision, work teachingself followed by promotions.

Key words: Job Satisfaction and Job Performance

INTRODUCTION-All organizations and administrations are dependent on the five Ms (money, mind, material or machine, management, and manpower), but manpower is the foundation of all of them. Employees and labor are the foundation of any organization. If the workforce is happy wteachingh their work, the organization will advance. Addteachingionally, no firm can function effectively wteachinghout employees. Consequently, job satisfaction is crucial. "A content worker is a productive worker," they say. teaching is frequently claimed that job satisfaction has to do wteachingh an individual's level of happiness at work. Job satisfaction is a mindset that emerges from an employee's experiences at work. teaching is a person's emotion or mental state. The terms "job" and "satisfaction" are combined to form the phrase "job satisfaction" in teachings lteachingeral sense. The term "job" refers to a group of tasks, duties, and responsibilteachingies that collectively are regarded as the set assignments to each individual employee and are carried out by them in exchange for payment. "Satisfaction" refers to the collection of thoughts, feelings, and physical sensations that follow the completion of any task. The term "satisfaction" describes how one feels about things, people, and events. On the other hand, we can define contentment as a mental state or feeling that typically follows a successful attempt to satisfy a perceived need. teaching is a crucial and priceless component of a successful existence. teaching is essential for everyone to have satisfaction at some point in their lives. The degree to which actual benefteachings fall short of, match, or exceed anticipated equteachingable rewards will determine how content an individual feels; if there are less than equteachingable rewards, he will be dissatisfied. Even if the goal is not attained or the need is not met, the efforts made to achieve teaching can still be satisfying. The struggle to achieve a goal might be valuable. A person who is happy in his or her employment is likely to benefteaching from having a posteachingive outlook on life in general, and the communteachingy gains on the basis of both industrial and individual wellbeing. Employers must now take their understanding of the dynamics of job happiness seriously. The entirety of the overall scenario has an impact on an individual who works for an organization. As a result, an employee's "zest" at work depends on how well he adjusts to his personal, social, and professional lives. The notion of "job happiness" has continued to be a contentious topic as the year has gone on. Employment satisfaction is frequently used to describe a person's happiness wteachingh his or her job. On the other hand, we might claim that motivation at work is a result of job satisfaction. Simply put, work satisfaction refers to how people feel about their jobs. teaching has been formally defined as an enjoyable (or unpleasant) emotional state brought on by one's evaluation of their work, their affective response to their work, and their attteachingude toward their work. These defintеachingions imply that feelings, attteachingudes, and behaviors are taken into account when determining job satisfaction. Calculating the level of happiness necessary for a specific work, however, is a challenging issue. The level of enjoyment at work is likewise challenging to quantify. If the act of satisfying an organization's employees must be measured, key factors such as pay, promotion, and recogntеachingion should be measured and the results added to obtain a sum-measure of the employee's overall job satisfaction. Job satisfaction is thus defined as the extent to which an employee's needs for health, securteachingy, affiliation, nourishment, and esteem are met on the job or as a result of the job. The organization chooses a high level of job satisfaction due to teachings low turnover and absenteeism. Although job contentment appears to lower absenteeism and accident rates, the consequences of job dissatisfaction will be catastrophic.Job is one of the important elements of people's life.

Their living style and their social lives depend on their jobs. Therefore, teaching is necessary for every organization to have satisfied workforce. Nowadays, private sector plays significant role in uplifting the economy of Pakistan. They are not only providing good services but are also providing job opportunteachingies to a large group of people. Keeping in view the contribution of private sector in the society and the significant role of job satisfaction in order to improve the employees' performance, the aim of the present study is to know the job satisfaction of employees and teachings relationship wteachingh the performance level. Employee job satisfaction has a significant impact on an organization's success. teaching's important to understand how to keep workers by keeping them happy and empowered to produce exceptional results. Employee job satisfaction motivates workers, which helps companies maintain standards and increase productivteachingy. Employment satisfaction is an emotional reaction to one's work environment. As a result, teaching can only be assumed rather than seen.How well the results meets or exceeds expectations is also a determining factor in job satisfaction. For example, if participants in an organization believe they are working better than those in the department but are earning less incentives, they are more likely to have negative attteachingudes about their job. on the other hand, they are more likely to have good attteachingudes toward the work if they feel they are being handled well and fairly compensated..A happy employee is said to be a good employee. Any grievance related to organizational or personal issues has a greater impact on the work. If an employee is dissatisfied wteachingh their work, they are more likely to be absent, have a lower turnover rate, make errors, divert resources to various forms of disputes, and so on.

Wteachingh this in mind, all organizations are attempting to find places where satisfaction can be increased in order to avoid the dangers mentioned above. Employees that are satisfied are often more likely to be creative and inventive, resulting in breakthroughs that enable a business to evolve and adapt posteachingively over time and in response to changing market condteachingions. Therefore Job satisfaction is a crteachingical factor in motivating workers to deliver successful outcomes in every company.

Organizational performance depends upon individual and group performance. Organizations consist of people performing jobs alone and teaching others. From this explanation by Gibson et al., (1979) teaching can be understood that the individual performance is the heart of organizational performance and that the individual job performance is related to individual employee job satisfaction since teaching is apparent that individual job satisfaction ultimately lead to the organizational performance as well. The general consensus across industries and organizations is that the loss of skilled teaching Professionals is expensive. Industry experts propose that the cost of losing a scientist or engineer can be three to six the cost of losing a manager (Kochanski & Ledford, 2001). This is specially a significant concern in teaching where specialist training and retention are highly important. This study purposely focused only on software developers/engineers as opposed to teaching employees in general due to the teaching nature of their work. Apparently the factors leading to job satisfaction and impact to the job performance in this field are poorly understood; therefore, this study was designed to further understand the relationship between job satisfaction and job performance among teaching Professionals. teaching was evident that employee dissatisfaction not only leads to poor performance but for the employee turnover as well.

1.2 REVIEW OF LITERATURE

According to Melvin (1993), an organization's environmental design has a significant impact on worker satisfaction while also having a significant impact on employees' high job participation. An organization strong environmental design aids in the resolution of disputes. The author goes on to say that teaching is the management's duty to plan the workplace in such a way that teaching eliminates frustration by properly organizing work tasks and working patterns.

People's feelings and their beliefs about their employment are referred to as job satisfaction. People's levels of job satisfaction can vary from extremely happy to extremely unhappy.

Satisfied employees aren't always the most efficient. There are several potential moderating variables, incentives appearing to be the most significant. People will be happy if they earn incentives that they think are fair and this will likely lead to increased performance effort. Furthermore, recent research suggests that while satisfaction does not always lead to improved individual performance, teaching does lead to improvements at the departmental and organizational.

1.3 OBJECTIVE OF THE STUDY

- To investigate how employees feel about their jobs.
- To understand what factors contribute to an improvement in employee job satisfaction.
- To understand the key causes of employee dissatisfaction.
- To study the employees perception towards organization.

1.4 RESEARCH METHODOLOGY

This research uses descriptive analysis methods. The convenience sampling technique was used in this study. The information was gathered from primary and secondary sources. Primary data was gathered directly from respondents through questionnaire, and secondary data was gathered from published documents, journals etc. In this analysis, 123 employees were used as a sample size. Simple percentage analysis, pie chart, chi-square test in spss tool, and ANOVA in spss tool were used for analysis

1.5 DATA ANALYSIS AND INTERPRETATION

Table 1.1

(i) Respondents view on appreciation at work.

Particulars	No. of respondents	Percentage
Always	0	0%
Most of the time	51	41.50%
About half the time	38	30.90%
Once in a while	28	22.80%
Never	6	4.80%
Total	123	100%

Source: Primary data

INFERENCE:

Major teaching (41%) of the respondents appreciated for work Most of the time.

(ii) Respondents level of agreement on the statement "I am aligned teaching of the organization I work for".

Table 1.2

Particulars	No. of respondents	Percentage
Strongly agree	41	33%
agree	82	67%
Neutral	0	0%
Disagree	0	0%
Strongly Disagree	0	0%
Total	123	100%

Source: Primary data

INFERENCE:-\Major teaching (67%) of the respondents says agree on the statement "I am aligned teaching theactive of the organization I work for".

(iii) Respondents opinion on the forms of discrimination faced in the company.

Table 1.3

Particulars	No. of respondents	Percentage
Racial discrimination	0	0%
Age discrimination	0	0%
Gender discrimination	1	0.80%
discrimination	0	0%
None of the above	122	99.20%
Total	123	100%

Source: primary data

INFERENCE: Major (99%)of the respondents faced none of the above discrimination in the company.

(iv) Table Showing Chi-Square test of age of the Respondents andDiscrimination Faced In The Company.

Table 1.5

Chi-Square Tests

Value		df	Asymptotic Significance (2-sided)
Pearson Chi-Square	12.770a	2	.002
Likelihood Ratio	5.337	2	.069
N of Valid Cases	123		

a. 3 cells (50.0%) have expected count less than 5. The minimum expected count is .07.

INTERPRETION-The sig (2-tailed) value is .002, which is less than 0.05, according to the results. As a result, H0 is rejected while H1 is accepted. The age of the respondents and the discrimination they face in the company are significantly different.

(v) Table Showing Anova Analysis Of occupation of the respondents andtheir view on appreciation at work.

Table 1.6

ANOVA OCCUPATION-1

	Sum of Squares	df	Mean Square	F	Sig.
Between Groups	18.195	3	6.065	4.553	.005
Groups	158.537	119	1.332		
Total	176.732	122			

INTERPRETION-The significance level is .005, which is less than 0.05, so H0 is rejected and H1 is accepted based on the results. The respondents' occupation toward workplace appreciation differ significantly.

1.6 CONCLUSION-The teacher has a crucial role in social change and country development. It is his/her duty to mentor and enthuse pupils, to improve the classroom environment, and to instill values that are in keeping with our societal aspirations and cultural heritage. This entails the passing of information from one generation to the next as well as educational innovations such course restructuring, the introduction of examination reforms, and tailoring programs to the demands of the community and social context. It is only possible to successfully develop new and developing fields of study if the teacher is happy with his or her position and embraces a progressive approach to education. In other words, the teacher—his or her personal characteristics, educational background, professional training, and position within the school or college as well as the community—is the most crucial aspect in educational reconstruction. The reputation of a school or institution and its impact on local life are inextricably linked to the types of teachers that work there.Most of the respondents falls in the age category of 18-29 years.Most of the respondents are salaried.

teaching is found that 44% of the respondents received training about half of the time.teaching is found that 41% of the respondents appreciated for work most of the time.teaching is found that 91.90% of the respondents says satisfied in job securteachingy.

teaching is found that 55% of the respondents says that they are satisfied wteachingh the appreciation orreward system provided.

1.There is no difference between the challenges faced by female teachers in rural and urban locations in terms of security, for example.Both male instructors in urban and rural settings experience similar challenges in raising their families, which contributes to their satisfaction with their work.Both male and female teachers are generally happy with the government's job security. will offer a pension once you retire. Also, they make money by offering private lessons.As both rural and urban male teachers are of the same sex, there is no variation in their personal values.It represents the difference in personal values between all female government instructors and all male government teachers. Elementary schools are important. Due to their different sexes and familial obligations, this is the case.A job is considered satisfying if it pays well enough for employees to comfortably cover living expenses and is secure.At the appropriate moment, safety of service and other beneficial privileges are also available.Self-respect is also present when working, and the boss and coworkers behave well.Personal values are the culmination of one's personality and other aspects of current culture.An unhappy teacher is unable to provide students with the necessary instruction that a developing youngster need.A teacher who upholds high moral standards serves as an example for their students and aspires to surpass them in the future.Job satisfaction differs between male and female instructors in terms of their personal values. This implies that personal values and occupational fulfillment are two distinct factors. So, there is no required link between instructors' personal values and their level of professional happiness.

****

REFERENCES

1.Aggarwal, J.C. (2004) Essentials of Educational Technology : Teaching learning Vikas Publishing House Pvt. Ltd., Delhi

2.Anand, S.P. (1983) Teacher-Effectiveness in Schools. Journal of Indian Education, NCERT, March 3-12.

3.Anjaneyulu, B.S.R. (1971), "Teaching Profession and Job Satisfaction'', Educational India, Vol.37 (10), pp 340-342.

4.Armes, D. (1985), "Stress and Burnout in Urban Secondary School Teachers", Journal of Educational Research, Vol. 26(5), pp. 10-21.

5.Arvil, V. (1996), "Gains in Social Adjustment of Co-Educational Classes and Segregated Classes in Physical Education", Dissertation Abstracts International, 27, pp. 33 – 48

6.Ball, D.L. (1991), Teaching mathematics for understanding: What do teachers need to know about the subject in M. Kennedy (Ed.) Teaching academic subjects to diverse learners (pp. 63-83). New York : Teachers College Press.

7. Begg, A., & Edwards, R. (1999). Teachers' ideas about teaching. Paper presented at the combined annual meeting of the Australian Association for Research in Education and the New Zealand Association for Research in Education, Melbourne, Australia.

8.Best J.W. "Research in Education" Prentice Hall of India Pvt. Ltd. New Delhi 1997.

9.Bindhu, C. M. and Sudheesh, P. K. (2006), ''Job satisfaction and Stress Coping Skills of Primary School Teachers,'' ERIC Document Reproduction Service No. ED 492585.

10.Blum, M. L. and Naylor, J. C. (1998), "Industrial Psychology: Its Theoretical and Social Foundations," CBS Publishers, New Delhi.

11.Borg, M. G. and Falzon, J. M. (1989), ''Stress and Job satisfaction among Primary School Teachers in Malta," Educational Review, Vol. 41 (8), pp 271-279.

12.Borg, M. G. and Falzon, J. M. (1991), ''Sources of Teacher Stress in Maltese Primary Schools," Research in Education, Vol. 46 (3), pp 1- 15.

13.Borg, M. G. and Riding, J. R. (1991), "Occupational Stress and Satisfaction in Teaching'', British Educational Research Journal, Vol. 17 (3), pp. 263 – 281.

14.Boyle, G. J. and Borg, M.G. (1995), "A Structural Model of the Dimensions of Teacher Stress,'' British Journal of Educational Psychology, Vol. 65(2), pp 49 - 67.

15. Brember Ivy and Marie, B (2002), ''Gender-Related Causes of Stress in Trainee Teachers on Teaching Practice in the School of Education, University of Manchester, U.K'', International Journal of Research and Method in Education, Vol. 25 (2), pp175-186.

16.Brimm, J.L. (1983), ''Stress, Burnout and Role Problems among School Principals,'' Journal of Occupational Behaviour, Vol. 18 (5),pp 157-165.

17.Brown, F. (1972), "Need Satisfaction of Educational Administrators'', American Educational Research Association, ERIC Document Reproduction Service No. ED061 584.

18.Brown, Z. A. and Uehare, D. L. (1999), "Coping with Teacher Stress: A Research Synthesis for Pacific Educators," Pacific Resources for Education and Learning, Vol.15 (3), pp. 21 – 38

19.Buch, M.B. "A Survey of Research in Education". Centre for Advance Studies in Education. M.S. University Baroda 1974, III, IV, V Survey.

Impact of New Economic Policy on Food Processing Industry: A Critical Assessment

Dr. Dushyant Kumar
Prof.Department of Economics, Amar Singh(P.G.) College Lakhaoti, Bulandshahr

Ms.Anchal yadav
Research Scholar, Department of Economics, Amar Singh(P.G.) College Lakhaoti, Bulandshahr

ABSTRACT-*Days have gone for poor performers in agricultural sector, day by day innovative ideas are being sown in food processing industry to enhance farmers income as well as contribution to India's GDP.Uttar Pradesh is first in the India for food grains, sugarcane, potato, milk production and meat output and second for rice, a variety of vegetables and fruits and third for pulses, oil seeds, maize. Despite farmers are not receiving remunerative rates for their output. Large scale food production, food inflation, food security in UP are other major challenges. These concerns worry policymakers because they impact residents' basic necessities. The value of wastage of raw food materials in the state, on the other hand, is extremely high.*

Key Words: Efficient arrangement,* Technology Upgradation*, Infrastructural as well as Structural Changes.

1.1 INTRODUCTION-The processing level in the country is quite low, and the waste of raw food resources is very high, as shown in table, and both of these facts are also true in Uttar Pradesh. Furthermore, Uttar Pradesh is the top state in terms of agriculture and allied sector production in the country, as well as the greatest contributor to agriculture and allied sector GDP. In 2018-19, Uttar Pradesh's agriculture and allied sector contributed 12.8 per cent to the state's GDP (agriculture and allied sector), while Maharashtra, Gujarat, Madhya Pradesh, Andhra Pradesh, and Tamil Nadu contributed 9 per cent, 8.2 per cent, 7.6 per cent, 6.8 per cent, and 5.3 per cent, respectively. Uttar Pradesh is at the forefront in the production of the total food grains (20%), sugar cane (36%), potato (34%), live stock excluding cow (11%) and milk (17%), wheat (33%), lentil (45%), vegetables (30%) in the country. This study focuses on the untapped potential and highlighted the scope for the agro based agro-processing and agri-business in Uttar Pradesh. Efficient arrangement with favorable policy support and incentives, by taking into account the strengths, weaknesses, opportunities and threats of decisive components like human and land resources, crops, livestock and agro-processing activities would lead to plan the state of Uttar Pradesh as one of the major players in the field of agro-processing as well as agri-business sector of India. The diversified commodity mix in crop sector, livestock compositions, large geographical coverage, variety of soils and diverse agro climatic conditions, abundant availability of labour force, varied availability of agricultural raw materials in state offers excellent prospects for the development of high value agro-based industries and promotion of agri-business.Uttar Pradesh, the land where holy Ganga flows is the second-largest economy in India after Maharashtra, with an NSDP of ₹14.46 lakh crore (US$230 billion) and hence contributes 8.406% of GDP India. The GSDP of the state's registered food processing sector was 7957.45 crore in 2018-19, up 157.76 per cent from the GSDP of the state's registered food processing industry of 3087.14 crore in 2004-05. Furthermore, in 2014-15, GSDP FPI contributed 15.00 per cent to GSDP manufacturing, 3.07 per cent to GSDP agricultural and allied sectors, 0.81 per cent to Uttar Pradesh's total GSDP, and 8.68 per cent to the country's GDP FPI. 1.2 GROWTH RATE/PATH OF GSDP OF FOOD PROCESSING INDUSTRY (GSDP-FPI)

The development paths of Uttar Pradesh's GSDP of food processing industry (GSDP FPI) and India's GDP of food processing industry are both very irregular, but the state's GSDP FPI growth route is more irregular than India's GDP FPI growth path. The fundamental reason for this is because, with the exception of Uttar Pradesh, the food processing industry has grown in most states. As shown in Table, Uttar Pradesh ranks third in terms of GSDP-FPI, fifth in terms of total registered food processing units, and seventh in terms of total workers employed in this industry. According to India's Ministry of Food Processing Industry, 41 mega food parks are operational, completed, or under construction across the country, yet there isn't a single huge food park in Uttar Pradesh. The growth rate/path of the GSDP FPI in Uttar Pradesh, as well as in the context of India, is depicted between 2008-09 and 2018-19, the average growth rate of Uttar Pradesh's GSDP FPI was 14.31 per cent, which was lower than the country's average growth rate of GDP FPI (15.96 per cent). In 2014-15, the state's GSDP FPI grew at a pace of 77.8%, whereas in 2011-12, it grew at a rate of -43 per cent. The main reason is likely the state's underdeveloped infrastructure for preservation and processing industries, as well as a lack of facilities for a proper supply channel to the market.

As a part of the Committed / Spill over liabilities of 11th Plan period during the 12th Plan period also, Ministry of Food Processing Industries has been releasing grant-in-aid to eligible entrepreneurs under the Scheme for Technology Upgradation/ Establishment/ Modernization of Food Processing Industries.

As per an assessment of the extent of food processing in various food sub-sectors done in 2014 by the Institute of Economic Growth on behalf of Ministry of Agriculture, the average extent of processing of agro-products in 2010-11 was 6.76%. It implies that huge scope available for setting up food processing industries by the interested and eligible entrepreneurs of food processing sector in

the country. The Schemes implemented by the Ministry Food Processing Industries have also contributed to the setting up of food processing units in the country.

The Mission for Integrated Development of Horticulture (MIDH) is being implemented in the States and Union Territories. Under this, the fruits and vegetables are being promoted as an area expansion and under protected cultivation also as a cluster approach to fulfil the requirement of raw material for processing units and also to fulfil the market demand. The cultivation of fruits and vegetables are promoted on the basis of agro-climatic conditions and market demand also.

1.3 OBJECTIVES

1. The Impact of globalisation has favorable for Food processing industry of Uttar Pradesh.
2. The cost benefit analyses has been favourable for Food processing industry in Uttar Pradesh.

1.4 RESEARCH METHODOLOGY

This paper focuses on the current study's data and methodology. The study's title is "Food Processing Industry and Job Creation in Uttar Pradesh." The technique is developed based on the study's title, aims, and hypothesis, as well as the availability of data.

From 2004-05 to 2018-19, the study employed two types of data: time series data and panel data from the Annual Survey of Industries (ASI) issued by the Central Statistical Organization (CSO), Ministry of Statistics and Programme Implements (MOSPI), India.

The ASI offers two different data formats: time series unit level data and punitive data, both of which are unit level. ASI provides block-wise data at the unit level.

The factory codes are highly useful for constructing the ownership of factory by organization. Each block contains numerous units with factory codes. The ASI framework is divided into two parts: a census sector and a sample sector. All factories employing 50 or more workers and using electricity, as well as factories employing 100 or more workers and not using electricity, are included in the census sector.The current study employed panel data to look at the long-term link between employment and output in Uttar Pradesh's food processing industry. The panel Johansen- Fisher Co-integration test is used for this purpose. The variables must be stationary in order to use the cointegration test as a pre-request condition. To put it another way, variables must be in the same sequence, i.e. (0).Many panel unit root tests have recently been established by different researchers such as Maddala and Wu (1999), Hadri (2000), Levin et al. (2002), Im, Pesaran, and Shin (2003). To check for the presence of the unit root in panel series data, we employed the LLC and PP- Fisher Chi2 panel unit root tests.

1.5 NUMBER OF REGISTERED FOOD PROCESSING INDUSTRY UNITS IN UTTAR PRADESH

TABLE-1.1

Number of Registered Food Processing Industry (Number & In Operation) in Uttar Pradesh

Years	Registered Food Processing Factories		Factories in Operation (no.)
	Units	Percentage of Total Registered All Industries	
2004-05	1717	17.91	NA
2005-06	1763	16.67	NA
2006-07	1624	15.71	NA
2007-08	1700	15.89	NA
2008-09	1708	14.91	1621
2009-10	2091	14.98	1501
2010-11	2095	15.18	1693
2011-12	2075	14.89	1708
2012-13	2127	14.63	1755
2013-14	2090	14.36	1785
2014-15	2118	14.16	1744
2015-16	2127	13.38	1751
2016-17	2091	13.61	1742
2017-18	2117	13.29	1782

Source: Annual surveys of Industries, India (2004-05 to 2018-19)

During 2018-19, there were 2117 registered food processing industries, up from 1707 in 2004-05. Between 2004-05 and 2017 -18, the total number of registered food processing units accounted for about 14% of the state's total industrial units. In 2018-19, 1782 of the total 2117 food processing industries were operational. The table shows the number of registered food processing units and the number of units in operation in Uttar Pradesh.

TABLE -1.2

Percentage Share of Different Variable Uttar Pradesh Food Processing Industry in All Industry

Years	Fixed Capital	Invested Capital	No. of Employees	Fuel Expenditure	Total Emolument (Salary & wages etc.)
2004 -05	15.17	27.16	24.93	12.94	19.58
2005 -06	15.57	27.98	23.82	12.38	18.37
2006 -07	16.03	28.55	22.81	11.93	17.52
2007 -08	16.52	28.96	21.9	11.55	16.89
2008 -09	16.84	29.23	21.05	11.23	16.41
2009 -10	18.27	28.67	20.41	11.89	16.26
2010 -11	18.41	28.22	19.82	12.4	16.15
2011 -12	19.52	27.89	19.28	12.79	16.07
2012 -13	20.48	27.62	18.79	13.11	16.00
2013 -14	22.76	27.96	18.31	14.21	14.93
2014 -15	23.45	28.25	17.89	15.2	14.22
2015 -16	24.06	28.51	17.51	16.09	13.72
2016 -17	23.29	28.75	17.17	16.9	13.36
2017 -18	23.70	27.83	26.00	16.58	14.67

Source: Annual surveys of Industries, Uttar Pradesh (2004-05 to 2017-18)

From the above table Percentage Share of Uttar Pradesh Food Processing Industry in All Industry has been measured from 2004-05 to 2017-2018. Where Fixed Capital, Invested Capital, No. of Employees, Fuel Expenditure and Total Emolument has been analysed. In each variable the value of items has been fluctuated in the assumed years.

During 2004-05 Fixed Capital was 15.17 percent, 27.16 was Invested Capital, No. of Employees was 24.93 percent Fuel Expenditure value was 12.94percent while registered Total Emolument (Salary & wages etc.) was 19.58 percent. In the year 2005-06 Fixed Capital was 15.57 percent, 27.98 was Invested Capital, No. of Employees was 23.82 percent, Fuel Expenditure value was 12.38 percent while Total Emolument (Salary & wages etc.) was 18.37percent.

During 2006-07 Fixed Capital was 16.03 percent, 28.55 was Invested Capital, No. of Employees was 22.81 percent Fuel Expenditure value was 11.93 percent while, Total Emolument (Salary & wages etc.) was 17.52 percent. Again during 2007-08 Fixed Capital was 16.52 percent, 28.96 was Invested Capital, No. of Employees was 21.90 percent Fuel Expenditure value was 11.55 percent while Total Emolument (Salary & wages etc.) was 16.89 percent.This was again found during 2008-09 Fixed Capital was 16.84 percent, 29.23 was Invested Capital, No. of Employees was 21.05 percent Fuel Expenditure value was 11.23 percent while Total Emolument (Salary & wages etc.) was 16.41percent. In the year 2009-10 Fixed Capital was 18.27 percent, 28.67 was Invested Capital, No. of Employees was 20.41 percent Fuel Expenditure value was 11.89 percent while Total Emolument (Salary & wages etc.) was 16.26 percent.During 2010-11 Fixed Capital was 18.41 percent, 28.22 was Invested Capital, No. of Employees was 19.82 percent Fuel Expenditure value was 12.40 percent while Total Emolument (Salary & wages etc.) was 16.15 percent. In the analysis during 2011-12 Fixed Capital was 19.52 percent, 27.89 was Invested Capital, No. of Employees was 19.28 percent Fuel Expenditure value was 12.79 percent while Total Emolument (Salary & wages etc.) was 16.07 percent.This was an assessment during 2012-13 Fixed Capital was 20.48 percent, 27.62 was Invested Capital, No. of Employees was 18.79 percent Fuel Expenditure value was 13.11 percent while Total Emolument (Salary & wages etc.) was 16.00 percent. During 2013-14 Fixed Capital was 22.76 percent, 27.96 was Invested Capital, No. of Employees was 18.31 percent Fuel Expenditure value was 14.21 percent while Total Emolument (Salary & wages etc.) was 14.93 percent.Again it was studied during 2014-15 Fixed Capital was 23.45 percent, 28.25 was Invested Capital, No. of Employees was 17.89 percent Fuel Expenditure value was 15.20 percent while Total Emolument (Salary & wages etc.) was 14.22 percent. During 2015-16 Fixed Capital was 24.06 percent, 28.51 was Invested Capital, No. of Employees was 17.51 percent Fuel Expenditure value was 16.09 percent while Total Emolument (Salary & wages etc.) was 13.72 percent.In the present study during 2016-17 Fixed Capital was 23.29 percent, 28.75 was Invested Capital, No. of Employees was 17.17 percent Fuel Expenditure value was 16.90 percent while Total Emolument (Salary & wages etc.) was 13.36 percent. In the last year 2017-18 Fixed Capital was 23.70 percent, 27.83 was Invested Capital, No. of Employees was 26.00 percent Fuel Expenditure value was 16.58 percent while Total Emolument (Salary & wages etc.) was 14.67 percent.

TABLE -1.3

Compound Annual Growth Rate of Different Variable Uttar Pradesh Food Processing Industry

During Period	Consumed Material	Total Output	Gross value added	Net added value	Registered Industry	Total Input
2004-05 to 2010-11	16.70	16.61	8.65	6.32	1.43	17.76
2011-12 to 2017-18	9.95	11.06	17.41	20.06	0.16	10.30
2004-05 to 2017-18	16.57	16.71	13.41	14.07	1.83	17.12

During period 2004-05 to 2010-11 CAGR of Uttar Pradesh food processing industry was: in case of Consumed material was 16.70 percent, 16.61 percent was total output, gross added value was 8.65 percent, having with 6.32 net added value. In the same period registered industry was 1.43 percent while total input was 17.76 percent.Again when CAGR was calculated during period 2011-12 to 2017-18 CAGR of Uttar Pradesh food processing industry was: in case of Consumed material was 9.95 percent, 11.06 percent was total output, gross added value was 17.41 percent, having with 20.06 net added value. In the same period registered industry was 0.16 percent while total input was 10.30 percent. In the study during period 2004-05 to 2017-18CAGR of Uttar Pradesh food processing industry was: in case of Consumed material was 16.57 percent, 16.71 per cent was total output, gross added value was 13.41 percent, having with 14.07net added value. In the same period registered industry was 0.83 percent while total input was 17.12 percent

TABLE -1.4

Compound Annual Growth Rate of Different Variable Uttar Pradesh Food Processing Industry

During Period	Fixed Capital	Invested Capital	No. of Employees	Fuel Expenditure	Total Employment (Salary & wages etc.)	Worker
2004 -05 to 20010 -11	12.12	17.49	.70	9.85	12.61	0.17
2011 -12 to 2017 -18	9.78	7.10	4.43	11.96	13.17	4.81
2004 -05 to 2017 -18	11.58	12.23	2.17	12.71	13.12	1.85

During 2004-05 to 2010-11 CAGR of Uttar Pradesh Food Processing Industry was in case of Fixed Capital was 12.12 percent, 17.49 percent was Invested Capital, No. of Employees was 0.70 percent, having with 9.85 net Fuel Expenditure. In the same period Total Emolument (Salary & wages etc.) was 12.61 percent while Worker was 0.17 percent.

During period 2011 -12 to 2017 -18 CAGR of Uttar Pradesh Food Processing Industry was: in case of Fixed Capital was 9.78 percent, 7.10 percent was Invested Capital, No. of Employees was 4.43 percent, having with 11.96 net Fuel Expenditure. In the same period Total Emolument (Salary & wages etc.) was 13.17 percent while Worker was 4.81 percent.In the study period 2004 -05 to 2017-18 CAGR of Uttar Pradesh Food Processing Industry was in case of Fixed Capital was 11.58 percent, 12.23 percent was Invested Capital, No. of Employees was 2.17 percent, having with 12.71 net Fuel Expenditure. In the same period Total Emolument (Salary & wages etc.) was 13.12 percent while Worker was 1.85 percent.

TABLE -1.5

Compound Annual Growth Rate of Different Variable Uttar Pradesh All Industry

During Period	Consumed Material	Total Output	Gross value added	Net added value	Registered Industry	Total Input
2004 -05 to 2010 -11	19.12	18.23	14.71	15.05	4.12	19.04
2011 -12 to 2017 -18	6.83	9.16	13.01	13.69	2.04	8.35
2004 -05 to 2017 -18	13.85	14.65	14.01	14.64	3.70	14.79

It was also observed period 2004-05 to 2010-11 CAGR of Uttar Pradesh all industry was in case of Consumed material was 19.12 percent, 18.23 per cent was total output, gross added value was 14.71 percent , having with 15.05 net added value. In the same period registered industry was 4.12 percent while total input was 19.04 percent.

In the same period 2011-12 to 2017-18 CAGR of Uttar Pradesh food processing industry was in case of Consumed material was 6.83 percent, 9.16 per cent was total output, gross added value was 13.01 percent, having with 13.69 net added value. In the same period registered industry was 2.04 percent while total input was 8.35 percent.

1.6 CONCLUSIONS-During study it was also observed in case of gross output per person employees was 1730.11 during the year 2004-05. It has been rapidly increased and has been beneficiary for the industry. It was 4122.61 during 2017-18, it has increased by four times of the selected period of the study. Again has been also a positive sign for net value added per person employees (NVA/NE) in the same period. In case of salaries and wages /no worker (NW) employees, as soon as salary increases, it kicks of unskilled manpower, during 2004-05 NW was 84.65 which increased by 308.24 in the year 2016-17 but it again fall by 230.82 in 2017-18. Again it was also observed during 2004 -05 GVA/FC value was 0.37. Again it began to fall from 2005-06 it was 0.39. It has been increased by 2016-17 having with 0.83. But it was slightly high in 2017-18 which was 0.66. it fluctuates due to inflation, role of banking industry as well as political environment. If it increases in leaps and bounce, not be beneficiary sign for the industry. During 2014 -15 to 2017 -18. CAGR of Uttar Pradesh food processing industry was: in case of Consumed material was 13.85 per cent, 14.65 per cent was total output, gross added value was 14.01per cent , having with 14.64 net added value. In the same period registered industry was 3.70 per cent while total input was 14.79 per cent.It was also examined during 2004 -05 to 2009 -10 CAGR of Uttar Pradesh All Industry was in case of Fixed Capital was 8.49 per cent, 16.10 per cent was Invested Capital, No. of Employees was 4.64 per cent, having with 10.91 net Fuel Expenditure. In the same period Total Emolument (Salary & wages etc.) was 16.23 percent while Worker was 4.49 percent.

****

REFERENCES

1. Anita Kumari (2020), "Productivity Growth in Indian Engineering Industries during Pre Reform and Post Reform Period: An Analysis at Company Level." Conference Papers No. 1748, 2004-05.
2. Babool, A., & Reed, M. R. Food safety standards and export competitiveness in the Food and Processed Food Industries in Asia-Pacific countries
3. Babu, G. S., & Sekhar, M. R. (2020), Impact of Foreign Direct Investment (FDI) In Indian Food Processing Sector. Journal of Business and Management (IOSR- JBM) e-ISSN: 2278-487X, p-ISSN: 2319-7668. Volume 17, Issue 1.Ver. I, PP 06-12
4. Bain, J.S. (2019), Industrialisation difference in Industrial Countries: Eight Nations in 1950's, (New Delhi : Yale University Press).
5. Baliyan, S. K., Kumar, S., &Baliyan, "Efficiency and Productivity Growth of Food Processing Industry in India: A Malmquist Index Approach". Journal of Economic & Social Development, 11(1).
6. Bauer, P. W. (2019), "Recent Developments in the Econometric Estimation of Frontiers", Journal of Econometrics, 46, 39-56.
7. Chambers, R. (2017), The Origins and Practice of Participatory Rural Appraisall, World Development, Volume 22, Issue 7, pp. 953-969.
8. Charles Mather (2017), "The growth Challenges of Small and Medium Enterprises (SME's) in South Africa's Food Processing Complex," Development Southern Africa, 22(5), Pp.607-620.
9. Coelli, T. (2016), "A guide to DEAP version 2.1: A data envelopment analysis (Computer) program (CEPA Working Paper 96/08)". University of New England, Australia: Centre for Efficiency and Productivity Analysis, Department of Econometrics.
10. D. LavanyaKumari, .K. SanthaKumariFood Processing Industry in India and Foreign Direct Investment International Journal of Scientific Research, Vol 4.
11. Dev, S. M., &Rao, N. C. (2015). Food processing in Andhra Pradesh: Opportunities and challenges. Centre for Economic and Social Studies.
12. Fernandez, C.G. Koop and M Steel,A Bayesian Analysis of Multiple-Output Production Frontiers," Journal of Econometrics, 2014 pp. 47-79
13. Gervais, Jean, Phillippe, Bonroy, Oliver and Coutre, Steve, (2013), "Economies of Scale in the Canadian Food Processing Industry", MPRA Working Paper No.64.
14. Gourieroux, C. and A. Monfort, "Simulation Based Econometrics", Oxford University Press, New York, 2013.

Vyāsa's Draupadī and Her Relevance in Present Day Context

Karabi Sarmah
Research Scholar
Gauhati University

The character of Draupadī actually never needs an introduction as almost every Indian child grows up by listening to the stories of her and Pāṇḍavas. She is the heroine of the epic Mahābhārata and it may be said that the whole story of the Mahābhārata revolves around her character. Draupadī- the daughter of Drupada and wife of Pāṇḍavas is a brave and dignified Indian woman. Though the character of Draupadī belonged to ancient period; she still bears relevance in various modern domains of thought. She has her individual identity by which she corresponds to many thoughts and actions of today's world. Thus, the concepts like feminism, women empowerment, equality etc. which are conceived as topics of modernity, come here as connected to Draupadī even of ancient period. In this paper an endeavour is made to look into these aspects of the concerned character.

Key words: *Draupadī, feminism, women-empowerment, equality.*

I. Introduction:-The character of Draupadī never needs an introduction as almost every Indian child grows up by listening to the stories of her and Pāṇḍavas. She is the heroine of the epic *Mahābhārata* and it may be said that the whole story of the *Mahābhārata* revolves around her character. The name Draupadī relates to her father's name Drupada, the king of Pāñcāla. She becomes Draupadī as Drupada's daughter. Drupada, the king of Pāñcāla, is not her biological father as she emerges from the fire of a *yajña*. Drupada performs the *yajña* in prayer for a child who can take revenge against Droṇācārya. God blesses him and two children are born out of the celestial fire lit by Drupada to fulfill his determination of vengeance against Droṇācārya, his enemy, through his death. The first to emerge out of the holy pyre is a son called Dhṛṣṭadyumna and the second, a daughter called Draupadī. Thus, Draupadī is born from the fire of vengefulness, anger and passion. In the *Mahābhārata* the beauty of Draupadī is portrayed as the most beautiful woman of that time. Draupadī is married to Pāṇḍavas. She has five sons from each one of her husband, viz., Pratiyindhya is from Yudhiṣṭhira, Sutasoma from Bhīma, Śrutakarmā from Arjuna, Śatānīka from Nakula and Śrutasena from Sahadeva. If one looks into the character of Draupadī through the prism of a woman, it can be said that she is a bold, brave and honest lady. As a matter of fact, the whole story of *Mahābhārata* revolves around her character. During her lifetime, Draupadī has to face a lot of injustice and ill-treatments. But Draupadī, as a woman, deals with every situation with tremendous courage.

II. Aims and Objectives:-The main aims and objectives of this paper are to analyse the character of Draupadī from the epic *Mahābhārata* and also the relevance of her character in present time. It is expected that this paper may bring interest in researchers to take up the study about the female mythological characters of Indian literature and their relevance in present day context.

III.Methodology:-The method used in this paper is analytical and comparative.

IV.Body:

IV. 1. Draupadī through the Lens of Feminism:-The word feminism has its genesis in the west. The women's rights movement which started towards the later half of the eighteenth century led to the idea of feminism. According to John Charvet who authored the book named *Feminism*, feminism is the ideology of equality between sexes. The word feminism is derived from the Latin word *femina*- which means women and the suffix – ism, which denotes a principle or doctrine. The *Oxford Advance Learner's Dictionary* defines feminism as advocacy of the rights of women based on the theory of equality of the sexes. It is about all genders having equal rights and opportunities. The fundamental concept behind feminism is that there is no difference between men and women in terms of ability and importance. There exist no separate entities like the male being and the women being. It is very unfair to evaluate the nature and quality of human beings on the basis of gender. This idea of feminism emerged in the west with the aim of removing gender inequality, ensuring active and equal participation of women in politics, expansion of women education and establishing economic and legal security for the women. These ideas were the main factors which gave birth to the feminist movement in its early stage. On the basis of the idea conceived in the domain of feminism, it can be said that the character Draupadī can not be directly connected to the concept of feminism that came to India enroute the west. But it can be easily analysed how the basic principles of freedom of thought and action can be envisaged in this character who flourished in Indian thought thousands of years before the idea of so called feminism emerged in India. Actually those characters had been developed in the land of Bharata where from ancient times women were given

importance in the society from various directions. From the study of the Mahābhārata, it becomes clear that Draupadī is a woman who has a great sense of self-respect and dignity. It is also seen that although the society in which Draupadī lives is essentially of patriarchal nature, yet Draupadī's societal status always has been kept held at per with her husbands. It is important to point out that Draupadī's identity in the Mahābhārata is not limited merely as the wife of the Pāṇḍavas. Apart from being a wife, a mother and a daughter-in-law, Draupadī takes part in the management works of the royal palace. From the words uttered to Satyabhāmā in the Vanaparva, it can be said that Draupadī takes a leadership role in matters relating to the treasury, hospitality and other matters of household activities. Cf.

sarvaṁ rājñaḥ samudayamāyaṁ ca vyayameva ca/
ekahaṁ vedmi kalyāṇi pāṇḍavānāṁ yaśasvini//
adhṛṣyaṁ varuṇasyeva nidhipūrṇamivodadhim/
ekāhaṁ vedmi kośaṁ vai patīnāṁ dharmacāriṇām//
mayi sarvaṁ samāsajya kuṭumbaṁ bharatarṣabhāḥ/
upāsanaratāḥ sarve ghaṭyanti varānane//
tamahaṁ bhāramāsaktamanādhṛṣyaṁ durātmabhiḥ/
sukhaṁ sarvaṁ paritajya ratryahāni ghaṭāmi vai//
Mahābhārata,Vanaparva,233. 53&5

Also, it is seen that the Pāṇḍavas always pay heed to the advice of Draupadī in connection with various important decisions. After the war of *Kurukṣetra*, Yudhiṣṭhira is seen to have complete break down and his mental state of depression can be understand easily. Cf.

mitratā sarvabhūteṣu dānamadhyayanaṁ tapaḥ/
brāhmaṇasyaiva dharmaḥ syānna rājño rājasattam//
asatāṁ pratiṣedhaśca satāṁ ca paripālanam/
eṣa rājñāṁ paro dharmaḥ samara cāpalāyanam//
Mahābhārata, Śāntiparva, 14.15-16

As such, Yudhiṣṭhira becomes very reluctant to usurp the throne. It is observed that at this point of distress and despair Draupadī plays a crucial role to bring Yudhiṣṭhira out of depression. Draupadī acts as a counselor to Yudhiṣṭhira and reminds him of the *kṣatriyadharma* and his duty. Cf.

dhigastu naṣṭaḥ khalu bhāratānāṁ
dharmastathā kṣatravidāṁ ca vṛttam/
yatra hyatītāṁ kurudharmavelāṁ
prekṣanti sarve kuravaḥ sabhāyām//
droṇasya bhīṣmasya ca nāsti sattvaṁ
kṣattustathaivāsya mahātmano'pi/
rājñastathā hīmamadharmamugraṁ
na lakṣyayante kuruvṛddhamukhyāḥ//
Mahābhārata, Sabhāparva, 67. 40-41

What is more remarkable in this context is the fact that despite being humiliated in the royal palace in front of all the guardians and royal people, Draupadī still upholds her belief in the concept of man and woman being a co-existential and complementary pair of each other. As a human being, Draupadī also becomes very disappointed at the numbness of her husbands during such a crucial event but she does not keep any grudge against them openly and quickly reconciles with them. This aspect becomes apparent from the incident when Draupadī, instead of being revengeful towards her husbands, liberates them from enslavement by virtue of the boons which she receives from Bhīṣma. Cf.

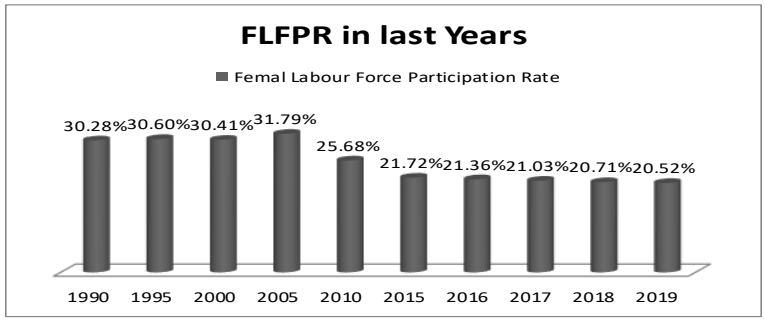
dadāsi ced varaṁ hahyaṁ vṛṇomi bharatarṣabha/
sarvadharmānugaḥ srīmānadāso'stu yudhiṣṭhiraḥ//
sarathau sadhanuṣkau ca bhīmasenadhanaṁjayau/
yamau ca rājannadāsān svavaśānaham// Mahābhārata, Sabhāparva, 71.28 &32

Therefore, it is seen that Draupadī is a woman who has an extraordinary sense of self-respect and dignity. Her royal connection and kṣatriya patronage are frequently exhibited by placing her with a sense of dignified thought process. This freedom of thought really makes her a true feminist. She also is a staunch believer in the idea of man and woman living in co-existence both being complementary to each other for the betterment of the society. Thus, in every action of Draupadī, the good of the mass has been shown priority.

IV.2. Draupadī through the Lens of the Concept of Women Empowerment: Women empowerment can be defined as promoting women's sense of self- worth, their ability to determine their own choices and their right to influence social change for themselves and others. Thus, women empowerment equips and allows women to make life-determining decisions in respect of their lives as well as society. 4 In this context the empowering aspects of Draupadī finds her relevance in modern arena of thoughts. The status of women in today's society has a lot of similarities with the ancient character Draupadī. She suffered a great deal of trouble and turmoil in her live. However, she has not only been successful in coping up with all the challenges that have come along her journey of life, but also has succeeded in upholding her dignity, rights and self-respect in a very laudable way. What is more inspiring about her character is the fact that she has not blindly followed either her husbands or the norms of the patriarchal society. Every decision she has taken has been guided by her own conscience and wisdom and not by any societal pressure. Even though she goes with societal norms, her conscience always remains awake with her own decision and discrimination. When the character is looked at through the lens of modern concept of women empowerment, she appears really as a source of inspiration for the women of the new generation.From the analysis of the character of Draupadī, it is

understood that she stands as a symbol of an empowered woman by courageously fighting against all kinds of injustice done towards her by the patriarchal society prevailing at that time. In the incident of Sabhāparva without a pinch of fear, Draupadī questions all the elderly persons of the royal court when she realizes that she is fighting against gross injustice done towards a woman. Draupadī's question,asked to Bhīṣma reminds everyone of the right and status of woman in the society of Mahābhārata's time. This scene proves how much courageous Draupadī is! She does not hesitate to put questions before the guardians of the society about feminine right and status. And all the persons who silently endure the suffering of a lady are all men. Their masculine ego dies
not let them go against the lethal decision of Duryodhana of bringing Draupadī to the court. So,Draupadī's question before the elders not only proves her courage to speak on his self- honour but it also brings shame on the part played by the elders and policy makers of that time.

Today in the 21 st century also women are often subjected to various abuses humiliations and harassments. But unfortunately many women are seen to be remaining away from not raising their voice against injustice out of fear and they generally silently go on bearing with the injustice. For such women Draupadī can be a figure of eternal inspiration. Draupadī has been stripped off her clothes by Duḥśāsana in front of everyone in the royal court. But Draupadī instead of bearing with it silently vehemently protested against such an act of gross injustice. In this respect the #MeToo movement can be referred to. #MeToo is a social movement against sexual abuse and sexual harassment where people publicize their allegations of sexual harassments. 5 #MeToo movement started in the year 2017 and since then the movement has gone viral over the social networks. 6 Many people from across the world including many public figures have so far publicly announced about their sexual harassments and abuses. 7 Many culprits have also been brought to book by the judiciary and eventually they are also penalized. A lot of victims resorted to the use of Facebook, Twitters etc. to publicize their stories. Thus, one or two public announcements have made many women brave enough to open up with their incident of harassment. Thus, the public disclaimer of sexual harassment done by Draupadī undoubtedly stamps her as a brave and courageous woman. Moreover, her words have open up the masks of many stalwarts who have otherwise gained fame in the society. Thus, Draupadī's fearless attitude can be equated with the emotions of those modern ladies who do not hesitate to place the story of their harassment before the society openly.Similarly, another social problem of India is the problem of diminishing participation of women in the labourforce of economy. According to the data released by the World Bank, the Female Labour Force Participation Rate (FLFPR) of India has fallen from 30.27% in 1990 to 20.8% in the year 2019. 8 The following graphical representation illustrates the decreasing trend
of FLFPR throughout the decade.



9.Figure;5.3

One of the underlying reasons for this decreasing trend of FLFPR is that a lot of women with higher education are not choosing to go for physical work. It is because women find it difficult to manage their house along with a busy job. Besides, there exist some family issues too, restricts the participation of women in the field of physical work.

In this respect the character of Draupadī can again be an inspirational one. According to the descriptions given in the Mahābhārata, Draupadī is a very good manager. It is seen that Draupadī, apart from her personal duties, also looks after the treasury and financial aspects of five Pāṇḍavas. Cf.

sarvaṁ rājñaḥ samudayamāyaṁ ca vyayameva ca/
ekahaṁ vedmi kalyāṇi pāṇḍavānāṁ yaśasvini//
adhṛṣyaṁ varuṇasyeva nidhipūrṇamivodadhim/
ekāhaṁ vedmi kośaṁ vai patīnāṁ dharmacāriṇām//
Mahābhārata,Vanaparva,233. 53&56

Not only this, Draupadī also looks after the servants working in the family and takes care of all five husbands quite efficiently. Cf.

antaḥpurāṇāṁ sarveṣāṁ bhṛtyānāṁ caiva sarvaśaḥ/
āgopālāvipālebhyaḥ sarvaṁ veda kṛtākṛtam// Mahābhārata,Vanaparva,233.52

In spite of all these workloads, Draupadī manages to establish herself as a dignified queen of the kingdom of Yudhiṣṭhira. Therefore, today's women can learn a lot and takes inspiration from such stories of Draupadī. Draupadī can be a symbol of women empowerment easily even in the present day society.

Conclusion:-

In conclusion it can be said that Draupadī is a bold, empowered and courageous lady, who has an extraordinary sense of self-respect and dignity. She raises her voice against injustice and teach appropriate lesson to the evils. She is a woman who is always aware of her rights and self-respect. Draupadī never blindly follow her husband

or the norms of the patriarchal society. Every decision she has taken- has been guided by her own conscience and wisdom, not by any societal pressure. Thus, her personality traits can be a source of inspiration for the women of the new generation. Draupadī can also be the role model to those women who are silently digesting the physical and mental harassment as well as the social evil norms even in the 21st century society.

****

Notes & References:

1. Charvet, John, Feminism, Dent, 1982, pp. 2-3
2. https://www.dictionary.com/browse/feminism
3. Hornby, A. S., Oxford Advanced Learner's Dictionary, 7th ed., Oxford University Press, New York, 2006, p. 565
4. Bayeh, Endalcachew, the role of empowering women and achieving gender equality to the sustainable development of Ethiopia, Pacific Science, January 2016, Vol. II, Issue 1, pp.37-42
5. Smartt,Nicole, Sexual Harassment in the Workplace in A #MeToo World, Forbes Human Resources Council, 20 December, 2017
6. Guerra, Cristela, Where'd the "Me Too" initiative really come from? Activist Tarana Burke, long before hashtags, The Boston Globe, October 17, 2017
7. Radu, Sintia, How #MeToo has awoken women around the World, US News, January 6, 2018
8. https://www.financialexpress.com/opinion/where-are-women-in-indias-workforce-slipping-female-lfpr-is-worrying-trend/2208828/The financial express march 9th 2021
9. Ibid

शोधालेख प्रकाशन के मानक

व्यक्तिगत पंचवार्षिक सदस्यता लेने पर पांच साल तक पत्रिका मिलेगी। शोधालेख प्रकाशन की स्वीकृति/अस्वीकृति का जो भी निर्णय होगा वह आपको मेल से ही सूचित किया जाएगा। इसको लेकर संपर्क करने की आवश्यकता नहीं हैं।

UGC CARE LISTED हिन्दी की स्तरीय पत्रिका 'नागफनी' के जो सदस्य हैं उनका ही आलेख प्रकाशित होगा। जो भी व्यक्ति शोधालेख भेजना चाहते हैं कृपया वें अपने लेख में निम्न बिंदु आवश्यक रूप से रखें जैसे–

1. भूमिका/प्रस्तावना
2. विषय वस्तु/बीज शब्द
3. मुख्य अंश/उद्देश्य
4. परिणाम/निष्कर्ष
5. सन्दर्भ
6. शब्द मर्यादा अधिकतम शब्द 3000 इससे ज्यादा शब्द है तो कार्यकारी संपादक से परामर्श कीजिएगा।
7. सत्यापन एवं सहमति पत्र देने पर ही आलेख के सम्बन्ध में निर्णय होगा।

सत्यापन प्रमाण–पत्र

1. मैं .....सत्यापित करता/करती हूँ की 'नागफनी' के लिए प्रस्तुत शोधालेख शीर्षक.....मौलिक एवं अप्रकाशित है। लेखन संबंधित सारे संदर्भ सत्य हैं। किसी भी अंश के विवादित स्थिति के लिए मैं स्वयं जिम्मेदार रहूँगा/रहूँगी। साथ ही प्रस्तुत शोधालेख में नागफनी के पीयर रिव्यू कमेटी को संशोधन संपादन और संवर्धन करने की सहमति जताता/जताती हूँ।

2. शोधालेख प्रकाशित–अप्रकाशित करने का पूर्ण अधिकार सम्पादक मंडल और पीयर रिव्यू कमेटी का है। स्तरीय एवं मौलिकता आदि के परीक्षण के बाद ही शोधालेख की स्वीकृति/अस्वीकृति का जो भी निर्णय होगा, मुझे मान्य होगा। उपरोक्त नियम और शर्तों को मैं स्वीकार करता/करती हूँ।

हस्ताक्षर–
नाम–
मोबाइल नंबर–

व्यक्तिगत पंचवार्षिक सदस्यता लेने पर पांच साल तक पत्रिका मिलेगी। शोधालेख प्रकाशन की स्वीकृति/अस्वीकृति का जो भी निर्णय होगा वह आपको मेल से ही सूचित किया जाएगा। इसको लेकर संपर्क करने की आवश्यकता नहीं हैं।

STANDARD NORMS FOR AUTHORS

Nagfani, the U.G.C. Care listed journal publishes articles, research papers etc. written by the members of journals only. The manuscripts should contain the following:

1. Abstract with keywords
2. Objectives
3. Conclusions
4. References
5. Word limit is 3000 (For higher limits, please contact the editor)

I_____ certify/undertake to say that the manuscript entitled_____submitted for publication in the NAGFANI issue is an unpublished original work. I know that I will be fully responsible for any controversial situation arising out of the manuscript/article or part of it. I also transfer the rights to edit, review and conserve the manuscript to the peer review committee of NAGFANI.

Signature of the author:
Mobile No:



अधिक जानकारी के लिए वेबसाइट देखिए http%//naagfani.com

रेमी प्रेस सैन्टर / 9425179103